दादा भगवान प्ररूपित

प्रतिक्रमण

दादा भगवान प्ररूपित

प्रतिक्रमण

मूल गुजराती संकलन : नीरू बहन अमीन
हिन्दी अनुवाद : महात्मागण

प्रकाशक : अजीत सी. पटेल
दादा भगवान आराधना ट्रस्ट
'दादा दर्शन', 5, ममतापार्क सोसायटी,
नवगुजरात कॉलेज के पीछे, उस्मानपुरा,
अहमदाबाद - 380014, गुजरात
फोन : (079) 27540408

© All Rights reserved with - Dada Bhagwan Foundation Trust,
5, Mamta Park Society, B\h. Navgujarat College, Usmanpura,
Ahmedabad - 380014, Gujarat, India.
No part of this book may be used or reproduced in any manner whatsoever without written permission from the holder of the copyrights.

प्रथम संस्करण : 1000, प्रतियाँ, नवम्बर, 2019

भाव मूल्य : 'परम विनय' और 'मैं कुछ भी जानता नहीं', यह भाव!

द्रव्य मूल्य : 150 रुपए

मुद्रक : अंबा ऑफसेट
B-99, इलेक्ट्रोनीक्स GIDC,
क-6 रोड, सेक्टर-25,
गांधीनगर-382044.
फोन : (079) 39830341

त्रिमंत्र

नमो अरिहंताणं

नमो सिद्धाणं

नमो आयरियाणं

नमो ऊवज्झायाणं

नमो लोए सव्वसाहूणं

एसो पंच नमुक्कारो

सव्व पावप्पणासणो

मंगलाणं च सव्वेसिं

पढमं हवइ मंगलं ॥ १ ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २ ॥

ॐ नमः शिवाय ॥ ३ ॥

जय सच्चिदानंद

दादा भगवान कौन?

जून 1958 की एक संध्या का करीब छ: बजे का समय, भीड़ से भरा सूरत शहर का रेल्वे स्टेशन, प्लेटफार्म नं. 3 की बेंच पर बैठे श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल रूपी देहमंदिर में कुदरती रूप से, अक्रम रूप में, कई जन्मों से व्यक्त होने के लिए आतुर 'दादा भगवान' पूर्ण रूप से प्रकट हुए। और कुदरत ने सर्जित किया अध्यात्म का अद्भुत आश्चर्य। एक घंटे में उन्हें विश्वदर्शन हुआ। 'मैं कौन? भगवान कौन? जगत् कौन चलाता है? कर्म क्या? मुक्ति क्या?' इत्यादि जगत् के सारे आध्यात्मिक प्रश्नों के संपूर्ण रहस्य प्रकट हुए। इस तरह कुदरत ने विश्व के सम्मुख एक अद्वितीय पूर्ण दर्शन प्रस्तुत किया और उसके माध्यम बने श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल, गुजरात के चरोतर क्षेत्र के भादरण गाँव के पाटीदार, कान्ट्रेक्ट का व्यवसाय करनेवाले, फिर भी पूर्णतया वीतराग पुरुष!

उन्हें प्राप्ति हुई, उसी प्रकार केवल दो ही घंटों में अन्य मुमुक्षु जनों को भी वे आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे, उनके अद्भुत सिद्ध हुए ज्ञानप्रयोग से। उसे अक्रम मार्ग कहा। अक्रम, अर्थात् बिना क्रम के, और क्रम अर्थात् सीढ़ी दर सीढ़ी, क्रमानुसार ऊपर चढ़ना। अक्रम अर्थात् लिफ्ट मार्ग, शॉर्ट कट!

वे स्वयं प्रत्येक को 'दादा भगवान कौन?' का रहस्य बताते हुए कहते थे कि ''यह जो आपको दिखते है वे दादा भगवान नहीं है, वे तो 'ए.एम.पटेल' है। हम ज्ञानीपुरुष हैं और भीतर प्रकट हुए हैं, वे 'दादा भगवान' हैं। दादा भगवान तो चौदह लोक के नाथ हैं। वे आप में भी हैं, सभी में हैं। आपमें अव्यक्त रूप में रहे हुए हैं और 'यहाँ' हमारे भीतर संपूर्ण रूप से व्यक्त हुए हैं। दादा भगवान को मैं भी नमस्कार करता हूँ।''

'व्यापार में धर्म होना चाहिए, धर्म में व्यापार नहीं', इस सिद्धांत से उन्होंने पूरा जीवन बिताया। जीवन में कभी भी उन्होंने किसीके पास से पैसा नहीं लिया बल्कि अपनी कमाई से भक्तों को यात्रा करवाते थे।

समर्पण

अतिक्रमणों की लगातार, आती हुई बौछार,
विषम काल में, पल-पल कषायी व्यवहार।

पति-पत्नी, माँ-बाप, बच्चों में वाणी की गोलीबार,
व्यवहार और मन से सतत दुःखों के उपहार।

फिर भी दादा ने दिया प्रतिक्रमण का हथियार,
नर्क में स्वर्ग का स्थापन, घर में या बाहर।

लाखों लोगों ने आज़माया, बदले जड़ से संस्कार,
मोक्ष के लायक बनाए, अक्रम का यह उपहार।

वीतरागों के प्रतिक्रमण का, दादा द्वारा फिर से प्रसार,
जग को समर्पित, जो अपनाएगा वह पाएगा मुक्ति का हार।

संपादकीय

हृदयपूर्वक मोक्षमार्ग पर जाने वालों के लिए, पल-पल परेशान करने वाले कषायों को जड़ से खत्म करने के लिए, मार्ग में आगे बढ़ने के लिए, कोई अचूक साधन तो चाहिए या नहीं? स्थूलतम से सूक्ष्मतम तक के टकराव कैसे टालें? हमें या हम से अन्य को दुःख हो जाए तो उसका निवारण क्या है? कषायों की बॉम्बार्डिंग को रोकने के लिए या वे फिर से नहीं हों, उसके उपाय क्या हैं? इतना धर्म किया, जप, तप, उपवास, ध्यान, योग किए, फिर भी मन-वचन-काया से होने वाले दोष क्यों नहीं रुकते? अंतरशांति क्यों नहीं होती? कभी निजदोष दिखाई दें, तो उसके लिए क्या करें? उन्हें कैसे निकाले? मोक्षमार्ग में आगे बढ़ने के लिए और संसार मार्ग में भी सुख-शांति, मंद कषाय या प्रेम भाव से जीने के लिए कोई ठोस साधन तो चाहिए न? वीतरागों ने धर्मसार में जगत् को क्या समझाया है? वास्तविक धर्मध्यान क्या है? पाप में से वापस लौटना हो तो उसका कोई यथार्थ मार्ग है क्या? यदि है तो नज़र क्यों नहीं आता?

धर्म शास्त्रों में से बहुत कुछ पढ़ते हैं, फिर भी वह जीवन में क्यों नहीं बरतता? साधु, संत, आचार्य, कथाकार इतने उपदेश देते हैं फिर भी इन उपदेशों के परिणमित होने में क्या कमी रह जाती है। प्रत्येक धर्म में कितनी ही क्रियाएँ होती हैं? कितने व्रत, जप, तप, ध्यान, नियम प्रवर्तित हैं, फिर भी क्यों फलदायी नहीं होते? कषाय क्यों कम नहीं होते? दोषों का निवारण क्यों नहीं होता? क्या इसकी ज़िम्मेदारी उपदेशकों की नहीं है? ऐसा टीका-टिप्पणी या द्वेष भाव से नहीं लिखा जा रहा है लेकिन करुणा भाव से हैं, फिर भी उसे साफ करने के लिए कोई उपाय है या नहीं? अज्ञान दशा में से ज्ञान दशा और ठेठ केवलज्ञान स्वरूप दशा तक पहुँचने के लिए ज्ञानियों ने, तीर्थंकरों ने क्या निर्देश दिया होगा? ऋणानुबंध वाले व्यक्तियों के साथ राग या द्वेष के बंधनों से मुक्त होकर वीतरागता कैसे प्राप्त हो?

'मोक्ष का मार्ग है वीरों का, नहीं है कायरों का काम' लेकिन

वीरता का उपयोग कहाँ करें ताकि जल्दी-जल्दी मोक्ष तक पहुँचें? कायरता किसे कहेंगे? पापी पुण्यशाली बन सकते हैं? तो वह कैसे?

पूरी ज़िंदगी जल गई इस RDX की अग्नि में, उसे कैसे बुझाएँ? रात-दिन पत्नी का परिताप, पुत्र-पुत्रियों का संताप और पैसे कमाने का उत्ताप, इन सभी तापों से कैसे शाता (ठंडक) प्राप्त करके नैया पार उतारें?

गुरु-शिष्यों के बीच, गुरुमाताओं और शिष्याओं के बीच, निरंतर कषायों से अधोगति की ओर जा रहे उपदेशक कैसे वापस लौट सकते हैं। अणहक्क की लक्ष्मी और अणहक्क की स्त्रियों के पीछे वाणी-वर्तन या मन से या दृष्टि से दोष हो जाएँ, उसका तिर्यंच अथवा नर्कगति के सिवा कहाँ स्थान हो सकता है? उसमें से किस प्रकार से छूटा जा सकता है? उसमें सचेत रहना हो तो कैसे रह सकते हैं और कैसे मुक्त हो सकते हैं? ऐसे अनेक उलझन भरे सनातन प्रश्नों का हल क्या हो सकता है?

प्रत्येक मनुष्य खुद के जीवनकाल के दौरान कभी-कभी संयोगों के दबाव से ऐसी परिस्थिति में फँस जाता है कि संसार व्यवहार में ऐसी भूलें नहीं करनी हों, फिर भी भूलें हो जाती हैं और भूलों से मुक्त नहीं हो पाता, ऐसी परिस्थिति में दिल के सच्चे पुरुष सतत उलझन का अनुभव करते हैं। ऐसे लोगों को भूलों से छुटकारा पाने का और जीवन जीने की सही राह मिल जाए, ताकि वे अपने आंतरिक सुख-चैन में रहकर प्रगति कर सकें, इस हेतु से जो कभी भी प्राप्त नहीं हुआ हो, ऐसा अध्यात्म विज्ञान का आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान रूपी एक मात्र अचूक हथियार तीर्थंकरों ने, ज्ञानियों ने जगत् को अर्पित किया है। इस हथियार द्वारा विकसित दोष रूपी विशाल वृक्ष को मुख्य जड़ समेत निर्मूल करके अनंत जीव मोक्षलक्ष्मी को प्राप्त कर सके हैं। ऐसे मुक्ति देने वाले इस प्रतिक्रमण रूपी विज्ञान का यथार्थ रूप से ज्यों का त्यों स्पष्टीकरण प्रकट ज्ञानी पुरुष श्री दादा भगवान ने केवलज्ञान स्वरूप में देखकर कही हुई वाणी द्वारा दिया है। जो प्रस्तुत ग्रंथ में संकलित हुआ है, जो सुज्ञ वाचक को आत्यंतिक कल्याण के हेतु उपयोगी सिद्ध होगा।

ज्ञानी पुरुष की वाणी द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव तथा भिन्न-भिन्न निमित्तों के अधीन निकली हुई है, उस वाणी के संकलन में भासित क्षतियाँ क्षम्य मानकर ज्ञानी पुरुष की वाणी का अंतर आशय प्राप्त करें यही अभ्यर्थना!

ज्ञानी पुरुष की जो वाणी निकली है, वह नैमित्तिक रूप से जो भी मुमुक्षु-महात्मा कुछ पूछते, उनके समाधान के लिए निकली होती है और वह वाणी जब ग्रंथ के रूप में संकलित हो, तब कभी कुछ विरोधाभास लग सकता है। जैसे कि एक प्रश्नकर्ता की आंतरिक दशा के समाधान के लिए ज्ञानी पुरुष द्वारा 'प्रतिक्रमण जागृति है और अतिक्रमण डिस्चार्ज है' ऐसा प्रत्युत्तर प्राप्त होता है और सूक्ष्म जागृति की दशा तक पहुँचे हुए महात्माओं को सूक्ष्मता से समझाने के लिए ज्ञानी पुरुष ऐसा खुलासा करते हैं कि 'अतिक्रमण डिस्चार्ज है और प्रतिक्रमण भी डिस्चार्ज है, डिस्चार्ज को डिस्चार्ज से खत्म करना है'। तो दोनों खुलासे नैमित्तिक रूप से यथार्थ ही हैं लेकिन सापेक्ष रूप से विरोधाभासी लगते हैं। इस प्रकार प्रश्नकर्ता की दशा अलग-अलग होने की वजह से प्रत्युत्तर में विरोधाभास का आभास होता है, फिर भी सैद्धांतिक रूप से उसमें विरोधाभास है ही नहीं। सुज्ञ वाचकों को ज्ञानवाणी की सूक्ष्मता प्राप्त करके बात समझ में आए इस हेतु से साहजिक रूप से यह सूचित किया गया है।

– **डॉ. नीरू बहन अमीन**

नोट : (1) प्रस्तुत ग्रंथ में जिन्होंने स्वरूप ज्ञान नहीं प्राप्त किया है, उनके प्रश्न हैं वहाँ **मुमुक्षु :** लिखा हुआ है। उस पूरे हेडिंग के नीचे की बात को उसी की समझना है और उसके अलावा जहाँ **प्रश्नकर्ता :** लिखा हुआ है, वह अक्रम मार्ग के स्वरूप ज्ञान प्राप्त किए महात्माओं के प्रश्न हैं, सुज्ञ वाचकों को ऐसा समझना है।

(2) जहाँ-जहाँ 'चंदूभाई' या 'चंदूलाल' नाम का प्रयोग हुआ है, उस स्थान पर सुज्ञ वाचक को खुद का नाम समझना है।

❖❖❖❖❖

उपोद्घात

(राग : वळतरनी इच्छा विना, लूंटावे मोक्ष ज लक्ष्मी)

खंड-1 : प्रतिक्रमण

जीवन में करने योग्य, है त्रिकरण का एकात्मयोग;
वह टूटे तो तुरंत प्रतिक्रमण, अक्रम ज्ञान की है खोज!

यथार्थ रूप से प्रतिक्रमण, विधि 'दादा' दिखाए;
'दादा भगवान' की साक्षी में, सामने वाले के आत्मा से!

दोष ज़ाहिर कर दिल में, क्षमा पछतावा 'हार्टिली';
फिर नहीं करूँ निश्चय से, दोष धुले 'सिम्पली'!

अच्छे कर्म करे वह धर्म, बुरे करना है अधर्म;
धर्म-अधर्म के उस पार, वहाँ रहा है आत्मधर्म!

अच्छे कर्मों से 'क्रेडिट', उससे सुख का भोगवटा;
बुरे कर्मों से 'डेबिट', उससे दुःख का भोगवटा!

'क्रेडिट-डेबिट' शून्य हो, तब आत्मसुख का भोगवटा;
पहले दोनों संसार वृद्धि, तीसरे मार्ग पर मोक्ष खरा!

इष्टदेव - दादा की साक्षी में, 'हार्टिली' पश्चाताप से;
यह विज्ञान क्रियाकारी, दवाई का आविस्कार रोग होने पर!

खाना-पीना, उठना-नहाना, बोलना या करना भोजन;
सामने वाले को दुःख दे नहीं, सहज व्यवहार है क्रमण!

राग-द्वेष, दुःख किसी को, वह सारा है अतिक्रमण;
पलटे वापस अतिक्रमण से, वह विधि है प्रतिक्रमण!

क्रोध-मान-माया-लोभ, वे सब हैं मात्र अतिक्रमण;
वे जाएँगे सब तुरंत ही, करने पर उनके प्रतिक्रमण!

अतिक्रमण से राग-द्वेष, असर पहुँचे दोनों को;
प्रतिक्रमण उनके होते ही, असर खत्म दोनों को!

दाग़ पड़े तो कपड़ा व धोने वाला, कठिन श्रम दोनों को;
क्रमण का असर न रहे किसी को, सहजता वर्ते सभी को!

जीव मात्र करे 'प्रोजेक्ट', चलते-फिरते अनंत बार;
दंगा-फसाद सुनते ही, सोच लेता है थर्ड वर्ल्ड वॉर!

एक सेकन्ड के समय असंख्य, अतिक्रमण करे अपार;
अतिक्रमण से हुआ खड़ा, प्रतिक्रमण से विराम संसार!

अपमान करने वाला लगे गलत, वह भी है अतिक्रमण;
ज़ोर से बोले या उल्टे चले, वह भी है अतिक्रमण!

बच्चे को पीट दिया, वह भी है अतिक्रमण;
क्यों मुझे गाली दी? ऐसा हो, तो वह भी अतिक्रमण!

किसी को भी हम से दुःख हो, तो वह है अतिक्रमण;
वहाँ दादा को याद कर, कर लो तुरंत ही प्रतिक्रमण!

अपने दिल में तिल भर भी, दुःख देने का भाव नहीं;
फिर भी दुःख दिया नैमित्तिक, वहाँ दादा ने यह बात कही;

किसी को दुःख दिया जाने-अनजाने, तो वह है अतिक्रमण;
कहा नहीं पर मन बिगड़ा, तब भी वह है अतिक्रमण!

मन-वचन-काया के योग से, जीवमात्र को दुःख लगे;
अवश्य हो तुरंत ही उसका, हार्टिली प्रतिक्रमण!

कर्म घटाए जो वह धर्म, जो बढ़ाए कर्म वह अधर्म;
प्रतिक्रमण से न बंधे नए कर्म, सार है यह सर्वोच्च धर्म!

माँगो शक्ति आगे बढ़ने की, प्रार्थना करके दिल से;
ज्ञानी या स्वातम से, गुरु-इष्टदेव-मूर्ति!

क्षमा माँग पुकार के, भूलों की शुद्धि के लिए;
उससे खत्म छोटी भूलें, और सामायिक पिघलाए गांठ!

अनंत काल के पाप कर्मों से निवृत्ति कैसे मिले?
ज्ञानियों का निश्चय ज्ञान, वे हृदयांकित होने से!

वह न मिले तो श्रुतज्ञान, सीधा ग्रंथों में से मिले;
श्रुतज्ञान में से मति ज्ञान में परिवर्तित, पाप कर्म निवर्ते!

या फिर पाप से छूटने की, दृढ़ भावना और प्रतिक्रमण से;
निश्चय ही छुड़वाए अनंत जन्म के, पोटले पाप कर्म के!

व्यवहार या व्यापार में अन्याय, उसका क्या है प्रायश्चित ?
प्रभु पास करो तय, फिर से करना नहीं ऐसा कभी!

पूर्व जन्म के प्रकृति दोष से, आज दे देते हैं दु:ख;
भुगत ले समता भाव से, मुक्ति मिलने का आनंद!

सह लेने हैं उपकारी भाव से, मिले जितने भी दु:ख;
दादा के प्रतिक्रमण से, छोड़ दो यह जंजाल!

वैज्ञानिक तत्त्व जैनों में, आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान;
अन्य धर्मों में भी है, प्रायश्चित का मुख्य स्थान!

पूर्णता और सूक्ष्मता, प्राप्त करवाए वीतरागी विज्ञान;
व्यवहार धर्म को टॉप पर ले जाकर, वह देता है धर्मध्यान!

क्षपक श्रेणियाँ चढ़ाकर, प्रतिक्रमण पहुँचाए शुक्लध्यान;
निश्चय-व्यवहार संपूर्ण धर्म, कहे तीर्थंकर भगवान!

दादाश्री समझाए आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान का सार;
निजदोषों का ज्ञानी या गुरु से करो इकरार!

निर्भय होकर निश्चित मन से, सौंप दे गुरु को भार;
गुरु करवाए प्रतिक्रमण, सहज जागृति रहे हर बार!

प्रतिक्रमण है कर्म मुक्ति का, सर्वश्रेष्ठ यह हथियार;
दादा का प्रतिक्रमण पकड़े तो, प्रगति बिन गुरु आधार!

बिना जप-तप-उपवास, ध्यान-योग के कष्ट अपार;
पहुँचे निश्चय मोक्ष में, प्रतिक्रमण एक मात्र तारे संसार!

पछतावे से पापों में से, पुनित होकर मुक्त बने;
बार-बार पछतावा करके, माफी माँग प्रभु से!

पछतावा तो हमेशा, हार्टिली ही होता है स्वयं;
प्रतिक्रमण से छूटे कर्म, वही है कर्म नियम!

भूल की माफी दिल से माँग, वह है मुक्ति की रीत;
बेदिल से माँगे, तब भी संभले आत्महित!

पीता है अगर शराब तो, माँग माफी निश्चय करके;
एक दिन छूटेगा अवश्य, है वैज्ञानिक बात सही!

यह है 'अक्रम विज्ञान', नहीं रहेगा फल दिए बिना;
दो घंटें में मोक्ष मिले, मात्र सुन 'ज्ञानी' ज्ञान-आज्ञा!

किसी को गर्भित दुःख हुआ, वह भी है अतिक्रमण;
पता चले या न चले, लेकिन चाहिए तुरंत प्रतिक्रमण!

मरज़ी से करे वह मरज़ी वाला, पुरुषार्थ वहाँ पर चाहिए;
दबाव से करे वह है फर्ज़ वाला, प्रारब्ध कहलाता है वह!

क्रिया है अनिवार्य और भाव-कुभाव हैं वैकल्पिक;
अपमान है अनिवार्य और प्रतिक्रमण है वैकल्पिक!

अज्ञान दशा है भावसत्ता, प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान की;
खून, चोरी करके हो खुश, तो पड़े गांठ बहुत पक्की!

विषयी विचारों के करे प्रतिक्रमण, तो चले राह हनुमान की;
दिल से करे प्रतिक्रमण तो, दोष-शुद्धि ज़िम्मे दादा भगवान के!

कन्फेशन करते हैं क्रिश्चियन, लेकिन मुँह छुपाकर अँधेरे में;
अक्रम में ज्ञानी के पास, आलोचना करे आँसु की धार से!

प्रतिक्रमण और त्रिमंत्र, हो साथ में तो अवश्य फल;
महान पुरुषों की भक्ति से, मिले पापों से मुक्ति!

अनंत बार किए प्रतिक्रमण, क्यों न मिले फल कभी;
समझकर, 'शूट ऑन साइट' किया था क्या एक भी कभी?

सुबह-शाम प्रतिक्रमण, लेकिन वे होते हैं 'मिकेनिकल';
पछतावे के बिना क्या, प्रतिक्रमण कहलाएँगे प्रतिक्रमण?

रटकर गाता रहे रोज़, ऐसा तो रिकॉर्ड भी बोल जाए;
मुख्य गुनहगार मिलता नहीं, जो सामने वही मारा जाए!

पूरी ज़िंदगी किए फिर भी, न हुआ कम एक भी दोष;
नहीं है यह मार्ग महावीर का, तोते की तरह करे प्रतिक्रमण!

प्रतिक्रमण की भाषा मागधि, काला अक्षर भैंस बराबर;
न समझें साधु या श्रावक, 'मैंने किया' कहकर बढ़ाए अहंकार!

महावीर के शिष्य टेढ़े व जड़, होंगे बिना एक अपवाद;
क्रिया को मानते हैं आत्मा, करूँ कहाँ जाकर फरियाद?

बीच के बाईस तीर्थंकरों के, शिष्य थे कैसे विचक्षण;
प्रतिक्षण रहते जागृत, दोष होते ही प्रतिक्रमण!

करे हर रोज़ पड़कमणुं, अर्थ पूछे तो जाने नहीं;
संवत्सरी के प्रतिक्रमण से, पूरे साल के पाप धुलते नहीं!

साल भर के पाप पर्युषण पर, देखते ही दोष हृदय में आए;
मरने जैसा उस दिन लगता, कैसा दुःख दिया लोगों को हाय!

ऐसे भाव हुए क्या कभी? बल्कि सुंदर कपड़े पहने;
शादी करने निकले पर्युषण पर, गहनों से सजधज कर!

करे पसंद वाले को मिच्छामि दुक्कड्म, नहीं करते नापसंद वाले को;
ली गई है इज़्ज़त वीतरागों की, नहीं है ऐसा धर्म महावीर का!

सच्चे वीतराग धर्म में, करते हैं पाँच सौ प्रतिक्रमण;
'देखा' वही से 'शूट' किया, दिन-रात करे पछतावा!

शासन तो है महावीर का, 'ज्ञानी' तो शासन श्रृंगार;
क्रमिक रुँध गया कलिकाल में, 'हम' से खुले 'अक्रम' मोक्षद्वार!

नकद है प्रतिक्रमण जहाँ पर, रौद्र-आर्त ध्यान मिटे वहाँ पर;
'भगवत् पद' प्राप्त सहज रूप से, अक्रमज्ञानी प्रकटे वहाँ!

हेतु अनुसार फल प्रतिक्रमण का, पुण्यै या मुक्ति संसार;
है अज्ञान या ज्ञान दशा में, फल का वह है मूल आधार!

आत्मज्ञान है मोक्षमार्ग, नहीं वह मात्र प्रतिक्रमण;
स्वभान के बाद प्रतिक्रमण ले जाए मोक्ष के द्वार!

दर्शन मोह व्यतीत हुए, रुके कर्म का बंध;
दर्शन मोह है तब तक, प्रतिक्रमण फिर भी गज-स्थानवत्!

प्रतिक्रमण करने को कहा, 'शूट ऑन साइट' करना;
न हो अगर वह तो फिर, रायशी-देवशी करना!

वह भी नहीं तो कर पाक्षिक, पाक्षिक नहीं तो चारमासी;
कुछ भी नहीं तो संवत्सरी, अंत में माँ नहीं तो मौसी!

मौसी भी सगी न मिली, जैसे परायी कलिकाल में;
कहाँ मोक्ष? कहाँ से धर्म? बसे सिर्फ बुद्धि में!

करने वाले या करवाने वाले के, हो यथार्थ प्रतिक्रमण;
शब्दों के श्रृंगार सजे, भाव भूले नहीं समझ!

कदम-कदम पर अतिक्रमण, फिर भी उपाय है प्रतिक्रमण;
लेकिन चोरी, रिश्वत नहीं चलेगी, यहाँ तो है वीतराग चलन!

प्रतिक्रमण करते हो मृत के, जीवित के नहीं किए कभी;
सच्चे तो हैं भाव प्रतिक्रमण, क्रिया से तो हैं गलत ही!

इनका फल नहीं यथार्थ, मिथ्या कीमत लगाकर घूमे;
मानी कमाई आत्मा की, जीते नहीं यह तो हारे!

एक-एक शब्द बोल जाना, वह है द्रव्य प्रतिक्रमण;
भाव में 'ऐसा नहीं हो', वह है भाव प्रतिक्रमण!

तोड़ा नहीं दोष ज़ंजीर को तो, नहीं वह 'संवत्सरी' महावीर की;
बाँझ प्रतिक्रमण करके, बिगाड़ा नाम वीर महावीर का!

माफ करना वाचको, अब हृदय गया है भर;
करता हूँ उसका यहाँ प्रतिक्रमण, सख्ती से जो लिया है लिख!

क्रिया मात्र लाए आवरण, मार्ग मोक्ष का छुड़वाए;
रायशी-देवशी गाते रहकर, चुपड़ने की दवाई पी जाए!

क्रमिक मार्ग में ले पच्चखाण, कंदमूल या रात्रि भोजन;
समझ बिना के पच्चखाण, नहीं आते मोक्ष के काम!

जिन दोषों का प्रतिक्रमण, उनका ही करना है प्रत्याख्यान;
अक्रम विज्ञान ने खोल दिया, यथार्थता से प्रतिक्रमण!

त्याग करने को लेते हैं पच्चखाण, धीरे-धीरे वह जाता छूट;
त्याग किया लेते उसके पच्चखाण, क्या करें इस समझ का!

इर्यापथिकि का प्रतिक्रमण, क्रमिक में करना पड़े;
अक्रम में देह से अलग, उसे क्रिया न कोई' अड़े!

प्रतिक्रमण से साफ होते, पुण्य और पाप कर्म;
मोक्ष के लिए दोनों हैं हेय, उपादेय आत्म धर्म!

दोष होते ही प्रतिक्रमण, जागृति बिन न जाए कभी;
आत्म 'ज्ञानी' जागृत करे, फिर पतंग डोर छूटे न कभी!

अज्ञान दशा के प्रतिक्रमण से पाप कम बंधते;
आत्म दृष्टि होने के बाद, जागृति सहित सच्चे होते!

कपड़े रोज़ धोकर पहने, हर रोज़ लिखे हिसाब;
प्रतिक्रमण करते वार्षिक, क्यों न धोए कपड़े साल में एक बार?

ज्ञानी भी टोककर, तुरंत ही करते हैं प्रतिक्रमण;
यह है कुदरती रचना, दोषित इसमें है कौन?

फिर भी 'है' को 'है' कहते, 'नहीं' उसे 'नहीं' कहते;
'है' को 'नहीं' कह दे, ऐसा सच्चे ज्ञानी क्यों कहे?

दृष्टि में है जगत् निर्दोष, फिर भी भूल निकाले वाणी;
सत्य कहे दुःख हो तब, प्रतिक्रमण करते स्वयं ज्ञानी!

अपने दोष दोषित दिखाए, दृष्टि को वहाँ धोना पड़ेगा;
वर्ना कषाय होंगे खड़े, सापेक्ष सत्य के लिए लढ़ते!

वादी-प्रतिवादी स्वीकारे, वह वाणी वीतराग;
प्रत्यक्ष सरस्वती कहलाती है, देशना और स्याद्वाद!

शुद्धात्मा के अलावा बातें, झूठी है निश्चय तू जान;
'मैं चंदू' का भी प्रतिक्रमण, वहाँ से सही समझ प्रमाण!

डॉक्टर लगता है सख्त, जब करे मरीज़ का इलाज;
रोग मिटे या न मिटे, लेकिन प्रतिक्रमण उसका उपाय!

'दादा' डॉक्टर धर्म के, बोले साधु को बोल;
'ज्ञानी' रहते मौन लेकिन, करुणा बहे देखकर गलत!

स्याद्वाद वाणी चूके, तो ज्ञानी करते प्रतिक्रमण;
वाणी से दोषित कहे, पर प्रतीति में निर्दोष!

तीर्थंकरी वाणी सदा, स्याद्वाद संपूर्ण;
अक्रम ज्ञानी चतुर्दशी तभी, वाणी और अभिप्राय भिन्न!

दोषित दृष्टि थी जब, वाणी दादा ने ऐसी भरी;
दृष्टि निर्दोष आज हुई, फिर भी वाणी ऐसी निकली!

गुरु कहते, 'मैं जलकमलवत्', 'मूर्ख' कहते ही भंडाफोड़;
उड़ जाए जल और कमल दोनों, यह धर्म है या अखाड़ा?

व्रत-जप-तप और नियम, देते हैं सांसारिक फल;
नहीं ज़रूरत मोक्ष में इनकी, मात्र ज़रूरत है प्रतिक्रमण की!

साधु-साध्वी क्षमा माँगने, करो घंटे का नित्यक्रम;
प्रत्यक्ष नहीं पर मन में करे, फिर भी है वह सच्चा धर्म!

प्रतिक्रमण और अकषाय, दोनों ही हैं मूल धर्म;
दूसरे धर्म की नहीं ज़रूरत, छोड़ा जग ने 'यह' मूल धर्म!

ज्ञानी का वचन तू पाल, ठेठ पहुँचेगा मोक्ष द्वार;
जा, दादा ले ज़िम्मेदारी तेरी, तू कहे बस उतनी ही देर!

मताग्रह है बड़ा अतिक्रमण, हुआ देश बरबाद;
विष घोला अंदर-अंदर, द्रोह का करो निकाल!

क्रमिक मार्ग में दे आदेश, न कर चोरी-झूठ-लुच्चापन;
पाल अहिंसा-सत्य-अचौर्य, शास्त्र कहते हैं चिल्लाकर!

मुँह बिगाड़कर लोगों ने, त्यागे सब शास्त्र;
कहाँ 'ये' झंझट पाली, नहीं होता जीवन में बदलाव?

'करना है पर होता नहीं', ऐसा कभी न कहना;
'क्यों नहीं होता' दृढ़ता से कहकर, निश्चय बार-बार करना!

चोरी-झूठ का दोष हो जाए, लेकिन उसका कर प्रतिक्रमण;
आचरण न बदलेगा कभी, इसलिए बदल ले तेरी समझ!

विश्व के ये धर्म तमाम, देहाध्यास के मार्ग हैं;
अक्रम विज्ञान ही सिर्फ, देहाध्यास से रहित है!

त्याग करना है या हो नहीं पाता, दोनों ही हैं कर्तापद;
संडास जाने की शक्ति है ? तो है कौन सी शक्ति बता तू हद ?

कर्ताभाव से करना हो तो, माँगना शक्तियाँ ज़रूर
दादा ने 'नौ कलमें' दी हैं, कारण बदलेंगे पर कार्य अफर!

अनंत शक्ति का धनी है खुद, 'शक्ति नहीं' ऐसा क्यों बोले ?
प्रतिक्रमण भी है पुरुषार्थ, भ्रांतदशा में होता है वह!

अध्यात्म वाणी गाते हैं देश में, संत-भक्त भी उनमें अभान;
'इट हैपन्स' को कहे 'मैंने किया', लट्टू से कहते हैं, 'मेरा मान!'

अगर हो जाए तुझसे गलत, प्रतिक्रमण से उसे सुधार;
'भ्रांत' पुरुषार्थ उसे कहा, सत् पाने को बन अकरतार!

न किसी चीज़ का कर्ता तू, है तू केवल जानकार;
क्रिया नहीं बदलेगी, है भिन्न कर्ता और जानकार!

गलत को तू गलत जान, बदल अपना अभिप्राय;
वही है पुरुषार्थ धर्म, 'देख', 'जान' और निश्चय कर!

'नहीं होता, भाई नहीं होता', ऐसा कभी न बोलना;
आत्मा का स्वभाव है, सोचे वैसा ही तुरंत बन जाना!

बात है यह सूक्ष्म लेकिन, समझे बिना न आएगा हल;
स्वसत्ता-परसत्ता का भेद, मात्र ज्ञानी ही दे सके!

चोर बच्चे को सुधारने, मारपीट न उससे करे;
उससे उल्टी गांठ बंधेगी, होगा चोरी का दृढ़ अभिप्राय!

माँग शक्ति दादा से, 'इस जन्म में न हो चोरी अब';
दादा प्रेम से समझाएँ, शुद्ध प्रेम से हृदय पलटे!

माँग शक्ति, की चोरी, फिर भी माँग शक्ति खास;
दवाई है बदलना अभिप्राय, परम विनय प्रभु के पास!

'ज्ञानी' के पास दवाईयाँ सारी, अवश्य होगा निदान;
बता दे रोग खुलकर, वैज्ञानिक दादा भगवान!

माँगे तो मिले शक्ति अवश्य, इसमें तू शंका न कर;
इसीलिए दी हैं 'नौ कलमें', वैज्ञानिक रहस्य से भरी!

अक्रम में न देखें आचार, किया उसे ज्ञान से निकाली;
आर्त-रौद्र नए न हो, पुराने को करो 'देखकर' खाली!

अध्यात्म यानी चित शुद्धि, चित अशुद्धि बाँधे कर्म;
किसी जीव को दु:ख न हो, वह व्यवहार शुद्धि धर्म!

अक्रम के महात्माओं को, नए कर्म न बंधे;
पुराने कर्म करे खाली, रहे जो नित पाँच आज्ञा में!

भारी कर्म जो आ जाए, तो प्रतिक्रमण से उखड़े;
एकावतारी ज्ञान यह, गारन्टी नया कर्म न पड़े!

अतिक्रमण और आक्रमण, होते ही कर तू प्रतिक्रमण;
पराक्रम की तो बात ही क्या, वहाँ है सिर्फ आत्म-रमण!

क्रमण से बनी प्रकृति, अतिक्रमण से फैली;
प्रतिक्रमण से जाती घटती, अक्रम ज्ञान से समझ में आई!

चोर हो या वेश्या, भाव एक भी न बिगड़े;
ईच्छा नहीं होती खराबी की, लेकिन वे संयोग में फँसते!

मूढात्मा देखे दोष औरों के, दोष कभी न दिखे निज के;
कहाँ से तौले न्याय जहाँ, खुद वकील, आरोपी और जज!

कुछ अंशों तक, अज्ञानी भी करते हैं प्रतिक्रमण;
छोड़े पस्तावे से दोष, कुछ जागृत विचक्षण!

शुद्धात्मा बनने के बाद, प्रतिक्रमण क्या करना पड़े ?
दु:ख हो किसी को तो, अक्रम में यह करना पड़े !

प्रतिक्रमण करने पर भी, जो न दे कोई माफी;
देखना नहीं है वह हमें, दोष से मुक्ति है निश्चय ही !

अतिक्रमण के विरोधी का, प्रतिक्रमण से पता चले;
असहमति दोषों के संग, दोषी स्वभाव से मुक्ति मिले !

दोष सभी हैं निकाली, 'मेरे' यह भाव नहीं;
ऐसे रहे जागृति वहाँ, प्रतिक्रमण की फिर ज़रूरत नहीं !

अतिक्रमण रहित पूरा ही, निकाली है व्यवहार;
अतिक्रमण का प्रतिक्रमण, निकाल होगा अंदर और बाहर !

सच्चा प्रतिक्रमण तो वह, करते ही दोष घटे;
दोष न घटे तो, अरे ! कल्याण कैसे हो ?!

प्रतिक्रमण से धुल जाए तो, फिर न रहे किसी को दु:ख;
न पड़े मतभेद कभी, जब भी मिले तो संबंध पुख्त !

पाप धुलने की प्रतीति, मन हो जाए साफ;
मुख पर मस्ती लहराए, हल्के फूल हो जाएँ तुरंत !

'चंदू तेरी है भूल', जब कोई तुझे कहे तब;
कहना, 'चंदू तेरी भूल है', इसलिए तुझे डाँटा !

अन्डरहैन्ड के दोष, नहीं देखना है सेठ को कभी;
पुलिस, जज या बीवी के सामने, क्यों रहता है बिल्ली की तरह ?

प्रतिक्रमण अगर हो देर से, तो उसका भी कर प्रतिक्रमण;
आरती या विधि में भटके, तो कर अजागृति के भी !

दोष होना है स्वाभाविक, इसीलिए है विमुक्ति का मार्ग;
सिर्फ ज्ञानी ही दिखाते, प्रतिक्रमण कर हे सुभाग्य !

दोष है खुद की दखल से, सामने वाले को कुछ न लगे;
सावधान उसकी पोस्ट है बंद, अपनी तो जागे !

अक्रमज्ञान से प्रज्ञा प्रकट, प्रतिक्रमण होते हैं स्वयं;
वीतद्वेष तो हो गया, वही है खुदा, जिसका गया अहं!

'अ-मारी' शब्द महावीर का, 'मार' का कर प्रतिक्रमण;
निबेड़ा या निकाल करो, लड़ने के लिए नहीं है यह जन्म!

क्रमिक के ज्ञानी को नहीं है, दोष का ऐसा सुदर्शन;
अक्रम की जागृति देखो, पल-पल है प्रतिक्रमण!

सद्‌गुण जिसके दिखाई दे, उसके लिए नहीं है प्रतिक्रमण;
भाव से ही अपना हो, उसके साथ सुवर्तन!

स्वदोष को ढके अहम्, खुद के लिए रहे पक्ष;
बड़े-बड़े साधु भी, करते शादी अहंकार से!

बिज़नेस में भी बढ़ाए यदि भाव, तो ग्राहक को भी हो दुःख;
वहाँ कर्ता 'व्यवस्थित', समकित का नहीं जोखिम!

दादा ने हमें कैसा किया, कर्म में अकर्म स्थिति;
यह जन्म 'व्यवस्थित' के ताबे, फिर भी प्रतिक्रमण से मुक्ति!

अक्रम सिद्धांत देखो, बुद्धि की भी नहीं सुनता;
चारों तरफ से टैली होता, बुद्धु बनाकर उसे लाता राह पर!

कालाबाज़ारी का यह काल, 'व्यवस्थित' यदि समझे;
प्रतिक्रमण है वहाँ उपाय, प्रकृति फिर पिघले!

अज्ञानी खाए ब्याज तो, बन जाता है कसाई;
समकिती प्रतिक्रमण करके, करता है दाग़ की धुलाई!

लेनदार के प्रतिक्रमण से, सीधे पहुँचे असर;
राग-द्वेष या गालीगलौज, 'एक्स्ट्रा आइटम' करार!

कोई चीढ़े, चोरी करे, बेईमानी या अनीति;
डाँटा या रोका, प्रतिक्रमण से साफ स्लेट!

साहब ने डिसमिस किया, शुद्धात्मा में यदि रहा;
नहीं बंधन फाँसी का भी, जज तो निभा रहा है फर्ज़!

बिच्छू को काटने दे, मूढ़ अहंकार से;
'ज्ञानी' तो उसे एक ओर हटाकर, कर लेते हैं प्रतिक्रमण!

देखना भी अच्छा न लगे कोई, पूर्व जन्म का बैर समझ में आए;
तिरस्कार या अभाव के, प्रतिक्रमण से छूटा जाए!

पति-पत्नी, सास-बहू, हिसाब वाले हैं टकराव;
रिलेटिव संबंध हैं, कर उनका भी प्रतिक्रमण!

संसार यानी हिसाब चुकाने का है स्थान;
प्रतिक्रमण करके छूटो, कहता है अक्रम विज्ञान!

प्रतिक्रमण से सुधरे संबंध, दूसरा नुकसान न उठाए;
पहुँचे प्रतिस्पंदन उसके, नहीं तो हिन्दु-पाक लड़ाई!

अपमान हो, विश्वास उठे, दोषों को धोने से जाए;
बार-बार धोना पड़े, यदि दूध में से नमक निकाले!

सामने वाले को दु:ख हो तो, तुरंत ही खुद को पता चले;
शब्द निकले दु:ख हो ऐसे, चेहरा बिगड़े हास्य उड़े!

दु:ख देने से निकला दिवाला, किसी को डराकर मारा रौब;
तोड़े मन, किया तिरस्कार, वे साँप बनकर निकालेंगे कोप!

बहू-सास के झगड़ों में, ठेस, आघात या आत्मघात;
गहरे प्रतिक्रमण, कोसे खुद को, पछतावा कर बेहिसाब!

ज्ञानी कहते हम से कभी, अनिच्छा से किसी को दु:ख हो जाए;
अपवाद रूप से होता है फिर भी, प्रतिक्रमण वहाँ विशेष हो जाए!

'वह गिर न जाए' ऐसा रक्षण, उसके विचारों को पकड़कर;
घर बैठे ही रोक देते हैं, 'व्यवस्थित' उसका हाथ में लेकर!

भूल करे, माफी माँगे, वह भूल करे बार-बार;
वहाँ समझाकर प्रेम से, माफ कर अच्छे विचार!

सामने वाला भूल करता रहे, न होता है उसे कभी भान;
नहीं पछतावा या माफी, इसलिए जाता है प्रेम और मान!

ऐसे का करो विरोध, अर्थ नहीं उससे निभाने का;
करवाओ उसका उसे भान, भीतर से माफ करने का!

फिर भी यदि कुछ न हो, तो अंत में उससे निभाओ;
वर्ना मन बिगड़ जाएगा, 'ऐसा ही है करके' चलाओ!

कोई दुभाया या भड़का, फिर न आएगा अपने पास;
प्रतिक्रमण से खत्म किया, पूरा किया मैंने हिसाब!

अहंकार करके छोड़ दिया, उसमें कहाँ है कुछ खराब?
ज्ञानी कहे यह है गलत, निमित्त बनने का हिसाब!

यदि सामने वाला अकड़कर कहे, 'बाकी रहा', फिर न मारो;
प्रतिक्रमण करते रहो, कभी तो बुझेगी अंतर की आग!

लंबी बोलाचाली का, कर अंत में जाथुं प्रतिक्रमण;
'दादा भगवान' मैं तो इसका, एकाग्रता से कर लेता हूँ जाथुं प्रतिक्रमण!

टकराव संसार में, वह है हिसाबी व्यवहार;
प्रतिक्रमण से जोड़ो मन, टूटे नहीं वह ज्ञान सार!

टकराव हुआ जो पुद्‌गल का, प्रतिक्रमण से जड़ से जाए;
टकराव जिसका रुका, वह तीन जन्म में मोक्ष में जाए!

सामने वाला करे गुणा, उतनी रकम से तू लगा भाग;
घर्षण या टकराव टले, अक्रम का ले तू यह लाभ!

वाणी-काया से टकराव, वह 'स्थूल' है कहलाता;
न पड़े सामने वाले को पता, वह मन का 'सूक्ष्म' कहलाता!

किसी को मारते हुए देखे वहाँ, हाज़िर ज्ञान 'व्यवस्थित';
फिर भी दोष उसका दिखे, तो वहाँ 'सूक्ष्मतर' में स्लीप!

खुद निश्चय दृढ़ करे, नहीं इसमें दोष किसी का;
फिर भी दोष दिखे इसमें, 'सूक्ष्मतर' हैं वे टकराव!

फाइल नंबर 'एक' संग, तन्मयता है 'सूक्ष्मतम';
जागृत होकर कर प्रतिक्रमण, छूटने का यह उच्च साधन!

प्रतिक्रमण के स्पंदन, पहुँचे सामने वाले को तुरंत;
अहंकार और बुद्धि मिलकर, अतिक्रमण से बाँधे कर्म!

राग या द्वेष बीज से, पसंद-नापसंद वह है फल;
प्रतिक्रमण एकमात्र उपाय, तोड़े राग-द्वेष की जड़!

मान, ईर्ष्या या शंका के, उल्टे-सुल्टे आएँ विचार;
प्रतिक्रमण तुरंत ही करना, सामने पहुँचने में नहीं देर!

'लुटेरे लूट लेंगे' की शंका, सुखी को करे दुःखी दुःखी;
ब्रह्मांड का मालिक है तू, ओस बुझा दे ज्वालामुखी!

भय लगता है क्यों? टेम्परेरी खुद को समझे;
नित्य है मेरा स्वरूप, समझे तो भय न प्रकटे!

पछतावे से दोष बने, जैसे जली हुई रस्सी;
अगले जन्म में छूते ही, जड़ से दोषों से मुक्ति!

ज्ञान के बाद प्रतिक्रमण भी, इफेक्ट रूपी हो जाए;
इफेक्ट को इफेक्ट से छेदकर, 'खुद' शुद्ध रहकर साफ हो जाए!

खाने-पीने में अतिक्रमण, लाता है शारीरिक दर्द;
अतिक्रमण है स्वाभाविक, प्रतिक्रमण से होता पुरुषार्थ!

खाने में नियम भंग, ज्ञानी से माफी माँग;
व्यसनों का रक्षण नहीं, छूटेंगे एक दिन निश्चित ही जान!

प्रतिक्रमण न हुए तो, फिर से चिपकेंगे परमाणु;
अगले जन्म में व्यसन फिर से, अभिप्राय रहने से चिपका!

डिस्चार्ज को देखे-जाने नहीं, यदि न हों प्रतिक्रमण;
तो मन बंधता जाएगा, रह जाएँगे अभिप्राय!

पुरुष बनकर पुरुषार्थ करे तो, अवश्य मोक्ष होगा उनका;
लेकिन कमी खुद की रह जाती, आज्ञा प्रतिक्रमण में!

दादा कभी ही पीते चाय, प्रत्याख्यान करते प्रथम;
वर्ना तो वह चिपक जाए, ज्ञानी जागृत कायम!

शारीरिक हो वेदना, सिर्फ अलग 'देख' और 'जान';
अहिंसक भाव, जुदापन, नहीं आर्त और रौद्रध्यान!

कर्म बंधे हैं अतिक्रमण से, नहीं है बंध अतिचार से;
नहीं छूआ 'अंबालाल' को, वेदनीय क्षण, 'विज्ञान से'!

आर्त और रौद्रध्यान, क्षण-क्षण करें परेशान;
आर्तध्यान का फल तिर्यंच, रौद्र से जाए नरक में!

खुद ही खुद को पीड़ा दे, अग्रशोच है आर्तध्यान;
गोली अन्य को लगे नहीं, पत्नी भी अनजान!

गोली लगाए अन्य को, किसी को दुःख विचार से भी;
रौद्रध्यान उसे कहते, यदि असर पहुँचे किसी को भी!

आर्तध्यान-रौद्रध्यान का, विचार आते ही उसे बदल दे;
मेरे कर्मों का उदय है, सामने वाले को निमित्त देखे!

जग को निर्दोष देखे, उसे कहा है धर्मध्यान;
प्रतिक्रमण कर धो दे, उसे ज्ञानी कहते हैं धर्मध्यान!

एक बार पछतावा करे तो, रौद्र बने आर्त;
फिर उसके ही प्रतिक्रमण से, आर्त बने धर्म!

आप बने शुद्धात्मा, पुद्गल करे आर्त-रौद्र;
जब पुद्गल करे प्रतिक्रमण, रहता है तब ध्यान-धर्म!

शुद्धात्मा का शुक्लध्यान, धर्मध्यान है पुद्गल का;
जब ऐसा हो तब अंत में, शुद्ध विश्रसा परमाणु!

अक्रम ज्ञान में कभी, होते नहीं आर्त-रौद्र ध्यान;
अंदर 'शुक्ल', बाहर 'धर्म', क्योंकि है मृत अहं!

अप्रतिक्रमण दोषों से, दोष अभी जो हो जाएँ;
यथार्थ प्रतिक्रमण करने से, उन दोषों से छूटा जाएँ!

दोष को जाना वह है धर्मध्यान, आत्मध्यान है शुक्लध्यान;
अंदर 'शुक्ल' बाहर 'धर्म', एकावतारी पद तू जान!

अक्रम मार्ग से जा सकते हैं, एकावतार इस काल में;
अंदर बाहर 'शुक्ल' तो, मोक्ष हो जाए उसी जन्म में!

'देर रात मेहमान आए', देखते ही मन बिगड़ जाए;
'अभी कहाँ से आए', सहज ही मन ये शब्द सुनाए!

सामने कहे 'आइए, पधारिए, चाय लेंगे क्या ज़रा-ज़रा ?';
मेहमान माँगे खिचड़ी-सब्ज़ी, नहीं तो कहेंगे 'कढ़ी ज़रा'!

चिढ़ जाए पत्नी, 'कब जाएँगे' जब पूछे पतिदेव;
पत्नी कहे, 'मैं क्या जानूँ', मित्र आपके, डाली आपने आदत!

अतिथि देवो भव, फिर भी आर्त-रौद्र ध्यान;
उसके लिए ज़रूरी प्रतिक्रमण, वर्ना नुकसान की खोदी खान!

भाव न फिरे समकिती के, प्रतिक्रमण करने से;
दोष छूटे हमेशा के लिए, प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान से!

प्रतिक्रमण अगर नहीं हुआ, तो रहेंगे दोष पेन्डिंग;
एक-दो जन्म जाएँगे बढ़, कैश करने से मोक्ष लेन्डिंग!

सामने ही लड़ पड़े, वह तो छूट जाएगा आज;
मन से करे वह तो, बाँधेगा अगले जन्म के काज!

कर द्वेष का प्रतिक्रमण, क्योंकि होता था अटैक;
राग तो डिस्चार्ज है, ज्ञानी समझाए अंतिम अर्थ!

यदि जागृति नहीं रही, न रहा आज्ञा में भी;
तो राग का भी करना पड़ेगा, वर्ना फिर फिसल जाएगा!

तंत और हिंसक भाव ये दो, हो तो कषाय कहलाए;
वे नहीं तो कषाय नहीं, तब डिस्चार्ज मात्र हो जाए!

पर डिस्चार्ज कषाय से, सामने वाले को दु:ख हो जाए;
उसका करना है प्रतिक्रमण, बात तीर्थंकरों की कहलाए!

चाहे कैसे भी भारी कषाय, आखिर है प्राकृतिक माल;
'देखने वाला' नहीं जलता, ज्ञान बनता है वहाँ पर ढाल!

डिस्चार्ज गुनाह को मृत मान, ज्ञान बाद की दशा में;
उसका कर्म नहीं है भारी, ज्ञानी गुनाह में भी हँसाए!

दिल से करे प्रतिक्रमण, तो जल्दी से दोष जाए;
प्रतिक्रमण करते-करते, जंजाल नियम से छूटे!

सामूहिक प्रतिक्रमण चलेगा, जहाँ हैं दोष बेहिसाब;
'दादा! कर रहा हूँ एक साथ, कर लीजिए इसे पूरा स्वीकार'!

आमने-सामने हिम्मत न हो, तो मन में माफी माँग;
वो नोबल हो तो सामने जाकर, वर्ना करेगा दुरुपयोग!

मोक्ष में जाने से पहले, माफी माँग सूक्ष्म काय की;
करके सामूहिक प्रतिक्रमण, अंत में सब से छूट जाएँ!

पुरुषार्थ उसे कहते हैं, जब दोषों का करे प्रतिक्रमण;
जानने वाले को भी जानता रहे, तो दशा वह है पराक्रम!

'अनंतानुबंधी' क्रोध, जैसे चट्टान में पड़ी दरार;
प्रतिक्रमण नहीं करे तो, जन्मों जन्म के करार!

'अप्रत्याख्यानी' क्रोध तो, है खेत में पड़ी दरार जैसा;
प्रत्याख्यान या प्रतिक्रमण, नहीं हुए इसलिए है ऐसा!

पाँचवें गुणस्थानक पर है सामूहिक प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान;
छठवें में इसलिए आता है, 'प्रत्याख्यानी' गुणस्थान!

दोष के आवरण हैं लाखों, लाखों बार प्रतिक्रमण;
सामूहिक किया था पहले, इसीलिए रही परतें जो करें आवृत!

'प्रत्याख्यानी' आवरण है जैसे रेती में खींचे लकीर;
'संज्वलन' कषाय में, जैसे पानी में खींचे लकीर!

उदय में हों कषाय तो, कार्यकारी अंदर हो जाए;
होता तब दुःख, भोगवटा, 'प्रत्याख्यानी' वह कहलाए!

उदय में हो कषाय, पर कार्यकारी न हो;
अंदर बर्ते समाधिसुख, 'संज्वलन' वह कहलाए!

समकित हुआ तो चौथा, पाँचवाँ 'अप्रत्याख्यानी';
छठवाँ 'प्रत्याख्यानी' में, व्यवहार में फाइल भारी!

छठवें गुणस्थानक में, बाह्य चारित्र नहीं मानते;
सातवें में उदय 'अप्रमत' का, 'अपूर्व' आठवें गुंठाणे में!

विषय में निर्ग्रंथ होने पर, स्त्री परिग्रह भी छूटे;
तब नौवाँ पार करे, यों फिर दसवाँ चढ़े!

क्रोध-मान-माया-लोभ का, रहे न परमाणु मात्र;
कषाय की शून्यता हुई तो, भगवान पद है मात्र!

डिस्चार्ज में न दिखे, परमाणु मात्र कषाय का;
दादा ने देखा केवल आत्मा, अनुभव पद वहाँ पाएँ!

कषाय सहित की प्ररूपणा, ले जाए अवश्य नर्क रे;
वकील बनकर गुनाह करे तो, सज़ा में बड़ा फर्क रे!

'मिथ्यात्वी' को सिंहासन पर बैठकर, नहीं देना चाहिए उपदेश;
'स्वाध्याय कर रहा हूँ', कहे तो सुनकर लाभ हर कोई ले!

खुद शुद्धात्मा बना, 'व्यवस्थित' को समझे कर्ता;
प्रतिक्रमण तुरंत ही करे, वीतद्वेष हुआ मात्र ज्ञाता!

किसी के न दिखाई दें दोष, बर्ते दशा सर्व विरति;
संसार में सबकुछ करते हुए भी, ऐसी अक्रम की रीति!

क्रोध का अभाव जहाँ, वह क्षमा महावीर की;
देने की चीज़ नहीं है, सहज क्षमा शूरवीर की!

ज्ञाता-द्रष्टा रहे वहाँ, कषाय हो संपूर्ण बंद;
ज्ञाता-द्रष्टापन चूके तो, कषाय का चले चलण!

प्रतिक्रमण करता रहे तो, गाढ़ कर्म हो जाता हल्का;
सीसा कान में डाला उससे, महावीर को पड़ा भोगना!

जहाँ-जहाँ हिंसा की, मच्छर, खटमल को मारा;
उन जीवों को याद कर, पछतावे से हो छुटकारा!

भाव सदा यह रखो, सर्व जीवों को बचाएँ;
फिर बचे या न बचे, लेकिन जोखिम से तो छूट जाएँ!

खेत में दवाई छिड़के, घास व कोंपल तोड़े;
उसका पछतावा करो, चाहे फिर वैसा करना पड़े!

हर रोज़ दस मिनट, प्रभु को दिल से पुकारे;
कहाँ से करने में आया, हिंसक धंधा हिस्से में मेरे!

भाव में संपूर्ण अहिंसक, इसलिए हिसाब नहीं बंधेगा;
बैर, हिंसा व राग-द्वेष का, प्रतिक्रमण से छूटेगा!

चाहे कैसे भी हो बैर, प्रतिक्रमण से जाएँगे छूट;
सामने वाला छोड़े न छोड़े, अब तो जोखिम उसके सिर!

पिछले दोषों के प्रतिक्रमण से, दोष का होता फिर निकाल;
नया किया नहीं चित्रित तो, बंध का रहा कहाँ सवाल!

भूतकाल चला गया, भविष्य 'व्यवस्थित' के हाथ;
वर्तमान में बर्तें सदा, पकड़ ज्ञानी की बात!

लड़ी जले तब करे क्या? पटाखे फूटते जाएँ;
प्रतिक्रमण करे बम का, तो वह फुस हो जाए!

प्रतिक्रमण करते-करते, अतिक्रमण हो जाए शुरू;
धोते रहो धीरज से, नहीं कम होगा कभी यह साबुन!

बैरी के प्रति भी न आए, उल्टा एक भी विचार;
वह तो है उदयाधीन, जो जागृत है वह मुक्त होगा!

पार्श्वनाथ को पड़ा चुकाना, दस जन्म तक बैर;
अक्रम में जागृति सुलझाए, समता से यह बैर!

आत्मा प्रकट हुआ है अब, पुरुषार्थ से पराक्रम;
अटकण व अभिप्राय उखाड़, फिर कर उनके प्रतिक्रमण!

प्रकृति बनाए अभिप्राय, प्रज्ञा उसे छोड़ती जाए;
अभिप्राय को कहकर गलत, उसे जड़ से खत्म कराए!

अभिप्राय का पड़े असर, सामने वाले को होता अभाव;
फल उसका आए अचूक, चूके आत्मा का स्वभाव!

पसंद-नापसंद मिले, पुण्य और पापाधीन;
देख निमित्त को आत्मरूप, पुद्‌गल है पर-पराधीन!

प्रतिक्रमण से अभिप्राय मुक्त, नहीं सहमति क्रिया में;
संयोगाधीन चोर बना, न रख दोष हृदय में!

अभिप्राय बदलते ही छूटा, दोष खुद ही जड़ से;
पहले था प्रोटेक्शन भूल का, इसीलिए बैठी थी सिर पे!

अभिप्राय छूटा तो, परमाणु बने विश्रसा;
बंध पड़े बिन शुद्ध हुए, फलित हुए तो मिश्रसा!

पुद्‌गल परमाणु कहे, 'आप' थे हम पर लुब्ध;
अब बने शुद्धात्मा आप, तो करो हमें भी शुद्ध!

प्रतिक्रमण करने से होंगे, अभिप्राय के विरुद्ध;
रिलेटिव में निर्दोष देखो, रियल में देखो शुद्ध!

सुबह बोलो पाँच बार, विषय में नहीं है पड़ना;
उपयोग रुपये गिनने में रहता, उस तरह यह बोलना!

इस काल में कर्मबंध पड़े तो, मनुष्य में से तिर्यंच;
पाँच में से एकेन्द्रिय में, अभी भी चेत, मोक्ष पहुँच!

अक्रम ज्ञान मिला है अब, अटकण सब उखेड़ दे;
पल-पल जागृत रह, अब तो थक, विषय से!

निज दोष दिखता नहीं, विषय का कैफ पूरे दिन;
विषय बाधक है महा-महा, छूटने न दे किसी भी दिन!

देखकर आया विषय विचार, किसलिए, इस रहस्य को जान;
भरा हुआ है मोह इसलिए संयोग मिला, कहता है ज्ञान!

तब मन पर्याय दिखाए, भरे हुए मोह के अनुसार;
प्रतिक्रमण करके बार-बार, विषय गांठ को उखाड़!

मैल को धोते रहो, कर खेद अंत तक;
धोने से अवश्य होंगे खाली, फिर आएगा स्पष्ट वेदन!

विषय बीज पड़ने के बाद, रूपक में अवश्य आ ही जाए;
लेकिन बंध से पहले, धोते रहने से हल्का हो जाए!

बुखार आए दोनों को, तभी दवाई पीनी;
दबाव या याचकपन, वह तो जैसे फोर्जरी!

विषय की अटकण वही, परिभ्रमण का है कारण;
बदल सुख का अभिप्राय, प्रतिक्रमण है मारण!

एक पत्नी व्रत इस काल में, ब्रह्मचर्य का है वरदान;
यदि पर-स्त्री के लिए तेरा, न बिगड़े कभी भी मन!

स्त्री का मुँह न देखे साधु, उसमें है कौन गुनहगार;
तुझे पैदा किसने किया, पकड़ो भूल को, वहीं दो मार!

मन की चंचलता मिटे, ब्रह्मचर्य से मन बंध जाए;
या फिर आत्मा के ज्ञान से, मन तो क्या, जग जीत जाए!

ज्ञानी का वचन बल और तेरा दृढ़ निश्चय;
विवाहित या कुँवारा पाल सकेगा ब्रह्मचर्य!

अक्रम ज्ञान सहित, ब्रह्मचर्य में हो जाएगा पार;
राजाओं का राजा बनेगा, जग करेगा उसे नमस्कार!

विषय जीतने के लिए चाहिए, जागृति व पल-पल प्रतिक्रमण;
सामायिक, व्रत की विधि, रखता है शुद्ध त्रिकरण!

अणहक्क के विषय से, जानवरगति हो जाए;
पूरे दिन प्रतिक्रमण व दृढ़ निश्चय से, इसमें से छूट जाए!

लोभ-लालच में फँसा, पर करता रहे यदि प्रतिक्रमण;
आज्ञापालन हो दृढ़ रूप से, तभी टूटेगा यह आवरण!

दादा की प्रत्येक क्रिया, ज्ञान में प्रगति काज;
प्रकृति छेदकर पूर्ण, आत्मज्ञान में अब राच!

अतिक्रमण की अंतिम हद पर, वासुदेव-प्रतिवासुदेव;
सातवीं नरक भोगते, और न कोई पहुँचे वहाँ!

बिगड़ी बाजी सुधार यों, भाव न बिगाड़ कहीं भी;
बिगड़े हुए का प्रतिक्रमण कर, 'वस्तु' सिद्ध ऐसे की जाए!

झूठ बोले वह कर्मफल, उसमें भाव वह कर्मबंध;
इसलिए पश्चाताप करके, अभिप्रायों को बदल!

झूठ का अभिप्राय खत्म, फिर नहीं ज़िम्मेदार;
झूठ तो है कर्मफल, उसका भी फल आएगा रख याद!

रिलेटिव धर्म में गलत का, 'करना पड़ता है' प्रतिक्रमण;
रियल धर्म में 'ज्ञाता-द्रष्टा', 'होता है' गलत का प्रतिक्रमण!

पूरी ज़िंदगी करना यही, 'चंदू' करे उसे देखते रहो;
अच्छे-बुरे का निकाल करो, दुकान खाली, नया न भरो!

वाणी से दु:ख हो जाए तो, उसका तुरंत प्रतिक्रमण;
आज्ञा में रहने का निश्चय, वाणी को जानो पर और पराधीन!

हम से टोक दिया जाए, अभिप्राय दिखाए भिन्न;
आत्मार्थे बोले झूठ तो, वह महा सत्य है जान!

जग से दादा ने कह दिया, व्यवहार है आवश्यक;
व्यवहार व्यवस्थित अधीन, प्रतिक्रमण है ऐच्छिक!

हर तरह से माफी माँगी, रूबरू या आँखें नम;
फिर भी यदि मारे वह, तो झुकना कर दो बंद!

टोकने का हेतु स्वर्ण सम, पर उसे दु:ख हो जाए;
कहना नहीं आया, उसके लिए प्रतिक्रमण ऐसे करवाएँ!

सामने वाले को दु:ख न हो, ऐसी वाणी निकले;
ड्रामेटिक व्यवहार करो, वर्ना वह धोना पड़े!

हँसी, मज़ाक, 'जोक' के, प्रतिक्रमण करने पड़ेंगे;
वर्ना ज्ञानी की वाणी, 'टेपरिकॉर्ड' मंद निकले!

तेज़ बुद्धि वाला करे मज़ाक, कम बुद्धि वाले का;
प्रकाश का है मिसयूज़, अंत में तो मज़ाक अंदर वाले का!

वाणी में या भाव में, उल्टा यदि निकल जाए;
टेप सामने वाला करे तुरंत, प्रतिक्रमण वहाँ चाहिए!

प्रतिक्रमण करने से, वाणी सुधरे इस भव में;
स्याद्वाद निकली दादा की, व्यवहार शुद्ध होने से!

खेद करते रहने के बजाय, जागृति रखो विशेष;
अंतराय आएँ तो उन्हें, धोकर करो निःशेष!

'इस' सत्संग का विष अच्छा, बाहर का अमृत बुरा;
यहाँ लड़-झगड़, तब भी मोक्ष, करे प्रतिक्रमण बड़ा!

दादा के पास न आ पाए, उसका खेद और प्रतिक्रमण;
चिंता, राग-द्वेष धो, कर दादा का नित्य स्मरण!

पेशाब से चींटी बहने पर, दादा करते प्रतिक्रमण;
पुस्तक की विधि के बिना, पढ़ा वह हुई भूल!

हो हित सर्व का फिर भी, अलग किया दो लोगों को;
अज्ञानी का अच्छा किया, फिर भी करना पड़े प्रतिक्रमण!

प्रतिक्रमण न हो पाए तो, वह है प्रकृति का दोष;
अंतराय कर्म नहीं है वह, रख भाव में देखने का जोर!

निकाचित कर्म धोने को, चिकनाहट अनुसार रखो साबुन;
जोर ज़्यादा लगाना पड़ेगा, फिर ज्ञाता-द्रष्टा पक्का!

रहे पुरानी भूलों का बोझ, धोए बिना न छुटकारा;
प्रकृति धो 'प्रतिक्रमण से, एक ही दादाई गुटका!

चिकणी फाइलों का प्रतिक्रमण, घंटे भर बैठकर कर;
नरम होगा, वापस लौटेगा, होगा ज़रूर परिवर्तन!

प्रतिक्रमण फिर प्रत्याख्यान, उत्तम हो रहा शुद्धिकरण;
'फिर नहीं करूँगा' वह निश्चय, महावीर का है पच्चखाण!

तू तो कर मात्र भाव, कि करना है समभाव से निकाल;
निकाल होना या न होना, वह है नेचर का सवाल!

फाइल नं एक चिकणी, उसे 'देखने' से ही चला जाए;
वहाँ ज़रूरत नहीं प्रतिक्रमण की, अक्रम ज्ञान से सरल उपाय!

गुनाह करे आरोपी ही, जज को नहीं लेना सिर पर;
भूल करे चंदूलाल, प्रतिक्रमण भी उसी के सिर पर!

अक्रम ज्ञान पाने के बाद, कब होगी खाली टंकी;
ग्यारह या चौदह सालों में, फिर न रहेगी बाकी!

कभी-कभी ही होता दखल, कभी-कभी ही मरण;
जो 'होना' है, नहीं वह व्यवस्थिताधीन, जो 'हुआ' वही व्यवस्थित!

भयंकर उदयों में भी यदि, रहे 'व्यवस्थित' का ज्ञान;
'देखता' रह जो होता है, तब वहाँ नहीं प्रतिक्रमण!

सच्चा प्रतिक्रमण उसे कहते, जो 'बोले' तीसरे ही दिन;
आकर्षण हम पर, 'दादा' को भी हो जाए खुद!

अमर आत्मा को पहुँचे, मरे हुए का प्रतिक्रमण करने पर;
उलझनें सुलझें हमारी, 'मरते नहीं हैं' ऐसा सोचने पर!

वाणी-देह के प्रतिकार, हैं जब तक व्यवहार में;
नहीं प्रकट होगी संपूर्ण शक्ति, यदि मन से भी करे प्रतिकार!

मन के विचारों को देखकर, अलग रखने पर वे उड़ें;
दुःख किसी को हो उसके, प्रतिक्रमण तो करने पड़ें!

बिगड़े अपना भाव या सामने वाले का हमारे लिए;
क्यों बिगड़े नहीं है देखना, चलो प्रतिक्रमण के रास्ते!

नापसंद को साफ मन से, सह लेगा तब वीतराग;
बिगड़ें वहाँ कर प्रतिक्रमण, शक्ति उसके लिए तू यहाँ माँग!

रात को खाता शुद्धात्मा का, जाँचकर साफ करें;
जगत् को निर्दोष देखें, प्रतिक्रमण करके सोएँ!

ज्ञानी या तीर्थंकरों के लिए, उल्टे भाव, तुरंत ही धो;
बार-बार माफी माँग ले, मन के नखरों को तू 'देख'!

देवस्थान की अशातनाएँ, धो करके प्रतिक्रमण;
अभ्युदय फिर होगा, नहीं अन्य निवारण!

पिछले दोष दिखाई दें, उपयोग छेदे आवरण;
याद आए उसे धोने के लिए, कर ले झट से प्रतिक्रमण!

प्रतिक्रमण किए नहीं, याद आते वे इसलिए;
प्रत्याख्यान किए नहीं, इच्छा होती है इसीलिए!

बार-बार दोष याद आएँ तो, बार-बार उन्हें है धोना;
जैसे प्याज़ की परतें निकलें, अंत में जड़ से वे जाएँगे!

यादों का कर प्रतिक्रमण, इच्छा के कर प्रत्याख्यान;
पहले सुख माना उस चीज़ की इच्छा, अर्पण कर मिथ्या मान!

उसके शुद्धात्मा की उपस्थिति में, फोन करके भूलें देखी;
पछतावे सहित माफी माँगकर, शॉर्ट प्रतिक्रमण अक्रमी!

होते जो दोष पूर्व जन्म में, इस जन्म में वे प्रकट होते;
प्रतिक्रमण यथार्थ होने पर, आनंद बेहिसाब उमड़े!

रोज़ एक घंटे यदि, निकालो प्रतिक्रमण के लिए;
सगे-संबंधी, पड़ोसियों के तो, धोने का मेल बैठे!

उससे होंगे दोष भस्मीभूत, अपने आप फिल्म दिखेगी;
इस तरह निवारण लाकर, जग संबंधों से छूट पाएँगे!

दादा कहते, हमने ऐसा किया, एक-एक का धोया;
कोई मन में हुआ दु:खी, तब तक मुझे न चैन पड़े!

काम निकाल लो अक्रम से, फिर न ऐसा सरल मार्ग;
छोड़ो शौक खुशामद का, रहा आधा जन्म, अब जाग!

ज्ञानी दिखाए वही है करना, नहीं डालना निज छंद रंग;
परिणाम कहाँ से कहाँ बहे, उसे कहा है स्वछंद!

प्रतिक्रमण से छूटे, इस जन्म में ही सब बैर;
सिद्धांत है महावीर का, नहीं अन्य कोई उपाय!

दोनों आमने-सामने करें तो, जल्दी हल आ जाए;
आधे में ही काम हो जाए, बहुत कुछ दूसरा सुलझाए!

एक दोष के पीछे फिर, दोषों की शुरू परंपरा;
मिलावट, भ्रष्टाचार, पशु गति में ले जाए!

प्रतिक्रमण यथार्थ वही, जो हर पल होता जाए;
पूरी ज़िंदगी के दोष, देखकर, जानकर धोया जाए!

अपूर्व प्रतिक्रमण अक्रम का, सैद्धांतिक पारिणामिक;
बचपन से आज तक का, वीडियो की तरह दिखे लिंक!

हल्के फूल और मुक्त हो जाएँ, स्थूल से सूक्ष्मतम धूल जाए;
अंत में मूल भूल मिलने पर, अनोखा आनंद छलकाए!

एक बार शुरू प्रतिक्रमण, रुके न फिर कभी;
बंद करने को कहे फिर भी, घूमती रहे चकरी!

ज़िंदगी के प्रतिक्रमण अंत में, न दशा मोक्ष या संसार;
प्रकट हुई शक्ति आत्मा की, प्रज्ञा दिखाए फोड़कर पाताल!

अंत:करण संपूर्ण बंद, मात्र प्रज्ञा क्रियावंत;
एक-एक तोड़े परत, सार जन्म-मरण का अंत!

प्रतिक्रमण करें तब, आत्मा पर नहीं होता असर;
राग-द्वेष के हस्ताक्षर हुए, इसलिए दोष बंधे अंदर!

प्रतिक्रमण की लगे लिंक और हो आत्म अनुभव;
संपूर्ण ज्ञाता-द्रष्टा पद और आनंद का उद्भव!

दोष का हो स्वीकार तो, तुरंत वह गया मान;
घर वाले निर्दोष दिखें तब, होगा सच्चा प्रतिक्रमण!

सामने वाला सचमुच दोषी कब ? आत्मा यदि करे तब रे;
लेकिन आत्मा तो है अकर्ता, क्रिया मात्र डिस्चार्ज रे!

कोई जीव दोषित दिखे तो, नहीं हुई अभी तक शुद्धि;
इन्द्रियज्ञान रहे तब तक, प्रतिक्रमण से धो अशुद्धि!

प्रतीति में है जग निर्दोष, अनुभव में आएगा कब?
मच्छर-साँप जब घेर लें, निर्दोष लगें वे तब!

ज्ञानी को प्रतीति और वर्तन से, जगत् निर्दोष बरताए;
उपयोग चूकने के प्रतिक्रमण से, जागृत दशा संभल जाए!

औरंगाबाद में विधि करवाते, 'दादा' साल में एक बार;
आमने-सामने माफी माँगकर, धोए बैर अनंत अवतार के!

बहुत बड़ी विधि करते, साफ सब का करने को;
एक-दूसरे के पैरों में पड़कर, रोकर, खुलासा कर होता हल्का!

धर्मबंधु के साथ ही बाँधे जन्मोंजन्म से बैर;
प्रतिक्रमण करके जा छूट, हृदय में ज्ञानी की आज्ञा धर!

ज्ञानी के पास आलोचना, कही प्रत्यक्ष या पेपर में;
ज्ञानी को छुड़वाना पड़ेगा, हुआ अभेद अंतर में!

ज़ाहिर करे गुप्त दोष, ज्ञानी विधि करके धो देते;
प्रतिक्रमण-पश्चाताप करवाते, महीने भर आलोचना पढ़वाते!

जहाँ प्योरिटी हार्ट की, एकता लगे सभी के संग;
बड़ा दोष रूबरू बोले, मन रंग जाए ज्ञानी के रंग!

भगवान की कृपा उतरे, पाए आलोचना का फल;
अलोचना रहे गुप्त सदा, न करे ज्ञानी उसमें छल!

ज्ञानी के पास अगर ढके दोष, तो दोष डबल हो जाएँ;
छुटकारा मुश्किल हो जाए, जागृति आवृत हो जाए!

आलोचना हो गुरु के पास या अंदर वाले 'दादा' के पास;
प्रत्यक्ष अंदर नहीं हुए, तब तक भज 'इन' दादा को खास!

विषय दोष विचित्र इस काल में, पुत्री-भाई-बहन के साथ रे;
सत्संग में, सहाध्यायी में, अभी चेत, धो ले रे!

जैसे पत्नी पति को, न भूले एक भी पल;
ऐसा हो प्रतिक्रमण के संग, तो अनंत दोष हो जाएँगे हल!

छोटा प्रतिक्रमण बॉम्बार्डिंग से, शुद्धात्मा से माँग माफी;
पछतावा करके, 'फिर न करूँगा' इतना ही है काफी!

जहाँ तीव्र बैर, वहाँ तो, पद्धति अनुसार प्रतिक्रमण;
करे तभी छूटेगा बैर, नया रुकेगा अतिक्रमण!

गहरे उतरे प्रतिक्रमण में, तो पूर्व जन्म देगा दिखाई;
किसी सरल परिणामी के, परतें आरपार छिद जाएँ!

होलसेल में दोष हो उसको, एक के साथ सौ-सौ दोष;
इकट्ठा प्रतिक्रमण करके, फिर प्रत्याख्यान को पोष!

जान-बूझकर हुए दोषों को, व्यक्तिगत धोना पड़ेगा;
अनजाने का सामूहिक करना, प्रतिक्रमण से हल निकलेगा!

किसी विषय के असंख्य, दोष धोने हैं एक साथ;
तब पहुँचा जाएगा ध्येय तक, नहीं तो न जाने कहाँ भटके!

शादी के समय कलगी लगाकर, रौब जमाया था अपार;
प्रतिक्रमण करने पड़ेंगे, नहीं आया तब यह विचार!

निजभाव में से परभाव में, परद्रव्य में तन्मयाकार;
पाँच आज्ञा पाले वह, पर में न जाएगा कभी!

आत्मा नहीं होता कभी भी, परभाव में तन्मयाकार;
'जानता है' आत्मा तन्मयता को, तन्मय हुआ अहंकार!

स्वप्न में भी सकता है, प्रतिक्रमण यथार्थ;
जागने के बाद भी हो सकता है, गुनाह कभी भी कबूल!

'सॉरी' नहीं है प्रतिक्रमण, फिर भी है वह अच्छा;
मन में अटैक नहीं रहेगा, सामने वाले का भी द्वेष जाएगा;

शुक्लध्यान होने के बाद, प्रतिक्रमण 'क्रम' में है पॉइज़न;
प्रतिक्रमण है अक्रम की दवाई, खुद पीता नहीं, पिलाता है!

‘खुद’ नहीं करना है, करवाना है ‘फाइल एक’ से;
प्रकट है प्रज्ञाशक्ति, दोष दिखाकर हमें सावधान करे!

अक्रम ज्ञान प्राप्ति के बाद, ‘खुद’ ‘शुद्धात्मा’ बने;
बाकी बचा, वह है ‘व्यवस्थित’, मात्र ‘देख’ ‘फाइल’ को!

‘चंदू’ करे उसे ‘देखा’ कर, और नहीं है करना;
‘देखना’ यदि चूक जाए तो, प्रतिक्रमण वहाँ है करना!

निज विपरिणाम से सभी, मिलते हैं संयोग;
प्रतिक्रमण से शुद्धि होकर, होता है उनका वियोग!

दरअसल साइन्टिस्ट को, नहीं है ज़रूरत प्रतिक्रमण की;
उँगली न डालते प्रयोग में, जो जले उसी को ज़रूरत मलहम की!

ज्ञानी वाणी लगे विरोधाभासी, वास्तव में है निमित्ताधीन;
बुखार दिखे एक सा, एक को क्विनाइन, दूसरे को मेटासिन!

पुद्‌गल करे अतिक्रमण, पुद्‌गल चलाए जगत्;
चेतन भाव को पाया हुआ, परमाणु हैं पूरण-गलन!

स्व-परिणति मानकर करे, तो वह पूरण कहलाए;
पर-परिणति मानकर करे, तो वह गलन कहलाए!

प्रतिक्रमण करे पुद्‌गल, माफी शुद्धात्मा से माँगे;
पुद्‌गल को फोन पहुँचाए आत्मा, होते प्रतिक्रमण पुद्‌गल के!

खुद के पुद्‌गल का प्रतिक्रमण, प्रज्ञा खुद से करवाए;
सामने वाले के पुद्‌गल का प्रतिक्रमण, नुकसान हो तब करवाए!

माफी माँगे शुद्धात्मा से, भूल हुई निज पुद्‌गल से;
प्रतिष्ठित आत्मा से, भूलें धोए प्रतिक्रमण से!

दोष को जानने वाला खुद और करने वाला है बिल्कुल अलग;
ज्ञायक भाव टिकता नहीं, इसलिए करो प्रतिक्रमण!

पैकिंग है ‘चंदू’ का आज, भगवान बना अब उसे;
आत्मा का प्रतिबिंब दिखे, तब तक आगे बढ़ना है उसे!

अतिक्रमण करे अहंकार, प्रतिक्रमण करे अहंकार;
प्रज्ञा सावधान करे दोषों से, शक्ति है सीधी आत्मा की!

दु:ख उसके अहंकार को, दाग़ अपने रिलेटिव पर;
उसे धोने कर प्रतिक्रमण, परसत्ता है अतिक्रमण!

समझो बात वीतराग की, करना कुछ भी है नहीं;
कुछ 'करने' से है बंधन, फिर धरम करो या नहीं!

निर्दोष जगत् जाना स्थूल में, इसलिए आता नहीं वर्तन में;
जानपना सूक्ष्मतम तक का, हो तब आता है वर्तन में!

दोष होने से पहले ही हो जाते, ज्ञानी से प्रतिक्रमण;
लिखने पर तुरंत मिटे, ज्ञानी की जागृति चरम!

सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम ही, होती हैं भूलें ज्ञानी में;
जग सुनकर आफरीन हो जाए, फिर भी दोष नियम में!

दादा देखे सब के दोष, फिर भी दृष्टि शुद्धात्मा की ओर;
इसलिए डाँटा नहीं कभी भी, दोष को मानकर उदयकर्म!

यात्रा में महात्मा लड़ते, करते शाम को फिर प्रतिक्रमण
आमने-सामने पैर छूकर, देखो कैसा अद्‌भुत अक्रम!

आज्ञा में ही रहना है निश्चय, फिर भी जहाँ-जहाँ चूक जाए;
प्रतिक्रमण तुरंत ही उसका करके, सौ मार्क्स पूरे पाए!

जो आज्ञा में रहे, वह परमात्मा, चूक जाए तो प्रतिक्रमण;
नहीं करना स्वच्छंद आज्ञा में, नर्क में जाने का वह कारण!

गालियाँ मिले तब देखे, शुद्धात्मा और उदयकर्म;
शुद्ध रहकर शुद्ध को ही देखे, शुद्ध उपयोग आत्मधर्म!

अनिवार्य आत्मज्ञान है, मोक्ष के लिए और कुछ भी नहीं;
प्रतिक्रमण उपाय है, सभी के लिए ज़रूरी नहीं!

अक्रम में करने को कहा, जब बर्ते जागृति डिम;
मोक्ष जाने को अक्रम ने दी, आज्ञा प्रतिक्रमण की टीम!

नुकसान किया वह है परिणाम, इरादे में है कारण;
कारण को निर्मूल करे, अक्रम का यह प्रतिक्रमण!

दादा कहते हैं बेअक्ल, ऐसे अतिक्रमण से आनंद;
अपवादी है यह अतिक्रमण, सब को आता बहुत पसंद!

'चंदू' जो करे, वह है चारित्र मोह, उसे 'देखने' से अनुभव;
वहाँ प्रतिक्रमण की ज़रूरत नहीं, आत्म दृष्टि से हो खत्म!

पहले के बिगड़े परमाणु, प्रतिक्रमण से शुद्ध नहीं होते;
प्रतिक्रमण से सामने वाले को हुआ जो दु:ख, बस वही धुले!

ज्ञाता-द्रष्टा रहे इसलिए, परमाणु शुद्ध हो जाएँ;
कर्तापद से अतिक्रमण, अकर्ता पद से मुक्त हो जाएँ!

'कुछ भी नहीं करता हूँ मैं' याद रहे यदि यह निरंतर;
वहाँ नहीं ज़रूरत प्रतिक्रमण की, पर रहता नहीं वह सब को निरंतर!

अक्रम ने सीधी 'जम्प' लगवाई, 'के.जी.' से 'पी.एच.डी.';
बीच की क्लासें 'मेकअप' करने, प्रतिक्रमण है अनदेखी सीढ़ी!

अक्रम विज्ञान संपूर्ण, सैद्धांतिक क्रियाकारी;
जहाँ करना नहीं है कुछ भी, अहो अहो यह उपकारी!

आत्मज्ञान देकर दिया, दादा ने यह संपूर्ण विज्ञान;
भिन्न-भिन्न रास्ते दिखाए, मध्य में आत्म संधान!

लगे कदाचित् विरोधी बात, पर नहीं होती कभी ज्ञानी की;
ज़रूरत के अनुसार 'ए.सी.', 'हीटर', वितरण 'जनरेटर' की!

इसलिए नहीं है उसमें विरोधाभास, बिजली की ऐसी रीति;
लक्ष्य में रखकर पढ़ना, सुज्ञ वाचक से है विनती!

खंड-2 : सामायिक की परिभाषा

अक्रम की सामायिक और प्रतिक्रमण में है फर्क;
अतिक्रमण के लिए प्रतिक्रमण, झाड़ू लगाए निज घर!

'मैं शुद्धात्मा हूँ' का भान, पंचाज्ञा में रहने वाले को;
सहज, स्वाभाविक दशा, वही है सामायिक निरंतर!

'सामायिक' में जानपना रहे, वर्तमान क्षण-क्षण का;
उपयोग हमेशा न रहे तो, सामायिक में वह दिखता!

अक्रम सामायिक से हो खत्म, मन-वचन-काया का स्वभाव;
महात्मा को पूरे दिन रहता, 'सामायिक जैसा प्रभाव'!

दो घड़ी करने को रहा, भर लाए माल भंगार;
निकाल का नहीं अन्य मार्ग, फिर पात्रता में नहीं है सार!

लौकिक सामायिक में, विचारों को हैं धकेलते;
मन को स्थिर करने जाते, पाँच सेरी मेंढक से करते!

मन तो स्थिर कैसे रहे, रेतघड़ी को देखता जाए;
फिर गप लगाते हुए, व्याख्यान सुनता जाए!

सामायिक में बैठने के बाद, दो घड़ी की मिले छूट;
मनचाहा करे उसमें, निंदा, चुगली और कपट!

उपाश्रय में सामायिक, देखने जैसी हो जाए;
गद्दीधारी जागो अब तो, भेड़ चाल को सुधार लो!

मन ढीला पड़ जाए तब, कैसे बाँधे घेरे में;
तय करे नहीं है सोचना, तो दुकान दिखे सब से पहले!

सामायिक में पढ़ते पुस्तक, वह तो है स्वाध्याय;
पिरोया अन्य में उपयोग, सही वह न कहलाए!

कहाँ पुनिया का सामायिक, एक भी किसी से न हो पाए;
साधु, आचार्य, मुनिवर, गच्छाधिपति से भी न हो पाए!

द्रव्य सामायिक करते रहे, न कभी भाव सामायिक;
भाव को तो बिल्कुल ही भगाया, रहा मात्र द्रव्य क्रमिक!

ऐसी सामायिक करने से अच्छा, रखो समता संसार में;
घर में पति, बच्चे, सास, देवरानी या रिश्तेदार में!

बेढंगी रस्साकशी वाली, सामायिक का क्या है काम?
जहाँ स्थिर मन न रहे, न उपजे दो बादाम!

यहाँ तो है तराज़ू महावीर का, वीरगत स्वीकारा जाए;
नहीं है यह अँधेर नगरी, गड़बड़ ज़रा भी न चलाए!

आर्त-रौद्रध्यान जाए, वह जैन धर्म का सार;
नहीं गए अगर वे तो, बेकार है यह अवतार!

मन वश रहित सामायिक, आत्मा का न होगा उससे कुछ;
मात्र भगाए कुत्ते-बिल्ली, वह सामायिक है या स्वांग!

समरंभ अर्थात् मन से कर्म, समारंभ अर्थात् वचन से;
नियम कर्म बंधन के, आरंभ होता वर्तन से!

सामायिक करते सेठ बोले, क्या फूटा घर में आज?
'आत्मा तेरा फूट गया', गई महावीर की लाज!

जिसके बंद हुए पूर्णतः, आर्त और रौद्र ध्यान;
वह निरंतर सामायिक में, मुहर लगाए भगवान!

सेठ करते हैं सामायिक, गए होते हैं कूड़ाघर;
या फिर बिज़नेस का हिसाब, देखो गए उल्टे रास्ते!

अंदर-बाहर अलग रहे, वह सामायिक बेढंगी;
महावीर उसे ना स्वीकारें, न चलेगा वहाँ दो-रंगी!

ज्ञानविधि ऐसी सामायिक, हो न सकती जो खुद से;
इसलिए उसमें बार-बार बैठने, दादा हमेशा कहते!

‘मैं शुद्धात्मा हूँ’ वह लक्ष, कहलाती है सामायिक;
पाँच आज्ञा में रहने से होता, पूरे दिन आत्मा का काम!

शुद्धात्मा यदि देखे सभी में, अगर एक घंटे अविरत;
श्रावक पुनिया का सामायिक, सर्वोच्च शुद्ध उपयोग!

जग विस्मृत शुभ उपयोग से, वह सामायिक कहलाए;
उपयोग अशुभ से अधोगति, वह सही न कहलाए!

सामायिक का सही अर्थ, न होने दे विषमभाव;
गालियाँ दे, मारे करे, फिर भी न उसके पलटे भाव!

सार, सामायिक से बने, श्रमण जैसा श्रावक;
समताधारी दशा में रहे, वह सच्चा महावीर चाहक!

अक्रम में महात्माओं को, सामायिक सिखाते हैं;
पद्मासन की ज़रूरत नहीं, घुटने जाम हो जाएँगे!

प्रथम आत्मविधि करके, आत्म स्वरूप में स्थित होकर;
अंत:करण के प्रत्येक पार्ट के, ज्ञाता और द्रष्टा रहकर!

आत्मा को अलग रखकर, देखना है अंदर का सब;
देखने को मिले दो घड़ी फिल्म, प्रकटे आनंद बेहिसाब!

अक्रम मार्ग में सामायिक है ज़रूरी, जागृति व उपयोग के लिए खास;
निरंतर शुद्ध उपयोगी के, दोष होते जाते हैं खलास!

विचार आया, दृष्टि बिगड़ी, ‘नहीं है मेरा’ करके छूट;
सामायिक में ‘विष’ की गांठ, खत्म की जा सकती है झट!

सामायिक या प्रतिक्रमण, अक्रम में नहीं क्रिया स्थूल;
यह ज्ञानक्रिया है प्रज्ञा की, आत्मा की शक्ति है मूल!

सामायिक में मन मज़बूत, संयम की शक्तियाँ बढ़ें;
कैसी भी गांठें पिघले, आत्मसुख स्पष्ट वेदे!

विषय, कषाय, मोह ग्रंथि, दोष सामायिक में देखने से;
आत्म दृष्टि से ग्रंथि पिघले, गलत कचरे होते खाली!

पूर्व दोषों के पर्याय, दिखाई दिए खोद-खोदकर;
हाज़िर आत्मा हुआ वहाँ, खुले सर्व भूलें जो की!

यों याद करने जाएँ तो, न आएगा कुछ भी याद;
सामायिक में आत्मपद पर, दोष दिखते बेहिसाब!

सामायिक में दोष देखे, बार-बार देखना अंत तक;
प्रकटे आत्मचारित्र उसमें, राजलक्ष्मी दलाली में!

शुरू सामायिक आठ मिनट से, अड़तालीस से पूरी होती;
उससे ज़्यादा न टिकता ध्यान, क्षण के लिए भी वह टूटे!

सामायिक में मन कहीं और, इससे तू क्यों घबराता?
वह ज्ञेय और 'खुद' ज्ञाता, बाहर हुल्लड़ तो घर में क्या?

'व्यवहार' सामायिक मन से, 'निश्चय' की आत्मा से होती;
'व्यवहार' से पुण्यानुबंधी, 'निश्चय' से निर्ग्रंथ होते!

सामायिक और प्रतिक्रमण, अक्रम में साथ में ही होते हैं;
देखना-जानना और धोना, तब प्रयोग पूर्ण होते हैं!

इस काल में विषय अधिक, उसका शुद्धिकरण प्रयोग;
हिंसा, मान, लोभ, कपट, क्रोध के निकल जाएँ रोग!

जुदापन की जागृति के लिए, सामायिक दादा सूचित करते;
वह प्रयोग करे तो खुद ही, ज्ञानी जैसा अनुभव करते!

हे शुद्धात्मा भगवान, आप अलग और चंदू अलग;
हे शुद्धात्मा आप रियल, है चंदू तो रिलेटिव!

शुद्धात्मा हो आप परमानेन्ट और चंदू है टेम्परेरी;
शक्ति माँगो जहाँ है कमी, जहाँ-जहाँ लगे ज़रूरी!

अरीसा सामायिक बेजोड़, अद्‌भुत ज्ञानी की यह खोज;
'कम्प्लीट' अलग देखकर, टकोर का लगाओ ज़ोर!

'ऐसे-ऐसे दोष किए तूने', खुद को डाँटो खूब आप;
किराए वाला नहीं चलेगा, उसका तो बना देगा साग!

ठपका सामायिक में तो, खुद को ठपका ज़ोरदार;
छत पर जाकर डाँटो, सेठ खुद और खुद ही नौकर!

पुद्‌गल स्वभाव जितना पुराना होता जाए, वैसे-वैसे बिगड़ता जाए;
नए सिरे से कर सामायिक, बाकी कमियों को फिर निकाल!

'नहीं होती, नहीं होती...' उसके लिए भी होती सामायिक;
'हो रही है, हो रही है', उस सामायिक से टूटें अंतराय!

'देखने' वाले को 'देखे' अलग, अक्रम सामायिक में होता ऐसा;
'शुद्धात्मा' स्व-पर प्रकाशक, 'मूलात्मा' प्रकाशे दोनों को!

आत्मा ही है सामायिक, निरंतर वही रहे;
पिछले दोष धोने के लिए, विशेष सामायिक का ज्ञानी कहें!

शुद्धात्मा के लक्ष के बाद, देते आज्ञा पाल पाँच;
प्रतिक्रमण-सामायिक कर, आज्ञा चूके यदि पाँच!

दादा भगवान प्ररूपित, सामायिक-प्रतिक्रमण;
यथार्थ महावीर का आज, दादा ने परोसा है भोज!

- डॉ. नीरू बहन अमीन

अनुक्रमणिका

[खंड : 1]

[1] प्रतिक्रमण का यथार्थ स्वरूप

जीवन में करने योग्य	1	ऐसे तुरंत धुल जाता है	7
कर्म से परे, परमात्मा	2	प्रतिक्रमण किसे नहीं करने हैं?	8
पश्चाताप से प्योरिटी	3	अतिक्रमण की पहचान	8
क्रमण-अतिक्रमण-प्रतिक्रमण	4	रीत, शक्तियाँ माँगने की	10
अज्ञान के धक्के से, अनंत...	5	ज्ञानी के ज्ञान से, निकाल कर्मों से	10
प्रतिक्रमण की परिभाषा	6	अन्यायपूर्वक व्यवहार का प्रायश्चित	11
उल्टा चले वह अतिक्रमण	7	ओहो! उसके भी प्रतिक्रमण	12

[2] प्रत्येक धर्म ने प्रतिपादित किया प्रतिक्रमण

सर्वोत्तम व्यवहार धर्म	13	भावसत्ता, प्रतिक्रमण और...	23
प्रतिक्रमण अर्थात् पाप से वापस...	14	हार्टिली पछतावा	24
आलोचना	15	पछतावे से लेकर प्रतिक्रमण तक	26
जब तक कर्ताभाव, तब तक...	17	यह हुआ धर्मध्यान	27
ऐसे होता है प्रतिक्रमण	18	'नौ कलमें' द्वारा सर्वश्रेष्ठ...	29
पछतावा कभी भी बनावटी नहीं...	19	पछतावे से घटे दंड	30
शत प्रतिशत सही रास्ता	20	मंत्र, वे हैं वैज्ञानिक चीज़	31
आए हैं हम सुख देने को ही	22	चतुर्गति के दोष आंकड़े,...	33
कौन सा अनिवार्य, कौन सा...	22		

[3] नहीं हैं 'ऐसे' प्रतिक्रमण महावीर के

वे हैं, धर्म का सार	35	ऐसे सर्जित हुआ उसका इतिहास	55
'वह' तो चाहिए नकद ही	36	मार्गदर्शन विचलित हुए, वहाँ...	56
बगैर पछतावे के प्रतिक्रमण	36	ऑर्नामेन्टल की इसमें नहीं ज़रूरत	56
'उसे' सच्चा नहीं कहते	37	अतिक्रमण, कदम-कदम पर	57
तोते के जैसे प्रतिक्रमण	38	चाहिए, नकद प्रतिक्रमण	58
यह तो धर्म है या अधर्म?	39	नहीं होता कभी भी क्रिया...	59
वंक जड़ाय पच्छिमा	40	यथार्थ प्रतिक्रमण कौन सा?	60
मिच्छामि दुक्कडम्	42	रायशी-देवशी	62
ज्ञानी समझाए वीतराग धर्म	43	मृत प्रतिक्रमण	63
कारुण्यभाव से निकले हुए शब्द	46	मोक्ष के लिए (हेतु) पच्चखाण	64
प्राप्ति, हेतु अनुसार	47	नहीं रहे, इर्यापथिकि प्रतिक्रमण	67
क्या फल मिले प्रतिक्रमण से	50	वह है करुणाजनक	68

प्रतिक्रमण से नि:शेषता	69	अज्ञान दशा में प्रतिक्रमण	70
उसने पाया महावीर का मार्ग	69	समकित द्वारा यथार्थ प्रतिक्रमण	72

[4] अहो! अहो! ये जागृत दादा!

निर्दोष दृष्टि फिर भी बोलते हैं...	74	ज्ञानी के प्रतिक्रमण	84
तो प्रतिक्रमण नहीं	76	आत्मज्ञान पश्चात् जलकमलवत्	85
सत्य-असत्य, सापेक्ष	76	इतना ही है मोक्षमार्ग	87
शुद्धात्मा के अलावा सब झूठा	77	माफी माँगो सब कषायों की	88
उसे सत्य कहते हैं?	78	क्रियाकांड से नहीं है मोक्षमार्ग	89
ऐसे बोल कारुण्य धारा में से...	80	दो ही चीज़ों का धर्म	90
निर्दोष दृष्टि फिर भी सदोष वाणी	80	मताग्रह, वह अतिक्रमण?	91
'केवलदर्शन' दिखाए भूल	82	मूल तो हम महावीर के ही	91

[5] अक्रम विज्ञान की रीति

अक्रम से नया यथार्थ धर्म	92	'मुझसे नहीं होता' ऐसा नहीं...	100
माँगिए प्रतिक्रमण करने की शक्ति	93	बदलें अभिप्राय को	105
नहीं मिटते दर्द बिन दवा	95	शक्ति माँगकर सँवारो काम	108
वर्ल्ड के तमाम 'रिलेटिव' धर्म...	98	'देखो व जानो' जैसे फिल्म हो	109

[6] रहें फूल, जाएँ काँटे

चित्त शुद्धिकरण, वही है...	113	इसीलिए तो उल्टे गए फिर	134
कर्ताभाव जाने के बाद	114	गत जन्मों के प्रतिक्रमण	134
रह गया मात्र प्रतिक्रमण	115	बड़े दोष के प्रतिक्रमण	134
अतिक्रमण और आक्रमण	116	परिणामिक प्रतिक्रमण	135
प्रकृति क्रमण से बनी,...	118	अहंकार, पाशवी व मानवीय	136
नहीं गलत कोई पूरे जगत् में	119	भूल दिखाए उसे शाबासी?	137
नहीं होगा वह बुद्धि से	120	अन्डरहैन्ड की मत देखना भूल	138
अज्ञान दशा में प्रतिक्रमण कर...	121	निश्चय करना, वह क्या है?	139
शुद्धात्मा पद की प्राप्ति के बाद...	122	प्रतिक्रमण देर से कर सकते हैं?	139
संक्षिप्त प्रतिक्रमण	125	अजागृति के प्रतिक्रमण	140
नहीं बनना विरोधी प्रतिक्रमण के	126	सामने वाला बिल्कुल अनजान...	142
वह सब व्यवहार निकाली	128	द्वेष गया, वही खुदा	143
प्रतिक्रमण करता है, अतिक्रमण...	129	ऐसा नहीं बोलते	143
दोष कम हों तभी वह यथार्थ...	130	हर रोज़ रात को प्रतिक्रमण	144
पाप धुल जाने की प्रतीति	131	नहीं है जन्म लड़ने के लिए	145
भूल नहीं है, वहाँ नहीं है...	132	तभी आयुष्य का अंत आता है	146

नहीं है क्रमिक में इतना उघाड़ 147
छिपाए अहंकार को 147
जजमेन्ट क्लियर 147

[7] होता है सही व्यापार

व्यापार में प्रतिक्रमण 149
यह है अक्रम विज्ञान 151
ब्याज लेना चाहिए या नहीं? 151
करो उगाही वाले के प्रतिक्रमण 152
काला बाज़ारी के भी प्रतिक्रमण 153
चोरियों के भी प्रतिक्रमण 154
अनीति के बहुत-बहुत प्रतिक्रमण 156
क्या करें कि अंतराय अटके? 156
अन्डरहैन्ड को डाँटा उसके... 157
डाँटना, लेकिन... 157
पछतावा लेना, निमित्त बनने का 160
इसमें जिसका गुनाह, उसे दंड 160
भाव पलटने से, जोखिमदारी टले 161
फर्ज़ निभाना, 'ज्ञान' में रहकर 161
अंत में, उपाय में प्रतिक्रमण 162

[8] 'ऐसे' टूटती है, श्रृंखला ऋणानुबंध की

ऋणानुबंध से कैसे छूटें? 164
सगे-संबंधियों के प्रतिक्रमण 165
चुकाने हैं सिर्फ हिसाब ही 166
प्रतिक्रमण का प्रतिसाद अवश्य 167
वे हैं अपने ही परिणाम 167
अपमान करे, उसके भी... 168
ऐसे विश्वास वापस लाया जा... 169
बार-बार प्रतिक्रमण किसलिए? 169
वह है क्रिया दूध में से नमक... 170
उसकी रीत आनी चाहिए 171
देखते ही अभाव हो वहाँ... 173

[9] निर्लेपता, अभाव से फाँसी तक

ऐसा पता चलता ही है 176
जहाँ प्रकृति का दिवाला... 177
दु:ख दिए जाने का प्रतिक्रमण 179
पछतावे से कर्म खपे 180
उपाय, तरछोड़ के परिणाम का 181
क्या ऐसे पाप धुलते हैं? 181
ऐसे फाँसी देते हुए भी निर्लेप 182
फिर नहीं रहती ज़िम्मेदारी 183
ज्ञानी के प्रतिक्रमण, बाड़ सहित 184
यदि बार-बार वही भूल करे... 186
वह है अर्थहीन 187
सामने वाले को निभा लो 188
प्रतिक्रमण की सूक्ष्म कमियाँ 189
अकर्ता फिर भी सामने वाले... 190

[10] टकराव के खिलाफ

ऋणानुबंधी के साथ 191
कर्मों के उदय के फोर्स के... 192
सामूहिक प्रतिक्रमण 193
समाधान, आत्मज्ञान द्वारा ही 194
तीन जन्मों की गारन्टी 196
टकराव, स्थूल से सूक्ष्मतम तक... 197
क्या वह अहंकार नहीं है? 201

[11] पुरुषार्थ, प्राकृत दुर्गुणों के सामने...

राग में से द्वेष और द्वेष में से... 202
मान, शुभ मार्ग के लिए 203

वे हैं, पूर्व में भरे हुए परमाणु	205	अक्रम में क्रिया मात्र मृत	209
शंका में से नि:शंकता	205	वे घटने लगते हैं बाद में	210
भय का मूल कारण	207	तोड़ना है, इफेक्ट को इफेक्ट से	210
शंका और भय	208	'वह' है पुरुषार्थ	211
हो जाए जली हुई रस्सी समान	209		

[12] छूटें व्यसन, ज्ञानी के तरीके से

निकाल करो समभाव से	212	प्रत्याख्यान करके पी चाय	213
'उससे' शारीरिक दर्द भी चले...	212	शारीरिक वेदनीय में	218
नियमभंग के प्रतिक्रमण	213		

[13] विमुक्ति, आर्त-रौद्र ध्यान से

आर्तध्यान का मतलब...	222	द्रव्य परिणाम और भाव परिणाम	232
रौद्रध्यान से दूसरों पर असर	223	उसे कहते हैं धर्मध्यान	234
आर्तध्यान-रौद्रध्यान में से...	224	यथार्थ प्रतिक्रमण	235
अपने ही कषाय अपने शत्रु	224	ध्यान अंदर 'शुक्ल' और बाहर...	237
पश्चाताप, से ध्यान परिवर्तन	225	अरे! अभी कहाँ से?	238
प्रतिक्रमण से पुद्गल पाए...	226	मन न बिगड़े इसलिए	242
नहीं हटता शुक्लध्यान कभी	227	जमा करके छूट जाओ	243
जो यहाँ आया वह फँस गया	228	उससे नहीं नए भाव	243
जहाँ आत्मज्ञान, वहाँ नहीं...	229	प्रारब्ध फल और कर्मबंध	244
'ज्ञान' लेने के बाद कर्म कब...	231		

[14] निकाले कषाय की कोठरी में से...

जहाँ द्वेष हुआ वहाँ प्रतिक्रमण	247	डिस्चार्ज द्वेष, ज्ञान के बाद	259
राग के सामने प्रतिक्रमण	248	विविध गुणस्थानकों में कषाय...	260
स्वमान छूटते ही मोक्ष	250	अनंतानुबंधी कषाय	261
अपने अभिमान का सामने...	250	अप्रत्याख्यानावरण कषाय	262
क्रोध के प्रतिक्रमण	251	प्रत्याख्यानावरण कषाय	263
फर्क, क्रोध और गुस्से में	252	संज्वलन कषाय	264
प्रकृति को देखना वह पुरुषार्थ	254	छठे से नौवें गुणस्थानक की...	265
गुनाह हैं लेकिन मृत	255	परिणाम स्वरूप में भी कषाय...	265
नकद परिणाम, दिल से...	256	कषाय सहित प्ररूपणा, वह है...	266
अतिक्रमणों के झड़ी के सामने	256	समकित दृष्टि से ही भेदे जाते...	267
रूबरू माफी	257	जीवित चला गया और रहा मृत	268
वह हमें नहीं देखना है	257	कर्ता की गैरहाज़िरी में कर्म...	269
व्यवहार, अन्डरहैन्ड से	258	सर्वविरति गुणस्थानक	269

ज्ञाता-द्रष्टा वहाँ कषाय शून्यता 270
कषाय परवशता से, प्रतिक्रमण... 272
क्रोध का अभाव वहाँ बरतती... 272

[15] भाव अहिंसा के रास्ते पर

अंतिम प्रतिक्रमण पर लेन-देन... 275
दु:ख नहीं देने का भाव 276
अनजाने की भूल, पाप बाँधती... 276
वह अजागृति कहलाती है 277
'उससे' निकाचित भी हो जाते... 277
हिंसा, द्रव्य व भाव की 280
किसानों के लिए स्पेशल... 280
हिंसा के प्रतिक्रमण 282

[16] कठिन है बैर वसूलना

बैर के प्रतिक्रमण 284
चीकणी फाइलों के सामने... 285
ऐसे टूटते हैं बैर के तंत 286
उससे सब पिघलेगा 287
तो बंधन चलता ही रहेगा 288
निर्लेप इस तरह से रहा जाता है 289
उसमें नहीं याद आता भूतकाल 291
पटाखे तो फूटते ही रहेंगे 293
प्रतिक्रमण करते-करते अतिक्रमण 293
वह क्या प्रतिक्रमण या... 294
धोना है, बैर की चिपचिपाहट... 295
स्वयं ही छूटना है, स्वबंधन से 296
बैरी के प्रति नहीं एक भी... 297
समत्वयोग, पार्श्वनाथ का 297

[17] वारण है 'मुख्य' कारण अभिप्राय का

एक जन्म के ही प्रतिक्रमण 299
चोर को क्षमा कर सकते हैं,... 300
अमोघ शस्त्र, अभिप्रायों के... 300
प्रतिक्रमण से बदलता है... 302
ऐसे निकालो गाढ़ अभिप्राय 302
सचेत रहो, अभिप्राय के सामने 303
गुणा होते ही करो भाग 303
चीज़ों से नहीं छूटना है,... 305
'उससे' टूटती है सहमति 305
पता तो चलना ही चाहिए तुरंत 306
ज़रूरत है हिंसकभाव के संपूर्ण... 307
पुद्गल परमाणु क्या कहते हैं ? 307
उस दृष्टि से छूटता है अभिप्राय 308
भयंकर कर्म बंधन 309

[18] विषय जीते वह राजाओं का राजा

अटकण से छूटना है अब 310
सचेत रहो मात्र विषय के सामने 310
आकर्षण कुछ के प्रति ही क्यों ? 311
ज्ञानी की बताई गई राह 312
प्रत्यक्ष आलोचना से तुरंत छूट... 315
संसार परिभ्रमण का मूल कारण 316
प्रतिक्रमण का सब्स्टिट्यूट... 316
उसके तो रोज़ के हज़ार-हज़ार... 317
कभी भी अणहक्क का नहीं... 317
लालच से आता है भयंकर... 319
अभी भी सावधान हो जाओ !... 319
'वह' है प्रगति की राह 321
अतिक्रमण की अंतिम पराकाष्ठा 322

[19] झूठ बोलने की लत वाले को

कर्म और कर्मफल 323
रिलेटिव धर्म में 324

‘रियल’ धर्म में आने के बाद 325
वह आधारित है, पुण्य और... 326
खाली करनी है यह ‘दुकान’ 327
सिर्फ आज्ञा में रहने का निश्चय 328

[20] जागृति, वाणी बहे तब

वाणी से कर्म बंधन ज़्यादा 330
रखो व्यवहार, व्यवहार के रूप... 331
लो प्रतिक्रमण का आधार 333
इच्छा नहीं है फिर भी हो... 333
टोक दिया जाए, उसका क्या? 334
आत्मार्थ के लिए झूठ वही... 334
व्यवहार है अनिवार्य 335
हेतु सोने का है लेकिन दिखावे... 336
टोकना है लेकिन ऐसे कि... 337
विनयपूर्वक उल्टे बोल 338
‘जोक’ का भी करना पड़ता है... 339
मज़ाक उड़ाना, वह है बड़ा... 340
नहीं रहता प्रतिपक्षी भाव तब 342
धोने हैं वाणी के दोष इस तरह 343
इस जन्म में ही वाणी सुधरती है 345

[21] छूटे प्रकृति दोष ऐसे

अंतराय, पूर्व की भूल के... 346
यहाँ का पॉइज़न भी प्रतिक्रमण... 347
सूक्ष्मता, ज्ञानी के प्रतिक्रमणों की 348
पहुँचते हैं, यथार्थ प्रतिक्रमण 349
सजीवन प्रतिक्रमण 350
प्रतिष्ठित आत्मा हुआ प्रतिक्रमण... 351
नहीं है ज़िम्मेदारी ‘इस तरह... 351
निकाचित कर्म में गहरे प्रतिक्रमण 352
बोझ, पुरानी भूलों का 352
प्रकृति सुधरती है? 354
वह कहलाता है प्रत्याख्यान 355

[22] निकाल, चीकणी फाइलों का

हिसाबानुसार चुकाया जाता है 356
चीकणे कर्मों के प्रतिक्रमण 357
भाव ही करने हैं समभाव से... 357
उसके प्रतिक्रमणों की ज़रूरत... 358
सामने वाले की ही भूल... 360
तब संसार छूटता है 361
सत्संग से टूटती हैं भूलें 361
आज्ञा चूके? करो प्रतिक्रमण 362
‘खुद’ जज और ‘चंदू’ आरोपी 362
टंकी खाली कब होगी? 363
दखल ‘व्यवस्थित’ है? 364
‘क्या हुआ’, वह देखते रहो 364
प्रतिक्रमण करते ही सामने... 365
घर की फाइलों के प्रतिक्रमण 366
प्रतिक्रमण ‘ऐसा’ करो 367
शुद्धात्मा को पहुँचता है उसका... 368
बाघ भी भूलें हिंसक भाव 368
पहुँचता है मूल शुद्धात्मा को 369
अशुद्ध पर्यायों का शुद्धिकरण 370
यह न्याय यानी ज़बरदस्त 371
मृतात्मा के प्रतिक्रमण 371
महात्मा को वे सब निकाली कर्म 373

[23] मन मनाए मातम तब

मानसिक प्रतिकार का क्या? 374
भाव बिगड़े तब 376
सामूहिक प्रतिक्रमण 376
उसे कहते हैं समभाव से 377

सामने वाले के भाव बिगड़े वहाँ 378
तब हो पाएँगे वीतराग 379
बाहर के संयोग हों तभी... 379
पहुँचता है, मन से करो फिर भी 380
इस काल में विराधक ज़्यादा है 381
तीर्थंकर व ज्ञानियों के प्रति 381
वह है परिणाम, अशातनाओं का 381

[24] जीवन भर के बहाव में, डूबते को तारे ज्ञान

जो याद आता है, वह स्वच्छ... 383
प्रत्याख्यान करना रह गया,... 384
फिर भी अतिक्रमण जारी ही है 384
याद का प्रतिक्रमण : इच्छा का... 386
शॉर्ट प्रतिक्रमण 387
फिर नहीं चिपकते परभव में 388
घर के, कुटुंबी जनों के... 388
निर्ग्रंथ दशा, ग्रंथियाँ छेदकर 390
पूर्व जन्म के दोषों का प्रतिक्रमण 391
निकालो हर रोज़ एक घंटा 392
'हमने' ऐसे किया निवारण... 394
ऋणानुबंधी हो वहीं गाढ़ 395
उसमें दोनों हैं 396
साधु-साध्वियों का प्रतिक्रमण 397
इस तरह करना प्रतिक्रमण 397
बुद्धि वाले जगत् में 398
अब नहीं पुसाती खुशामद 399
उनके शुद्धात्मा को नमस्कार... 399
खुद की पुड़िया घुसानी नहीं है 400
इस पर कायम है सिद्धांत... 402
चुभे उसका प्रतिक्रमण 402
दोनों प्रतिक्रमण करते हैं तब 403
अतिक्रमण के अतिक्रमण 404
ऋण के अनुपात में भुगतना 405
अलग-अलग होता है वही सही 406
'सॉफ्टवेर' प्रतिक्रमण का 407
प्रमाण, जीवंत प्रतिक्रमण का 409
'हार्डवेर' प्रतिक्रमण का 410
दोष स्वीकार किया कि वह गया 411
तब होगा यथार्थ प्रतिक्रमण 411
दृष्टि निजदोष की ओर 411
प्रतीति में निर्दोष और वर्तन में? 412
जागृति बढ़ने से अतिक्रमण... 413
उपयोग चूकने पर भी प्रतिक्रमण 413
औरंगाबाद का अनोखा वार्षिक... 414
धर्मबंधुओं के प्रति ही बैर 415
अश्रुधारा सहित पैरों पड़ते 416
दुनिया का सब से बड़ा आश्चर्य... 416
आलोचना, आप्तपुरुष के समक्ष... 417
प्रत्यक्ष ज्ञानी के पास प्रत्यक्ष... 418
आलोचना, संपूर्ण गुप्त 420
जहाँ प्योर हार्ट, वहीं पर एकता 420
विविध आलोचनाएँ 421
आलोचना पात्र कृत्य 422
यथार्थ आलोचना 424
अंतिम गुरु, 'दादा भगवान' 425
जो हमारे पास ढकता है, वह... 425
ऐफिडेविट की तरह ही 425
आलोचना पत्र 426
एक-एक दोष असंख्य परतों... 427
प्रतिक्रमण से प्रीति पत्नी जैसी 428
प्रतिक्रमणों का कारवाँ 428
वह बनकर रहे भगवान 430
सब से शॉर्ट और पद्धति... 431
यह है हमारी सूक्ष्मातिसूक्ष्म खोज 433
गहन प्रतिक्रमण में पूर्व जन्म... 433
सामूहिक प्रतिक्रमण 433
व्यक्तिगत प्रतिक्रमण 434

ज़ोरदार अवस्थाएँ अवरोधित...	434	विवाह बेला के भी प्रतिक्रमण	437
बॉम्बार्डिंग, अतिक्रमणों की	434	दोष है तो देखने वाला भी है	438
उपाय, बाकी रहे दोषों का	436	अतिक्रमणों से बोरियत अब	438
सामायिक में दोष चकनाचूर	436	पछतावा करता है चंदू	439
छूटा जाए कर्मों से ज्ञान में...	437	बीच में फिल्म बंद करनी...	439
चरणविधि में प्रतिक्रमण या...	437		

[25] प्रतिक्रमण की सैद्धांतिक समझ

परभाव में तन्मयाकार	441	जहाँ ज्ञाता-द्रष्टा वहाँ दोष खत्म	464
सपने में भी प्रतिक्रमण	442	जहाँ ज्ञाता-द्रष्टा, वहाँ नहीं...	465
सपना हमेशा गलन	444	अहंकार, अतिक्रमण व...	465
अनौपचारिक व्यवहार में...	444	दु:ख किसे होता है ?	466
महात्माओं को कर्म चार्ज कहाँ...	445	स्थूल और सूक्ष्म में प्रतिक्रमण	467
ज्ञान के बाद 'देखते' रहो	446	बार-बार प्रतिक्रमण	468
चार्ज कब होता है ?	447	सीधा चढ़ा हुआ	469
ज्ञान के बाद क्रेडिट-डेबिट निल	448	'अक्रम' में क्षायक प्रतीति	469
समझो, 'करना नहीं है' उसे	448	पड़ोसीभाव से प्रतिक्रमण...	470
प्रतिक्रमण भी डिस्चार्ज	449	अपराधों की ही गठरियाँ	470
'सॉरी' वह प्रतिक्रमण...	450	दोष धुलते हैं पश्चाताप से	471
अक्रम मार्ग में प्रतिक्रमण	451	हमें इसके करने हैं प्रतिक्रमण	472
क्रमिक मार्ग में प्रतिक्रमण	452	भाव, क्रिया और उसके फल	472
शुक्लध्यान के बाद प्रतिक्रमण...	453	हमारे प्रतिक्रमण, दोष होने से...	473
नहीं है ज़रूरत 'उसे'...	454	हमारी भूलें, सूक्ष्मतर व सूक्ष्मतम	475
उसमें नहीं है ज़रा सा भी...	454	ज्ञानी की दृष्टि, अनुयायियों की...	477
क्या आत्मा को माफी माँगना है ?	456	अक्रम में नहीं प्रमाद रे	478
महावीर ने भी देखा निज...	456	सहज क्षमा ज्ञानी की, बरतती...	479
'मेरा नहीं है' वह किसे होता...	458	साहजिकता टूटी उसके प्रतिक्रमण	481
उससे अलग होता जाएगा	458	आज्ञापूर्वक के प्रतिक्रमण	482
प्रतिक्रमण, वह है पौद्‌गलिक...	459	आज्ञा चूक जाने के प्रतिक्रमण	483
जगत् चलाता है पुद्‌गल	460	पंप प्रतिक्रमण का	485
माफी कौन किससे माँगता है ?	461	जब तक आज्ञा में रहा तब...	486
प्रतिक्रमण भी पुद्‌गल का	461	नहीं आते विघ्न, प्रतिक्रमण में	486
प्रतिक्रमण करने के लिए...	462	शुद्ध उपयोग सेट करो	486
अलग हैं, दोष और दोष को...	463	भेदज्ञान, अक्रम द्वारा	488
तो प्रतिक्रमण नहीं	464	मोक्ष के लिए सब से बड़ा...	488

अक्रम के प्रतिक्रमणों से ही मोक्ष	489	परमाणुओं की शुद्धि, ज्ञाता-द्रष्टा...	492
यह है साइन्टिफिक खोज	490	अक्रम में प्रतिक्रमण ज़िम्मेदारी...	494
जाए चारित्रमोह मात्र देखने से	491	अक्रम विज्ञान की बलिहारी तो...	494

[खंड : 2] सामायिक की परिभाषा

सामायिक यानी क्या?	496	सामायिक में श्रावक बनें श्रमण	523
सामायिक-प्रतिक्रमण की व्याख्या	497	निरंतर सामायिक की तो बात...	524
सामायिक, क्रमिक और अक्रम...	498	पद्मासन की आवश्यकता...	525
लौकिक सामायिक	499	उसमें देखते ही रहना है	525
स्वाध्याय सामायिक	501	शुद्ध उपयोग रखने के लिए	526
स्व-समझ से सामायिक	502	सामायिक से विकार ग्रंथि का...	527
ऐसी सामायिक व्यर्थ	503	नहीं है कर्तापन इसमें	528
अच्छी तरह से संसार चलाए,...	503	अंदर की शुद्धि, सामायिक से	529
ये हैं सब स्थूल सामायिक	505	सामायिक का उठाओ लाभ	529
जैन धर्म का सार 'यह' है!	505	अक्रम में गांठें खत्म करने के...	530
अन्य धर्मों की क्रियाएँ	506	स्वभाव रस विलय होता है इसमें	531
मन को रोकना यानी सामायिक	506	विषय से संबंधित सामायिक	533
आरंभ, समरंभ, समारंभ	507	फाड़ते रहना चित्रित हुए पन्नों को	534
ऐसी सामायिक कौन करता है?	509	ऐसे करनी है शुरुआत,...	534
यथार्थ पुरुष की मुहर रहित...	509	सामायिक की विधि	538
सामायिक में फूटे कप या...	510	तरह-तरह के अनुभव...	540
स्थूल कर्म और सूक्ष्म कर्म	511	नहीं अस्तित्व मन का तब	542
आर्तध्यान-रौद्रध्यान बंद हो...	511	दिखाई देता है आत्मा का चारित्र	542
मोक्ष प्राप्ति यथार्थ सामायिक से	513	बाद में कुरेदना शुरू हो जाता...	543
सामायिक का कर्ता कौन?	513	अड़तालीस मिनट ही क्यों?	544
सामायिक, पुनिया श्रावक की	514	'अक्रम' की सामायिक	545
कायोत्सर्ग सहित	517	हाज़िरी - गैरहाज़िरी का असर	547
ज्ञानविधि वह है, आत्मा की...	517	'जुदापन' की सामायिक	548
अक्रम में निरंतर सामायिक	518	अरीसा सामायिक	549
जो जगत् को विस्मृत करवाए,...	519	ठपका सामायिक	553
दादा में स्मृति, तो विश्व में...	520	सामायिक, 'नहीं होती, नहीं...	554
समभाव से निकाल करना,...	521	इसमें 'देखा' 'देखने वाले' को	556
सामायिक की यथार्थ व्याख्या	521	आत्मा वही सामायिक	557
विषमता न होने दे, वह	522		

❖❖❖❖❖

प्रतिक्रमण

[खंड : 1]

[1]

प्रतिक्रमण का यथार्थ स्वरूप

जीवन में करने योग्य

मुमुक्षु : मनुष्य को इस जीवन में मुख्य रूप से क्या करना चाहिए?

दादाश्री : मन में जैसा हो, वैसी वाणी बोलनी है, वैसा ही वर्तन करना है। हमें जो वाणी में बोलना है और मन खराब हो जाए तो उसका प्रतिक्रमण करना है और प्रतिक्रमण किसका करना है? किसकी साक्षी में करना है? तो, 'दादा भगवान' की साक्षी में प्रतिक्रमण करना है। ये जो दिखाई देते हैं, वे 'दादा भगवान' नहीं हैं। ये तो भादरण के पटेल हैं, ए.एम.पटेल हैं। 'दादा भगवान!' भीतर चौदह लोक के नाथ प्रकट हुए हैं, इसलिए उनके नाम से प्रतिक्रमण करना है कि, 'हे दादा भगवान! मेरा मन बिगड़ा उसके लिए माफी माँगता हूँ। मुझे माफ कर दीजिए'। मैं भी उनके नाम से प्रतिक्रमण करता हूँ।

मुमुक्षु : तो फिर इस संसार में अपना कर्तव्य क्या है?

दादाश्री : इस संसार में क्या चल रहा है, वह साक्षी भाव से देखते रहना है और यदि अहंकार हो जाए तो भगवान से माफी माँगनी है। किसी जगह पर यदि अहंकार हो जाए कि 'मैं करता हूँ', ऐसा अहंकार चढ़ जाए तो फिर माफी माँग लेना। माफी माँगते हो?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : किससे माँगते हो? भगवान से?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : भगवान से माँगना, इतना ही उपाय है। क्योंकि माफी माँगते हो तो माफ होता है।

यदि भूल हो जाए तो कहना कि, 'हे प्रभु! मेरी भूल करने की इच्छा नहीं है, फिर भी हो जाती है, इसलिए क्षमा करना'।

प्रश्नकर्ता : कई बार ऐसा प्रश्न हो जाता है कि भगवान से माफी माँगते हैं, पूजा करते हैं, वह किसलिए?

दादाश्री : वह तो जगत् के प्रति जो गुनाह हो गए हैं, उनके लिए माफी माँगनी है। जिसे गुनाह नहीं हुआ है, उसे माफी क्यों माँगनी?

कर्म से परे, परमात्मा

मुमुक्षु : परमात्मा तक पहुँचने के लिए धर्म को एक तरफ रखकर फिर अच्छे कर्म ही करें तो क्या परमात्मा तक पहुँच सकते हैं या नहीं?

दादाश्री : नहीं, कर्म का और इसका कोई लेना-देना नहीं है। अच्छे कर्म करने से सिर्फ धर्म होता है, अन्य कुछ नहीं। यदि बुरे कर्म करें तो अधर्म होता है। आप यदि अच्छे कर्म करेंगे तो लोग कहेंगे कि 'बहुत अच्छे इंसान हैं'।

अच्छे कर्म करो तो धर्म कहलाता है और बुरे कर्म करो तो अधर्म कहलाता है और धर्म-अधर्म से परे जाना, वह आत्मधर्म कहलाता है। अच्छे कर्म करने से क्रेडिट उत्पन्न होता है और वह क्रेडिट भोगने जाना पड़ता है। खराब कर्म करने से डेबिट उत्पन्न होता है और वह डेबिट भुगतने भी जाना पड़ता है और जिस बहीखाते में क्रेडिट-डेबिट नहीं हैं, वहाँ आत्मा प्राप्त होता है। बिल्कुल भी, एक डॉलर भी क्रेडिट नहीं है और एक डॉलर भी डेबिट नहीं है तो आत्मा प्राप्त होता है।

पश्चाताप से प्योरिटी

मुमुक्षु : इस संसार में आए हैं इसलिए कर्म तो करने ही पड़ेंगे न? जाने-अनजाने गलत कर्म हो जाएँ तो क्या करें?

दादाश्री : यदि हो जाएँ तो फिर उसका उपाय होता है न! जब कभी गलत कर्म हो जाए तो तुरंत उसके बाद पछतावा (करना) होता है, और वह भी सच्चे दिल से, सिन्सियरिटी से पछतावा करना है। यदि पछतावा करने के बावजूद भी फिर से ऐसा हो जाए तो उसकी चिंता नहीं करनी है। फिर से पछतावा करना है। उसके पीछे क्या विज्ञान है, वह आपको समझ में नहीं आने से आपको ऐसा लगता है कि 'यह पछतावा करने से बंद नहीं होता'। क्यों बंद नहीं होता, वह विज्ञान है। अत: आपको पछतावा ही करते रहना है। जो सच्चे दिल से पछतावा करते हैं, उनके सभी कर्म धुल जाते हैं। बुरा लगा इसलिए उसे पछतावा करना ही है।

मुमुक्षु : शरीर के धर्म आचरण में लाते हैं तो उसके प्रायश्चित करने पड़ेंगे?

दादाश्री : हाँ! जब तक ऐसा भान नहीं है कि 'मैं आत्मा हूँ' तब तक प्रायश्चित नहीं होते तो कर्म ज़्यादा चिपकते हैं। प्रायश्चित करने से कर्म की गांठें हल्की हो जाती हैं। वर्ना उस पाप का फल बहुत बुरा आता है। मनुष्यपन भी चला जाता है और यदि मनुष्य जन्म मिले तो भी उसे सभी तरह की अड़चनें आती हैं। खाने की, पीने की और मान-सम्मान तो किसी दिन दिखाई ही नहीं देता, हमेशा ही अपमान! इसलिए यह प्रायश्चित या अन्य सभी क्रियाएँ करनी पड़ती हैं। इसे परोक्ष भक्ति कहते हैं। जब तक आत्मज्ञान नहीं हो जाए तब तक परोक्ष भक्ति करने की ज़रूरत है।

अब पश्चाताप किसकी हाज़िरी में करना है? किसकी साक्षी में करना है? तो जिसे आप मानते हो, कृष्ण भगवान को मानते हो या दादा भगवान को मानते हो, जिसे भी मानते हो, उनकी साक्षी में करना

है! बाकी, उपाय न हो, ऐसा इस दुनिया में है ही नहीं। उपाय पहले जन्म लेता है, उसके बाद दर्द उत्पन्न होता है।

ये जो दर्द उत्पन्न हुए हैं न, उनके उपाय का जन्म पहले हो चुका होता है। यानी पौधा उग गया हो, उसके बाद दर्द उत्पन्न होते हैं। अर्थात् दुनिया तो बहुत एक्ज़ेक्ट है। आपको उपाय करने की ही ज़रूरत है। उपाय होता ही है!

क्रमण-अतिक्रमण-प्रतिक्रमण

यह जगत् कैसे उत्पन्न हुआ? अतिक्रमण से। क्रमण से कोई परेशानी नहीं है। आपने होटल में कोई चीज़ मँगवाकर खाई और दो प्लेट आपके हाथ से टूट गई तो आप उसके पैसे देकर बाहर निकले यानी आपने अतिक्रमण नहीं किया इसलिए उसका प्रतिक्रमण नहीं करना है। लेकिन प्लेट टूट गई और यदि आप कहें कि, 'तेरे आदमी ने तोड़ी है', तो फिर बात आगे बढ़ी। अत: अतिक्रमण किया, उसका प्रतिक्रमण करना पड़ता है और अतिक्रमण हुए बगैर रहता नहीं, इसलिए प्रतिक्रमण करो। दूसरा सब क्रमण तो है ही। सहज रूप से बात हुई, वह क्रमण है, उसमें कोई हर्ज नहीं है, लेकिन अतिक्रमण हुए बगैर रहता नहीं इसलिए उसका प्रतिक्रमण करो।

मुमुक्षु : यह जो अतिक्रमण हुआ, उसका खुद को कैसे पता चलेगा?

दादाश्री : वह खुद को भी पता चलता है और सामने वाले को भी पता चलता है। अतिक्रमण हुआ, वह सामने वाले को भी पता चलता है। आपको पता चलता है कि 'उसके चेहरे पर असर हो गया है और आपको भी असर हो जाता है'। दोनों को असर होता है। अत: उसका प्रतिक्रमण करना ही है।

यदि पुलिस वाला रोके और आपने गाड़ी खड़ी नहीं रखी तो आपने अतिक्रमण किया इसलिए उसका प्रतिक्रमण करना पड़ता है। वर्ना कोर्ट में जाना पड़ता है।

खाना खाते हैं, वह अतिक्रमण नहीं है तो क्या बाल कटवाते हैं, वह अतिक्रमण है?

मुमुक्षु : नहीं है।

दादाश्री : और दाढ़ी बनाते हैं, क्या वह अतिक्रमण है?

मुमुक्षु : नहीं है।

दादाश्री : तब क्या सुबह ब्रश करते हैं, वह अतिक्रमण है?

मुमुक्षु : नहीं, वह भी नहीं है।

दादाश्री : अतिक्रमण तो, क्रोध-मान-माया-लोभ, ये सब अतिक्रमण कहलाते हैं। इनके प्रतिक्रमण किए इसलिए क्रोध-मान-माया-लोभ चले गए। यदि अतिक्रमण हो गया और प्रतिक्रमण किया तो क्रोध-मान-माया-लोभ चले गए।

अज्ञान के धक्के से, अनंत प्रोजेक्शन्स

ऐसा है, जीवमात्र प्रोजेक्ट (योजना-भाव) करते रहते हैं। स्वाभाविक रूप से नहीं, लेकिन धक्का लगने से प्रोजेक्ट करते रहते हैं और हमें प्रतिक्रमण करते रहना है। यानी अज्ञानता के धक्के से प्रोजेक्ट करते रहते हैं, संयोगवश, इसलिए फिर प्रतिक्रमण करना है।

फिर एक प्रकार का प्रोजेक्ट नहीं है, अनंत प्रकार के प्रोजेक्ट हैं। जहाँ जैसा मिले वहाँ पर सोचे बगैर रहते नहीं। फिर चाहे ब्रिज (पुल) पर ही यदि कभी बात निकले तो कहेंगे, 'यह ब्रिज इतना ऊँचा क्यों बनाया होगा?' ऐसा भी भीतर पूछते हैं। अरे! आपको इसमें क्या लेना-देना? क्या ब्रिज ने आपके साथ शादी की है? ब्रिज पर आए, इसलिए ऐसा चक्कर चला! वैसे तो ब्रिज पर चलकर दूसरी तरफ उतर जाते हैं। यानी कुछ लेना-देना नहीं है, फिर भी वहाँ पर कहते हैं कि 'यह ब्रिज इतना ऊँचा क्यों बाँधा होगा?' ऐसा लोग बोलते हैं या नहीं?

मुमुक्षु : बोलते हैं, लेकिन तब पाँच मिनट में तो पाँच हज़ार पर्याय उत्पन्न हो जाते हैं।

दादाश्री : पाँच हज़ार आप बता रहे हो, लेकिन पाँच मिनट यानी तीन सौ सेकन्ड हुई और सेकन्ड के समय अपार होते हैं! यानी एक सेकन्ड में तो कितने सारे पर्याय उत्पन्न हो जाते हैं! ऐसे अपार अतिक्रमण करते ही रहते हैं।

अतिक्रमण से यह संसार खड़ा हुआ है और प्रतिक्रमण से खत्म हो जाता है।

प्रतिक्रमण की परिभाषा

मुमुक्षु : हमें नापसंद हो ऐसा कुछ हो रहा हो और उसे सहन करना, क्या आप उसे प्रतिक्रमण कहते हैं?

दादाश्री : नहीं, सहन नहीं करना है, प्रतिक्रमण करना चाहिए।

मुमुक्षु : तो प्रतिक्रमण यानी क्या?

दादाश्री : प्रतिक्रमण यानी सामने वाला, जब हमारा अपमान करता है, तब हमें समझ जाना चाहिए कि 'इस अपमान का गुनहगार कौन है?' हमें पहले यह डिसिज़न लेना चाहिए कि 'वह करने वाला गुनहगार है या भुगतने वाला' तो अपमान करने वाला बिल्कुल भी गुनहगार नहीं होता। एक सेन्ट (प्रतिशत) भी गुनहगार नहीं होता है। वह निमित्त है और अपने ही कर्म के उदय के कारण वह निमित्त मिलता है। अत: यह अपना ही गुनाह है। अब प्रतिक्रमण इसलिए करना है, कि यदि सामने वाले पर खराब भाव हो जाए तो प्रतिक्रमण करना है। उसके लिए मन में यदि ऐसा विचार आ जाए कि 'नालायक है, लुच्चा है' तो प्रतिक्रमण करना है। यदि ऐसा विचार नहीं आए और आप उसका उपकार मानते हो तो प्रतिक्रमण करने की ज़रूरत नहीं है। बाकी, कोई भी (व्यक्ति) गाली दे तो वह अपना ही हिसाब है, वह व्यक्ति तो निमित्त है। जेब कट जाए तो वह काटने वाला निमित्त है और अपना ही हिसाब है। ये तो निमित्त को ही काटते हैं और उसी के ये सब झगड़े हैं।

उल्टा चले वह अतिक्रमण

पूरे दिन में जो व्यवहार करते हैं, उसमें जब कुछ उल्टा हो जाता है तो हमें पता चलता है कि इसके साथ उल्टा व्यवहार हो गया। पता चलता है या नहीं? तो हम जो व्यवहार करते हैं, वे सब क्रमण हैं। क्रमण यानी व्यवहार। अब जब किसी के साथ उल्टा हो जाता है तब हमें ऐसा पता चलता है कि इसे मैंने कठोर शब्द बोले या उल्टा बर्ताव हो गया। पता चलता है या नहीं? तो वह अतिक्रमण कहलाता है।

अतिक्रमण अर्थात् 'उल्टा चलना'। जितना उल्टा चले हो, उतना ही सीधा वापस आए, उसे प्रतिक्रमण कहते हैं। उल्टा चले उसे अतिक्रमण कहते हैं और वापस लौटे, उसे प्रतिक्रमण कहते हैं।

ऐसे तुरंत धुल जाता है

जहाँ पर झगड़ा है, वहाँ प्रतिक्रमण नहीं है और जहाँ पर प्रतिक्रमण है, वहाँ झगड़ा नहीं है।

जो आपको 'पसंद हो', वह दूसरों को दें, उससे पुण्य बंधेगा। खुद को गाली सहन नहीं होती और दूसरे को पाँच देता है। नापसंद है, वह दूसरों को देता है, वह भयंकर गुनाह है। ऐसा नहीं होना चाहिए। कोई हमें दे जाए, वह नियमानुसार है। 'क्यों दे रहा है', ऐसा उससे पूछने मत जाना। उसे जमा ही कर लेना।

मुमुक्षु : उगाही के लिए जाएँ तो क्या होता है?

दादाश्री : और भी दो सुनाता है। और उससे जब पूछें कि 'दो ही क्यों दी? तीन नहीं, चार नहीं, एक नहीं', तब कहता है कि 'मैं थोड़े ही बेकार बैठा हूँ?' यानी नियमानुसार है। जमा कर लो। आप देना मत और अगर दे दी तो आप प्रतिक्रमण करना।

बेटे को मारने का अधिकार नहीं है, समझाने का अधिकार है। फिर भी बेटे को पीटा और यदि प्रतिक्रमण नहीं करेंगे तो सब कर्म चिपकेंगे ही न? प्रतिक्रमण तो करना ही चाहिए न? लड़के

को पीटा, वह तो प्रकृति के उल्टे स्वभाव की वजह से, क्रोध-मान-माया-लोभ के कारण, कषायों की वजह से पीटा। कषाय उत्पन्न हुए इसलिए पीटा। लेकिन पीटने के बाद मेरे शब्द याद आते हैं कि, 'दादा' ने कहा है कि 'अतिक्रमण हो जाए तो इस तरह से प्रतिक्रमण करना'। अत: प्रतिक्रमण करने से धुल जाएगा, तुरंत ही धुल जाए ऐसा है।

प्रतिक्रमण किसे नहीं करने हैं?

दादाश्री : आप कितने प्रतिक्रमण करते हो?

प्रश्नकर्ता : एक भी नहीं।

दादाश्री : तो अतिक्रमण कितने करते हो? जहाँ अतिक्रमण हो जाए, वहाँ प्रतिक्रमण करना ही चाहिए। जहाँ अतिक्रमण नहीं होता है वहाँ प्रतिक्रमण की ज़रूरत नहीं है। 'मैं चंदूभाई', वही अतिक्रमण। फिर भी व्यवहार में उसे लेट गो करते हैं लेकिन क्या आपसे किसी को दु:ख होता है? नहीं होता तो वह अतिक्रमण नहीं है। पूरे दिन में आपसे किसी को दु:ख हुआ, वह अतिक्रमण है। उसका प्रतिक्रमण करो। यह वीतरागों का साइन्स है। अतिक्रमण अधोगति में ले जाता है और प्रतिक्रमण उर्ध्वगति में ले जाता है और ठेठ मोक्ष जाने तक प्रतिक्रमण ही हेल्प करता है।

प्रतिक्रमण किसे नहीं करना है? जिसने अतिक्रमण नहीं किया हो, उसे।

अतिक्रमण की पहचान

प्रश्नकर्ता : हमें किसी को दु:ख देने का भाव नहीं है फिर भी निमित्त रूप से दु:ख दे दिया जाता है तो ऐसा अभिप्राय बाँधने की ज़रूरत है कि 'अतिक्रमण हुआ तो उसका प्रतिक्रमण करना है?'

दादाश्री : किसी को बुरा लगे ऐसा आप बोले हो, किसी को दु:ख हो जाए ऐसा कुछ बोल दिया हो, किसी को दु:ख हो जाए ऐसा

आपसे धक्का लगा हो, तो वह अतिक्रमण किया कहलाएगा। तब उसका प्रतिक्रमण करना चाहिए। अतिक्रमण किया यानी भूल की और इसलिए कर्म बंधेगा।

प्रश्नकर्ता : यदि सामने वाला व्यक्ति निमित्त ही है तो उसे दु:ख क्यों होता है? और फिर प्रतिक्रमण करने की क्या ज़रूरत है?

दादाश्री : सामने वाले को दु:ख हुआ हो तो प्रतिक्रमण करना पड़ता है। दु:ख नहीं हुआ हो तो अतिक्रमण नहीं कहलाता। अत: अतिक्रमण हो जाए तो प्रतिक्रमण करना है।

ऐसा है न, यह सब खाना-पीना, बातचीत करना, वह सब क्रमण है। पूरे दिन क्रमण ही होता है। जल्दी उठना, देर से उठना, वह सब क्रमण ही है।

अभी एक आदमी उठकर किसी को गाली दे तो आप सब समझ जाएँगे कि, 'गाड़ी सीधी चल रही थी तो ऐसा अतिक्रमण किसलिए कर रहा है?' इसे अतिक्रमण कहते हैं। किसी का दिल दु:भाया हो ऐसा कुछ किया हो, वह अतिक्रमण यदि सहज भाव से हुआ हो तब भी प्रतिक्रमण करना पड़ेगा। वैसे मुँह पर नहीं बोलते लेकिन मन बिगड़े तब भी करना पड़ेगा। प्रतिक्रमण यानी आपको समझ में आए उस तरह से उसके लिए माफी माँगनी है। ऐसा डिसाइड करना है कि 'यह दोष किया, वह मुझे समझ में आ गया और अब फिर से ऐसा दोष नहीं करूँगा'। यह ऐसा किया वह गलत किया, ऐसा नहीं होना चाहिए और ऐसा फिर से नहीं करूँगा, ऐसी प्रतिज्ञा लेनी चाहिए। फिर भी वापस ऐसा हो जाए, फिर से वही का वही दोष हो जाए तो फिर से पश्चाताप करना है, लेकिन जैसे ही दिखा और उसका पश्चाताप किया तो उतना कम हो जाएगा। इस तरह अंत में धीरे-धीरे सब खत्म हो जाएगा।

जिस धर्म से कर्म का नाश नहीं होता, उसे धर्म कैसे कहेंगे? नए कर्म कैसे रुक सकते हैं? प्रतिक्रमण से।

रीत, शक्तियाँ माँगने की

प्रश्नकर्ता : आगे बढ़ने के लिए शक्तियाँ कैसे माँगे और किससे माँगनी है?

दादाश्री : खुद के शुद्धात्मा से, 'ज्ञानी पुरुष' से शक्तियाँ माँग सकते हैं और जिसे स्वरूप का ज्ञान नहीं हुआ है, वह अपने गुरु, मूर्ति या प्रभु, जिन्हें भी मानता हो उनसे शक्तियाँ माँगे। खुद में जो-जो गलत दिखाई दे उसका 'लिस्ट' बनाना चाहिए और उसके लिए शक्तियाँ माँगनी चाहिए। श्रद्धा से, ज्ञान से जो गलत है, उसे पक्का कर लो कि 'यह गलत ही है'। उसके प्रतिक्रमण करो, 'ज्ञानी' से शक्तियाँ माँगो कि ऐसा नहीं होना चाहिए तो वह जाएगा। जो बड़ी गांठें होती हैं, वे सामायिक से पिघलती हैं और दूसरे छोटे-छोटे दोष तो प्रार्थना से ही खत्म हो जाते हैं। बिना प्रार्थना से जो उत्पन्न हुआ है, वह प्रार्थना से खत्म हो जाता है। यह सब अज्ञान से उत्पन्न हो गया है। पौद्‌गलिक शक्तियाँ प्रार्थना से खत्म हो जाती हैं। फिसलना सरल है लेकिन चढ़ना कठिन है। क्योंकि फिसलने में पौद्‌गलिक शक्तियाँ लगती हैं।

ज्ञानी के ज्ञान से, निकाल कर्मों से

मुमुक्षु : कई बार व्यवहार में अलग-अलग तरह के कर्म करने पड़ते हैं, जिसे बुरे कर्म अथवा पाप कर्म कहते हैं, तो उस पाप कर्म से कैसे बच सकते हैं?

दादाश्री : उसके पास पाप कर्म का जितना ज्ञान है, वह ज्ञान हेल्प करता है। आपको यहाँ से स्टेशन पहुँचना है और आपको स्टेशन तक जाने का ज्ञान है तो वह आपको पहुँचाता है। पाप कर्मों से कैसे बचा जाए? यानी जितना भी ज्ञान है, वह सब इस पुस्तक में या किसी और के पास नहीं हो सकता। वह तो व्यवहारिक ज्ञान है। निश्चय ज्ञान, वह सिर्फ ज्ञानियों के पास होता है। पुस्तकों में यह निश्चय ज्ञान नहीं है। वह तो ज्ञानियों के हृदय में छुपा रहता है। जब हम उस निश्चय ज्ञान को सुनते हैं, वाणी के रूप में सुनते हैं, तब हमारा निबेड़ा आता

है। वर्ना पुस्तकों में तो व्यवहारिक ज्ञान मिलता है। वह भी कई खुलासे दे सकता है। उससे बुद्धि बढ़ती है। मतिज्ञान बढ़ता जाता है। श्रुतज्ञान से मतिज्ञान बढ़ता है और मतिज्ञान, पाप से कैसे छूटा जाए, उसका निपटारा लाता है। अन्यथा और कोई उपाय नहीं है। दूसरा, खुद की भावना, प्रतिक्रमण करना है तो छूटेंगे लेकिन प्रतिक्रमण कैसा होना चाहिए? 'शूट ऑन साइट' होना चाहिए। दोष उत्पन्न होते ही प्रतिक्रमण किया जाए तो निबेड़ा आ जाता है।

अन्यायपूर्वक व्यवहार का प्रायश्चित

मुमुक्षु : व्यवहार, व्यापार व अन्य प्रवृत्ति में अन्याय होता लगे तो मन में ग्लानि होती है, उससे यदि व्यवहार में नुकसान पहुँचे तब उसके लिए क्या करना चाहिए? हमसे यदि ऐसा कोई अन्याय हो जाए तो उसके लिए कैसे प्रायश्चित करना है?

दादाश्री : प्रायश्चित में आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान होना चाहिए। जहाँ-जहाँ किसी के प्रति अन्याय हो जाए, वहाँ आलोचना-प्रतिक्रमण करना चाहिए और फिर से अन्याय नहीं करूँगा, ऐसा नक्की करना चाहिए। जिन भगवान को मानते हो, कौन से भगवान को मानते हो?

मुमुक्षु : शिव भगवान को।

दादाश्री : हाँ! तो उन शिव जी के पास, उनके सामने पश्चाताप करना चाहिए। आलोचना करनी चाहिए कि 'मुझसे इन व्यक्तियों के प्रति ऐसा गलत दोष (व्यवहार) हो गया है, अब फिर से ऐसा नहीं करूँगा'। हमें बार-बार पश्चाताप करना है। यदि फिर से ऐसा दोष हो जाए तो फिर से पश्चाताप करना है। ऐसा करते-करते दोष कम होता है। आपको नहीं करना हो, फिर भी अन्याय हो जाता है। जो हो जाता है, वह अभी प्रकृति दोष है। यह प्रकृति दोष, वह आपके पूर्व जन्म का दोष है, आज का दोष नहीं है। आज आपको सुधरना है लेकिन यह जो हो जाता है, वह आपके पहले का दोष है। वह आपको परेशान किए बगैर रहेगा नहीं इसलिए आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान बार-बार करना पड़ेगा।

मुमुक्षु : हमें जो सहन करना पड़ता है, उसका क्या उपाय है?

दादाश्री : आपको तो सहन कर ही लेना है, व्यर्थ ही चीखना-चिल्लाना नहीं है। सहन करना है, और वह भी समतापूर्वक सहन करना है। सामने वाले को मन में गालियाँ देकर नहीं लेकिन समतापूर्वक। कि 'भाई! आपने मुझे कर्म में से मुक्त किया। मेरा जो कर्म था, वह मुझसे भुगतवाया और मुझे मुक्त किया'। इसलिए उसका उपकार मानना चाहिए। सहन करना, वह कहीं ऐसे ही नहीं करना पड़ता, अपने ही दोष का परिणाम है।

मुमुक्षु : मुझे ये आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान लिखकर दीजिए न! ज्ञानी पुरुष से कन्फॉर्मेशन करवा दीजिए ताकि मैं ये आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान करना शुरू कर दूँ।

दादाश्री : हाँ, वह तो करना ही पड़ेगा न! वह आपको यहाँ सिखाएँगे।

ओहो! उसके भी प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : और प्रतिक्रमण यानी दूसरों के दोष देखे, उसके ही प्रतिक्रमण करना है?

दादाश्री : सिर्फ दूसरों के दोष ही नहीं, हर एक बात में, झूठ बोल दिया हो, उल्टा हो गया हो, कोई भी हिंसा हो गई हो, चाहे कोई भी पाँच महाव्रत तोड़े हों, उन सब के लिए प्रतिक्रमण करना है।

मुमुक्षु : गलत करने वाला अलग है तो फिर प्रतिक्रमण क्यों करना है?

दादाश्री : अलग है ऐसा नहीं, खुद नहीं करता। गलत करने वाले से प्रतिक्रमण करवाता है, प्रतिक्रमण शुद्धात्मा खुद नहीं करता।

❖❖❖❖❖

[2]

प्रत्येक धर्म ने प्रतिपादित किया प्रतिक्रमण

सर्वोत्तम व्यवहार धर्म

जैन धर्म में यदि कोई सर्वोच्च गूढ़ तत्त्व है तो वह है, आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान। वह सर्वोपरि है। हालांकि यह दूसरे लोगों के धर्म में भी है, लेकिन वह कैसा है? सामूहिक क्षमा माँगी जाती है। ऐसा प्रत्येक धर्म में है, परंतु वह कैसा है? मुस्लिम धर्म में है, क्रिश्चियन धर्म में है, क्षमा माँगने का रिवाज़ तो सभी धर्मों में चलता आया है, लेकिन जो वीतरागों ने बताया है, 'आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान' अर्थात् गुरु की हाज़िरी के ज़रिए से आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान, वह बहुत साइन्टिफिक (वैज्ञानिक) चीज़ है। तुरंत फल देने वाली है।

अन्य धर्मों में तो क्षमा माँगने से पाप कम होते हैं इतना ही है और इस प्रतिक्रमण से तो पाप खत्म हो जाते हैं।

भगवान ने कहा है कि 'आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान, इसके सिवा दूसरा कोई व्यवहार धर्म है ही नहीं'। लेकिन वह कैश होना चाहिए, उधार नहीं चलेगा। यदि किसी को गाली दे देते हो तो जो अभी हुआ उसे *लक्ष* (जागृति) में रखो कि किसके साथ क्या हुआ? और फिर आलोचना करके, कैश प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान करो।

उसे भगवान ने व्यवहार व निश्चय, दोनों ही कहा है। लेकिन वह किसे होता है? समकित हो जाने के बाद होता है, तब तक यदि करना हो फिर भी नहीं हो सकेगा। समकित होता भी नहीं है न! फिर भी यदि कोई अपने यहाँ से सीखकर आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान करेगा तब भी काम हो जाएगा। चाहे किसी भी आधार के बिना सीख ले तब भी हर्ज नहीं है। समकित उसे होकर रहेगा!!!

जिसके आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान सही होते हैं, उसे आत्मा प्राप्त हुए बगैर रहता ही नहीं।

मुमुक्षु : खुद से कोई भी पाप हो जाने पर उसके प्रायश्चित के लिए व्रत या ऐसा कुछ करते हैं, ताकि उससे आत्मा का शुद्धिकरण हो जाए, तो ऐसा कुछ उपाय दीजिए।

दादाश्री : वे सब 'हम' यहाँ साथ ही दे देते हैं। सभी दवाईयाँ देते हैं। तमाम प्रकार की दवाईयाँ, उसके लिए आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान सभी प्रकार के!

प्रतिक्रमण अर्थात् पाप से वापस लौटना

दादाश्री : प्रतिक्रमण का अर्थ क्या है, वह आप जानते हैं?

मुमुक्षु : नहीं।

दादाश्री : जैसा भी आप जानते हैं, वैसा बताइए।

मुमुक्षु : पाप से वापस लौटना।

दादाश्री : पाप से वापस लौटना! कितना अच्छा भगवान ने न्याय किया है कि 'भाई, पाप से वापस लौटना, उसे कहते हैं प्रतिक्रमण!' लेकिन अभी भी पाप तो हो ही रहे हैं। उसका क्या कारण है?

मुमुक्षु : वह तो आप ही समझाइए। एक है, आलोचना, दूसरा, प्रतिक्रमण और तीसरा है, प्रत्याख्यान। ये तीन शब्द अभी मुझे कम्प्लीट्ली क्लियर नहीं हुए हैं।

दादाश्री : प्रत्याख्यान यानी 'मैं उस चीज़ को आज छोड़ देता हूँ, त्याग करता हूँ', ऐसा उसका भावार्थ है। 'चीज़ को छोड़ना है यानी प्रत्याख्यान करता हूँ।'

मुमुक्षु : 'पश्चाताप करता हूँ', वह प्रतिक्रमण है और ऐसा कहे कि 'फिर से ऐसा नहीं करूँगा' तो क्या वह प्रत्याख्यान है?

दादाश्री : हाँ! पश्चाताप, वह प्रतिक्रमण कहलाता है। अब प्रतिक्रमण किया है तो फिर से ऐसा अतिक्रमण नहीं होगा। 'फिर से ऐसा नहीं करूँगा', उसे प्रत्याख्यान कहते हैं। मन में ऐसा निश्चय करना है कि 'फिर से नहीं करूँगा, ऐसा प्रॉमिस करता हूँ', और बाद में फिर से ऐसा हो जाए फिर भी एक परत तो गई, उसके बाद दूसरी परत आती है, तो उससे घबराना नहीं है, बार-बार ऐसा करते ही रहना है।

मुमुक्षु : मन में माफी ही माँग लेनी है।

दादाश्री : हाँ, माफी माँग लेनी है।

आलोचना

मुमुक्षु : आलोचना यानी क्या?

दादाश्री : हाँ, आलोचना यानी 'हमने कोई खराब काम किया हो तो अपने जो गुरु हों या फिर ज्ञानी हों, उनके सामने इकरार करना। जैसा हुआ हो वैसा ही इकरार करना।' कोर्ट में क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : कन्फेशन करना (कबूल करना)।

दादाश्री : हाँ, गुरु के पास या ज्ञानी के पास जाकर, जो कुछ भी हुआ हो, वैसा ही हमें कह देना है, भय रखे बिना। गुरु महाराज क्या कहेंगे, ऐसा भय नहीं रखना है। भय यानी मार भी सकते हैं लेकिन हमें निर्भय होकर कह देना चाहिए कि 'ऐसा हो गया है'। बाद में गुरु महाराज कहेंगे कि 'प्रतिक्रमण करना'। यानी इस प्रकार वे हमें सिखाएँगे कि इस रीत से प्रतिक्रमण करना। अब हमें प्रतिक्रमण किसका

करना है? तो कहते हैं, 'जितना भी अतिक्रमण किया हो, ऐसा, जो लोगों को नहीं पुसाए, ऐसे कर्म जो लोकनिंद्य हैं, ऐसा हुआ हो जिससे कि सामने वाले को दु:ख हो जाए, वह अतिक्रमण है। यदि ऐसा हुआ हो तो प्रतिक्रमण करने की ज़रूरत है'।

मुमुक्षु : आलोचना-प्रतिक्रमण करने के बाद वह दोष फिर से न हो उसके लिए जागृत तो रहना चाहिए न?

दादाश्री : वह दोष होता ही नहीं फिर से। यथार्थ प्रतिक्रमण उसे कहते हैं कि 'फिर से वह दोष हो ही नहीं'। फिर दोष धीरे-धीरे खत्म हो जाते हैं।

आप जो कह रहे हो कि प्रतिक्रमण करने के बाद भी वह दोष होता है तो वह जो बाज़ारों में चल रहा है, अभी जो व्यवहार में चल रहा है, वह प्रतिक्रमण लौकिक है, लौकिक अर्थात् संसार फल देने वाला। सिर्फ अपना उतना टाइम अधर्म में नहीं गया इसका पुण्य बंधा।

प्रतिक्रमण तो किसे कहते हैं? 'शूट ऑन साइट' होना चाहिए। अपने यहाँ यही नियम है न, 'शूट ऑन साइट' का? ऐसा प्रतिक्रमण होना चाहिए।

गुरु महाराज ने कहा था कि प्रतिक्रमण करो, फिर प्रतिक्रमण करने के बाद फिर से प्रत्याख्यान तो करना ही चाहिए। गुरु महाराज की मूर्ति का स्मरण करके प्रत्याख्यान करना ही चाहिए। जो दोष हो गया उसका प्रत्याख्यान यानी फिर से नहीं करूँगा, अर्थात् ये तीनों साथ में होने चाहिए।

मुमुक्षु : और जागृत रहना चाहिए कि ऐसा फिर से नहीं हो?

दादाश्री : निरंतर जागृत, जागृत यानी आधा घंटा नहीं, चौबीस घंटे, निरंतर। जब से इन लोगों को मैंने ज्ञान दिया तब से जागृत रहते हैं। एक क्षण भर भी वे सोए नहीं हैं।

संसार के लोगों में से कोई जागृत हो और वह प्रतिक्रमण करे तो

उतने दोष कम हो जाएँगे और फिर से नए शुभ (कर्म) बंधेंगे। जब तक दर्शन मोहनीय है तब तक दोष बंधते ही रहते हैं।

आलोचना हमेशा प्रतिक्रमण सहित ही होती है और प्रतिक्रमण, वह तो सब से बड़ा हथियार है। अर्थात् प्रतिक्रमण का धर्म यदि पकड़ लिया तो आपके सिर पर गुरु नहीं होंगे तो भी चलेगा। अत: दादा से इतना सीख गए तो बहुत हो गया। इसमें सबकुछ आ गया। जहाँ कहीं भी भूल हो जाए, वहाँ दादा से माफी माँगनी है। उतने गुनाह में से मुक्त हो जाओगे। यह क्या कठिन है? दादा, कहीं उपवास करने के लिए कहते हैं कि 'क्यों भूल की?' अत: उपवास करने के लिए कहते तो लोग समझते कि दादा ने हमें भूखा मार डाला, लेकिन दादा ऐसे भूखा नहीं मारते न? कोई गाली दे और असर हो जाए, खुद को ऐसा लगता रहे कि मेरी ही भूल है और खुद प्रतिक्रमण करता रहे तो वह भगवान का सर्वोपरि ज्ञान है। यही मोक्ष ले जाएगा! इतना ही शब्द, हमारे एक ही वाक्य का यदि पालन करेगा न, तो मोक्ष चला जाएगा! दूसरा और क्या करना है?

जब तक कर्ताभाव, तब तक अतिक्रमण

कर्म कौन बाँधता है? उसे हमें जानना पड़ेगा, आपका नाम क्या है?

मुमुक्षु : चंदूलाल।

दादाश्री : 'मैं चंदूलाल हूँ', वही कर्म बाँधता है। फिर जब रात को सो जाते हैं, तब भी पूरी रात कर्म बंधता है। 'मैं चंदूलाल हूँ', इससे तो सोते हुए भी कर्म बंधता है, उसका क्या कारण है? क्योंकि वह आरोपित भाव है इसलिए गुनाह लागू होता है। वास्तव में 'खुद' चंदूलाल नहीं है और जहाँ आप नहीं हो, वहाँ 'मैं हूँ' ऐसा आरोपण करते हो। कल्पित भाव है वह, और निरंतर उसका गुनाह लागू होता है। फिर 'मैं चंदूलाल, इसका ससुर हूँ, इसका मामा हूँ, इसका चाचा हूँ', ये सब आरोपित भाव हैं, इससे निरंतर कर्म बंधते रहते हैं। रात

को नींद में भी कर्म बंधते रहते हैं। रात को कर्म बंधते हैं, उससे तो अब छुटकारा ही नहीं है लेकिन 'मैं चंदूलाल हूँ', इस अहंकार को यदि आप निर्मल कर दोगे, तो आपको कर्म कम बंधेंगे।

अहंकार निर्मल करने के बाद फिर से क्रियाएँ करनी पड़ती हैं। कैसी क्रियाएँ करनी पड़ती हैं, जैसे कि सुबह आपके बेटे की बहु से कप-प्लेट फूट गए और आपने कहा कि, 'तुझ में अक्ल नहीं है'। अतः इससे उसे जो दुःख हुआ, उस वक्त हमें मन में ऐसा होना चाहिए कि 'यह मैंने उसे दुःख दिया'। वहाँ प्रतिक्रमण होना चाहिए। दुःख दिया यानी अतिक्रमण हुआ कहा जाएगा और अतिक्रमण होने पर यदि प्रतिक्रमण करे तो वह धुल जाएगा। वह कर्म हल्का हो जाएगा।

किसी को भी दुःख हो जाए ऐसा आचरण करे यानी अतिक्रमण कहलाएगा। अतिक्रमण होने पर प्रतिक्रमण करना चाहिए और वह भी बारह महीने बाद करते हैं, ऐसा नहीं, 'शूट ऑन साइट' होना चाहिए। तो दुःख कुछ कम होंगे। वीतराग के कहे मत के अनुसार चलेंगे तो दुःख जाएँगे। वर्ना दुःख जाते नहीं।

ऐसे होता है प्रतिक्रमण

अपने आप (सीखे बगैर) जो आ जाता है, उसका नाम अतिक्रमण और प्रतिक्रमण सीखना पड़ता है। अतिक्रमण तो अपने आप आ जाता है। किसी को घूँसा मारना हो तो सीखने जाना नहीं पड़ता, वह तो किसी को देखकर ही सीखा हुआ होता है। अब अतिक्रमण करते हैं तो प्रतिक्रमण करना पड़ता है। वैसे तो व्यवहार में सब बैठे हैं, उसमें कोई प्रतिक्रमण करने की ज़रूरत नहीं है। यह तो किसी को घूँसा (मुक्का) मारा हो या किसी की खिल्ली उड़ाई हो यानी अतिक्रमण किया तो उसका प्रतिक्रमण करना पड़ता है।

मुमुक्षु : वह प्रतिक्रमण कैसे करना चाहिए?

दादाश्री : आपने यदि ज्ञान लिया है तो आपको उसके आत्मा का समझ में आएगा यानी आत्मा को लक्ष्य में रखकर करना चाहिए

या फिर भगवान को याद करके करना चाहिए कि 'हे भगवान! पश्चाताप करता हूँ, माफी माँगता हूँ और अब फिर से ऐसा नहीं करूँगा'। बस, यही है प्रतिक्रमण! गलत होने पर तुरंत पता चल जाता है न?

मुमुक्षु : हाँ।

दादाश्री : उसका प्रतिक्रमण किया यानी धुल गया।

मुमुक्षु : क्या वह सचमुच धुल जाता है?

दादाश्री : हाँ-हाँ, अवश्य ही! प्रतिक्रमण किया इसलिए फिर रहता नहीं न! बहुत बड़ा (भारी) कर्म हो तो ऐसे जली हुई रस्सी जैसा दिखाई देता है लेकिन छूते ही गिर जाता है।

मुमुक्षु : वह पश्चाताप कैसे करूँ? सब के सामने करूँ या मन में करूँ?

दादाश्री : मन में। मन में दादा को याद करके कि 'यह मुझसे भूल हो गई है अब फिर से नहीं करूँगा', ऐसा मन में याद करके करना चाहिए। फिर ऐसे करते-करते वह सब दुःख भूल जाते हैं। वह भूल खत्म हो जाती है लेकिन यदि ऐसा नहीं करेंगे तो फिर भूलें बढ़ती जाएँगी। यह मैंने आपको जो हथियार दिया है, यह प्रतिक्रमण, वह बड़ा हथियार दिया है क्योंकि पूरे संसार का अंत लाने का सब से बड़ा हथियार यही है। अतिक्रमण से जगत् खड़ा हुआ है और प्रतिक्रमण से जगत् का विलय हो जाता है। बस यही है। अतिक्रमण हुआ यानी दोष हुआ। वह आपको पता चला तो दोष को 'शूट ऑन साइट' करना चाहिए। दोष दिखा कि 'शूट करो'।

यह एक ही मार्ग ऐसा है कि खुद के दोष दिखते जाते हैं और शूट होते जाते हैं, ऐसे करते-करते दोष खत्म होते जाते हैं।

पछतावा कभी भी बनावटी नहीं हो सकता

दादाश्री : आप ऐसे कितने प्रतिक्रमण करते हो?

मुमुक्षु : किसी को दु:ख हो जाए तो तुरंत पश्चाताप करता हूँ।

दादाश्री : वह जो वेदना होती है, वह पश्चाताप है। पश्चाताप, वह प्रतिक्रमण नहीं कहलाता है। फिर भी वह ठीक है।

मुमुक्षु : पाप करने के बाद यदि हम पश्चाताप करें तो उस पाप में से मुक्ति कैसे मिलेगी? ऐसा तो फिर वह (पाप) करता ही रहेगा?

दादाश्री : वह सब रास्ता मैं बताऊँगा।

मुमुक्षु : एक ओर पाप करते रहते हैं और दूसरी ओर पश्चाताप करते रहते हैं। ऐसा तो चलता ही रहता है।

दादाश्री : ऐसा नहीं करना है। जो व्यक्ति पाप करता है न, वह यदि पश्चाताप करता है तो वह बनावटी पश्चाताप कर ही नहीं सकता। यथार्थ पश्चाताप ही होता है और यथार्थ पश्चाताप होने से प्याज़ की एक परत हट जाती है, फिर भी प्याज़ तो पूरी की पूरी दिखाई देती है। फिर से दूसरी परत हटती है। हमेशा पश्चाताप व्यर्थ नहीं जाता। हर एक धर्म ने पश्चाताप ही दिया है। क्रिश्चियनों के वहाँ पर भी पश्चाताप ही करने को कहा गया है।

शत प्रतिशत सही रास्ता

मुमुक्षु : यानी माफी माँगने से अपने पापों का निवारण हो जाता है क्या?

दादाश्री : उससे ही पापों का निवारण हो जाता है। अन्य कोई रास्ता ही नहीं है।

मुमुक्षु : तो फिर बार-बार माफी माँगता रहे और बार-बार पाप करता रहे?

दादाश्री : बार-बार माफी माँगने की छूट है। बार-बार माफी माँगनी पड़ती है। हाँ! शत प्रतिशत रास्ता यही है! इस जगत् में माफी

माँगने के अलावा दूसरे किसी भी रास्ते से छूट ही नहीं पाएगा। प्रतिक्रमण से सब पाप धुल जाते हैं।

मुमुक्षु : प्रतिक्रमण करने से पाप का नाश होता है, उसके पीछे का साइन्स क्या है?

दादाश्री : अतिक्रमण से पाप होता है और प्रतिक्रमण से पाप का नाश होता है। वापस लौटने से पाप का नाश होता है।

मुमुक्षु : तो फिर कर्म का नियम कहाँ लागू होता है? हम यदि माफी माँगे और कर्मों से छूट जाए तो फिर उसमें कर्म का नियम नहीं रहा न?

दादाश्री : यही कर्म का नियम है! माफी माँगना, वही कर्म का नियम है!

मुमुक्षु : तब तो सब पाप करते जाएँगे और माफी माँगते जाएँगे।

दादाश्री : हाँ! पाप करते जाना है और माफी माँगते जाना है, वही भगवान ने कहा है।

मुमुक्षु : लेकिन सच्चे मन से माफी माँगना है न?

दादाश्री : माफी माँगने वाला सच्चे मन से ही माफी माँगता है और यदि झूठे मन से माफी माँगेगा तब भी चला लेंगे, इसलिए माफी माँगना।

मुमुक्षु : तब तो फिर उसे आदत पड़ जाएगी!

दादाश्री : आदत पड़ जाए तो भले पड़ जाए लेकिन माफी माँगना। माफी माँगे बगैर तो जैसे शामत आ गई! माफी का क्या अर्थ है? तो उसे प्रतिक्रमण कहते हैं और दोष को क्या कहते हैं? अतिक्रमण।

कर्म का नियम क्या है? 'अतिक्रमण करे तो उसका प्रतिक्रमण करो।' समझ में आया आपको?

मुमुक्षु : हाँ।

दादाश्री : अर्थात् माफी अवश्य माँगो और इन अक्लमंदों की, ज़रूरत से ज़्यादा अक्लमंदों की बात जाने दो। कोई गलत कर रहा हो और फिर माफी माँग रहा हो तो करने दो न! 'दिस इज़ कम्प्लीट लॉ।'

कोई ब्रान्डी पीता है और यदि वह कहे कि 'मैं माफी माँगता हूँ'। तो मैं कहूँगा कि 'माफी माँगना, माफी माँगता जाना और पीते जाना लेकिन मन में निश्चय करना कि मुझे अब छोड़ देनी है। सच्चे दिल से मन में निश्चय करना। फिर पीते जाना और माफी माँगते जाना। एक दिन उसका अंत आएगा'। मेरा यह विज्ञान शत प्रतिशत है।

यह तो विज्ञान है! उगे बगैर रहेगा नहीं। तुरंत फल देने वाला है। 'दिस इज़ द कैश बैंक ऑफ डिवाइन सॉल्यूशन', यही है 'कैश बैंक'! दस लाख वर्ष से निकला ही नहीं! दो घंटे में मोक्ष ले जाओ!! यहाँ पर आप जो माँगे वह देने के लिए तैयार हूँ, माँगना आना चाहिए!

आए हैं हम सुख देने को ही

अतिक्रमण अर्थात् यदि किसी को ज़रा भी दु:ख हो जाए, यों तो ज़्यादातर दु:ख नहीं होता था लेकिन गर्भित दु:ख रहता है। गर्भित यानी अंदर ही अंदर दु:ख होना। लेकिन उसका अर्थ यह नहीं निकालना चाहिए कि सामने वाले को समझ में नहीं आता, नहीं पहुँचता। गर्भित दु:ख जैसा दु:ख भी नहीं होना चाहिए। हमने लाइफ में किसी को किंचित्मात्र भी दु:ख नहीं दिया है लेकिन यदि गर्भित दु:ख हो जाए तो उसके लिए भी माफी माँग लेते हैं। हम दु:ख देने नहीं आए हैं। हम सुख देने आए हैं।

कौन सा अनिवार्य, कौन सा ऐच्छिक?

दादाश्री : यह हम जो यहाँ आए हैं, वह अनिवार्य है या ऐच्छिक?

मुमुक्षु : ऐच्छिक।

दादाश्री : नहीं। यह तो ललाट पर लिखा अनिवार्य था और

ऐच्छिक क्या है? इस भाई ने घूँसा मारा, वह अनिवार्य है और उसका प्रतिक्रमण करना या नहीं करना, वह ऐच्छिक है।

5000 रुपये दिए, वह मेयर के दबाव वश दिए। उसका 'यहाँ' यश मिलेगा लेकिन 'वहाँ' कुछ नहीं मिलेगा और अपनी मर्ज़ी से दे तो उसका 'वहाँ' फल मिलेगा, वह है, 'ऐच्छिक'।

ऐच्छिक क्या है? ये सब अनिवार्य ही हैं। बाहर जो क्रिया की, वह अनिवार्य है और भीतर किस भाव से क्रिया की, वह ऐच्छिक है। बाहर किसी ने दो धौल मारी, वह अनिवार्य और भीतर पश्चाताप किया यानी ऐच्छिक सुधरा और यदि भीतर भाव बिगड़ा तो ऐच्छिक बिगड़ा।

यदि कोई दोष हुआ हो और उसका बहुत पश्चाताप करे, बहुत पश्चाताप करे, तो वह दोष जाता है लेकिन उसे छुड़वाने वाला चाहिए।

भावसत्ता, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान करने की

अब किसी के खेत में से सब्ज़ी ले लेने की इच्छा मत करना। चाहिए तो माँग के लेना। हम भी जब छोटे थे, बारह-तेरह साल के, तब लोगों के खेतों में से सौंफ चुरा लाते थे। फिर जब बाद में बहुत ही पश्चाताप किए, तब साफ हुआ।

'प्रतिक्रमण' और 'प्रत्याख्यान' करने की ही भावसत्ता है, क्रमिक मार्ग में!

द्रव्य किसी के ताबे में नहीं है। सिर्फ भाव ही अपने ताबे में है। इसलिए गलत हो जाए तो पश्चाताप कर लेना। 'हमारा' द्रव्य भी अच्छा है और भाव भी अच्छे हैं। आपका द्रव्य स्वच्छंद सहित है इसलिए पश्चाताप करने पड़ेंगे।

भगवान क्या ऐसी बातों में हस्तक्षेप करते हैं? वे तो ज्ञाता-द्रष्टा व परमानंदी हैं! सबकुछ देखते व जानते ही हैं। क्या वे प्रेरणा देते हैं? अरे, वह तो जब भीतर से चोरी करने की गांठ फूटती है, तब चोरी करने का विचार आता है। बड़ी गांठ हो तो बहुत विचार आते

हैं और चोरी कर भी आता है और फिर कहता है कि 'मैंने कैसे चालाकी से चोरी की!' ऐसा कहने पर चोरी की गांठ को खुराक मिल जाती है। पोषण मिलने से नए बीज गिरते जाते हैं और चोरी की गांठ बढ़ती ही जाती है। जबकि दूसरा जो चोर है, वह चोरी करेगा सही लेकिन साथ ही भीतर उसे मन में खटकता रहता है कि यह चोरी करता हूँ, वह बहुत गलत हो रहा है, लेकिन क्या करूँ? पेट भरने के लिए करना पड़ता है। यानी वह हृदयपूर्वक पश्चाताप करता रहता है इसलिए चोरी की गांठ को पोषण नहीं मिलता और अगले जन्म के लिए चोरी नहीं करनी है, ऐसे बीज डालता है, अतः दूसरे जन्म में चोरी नहीं करेगा।

हार्टिली पछतावा

एक व्यक्ति को चोरी करने के बाद पछतावा होता है, उसे कुदरत जाने देती है। पश्चाताप करता है, उसका भगवान के वहाँ पर गुनाह नहीं है। लेकिन जगत् के लोग जो दंड देते हैं, वह इस जन्म में भुगत लेना पड़ता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन सब तो ऐसा ही मानते हैं कि झूठ बोलना पाप है, माँसाहार करना, असत्य बोलना, गलत ढंग से बर्ताव करना, वह सब खराब हैं। उसके बावजूद भी लोग गलत करते ही रहते हैं, ऐसा क्यों?

दादाश्री : यह सब गलत है, ऐसा नहीं करना चाहिए, ऐसा सब बोलते हैं, वे दिखावे के लिए बोलते हैं। 'सुपरफ्लुअस' बोलते हैं। हार्टिली नहीं बोलते। वर्ना यदि ऐसा 'हार्टिली' बोलते तब तो उनका दोष कुछ टाइम के बाद चला जाता। कोई चारा ही नहीं था! आपका दोष चाहे कितना भी खराब हो जाए लेकिन यदि आपको उसका बहुत 'हार्टिली' पछतावा होता है तो वह दोष फिर से नहीं होगा। यदि फिर से हो जाए तो उसमें भी हर्ज नहीं है लेकिन बहुत पश्चाताप करते रहो।

प्रश्नकर्ता : तो क्या इंसान के सुधरने की संभावना है?

दादाश्री : हाँ, बहुत ही संभावना है लेकिन सुधारने वाला होना चाहिए। उसमें एम.डी., एफ.आर.सी.एस., डॉक्टर नहीं चलेंगे। घोटाले वाला नहीं चलेगा, उसमें तो 'सुधारने वाला' चाहिए।

अब कई लोगों को ऐसा लगता है कि बहुत पछतावा करने के बावजूद भी फिर से वही दोष हो रहा है। उसे ऐसा लगता है कि 'इतना पछतावा किया फिर भी ऐसा क्यों होता है?' वास्तव में यदि 'हार्टिली' पछतावा किया जाए तो उससे दोष अवश्य जाता है।

प्रतिक्रमण से हल्कापन महसूस होता है। फिर से वह दोष होने पर उसे पछतावा होता रहता है।

संस्कार कब बदलते हैं? जब रात-दिन पश्चाताप करे तब या फिर अपना ज्ञान मिले तो संस्कार बदलते हैं।

पछतावा कोई ऐसी-वैसी चीज़ नहीं है। पश्चाताप होना ही चाहिए।

प्रश्नकर्ता : पूरे दिन यदि उल्टा-सीधा, ऐसा-वैसा करें और बाद में रात को पश्चाताप करे तो?

दादाश्री : हाँ, पश्चाताप सच्चे दिल से करे तो।

प्रश्नकर्ता : पश्चाताप करे और दूसरे दिन फिर से वैसा ही करे तो?

दादाश्री : हाँ, लेकिन सच्चे दिल से करेगा तो काम बन जाएगा।

प्रश्नकर्ता : यह जो पछतावा होता है, क्या वह पूर्व जन्म के आयोजन के कारण होता है?

दादाश्री : वह इस जन्म के ज्ञान के कारण पछतावा होता है।

प्रश्नकर्ता : जीवन में हमने कुछ गलत कर्म किए हों तो उसका दु:ख होता है लेकिन पश्चाताप नहीं होता, तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : उसका जो दु:ख होता है, वही पश्चाताप है न! ताप के बिना कभी भी दु:ख नहीं हो सकता। ठंडक में तो कहीं दु:ख हो सकता? यह ताप, वही दु:ख है। दु:ख हुआ तो भी बहुत हो गया लेकिन फिर से नहीं करूँगा, ऐसा बोलते हो या नहीं बोलते?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : आप सब को किस-किस (बात) में पछतावा होता है, वह लिखकर लाना। किस स्टेशन पर गाड़ी अटकती है, वह पता चलेगा तो फिर वहाँ पर हम गाड़ी भेजेंगे। पछतावा हुआ, वहाँ से समझना कि 'वापस लौटना शुरू हुआ'।

कोई भी क्रिया करने के बाद पछतावा करता है, वह इंसान एक दिन शुद्ध हो ही जाएगा, वह निश्चित है।

पछतावे से लेकर प्रतिक्रमण तक

जगत् के लोग माफी माँग लेते हैं, उससे कहीं 'प्रतिक्रमण' नहीं हो जाता। वह तो रास्ते में 'सॉरी', 'थैंक यू' कह देते हैं, वैसी बात है। उसका कोई महत्व नहीं है। महत्व 'आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान' का है। संसार में और मोक्षमार्ग में 'आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान' की ज़रूरत है।

प्रश्नकर्ता : हम से जो पाप हो गए हैं, उन्हें भगवान के मंदिर में जाकर हर रविवार को कबूल कर लें तो फिर क्या पाप माफ हो जाते हैं?

दादाश्री : इस तरह यदि पाप धुल जाते न, तब तो कोई बीमार होता ही नहीं न! फिर तो कोई दु:ख होता ही नहीं न! लेकिन यह तो अपार दु:ख होता है। माफी माँगने का अर्थ है कि 'आप जब माफी माँगते हो तब आपके पाप की जड़ जल जाती है'। इसलिए वह फिर से नहीं फूटती लेकिन उसका फल तो भुगतना ही पड़ेगा न!

प्रश्नकर्ता : कोई-कोई जड़ तो वापस फिर से फूट निकलती है।

दादाश्री : ठीक से नहीं जली हो तो फिर से फूटती रहेगी। बाकी, जड़ चाहे जितनी भी जल जाए लेकिन फल तो भुगतने ही पड़ेंगे। भगवान को भी भुगतने पड़ते हैं! कृष्ण भगवान को भी तीर लगा था, उसमें (किसी का बस) नहीं चलता। मुझे भी भुगतना पड़ता है।

हर एक के धर्म में माफी होती है, क्रिश्चियन, मुस्लिम, हिन्दु सभी में होती है लेकिन अलग-अलग तरह से होती है। हर एक धर्म में पछतावे से शुरुआत है, क्रिश्चियन, मुस्लिम, सब में! और अपने यहाँ प्रतिक्रमण होता है।

बाकी, यह सारा जगत् विकल्प है। किसी धर्म के लोग भी कान में उँगली डालकर हो हल्ला करते हैं, वह भी उचित है और क्रिश्चियन क्या करते हैं? कभी चर्च में गए हो या नहीं? क्यों उसमें क्या परेशानी है? आप काला कोट पहनकर अंदर जाओ तो कोई पूछने वाला ही नहीं न! वे लोग रविवार के दिन (चर्च में) आते हैं और छः दिन में जितनी भी भूलें हुई हो न, उनकी बार-बार माफी माँगते हैं, पश्चाताप करते रहते हैं।

पश्चाताप तो अपने लोग ही नहीं करते हैं। अपने लोग करते हैं लेकिन वे बारह महीने में एक बार करते हैं। उस दिन तो नए कपड़े लाकर, फर्स्ट क्लास लाकर पहनते हैं न!

प्रश्नकर्ता : मानसिक पछतावा करना, क्या वही प्रतिक्रमण है?

दादाश्री : जिस तरह बताया है, उस तरह करो। उसे धौल मारने से दुःख हुआ तो 'अब फिर से धौल नहीं मारूँगा। मुझसे गलती हो गई', इस तरह से करो। ऐसे पछतावा करो। अगर डाँटा या फिर मैंने उसे दुःख दिया तो 'फिर से नहीं डाटूँगा', इस तरह करो।

यह हुआ धर्मध्यान

प्रश्नकर्ता : यह जो 'प्रतिक्रमण, पाप का प्रायश्चित' है, वह ज़रा समझाइए।

दादाश्री : प्रतिक्रमण यानी क्या? दोष हुआ कि दोष को तुरंत शूट ऑन साइट कर दो। उसे प्रतिक्रमण कहते हैं। आप तो बारह महीने बाद करते हो न?

मुमुक्षु : मुझे प्रतिक्रमण करना खास आता नहीं है लेकिन भाव प्रतिक्रमण कर लेता हूँ।

दादाश्री : भाव प्रतिक्रमण में क्या करते हो?

मुमुक्षु : ऐसा लगे कि यह दोष हुआ है, तो फिर आत्मा की साक्षी में प्रायश्चित कर लेता हूँ।

दादाश्री : ऐसा? ऐसे कितनी बार होता है दिन में?

मुमुक्षु : रात को सोते वक्त करता हूँ, चार-पाँच बार होता है।

दादाश्री : इतना आपका धर्मध्यान में जाता है। मात्र इतनी सेकन्ड आपकी धर्मध्यान में जाती है। आपने जो कहा उस अनुसार करते हो तो धर्मध्यान में जाता है।

मुमुक्षु : पाप का प्रायश्चित कैसे करना चाहिए? मैं जिस तरह करता हूँ, क्या वह उचित है?

दादाश्री : वह चाहे किसी भी तरह से हो लेकिन कच्चा है। लेकिन फिर भी उससे थोड़ा धर्मध्यान होता है। आपकी भावना क्या है, वह देखा जाता है।

मुमुक्षु : लेकिन करना चाहिए या नहीं?

दादाश्री : अभी आप जो कर रहे हो, वह उचित है लेकिन हमारे सिखाने के बाद, हम जो नया सिखाएँ, वह नया सीखना। अभी आपका उचित है।

मुमुक्षु : कवि कलापी ने कहा है :

'हा, पस्तावो विपुल झरणुं स्वर्गथी उतर्युं छे.
पापी तेमां डूबकी दईने पुण्यशाली बने छे.'

('हा, पछतावा विपुल झरना स्वर्ग से उतरा है।
पापी उसमें डुबकी लगाकर पुण्यशाली बनता है।')

इसके बारे में आप क्या कहना चाहेंगे?

दादाश्री : वह तो इन स्थूल पापियों के लिए है। वे सब स्थूल पाप हुए हैं इसलिए उसका पछतावा करते हैं।

मुमुक्षु : उसमें आत्मा का *लक्ष* (जागृति) है क्या?

दादाश्री : नहीं, उसमें आत्मा का *लक्ष* नहीं रहता। इसमें व्यवहारिक *लक्ष* है, जो सरल होते हैं न, उन्हें यह सब पसंद नहीं आता इसलिए पछतावा करते हैं। जैसे हर एक धर्म वाले पछतावा करते हैं, वैसे ही आप भी पछतावा करते हो।

मुमुक्षु : व्यवहार शुद्धि होती है न?

दादाश्री : नहीं, वास्तव में तो प्रतिक्रमण होना चाहिए।

'नौ कलमें' द्वारा सर्वश्रेष्ठ प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : पाप दूर करने के लिए प्रायश्चित के अलावा दूसरा कोई उपाय है क्या?

दादाश्री : पाप दूर करने के लिए प्रायश्चित के अलावा दूसरा कोई उपाय नहीं है। यह सब जो पाप है, वह क्या है? यह पाप जो है न, हम किसे पाप कहते हैं? तो आप यह सब जो करते हो न, उसमें कोई हर्ज नहीं है। ये सब बैठे हैं। अभी किसी व्यक्ति को आपत्ति नहीं है और इनमें से यदि कोई एक व्यक्ति कहे कि 'आप इस तरह देर से क्यों आते हो?' तो जब वे हमें ऐसा कहें तो उसे अतिक्रमण करना कहेंगे। 'ऐसा क्यों बोल रहे हो जो लोगों को जो पसंद नहीं है?' उसे अतिक्रमण करना कहेंगे।

अतिक्रमण करते हैं, इसीलिए भगवान ने प्रतिक्रमण करने के लिए कहा है। अर्थात् कहते हैं कि पश्चाताप किस बात में करना है

कि 'लोगों को जो पसंद नहीं है, लोगों को दुःख हो जाता है', ऐसी बात के लिए पश्चाताप करना है, 'जो पसंद हो उस बात के लिए नहीं'।

यानी प्रायश्चित करना पड़ता है। आप करते हो?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : दादा भगवान के नाम से प्रतिक्रमण करते हो या नहीं करते?

प्रश्नकर्ता : वह जो पुस्तक दी थी न, उसमें कहे अनुसार करता हूँ। नौ कलमें करता हूँ।

दादाश्री : करते हो न? वह प्रतिक्रमण ही है। सब से बड़ा प्रतिक्रमण है, दादा भगवान की नौ कलमें रखी गई हैं न, वे पूरे जगत् के लिए कल्याणकारी प्रतिक्रमण है।

प्रश्नकर्ता : क्या यह बात सच है कि 'पश्चाताप के घड़े में चाहे जैसा भी पाप हो तो...

दादाश्री : हल्का हो जाता है, पश्चाताप के कारण।

प्रश्नकर्ता : क्या (पाप) पूर्ण रूप से जलकर खाक नहीं हो जाते?

दादाश्री : पूर्णतया जल भी जाते हैं। ऐसे कितने ही पाप तो जल भी जाते हैं और खत्म हो जाते हैं। पश्चाताप का साबुन ही ऐसा है कि ज़्यादातर कपड़ों पर काम करता है।

प्रश्नकर्ता : और उसमें भी (पश्चाताप) आपके समक्ष करे तो फिर क्या बचेगा?

दादाश्री : कल्याण हो जाता है। अर्थात् पश्चाताप के साबुन जैसा दुनिया में कोई साबुन नहीं है।

पछतावे से घटे दंड

प्रश्नकर्ता : पाप को निर्मूल करने के लिए तो उत्तम मार्ग

प्रायश्चित ही है। 'यह बहुत सुंदर बात है', ऐसा पुराण में संतपुरुषों ने कहा है। क्या खूनी आदमी खून करने के बाद पछतावा करे तो उसे माफी मिल सकती है?

दादाश्री : खूनी आदमी खून करने के बाद यदि खुश होता है तो उसका दंड जो बारह महीने का होने वाला था, वह तीन वर्ष का हो जाता है और खूनी आदमी खून करने के बाद यदि पछतावा करता है तो बारह महीने का जो दंड होने वाला था, वह छः महीने का हो जाता है। कोई भी गलत कार्य करने के बाद यदि खुश होते हो तो वह कार्य तीन गुना फल देता है और (गलत) कार्य करने के बाद यदि पछतावा करते हो कि 'गलत कार्य किया' तो दंड कम हो जाता है और अच्छा कार्य करने के बाद खुश होते हो तो सभी को अधिक लाभ होगा।

मंत्र, वे हैं वैज्ञानिक चीज़

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण करने से कदाचित नए पाप नहीं बंधेंगे लेकिन पुराने पाप तो भुगतने ही पड़ेंगे न?

दादाश्री : आपका ऐसा कहना उचित है कि 'प्रतिक्रमण से नए पाप नहीं बंधते हैं और पुराने पाप तो भुगत लेने पर ही छुटकारा है'। अब *भोगवटा* (सुख या दुःख का असर, भुगतना), वह घटता ज़रूर है, उसके लिए मैंने फिर रास्ता बताया है कि 'तीन मंत्र इकट्ठे बोलना, वह भी *भोगवटे* का फल कम कर देगा। किसी आदमी के सिर पर डेढ़ मन का वज़न हो और वह तंग आ चुका हो लेकिन उसे एकदम से यों कोई चीज़ दिखाई दे और दृष्टि वहाँ जाए तो वह अपना दुःख भूल जाता है, वज़न होने के बावजूद उसे दुःख कम लगता है। ऐसा ही इन त्रिमंत्रों का है, इन्हें बोलने से वह वज़न ही नहीं लगता। अर्थात् ये मंत्र, वे हेल्पिंग चीज़ हैं। आपने कभी त्रिमंत्र बोला था? एक ही दिन त्रिमंत्र बोला था? वह ज़रा ज़्यादा बोलेंगे न, तो सब हल्का हो जाएगा और यदि आपको भय लगता है, वह भी बंद हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : विज्ञान की दृष्टि से देखें तो इंसान यदि कोई पाप करता है या भूल करता है तो उसे उसकी सज़ा मिलनी चाहिए, फिर मंत्र से उस पाप का नाश कैसे हो सकता है?

दादाश्री : मंत्र क्या है कि इन पुरुषों की हम भक्ति करते हैं। किन पुरुषों की? वर्ल्ड के सर्वश्रेष्ठ पुरुषों की भक्ति करते हैं, उस समय भीतर बहुत ही शक्ति उत्पन्न होती है।

प्रश्नकर्ता : आपने उनकी बहुत भक्ति की, उनके बखान किए, उनके वाइब्रेशन लिए लेकिन पाप तो एक ओर ही रह गए न? पाप तो अलग ही रहा न?

दादाश्री : उनकी भक्ति करने से, उनकी कीर्तन-भक्ति करने से सर्व पाप भस्मीभूत हो जाते हैं। आपको पाप नष्ट करने हैं? मैं एक घंटे में कर दूँगा, 'विदिन वन अवर'।

पाप चाकू से काटना नहीं है। उसकी स्लाइस नहीं बनानी है, वह तो भस्मीभूत हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : पादरी भी कहते हैं कि 'हमारे समक्ष कन्फेशन कर जाओ' तो सब पाप नष्ट हो जाते हैं।

दादाश्री : कन्फेस करना वह क्या आसान है? आपसे कन्फेस हो पाएगा क्या? वह तो अंधेरी रात में, अंधेरे में करता है, वह व्यक्ति उजाले में मुँह नहीं दिखाता। कहेगा कि 'रात को अंधेरे में कन्फेसन करूँगा'।

और मेरे समक्ष तो चालीस हज़ार लोगों ने अपना सब कन्फेशन किया है, कई लड़कियों ने भी! एक-एक चीज़ कन्फेस की हैं! ऐसे लिखकर भी दिया है। खुले आम कन्फेस करे तो फिर पाप नाश हो ही जाता है न! कन्फेस करना आसान नहीं है।

प्रश्नकर्ता : यानी यह जो प्रतिक्रमण करते हैं, वह और कन्फेशन, दोनों एक समान ही हुए न फिर?

दादाश्री : नहीं, वह एक समान नहीं हुआ। प्रतिक्रमण तो, जब अतिक्रमण हो जाए तब फिर बार-बार धोना और यदि फिर से दाग़ पड़े तो फिर से धोना है और पाप कन्फेस करने, ज़ाहिर करने हैं, दोनों चीज़ें अलग हैं।

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण और पश्चाताप में क्या फर्क है?

दादाश्री : पश्चाताप, वह सामान्य रूप से खेद करना है। क्रिश्चियन रविवार को चर्च में पश्चाताप करते हैं। जो पाप किए हैं, उनका सामूहिक पश्चाताप करते हैं। और प्रतिक्रमण तो कैसा है कि 'जिसने गोली मारी, जिसने अतिक्रमण किया, वह प्रतिक्रमण करे, उसी क्षण! 'शूट ऑन साइट' (देखते ही गोली मारना) उसे धो डाले।

प्रश्नकर्ता : यह जो कहते हैं, आत्मा की निराई करना, वह क्या है?

दादाश्री : अर्थात् खुद की भूल एक्सेप्ट करना, माफी माँगना, पछतावा करना, उसे 'निराई करना' कहते हैं। अब मूल आत्मा की निराई नहीं करनी है, प्रतिष्ठित आत्मा की निराई करनी है।

चतुर्गति के दोष आंकड़े, प्रतिक्रमण से छूटे

बिना प्रतिक्रमण के मोक्ष का मार्ग ही नहीं है। जहाँ प्रतिक्रमण नहीं है, वह मार्ग ही गलत है। जैन यदि यथार्थ प्रतिक्रमण करें और उससे कषाय की गांठ जो बंध गई थी, उसे ढीली करें तो वह अगले जन्म में जल्दी निकल जाएगी। हम जैन किसे कहते हैं, 'जो क्रोध-मान-माया-लोभ होते ही उनका तुरंत प्रतिक्रमण कर ले, भगवान की आज्ञा का पालन करे, उसे'। तीर्थंकर यह रखकर गए हैं। क्योंकि मनुष्य जाति दोष किए बिना रहती नहीं (आत्मज्ञानी के सिवाय)। देव लोग दोष करते हैं, मनुष्य जाति दोष करती हैं, चतुर्गति दोष करती हैं। दोषित हुए बगैर रहते नहीं। उनके दोष तोड़ने के लिए उपाय क्या है? तो, 'आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान'।

जगत् किस आधार पर खड़ा है? अतिक्रमण दोष के कारण यह जगत् खड़ा है। हर रोज़ प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान करे, वे साधु, उपाध्याय, आचार्य कहलाते हैं। जगत् किसी को मोक्ष में जाने दे, ऐसा नहीं है। सब तरह से पकड़ ही लेता है। उसके हम प्रतिक्रमण करें तो पकड़ छूट जाती है। इसलिए महावीर भगवान ने आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान, ये तीन चीज़ें एक ही शब्द में दी हैं। दूसरा कोई रास्ता ही नहीं है। अब खुद प्रतिक्रमण कब कर पाता है? जब खुद को जागृति हो तब! और 'ज्ञानी पुरुष' से ज्ञान प्राप्त होने पर वह जागृति उत्पन्न होती है।

आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान महावीर भगवान के सिद्धांत का सार है और अक्रम में 'ज्ञानी पुरुष', वही सार है, इतना ही समझ लेना है। आज्ञा, वही धर्म और आज्ञा, वही तप है लेकिन मनुष्य दखलंदाज़ी किए बगैर रहते नहीं न! अनादि की कुटेव (बुरी आदत) पड़ गई है।

❖❖❖❖❖

[3]

नहीं हैं 'ऐसे' प्रतिक्रमण महावीर के

वे हैं, धर्म का सार

यदि यथार्थ प्रतिक्रमण हों तब तो पूरे जैन शास्त्रों का सार ही यह प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान है।

मुमुक्षु : यह बहुत साइन्टिफिक (वैज्ञानिक) चीज़ है।

दादाश्री : हाँ, बहुत साइन्टिफिक चीज़ है और प्रतिक्रमण तो सभी धर्मों में है। लेकिन साइन्टिफिक जो है, वह है प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान! यह साइन्टिफिक चीज़ है, वैज्ञानिक पद्धति है और इससे क्रोध-मान-माया-लोभ कम हो जाते हैं। क्रोध-मान-माया-लोभ खुद के ही कब्जे में हैं लेकिन लोग कम नहीं करना चाहते।

हर एक जगह पर पछतावे से शुरुआत होती है। अंग्रेज़ों की शुरुआत पछतावे से होती है। मुस्लिम भी पछतावा करते हैं। लोग क्या कहते हैं कि 'यह जो कुछ हमने किया, उन सब का पछतावा करते हैं, पश्चाताप करते हैं और अपने यहाँ पर प्रतिक्रमण के रूप में दिया, इसमें हम क्या कहते हैं कि 'अतिक्रमण हुआ इसलिए प्रतिक्रमण करो'। अतिक्रमण अर्थात् व्यवहार में जितना होना चाहिए उससे कुछ ज़्यादा हो गया इसलिए उसका प्रतिक्रमण करो।

मुमुक्षु : कभी-कभी जो दखलंदाज़ी हो जाती है या सेन्सिटिव (संवेदनशील) हो जाते हैं, उसे रोकने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : प्रतिक्रमण व पछतावा करना है और भावना करनी चाहिए कि 'ऐसा नहीं होना चाहिए और ऐसा होना चाहिए'। अपनी उस पुस्तक की 'नौ कलमें' जिन्हें आ गई, उनका कल्याण हो गया!

'वह' तो चाहिए नकद ही

वर्ना फिर भगवान ने तो कहा है कि 'ऐसे प्रतिक्रमण करते रहना है'।

मुमुक्षु : अनादिकाल से प्रतिक्रमण तो करते आए हैं फिर भी छुटकारा तो नहीं हुआ है?

दादाश्री : प्रतिक्रमण, तो यथार्थ प्रतिक्रमण किए नहीं हैं। यदि यथार्थ प्रत्याख्यान और यथार्थ प्रतिक्रमण करे तो उसका हल आ जाता है। प्रतिक्रमण 'शूट ऑन साइट' होने चाहिए। अब यदि मुझसे एक शब्द ज़रा गलत निकल गया तो मुझे अंदर प्रतिक्रमण हो ही जाना चाहिए। तुरंत ही ऑन द मोमेन्ट। इसमें उधार नहीं चलता। इसे तो पेन्डिंग रखना ही नहीं चाहिए। यह प्रतिक्रमण पेन्डिंग रखना नहीं चाहिए। यानी 'शूट ऑन साइट' प्रतिक्रमण होने चाहिए। आप कैसा प्रतिक्रमण करते हो? नकद, शूट ऑन साइट या पेन्डिंग रखते हो?

मुमुक्षु : नकद प्रतिक्रमण कैसे संयोगों के लिए किस तरह करना है?

दादाश्री : एक भी नकद प्रतिक्रमण किया था?

मुमुक्षु : नहीं, अभी तक नहीं किया। हर रोज़ मैं प्रतिक्रमण पढ़ता हूँ।

बगैर पछतावे के प्रतिक्रमण

नवकार मंत्र बोलते हो?

मुमुक्षु : हाँ, नवकार मंत्र बोलता हूँ, सब स्मरण करता हूँ, सब करता हूँ।

दादाश्री : फिर भी चिंता होती है?

मुमुक्षु : रोज़ की चार-पाँच सामायिक करता हूँ।

दादाश्री : ओहोहो! चार-पाँच सामायिक करते हो?

मुमुक्षु : और सुबह और शाम दोनों समय प्रतिक्रमण करता हूँ।

दादाश्री : प्रतिक्रमण यानी पछतावा करना है, तो पछतावा किस चीज़ का करते हो?

मुमुक्षु : पछतावा नहीं कर पाते। क्रियाएँ करते रहते हैं सारी।

दादाश्री : प्रतिक्रमण यानी वापस लौटना। जो भी पाप किए हों, क्रोध किए हों, उन पर पछतावा करना, उसे प्रतिक्रमण कहते हैं।

मुमुक्षु : जो कुछ अंदर लिखा होता है, हम वह सब सूत्र रट लेते हैं।

दादाश्री : वह रटकर किस काम का? वह तो रेडियो भी रट लेता है न? ऐसे तो हर रोज़ पूरे दिन रेडियो भी बोलता रहता है।

'उसे' सच्चा नहीं कहते

मुमुक्षु : ये सब प्रवृत्तियाँ...

दादाश्री : फिर किसी को डंडे किसलिए मारते हो? मूल गुनहगार को नहीं मारते और तीसरे को मारते हो। जो भी हाथ में आ जाए उसे मारते हो। मूल गुनहगार को पकड़ो न?

मुमुक्षु : मूल गुनहगार बाहर तो है ही नहीं न? खुद ही है न?

दादाश्री : यह प्रतिक्रमण ही नहीं कहलाते। इस प्रतिक्रमण को तो क्रूड फोर्म (कच्चा, अपक्व) कहते हैं और फिर बारह महीने का इकट्ठा करके कहते हैं कि 'हमने प्रतिक्रमण किया, वह तो फिर और ज़्यादा क्रूड!'

प्रतिक्रमण किसे कहते हैं? बारह महीने यदि प्रतिक्रमण करे तो

सभी दोष कम हो जाते हैं। यह तो सारी ज़िंदगी (प्रतिक्रमण) करते-करते साधु-सन्यासी अस्सी साल के, साठ साल के, सत्तर साल के हो गए लेकिन एक भी दोष कम नहीं हुए बल्कि बढ़ गए।

तोते के जैसे प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : सांप्रदायिक प्रतिक्रमण, सामायिक में तथ्य कितना?

दादाश्री : कुछ भी नहीं। मागधी भाषा में प्रतिक्रमण करें तो जैसे तोता 'राम-राम' बोलता है, वैसा है। तोता 'राम-राम' बोलता है तो क्या वह मोक्ष जाएगा? अर्थात् जो मागधी भाषा में प्रतिक्रमण करते हैं, उनकी तोते जैसी दशा हो गई है!

प्रश्नकर्ता : सांप्रदायिक में तो करना पड़ता है न, दादा?

दादाश्री : नहीं, नहीं! वे उल्टे रास्ते चलते हैं लेकिन हम क्यों उल्टे रास्ते चले? हम क्या तोते हैं? हम मनुष्य हैं। जो बिना समझे कुछ भी करते हैं, वे सब तोते कहलाते हैं। मैं यहाँ आपसे क्या कहना चाहता हूँ कि समझकर गाना मेरे साथ। यह (मनुष्य) जन्म समझने के लिए है। महाराज मागधी भाषा में गाते ही रहते हैं। उसमें महाराज को खुद को भी समझ में नहीं आता और वे (लोग) भी नहीं समझ पाते हैं। सभी 'तोते के तोते! राम, राम! आयाराम! गयाराम!'

वह प्रतिक्रमण करते हैं लेकिन उनके प्रतिक्रमण कैसे होते हैं कि 'करने वाला जानता नहीं है, कराने वाला जानता नहीं है कि यह क्या है! आपने किए थे क्या? किए थे? वह समझ में नहीं आता, नहीं?

प्रतिक्रमण किसे कहते हैं कि जिसे करने से दोष कम हो जाते हैं। जिसे करने से दोष बढ़ते हैं, उसे प्रतिक्रमण कैसे कह सकते हैं? अर्थात् भगवान ने ऐसा (प्रतिक्रमण) नहीं कहा था। भगवान कहते हैं कि 'जो भाषा समझ में आए उस भाषा में प्रतिक्रमण करो'। अपनी-अपनी भाषा में प्रतिक्रमण करना है! वर्ना लोग प्रतिक्रमण को पाएँगे नहीं। जबकि यह मागधी भाषा में रखा हुआ है। अब ये जो गुजराती

भी नहीं समझते, वे मागधी में प्रतिक्रमण करेंगे तो क्या फायदा होगा? और साधु-आचार्य समझते नहीं हैं, उनमें भी कोई दोष कम नहीं हुए हैं। यानी इसमें ऐसी परिस्थिति हो जाती है।

भगवान ने सिर्फ नवकार मंत्र ही मागधी भाषा में बोलने के लिए कहा था और वह भी समझकर बोलना। क्योंकि 'भगवान के शब्द हैं', सिर्फ उतना भले उसका अर्थ समझ लिया। बाकी, प्रतिक्रमण में तो पहले उसका अर्थ समझना ही पड़ता है कि 'यह मैं प्रतिक्रमण कर रहा हूँ, लेकिन किसका? मेरा चंदूभाई ने अपमान किया या फिर मैंने किसी का अपमान किया, उसका मैं प्रतिक्रमण कर रहा हूँ'।

प्रतिक्रमण अर्थात् कषायों को खत्म कर देना है।

यह तो धर्म है या अधर्म?

प्रश्नकर्ता : वैसे क्रमिक मार्ग में अहंकार का शुद्धिकरण कैसे करते हैं?

दादाश्री : वह तो साबुन से मैल निकालते हैं, इस तरह मैल से मैल को निकालते हैं। यानी कि प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान दोनों का आश्रय लेना पड़ता है। निरंतर पूरे दिन आश्रय लेना पड़ता है। जब निरंतर दोनों का आश्रय लेते हैं, तब अहंकार का शुद्धिकरण हो पाता है। तब तक शुद्धिकरण नहीं हो पाता।

इसीलिए तो क्रोध-मान-माया-लोभ बढ़ गए हैं। बीच के बाईस तीर्थंकरों के शिष्य तो ऐसे विचक्षण थे कि प्रतिक्षण प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान करते थे। इन महावीर भगवान के शिष्य जड़ और कुटिल हैं। जो बारह महीने बाद भी प्रतिक्रमण सही ढंग से नहीं करते हैं। बारह महीने बाद भी 'मिच्छामि दोकडो' बोल आते हैं।

क्या इसे धर्म कहेंगे? इसे धर्म कहोगे तो अधर्म किसे कहोगे? यह जो अधर्म को धर्म कह रहे हो न, उसी को धर्म समझते हैं। औरों की भूल ढूँढकर देते हैं कि आप सबकुछ गलत कर रहे हो। खुद के

साथ कोई कपट करे न, तो कहेंगे कि 'आप अधर्म कर रहे हो'। लुच्चाई करे तो कहेंगे कि, 'आप अधर्म कर रहे हो'। तब हमें कहना है कि, 'तू लिख कि इसे धर्म कहते हैं'। लेकिन नहीं, भान ही नहीं है न! बाकी, अंदर आत्मा है इसलिए दूसरों की भूल का तुरंत पता चल जाता है। मैं भी अगर उपाश्रय में बैठा होऊँ और हम सब गए हों तब महाराज मेरे चार-पाँच दोष तो देख ही लेंगे कि 'सिर पर बाल रखने की क्या ज़रूरत है? बाल में कंघा करने की क्या ज़रूरत है? हाथ में अँगूठी क्यों पहनते हैं? यह माला क्यों पहनते हैं?' सब भूलें ढूँढ निकालेंगे क्योंकि दृष्टि ही बिगड़ गई है। करुणा करने जैसा है। वह तो छेड़ने पर पता चलेगा। छेड़ने पर अपने महात्मा ज़रा डिस्टर्ब हो जाते हैं लेकिन बाद में फिर ज्ञान उन्हें ठिकाने ले आता है और वे (ज्ञान नहीं लिया है वे लोग) ठिकाने नहीं आते। उसे मुँह पर बोलने से डर लगता हो तो अंदर से मारता है। यानी जब छेड़ा जाए, तब पता चलता है।

वंक जड़ाय पच्छिमा

शास्त्रकारों ने लिखा है कि 'भगवान महावीर के शिष्य कुटिल और जड़ कहलाते हैं और ऋषभदेव के शिष्य भोले और जड़' उतना ही फर्क है। उनमें एक-दो अपवाद नहीं, सभी एक सरीखे। इन दोनों तीर्थंकरों के शिष्य प्रतिक्रमण को समझते नहीं थे। इसलिए भगवान ने उन्हें प्रतिक्रमण करने के लिए कहा था। यह शास्त्र में लिखी हुई बात है। यह कोई ऐसी-वैसी गप्प नहीं है।

पहले तो यदि तीर्थंकर शिष्य से कहते थे कि नमस्कार करते रहो, तो सुबह तक वे करते ही रहते थे। वे हर एक पाँच-पाँच हज़ार फुट, दस-दस हज़ार फुट ऊँचे होते थे और नाक तो दो सौ, दो सौ फुट लंबी होती थी। जैसे कहा गया हो उस अनुसार नमस्कार करते ही रहते थे। सुबह से शाम तक करते ही रहते थे और यदि भगवान बंद करने के लिए कहना भूल जाते, तो वे रुकते नहीं थे।

यदि महावीर भगवान अपने शिष्यों से कहकर जाते कि 'एक

घंटा सामायिक करना तो भगवान के बाहर जाते ही तीन मिनट बाद वे रेतघड़ी देखते रहते!

भगवान महावीर ने पहचान लिया था कि मेरे पीछे जो मेरे फॉलोअर्स हैं, वे सब लोग कैसे हैं? विचक्षण नहीं हैं, बीच के बाईस तीर्थंकरों के शिष्य विचक्षण जीव थे। विचक्षण अर्थात् उसका गुजराती अर्थ क्या है?

प्रश्नकर्ता : बहुत चालाक, सियार जैसे।

दादाश्री : अरे, नहीं! 'सियार जैसा' ऐसा गलत अर्थ किया? विचक्षण अर्थात् जो प्रतिक्षण विचार करते हैं कि 'यह क्या हो गया? यह क्या हो गया? दोष हुआ कि तुरंत ही प्रतिक्रमण करते हैं'। उन्हें प्रतिक्रमण करने के लिए कहना नहीं पड़ता। वह तो अपने आप ही प्रतिक्रमण हो जाता है। जिस क्षण दोष हुआ कि तुरंत ही प्रतिक्रमण करते हैं। विचक्षण अर्थात् तुरंत समझ जाते हैं कि इनके साथ ऐसा दोष हो गया। इनसे बात करते-करते यह शब्द ज़रा भारी बोला गया और इसलिए तुरंत ही प्रतिक्रमण करते हैं। अभी अगर आपका और मेरा झगड़ा हुआ, आपके लिए मुझे कुछ खराब विचार आया तो उसी क्षण वहीं के वहीं तुरंत प्रतिक्रमण, ऑन द मोमेन्ट उसका प्रतिक्रमण कर देते हैं यानी शूट ऑन साइट प्रतिक्रमण करें तो वह दोष खत्म हो जाता है, वर्ना दोष खत्म हो सकते हैं क्या? हम बारह महीने बाद इकट्ठे करके यहाँ पर जब प्रतिक्रमण करते हैं तब क्या उस वक्त एक भी दोष याद आता है?

यानी बीच के बाईस तीर्थंकरों के शिष्य बहुत ही समझदार थे। कुछ कम-ज़्यादा बुरा बोल दिया तो तुरंत ऑन द मोमेन्ट प्रतिक्रमण हो ही जाता है। सिर्फ ये ही उधारी कहलाएँगे। जब 'पर्युषण आएगा न, तब 'पड़कमणुं' कर आऊँगा' और फिर वहाँ पर आकर मिच्छामि दुक्कडम् करता है।

अब इसका अर्थ कौन समझेगा? 'पड़कमणुं' का ही अर्थ समझते नहीं न! अब इसका क्या करना? एक 76 साल के बुज़ुर्ग थे। हम दो-चार लोग बैठे थे और उन लोगों को मुझे दिखाना था। मैंने कहा,

'ये लोग पड़कमणुं समझते नहीं और पड़कमणुं करते हैं'। मैंने उन बुज़ुर्ग को बुलाया। मैंने कहा, 'सेठ, सेठ, यहाँ आइए'। उन्होंने कहा 'क्या कहना है?' मैंने कहा, 'कहाँ गए थे?' तो कहते हैं कि 'पड़कमणुं कर आया'। इसलिए मैंने कहा, 'पड़कमणुं यानी क्या?' तब कहते हैं, 'वह तो मैं चालीस साल से कर रहा हूँ, लेकिन मुझे वह पता नहीं है। मैं कल महाराज से पूछकर आऊँगा'। तब 'धन्य भाग्य मेरे! वे महावीर के धन्य या किसके धन्य है!' यह चल रहा है, वह भी धन्य भाग्य है! 'महाराज से पूछ आऊँगा', अब इसे कैसे पहुँच पाएँगे?

आप पड़कमणुं करते हो या नहीं करते?

मुमुक्षु : हाँ, बारह महीने में एक ही करता हूँ। उस दिन पूरे साल के लिए माफी माँग लेते हैं।

दादाश्री : बस, फिर खत्म हो गया सब, उस दिन?

चालीस साल से कर रहे हो! पूछना चाहिए न? हम जो करते हैं, वह हमें पूछना नहीं चाहिए कि भाई, यह क्या है? किसलिए है, ऐसा पूछना चाहिए न? आपको कौन डाँट लगाएगा? ये लोग जब साल में एक बार प्रतिक्रमण करते हैं, तब नए कपड़े पहनकर जाते हैं। ये प्रतिक्रमण करने जाते हैं या शादी में? प्रतिक्रमण करना यानी कितना सारा पछतावा करना है! वहाँ नए कपड़े किसलिए पहनने हैं? वहाँ क्या शादी के लिए जाना है? और वह भी रायशी और देवशी। यदि सुबह का खाया हुआ, शाम तक याद नहीं रहता, तो प्रतिक्रमण कैसे करेंगे?

वीतराग धर्म किसे कहते हैं कि 'जिसमें रोज़ पाँच सौ-पाँच सौ प्रतिक्रमण करते हैं'। जैन धर्म तो सब जगह है लेकिन वीतराग धर्म नहीं है। बारह महीने में एक बार प्रतिक्रमण करते हैं, उसे जैन कैसे कह सकते हैं? फिर भी संवत्सरी प्रतिक्रमण करो तो उससे भी हर्ज नहीं है।

मिच्छामि दुक्कडम्

प्रश्नकर्ता : 'मिच्छामि दुक्कडम्' यानी क्या?

दादाश्री : 'मिच्छामि दुक्कडम्', वह तो अर्ध मागधी भाषा का शब्द है। 'मिच्छामि दुक्कडम्' अर्थात् क्या कहना चाहते हैं कि 'मिथ्या मैं दुष्कृतम्', ऐसा कहना चाहते हैं कि 'मुझसे जो दुष्कृत हुए हैं, वे मिथ्या हो जाओ'।

लेकिन उससे कुछ नहीं होता, आपको प्रतिक्रमण तो करना पड़ता है। समझे बगैर 'मिच्छामि दुक्कडम्' करते रहते हैं तो सब व्यर्थ गया! मेहनत सब बेकार गई। 'मिच्छामि दुक्कडम्' यानी जितने दुष्कृत हुए हैं, वे सब प्रकार के दुष्कृत मिथ्या हो जाओ।

प्रश्नकर्ता : यदि ऐसे ही कोई काम करते हैं तो उसके प्रतिक्रमण करने की ज़रूरत है?

दादाश्री : नहीं! कोई भी काम करते हुए घबराने की ज़रूरत नहीं है, सभी बात का प्रतिक्रमण है, सिर्फ 'दुष्कृत' का नहीं है इसलिए घबराने का कोई कारण नहीं है। दुष्कृत किसे कहते हैं कि 'जिसमें प्रत्यक्ष हिंसा का व्यापार होता है, उसे दुष्कृत कहते हैं'। ऐसे अनाज-किराना का धंधा हो उसमें जंतु हो जाते हैं, वह जैनों को शोभा नहीं देता। अगर फिर भी अनिवार्य रूप से करना पड़ता है तो भी पश्चाताप तो करना ही चाहिए न, कि 'हे भगवान! ऐसा मेरे हिस्से क्यों आया!' खुश तो होना ही नहीं चाहिए न? अभिप्राय तो भिन्न होना ही चाहिए न हमारा?

ज्ञानी समझाए वीतराग धर्म

अब जहाँ चुपड़ने की (दवाई) पी गए हैं और फिर कहते हैं कि 'डॉक्टर बुरा है, डॉक्टर ने ऐसा किया, उन्होंने दवाई ठीक नहीं दी। इसलिए मेरे लड़के को, बेटे को ठीक नहीं हुआ। अरे! चुपड़ने की पी गए, फिर कैसे मिटेगा? यदि चुपड़ने की पी जाएगा तो मर जाएगा न? चुपड़ने की दवाई तो पॉइज़न होती है न? वैसे ही ये चुपड़ने की (दवाई) पी गए हैं और जैन धर्म को बदनाम करते हैं।

कहाँ वीतराग मार्ग! और आज उसके कितने खंड हो गए हैं। जो अक्लमंद पैदा हुआ, वह उसे अलग लेकर बैठ गया। अरे! वैसे

यह अलग लेकर बैठेंगे तो शायद आपको बाप जी, बाप जी करने वाले मिल जाएँगे लेकिन आपने अलग किया तो फिर उसकी ज़िम्मेदारी किसके सिर पर है? यह जो अलग स्थापित किया उसकी!!!

यह चूल्हा क्यों अलग स्थापित किया? यदि रसोई एक चूल्हे की थी तो फिर अलग चूल्हा क्यों स्थापित किया? सभी अहंकारी हमेशा विभाजन ही करते हैं।

अपने यहाँ भी इन दादा की जो वंशावली है न, दो-पाँच पीढ़ी हो जाएँगी न, तो वे भी भिन्न-भिन्न प्रकार के विभाजन कर देंगे। 'रिविज़निस्ट' हो जाएँगे। इसलिए मैंने अभी चेतावनी दे दी है। मैंने कहा, 'बाद में 'रिविज़निस्ट' मत बन जाना, क्या! यह साइन्स है, जिंदा रहने देना। यह काम निकाल देगा'।

स्वयं भगवान महावीर ही कहकर गए हैं। हमारे सब शिष्य वक्र और जड़ होंगे क्योंकि ऐसा नियम ही है। सिर्फ इस चौबीसी का नहीं, सभी चौबीसियों का नियम ऐसा ही है।

इसमें जैन धर्म का क्या दोष है? क्योंकि यह कालचक्र ही ऐसा है। इस कालचक्र में ऐसा ही रहता है। ज्ञानी पुरुष तो कभी कभार ही होते हैं। हर एक पाँचवें आरे में होते ही हैं। वर्ना इस जगत् के अंतिम तीर्थंकर के शासन का क्या होगा? जंगल हो जाएगा। यानी कोई न कोई ऐसी एक पुष्टि रहती है। वह रहती है न, इसलिए चलता रहता है। शासन दीप्यमान होगा। अभी बहुत अच्छा दीप्यमान होगा।

यह शासन हमारा नहीं है। हम तो शासन के श्रृंगार कहलाते हैं। महावीर शासन के श्रृंगार! हं! हमें उस शासन का क्या करना? यह पीड़ा हम क्यों मोल ले? यह तो भगवान महावीर का शासन कहलाता है। ऐसा तीर्थंकर को शोभनीय है, हमें शोभनीय नहीं है। उसमें हम तो बीच में पुष्टि देने वाले हैं।

यह सिर्फ हमारा ज्ञान, यह हूबहू वही विज्ञान है। लेकिन यह गली-कूचों वाला है। लोग अभी गली-कूचों में घुस गए हैं और सिर्फ

ऐसी आड़ी गली में नहीं, लेकिन आड़ी में फिर सीधी और सीधी में फिर तिरछी। दुबारा फिर मिलता ही नहीं। अब वहाँ पर ज्ञान पहुँचाना यानी बहुत सरल नहीं है।

यह भगवान का ज्ञान, यह कितना स्ट्रेट फॉरवर्ड! यह स्ट्रेट लाइन और वह स्ट्रेट लाइन। नोर्थ, नोर्थ-वेस्ट, साउथ-वेस्ट, ऐसा सबकुछ लेकिन एक्ज़ेक्ट फिगर वाला। और अभी तो कैसा है कि गली में गली और उसमें गली और गोल चक्कर लगाकर फिर वापस उधर ही आ जाते हैं। इसलिए ऐसा अक्रमज्ञान आया।

अक्रम अर्थात् क्रम ऐसा कुछ भी नहीं। कुछ भी करना नहीं है। ज्ञानी पुरुष की हाज़िरी में सर्व पाप भस्मीभूत कर सकते हैं, इतना पावर होता है, उनमें इतनी शक्ति होती है, अनेक तरह के पावर होते हैं, फिर भी खुद को शासन के मालिक नहीं बनना है। क्यों बनें मालिक? मालिक को तो दुःख रहता है। तीर्थंकर को छोड़कर और कोई मालिक नहीं बन सकता। तीर्थंकर को मालिकीपन नहीं रहता। तीर्थंकर तो स्वभाव से मालिक हैं। तीर्थंकर! ऐसा स्वभाव है। हमें इसका क्या करना है? हमारा ऐसा निमित्त है। वह पूरा करके हम चले जाएँगे।

बीच के बाईस तीर्थंकरों के समय जो जागृति थी, ऐसा यदि बर्ताव में आ जाए तो भगवान कहलाते हैं। क्योंकि वास्तव में चंदूलाल से आर्तध्यान-रौद्रध्यान हो जाता है लेकिन वे उसका प्रतिक्रमण करते हैं इसलिए ऐसा कह सकते हैं कि वे वापस धर्मध्यान में आ गए।

जिनका सर्वस्व प्रकार से ऐसा नकद प्रतिक्रमण हो जाता है, वहाँ से भगवान पद ही माना जाता है। जिन्हें रौद्रध्यान और आर्तध्यान ज़्यादा नहीं होते हैं, जिनके बहीखाते में लिखा नहीं जाता है। यदि हो जाए तो भी हर्ज नहीं है लेकिन प्रतिक्रमण करेंगे न, तो बहीखाते में नहीं लिखा जाएगा। ऐसा 'पद' हमने दिया है। 'भगवान पद' आपके हाथ में दिया है। अब आपको जैसा उपयोग करना आता है, वैसे उपयोग करना। हम तो देकर छूट गए।

कारुण्यभाव से निकले हुए शब्द

बाईस तीर्थंकरों के जो शिष्य थे, वे सब शूट ऑन साइट वाले थे। इतने अधिक जागृत थे कि दोष होते ही तुरंत पता चल जाता था। अब चौबीसवें तीर्थंकर महावीर के और ऋषभदेव भगवान के, दोनों के शिष्य, वे अलग तरह के, ऋषभदेव के जड़ और सरल और महावीर के जड़ और कुटिल। 'वंक जड़ाय पच्छिमा।' अब ऐसा भगवान महावीर ने कहा ही है न, अब यदि हम साधुओं से पूछें कि 'भगवान ने कहा है?' तब वे कहते हैं, 'हाँ, कहा ही है न!' वे खुद पर लागू नहीं करते। ऐसा कहते हैं कि 'लोग ऐसे हो गए हैं'। लेकिन सब ऐसा ही कहते हैं न! इसलिए उसके भाग में, किसी के भाग में आया ही नहीं न! अर्थात् फिर जा वापस महावीर के घर, वापस जहाँ था वहीं के वहीं!

'हम' ऐसा बोलते हैं, लेकिन हमने तो बोलने से पहले ही प्रतिक्रमण कर लिए होते हैं, आप ऐसा मत कहना। हम ऐसा तीक्ष्ण बोलते हैं, भूल निकालते हैं फिर भी हम निर्दोष देखते हैं। लेकिन जगत् को समझाना तो पड़ेगा न? यथार्थ, सही बात तो समझानी पड़ेगी न?

लेकिन इतना सही है कि बीच के तीर्थंकरों के समय में लोग प्रतिक्रमण में बहुत समझदार थे। इसलिए वे बहुत उल्टे नहीं गिर जाते थे। उनकी प्रगति अच्छी होती थी। ऐसा बहुत अच्छा था।

प्रश्नकर्ता : वे लोग, जैसा हमारा प्रतिक्रमण है, 'शूट ऑन साइट' वाला, क्या ऐसा प्रतिक्रमण करते थे वे लोग? उसे ज़रा स्पष्ट कीजिए न!

दादाश्री : हाँ, ऐसा शूट ऑन साइट वाला और वह कहीं मोक्ष का मार्ग नहीं था। वह संसार में शूट ऑन साइट हुआ न, इसलिए सद्गति रहती है, फर्स्ट क्लास रहती है, दु:ख नहीं आता, बाधाएँ नहीं आती। बैर नहीं बंधते। अर्थात् वह संसारी सुख का मार्ग था और जिन्हें मोक्ष जाना हो, उन्हें मोक्षमार्ग में यह उपयोगी रहता था। दोनों तरह से उपयोगी रहता था।

और यह तो देखो न, ऐसे प्रतिक्रमण, 'पड़कमणुं, पड़कमणुं'

बोलते हैं, ऐसा महाराज बोलते हैं और लोग सुनते हैं फिर लोग भीतर बोलते हैं। हम पूछें कि 'पड़कमणां' यानी क्या? तो वे बताते ज़रूर हैं कि 'प्रतिक्रमण करना', लेकिन एक भी दोष धुलता नहीं है। कपड़े में साबुन घिसने के बाद भी, स्वच्छ पानी उपयोग में लेने के बाद भी, यदि दाग़ जाए नहीं, तो क्या साबुन गलत था या धोने वाला गलत था या फिर पानी गलत था? एक भी दोष कम नहीं हुआ। किसलिए दोष कम नहीं हुआ? रोज़ इतने सारे प्रतिक्रमण करते हैं, ऐसा तो आप जानते हो। आप महाराज साहब के पास गए थे न, प्रतिक्रमण करने के लिए?

प्रश्नकर्ता : हाँ, गया था।

दादाश्री : 'पड़कमणुं' किया फिर भी क्यों एक भी दोष धुला नहीं? क्योंकि 'प्रतिक्रमण' मागधी भाषा में बोलते हैं, वह तोता बोलता है न, 'आयाराम, गयाराम, मोक्ष' ऐसा सब बोलते हैं तो भी उससे हमें क्या? तोते की तरह नाम बोलना, यानी समझे बगैर ऐसे प्रतिक्रमण किसका कर रहे हैं? समझेंगे तो धुलेगा। इसलिए मैंने महाराज से कहा कि 'गुजराती में प्रतिक्रमण कर दो'। समझेंगे तो मन में ऐसा विचार आएगा कि 'यह प्रतिक्रमण कर रहे हैं'। लेकिन हम कोई यथार्थ प्रतिक्रमण नहीं करते हैं। फल तो आना चाहिए न?

प्राप्ति, हेतु अनुसार

प्रश्नकर्ता : आपने कहा न, कि जो बाईस तीर्थंकर थे, उस समय (लोग) 'शूट ऑन साइट' प्रतिक्रमण करते थे, सभी लोग विचक्षण थे और वे संसार के सुख और मोक्ष, दोनों चीज़ के लिए प्रतिक्रमण करते थे।

दादाश्री : नहीं, ऐसे सुख के लिए नहीं, किसी का मोक्ष का हेतु, किसी का यह हेतु, किसी का सुख का हेतु। इस प्रतिक्रमण से उनका जो हेतु था, उस अनुसार उनको लाभ मिल जाता था।

प्रश्नकर्ता : लेकिन मैं ऐसा पूछ रहा हूँ कि 'प्रतिक्रमण में तो मोक्ष का ही रास्ता है न? सुख का रास्ता प्रतिक्रमण में कैसे आएगा?

दादाश्री : प्रतिक्रमण अर्थात् 'यह जो गलत हुआ, उसके लिए क्षमा चाहता हूँ' यानी गलत मिट गया और पुण्य बंधा। पुण्य बंधा इसलिए पुण्य भोगने जाना पड़ता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह तो मोक्षमार्ग में भी ऐसा ही हुआ न, वह भी प्रतिक्रमण हुआ और यह भी प्रतिक्रमण?

दादाश्री : सब के हेतु अलग होते हैं। हर एक के हेतु और ध्येय अलग होते हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन प्रतिक्रमण तो दोष का है। कोई भी दोष हो गया तो प्रतिक्रमण करते हैं, अब दोष खत्म होना यानी मोक्षमार्ग पर जाना।

दादाश्री : नहीं, ऐसा कुछ नहीं है।

प्रश्नकर्ता : वह कैसे? हमें ज़रा समझाइए कि एक (प्रकार के) प्रतिक्रमण से पुण्य मिलता है और...

दादाश्री : अपने यहाँ जो प्रतिक्रमण है, वह मोक्ष के हेतु के लिए है। लेकिन संसार का प्रतिक्रमण तो संसार का कोई दोष, संसार के सुख के लिए, उसका जो हेतु होता है, वहाँ उपयोगी होता है।

प्रश्नकर्ता : सही है, मैं यह भी समझना चाहता हूँ कि आपने दो प्रकार के प्रतिक्रमण कहे, उसमें एक, प्रतिक्रमण का परिणाम...

दादाश्री : दो प्रकार के नहीं है, प्रतिक्रमण एक ही प्रकार का होता है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन उसमें जो ध्येय है, ध्येय दो प्रकार के हैं न? एक, मोक्ष का ध्येय...

दादाश्री : ध्येय दो प्रकार के नहीं, कितने ही प्रकार के ध्येय हैं, उसमें अलग-अलग व्यक्ति अनुसार अलग-अलग प्रकार के ध्येय होते हैं।

प्रश्नकर्ता : अब इसमें जो संसार के सुख का ध्येय है अर्थात् प्रतिक्रमण से उसे धर्मध्यान होता है, शुक्लध्यान नहीं होता?

दादाश्री : प्रतिक्रमण और शुक्लध्यान का कुछ लेना-देना नहीं है। संसार में शुक्लध्यान का तो लेना-देना ही नहीं है। अपने यहाँ पर, यह तो अक्रम है इसलिए शुक्लध्यान है। वर्ना शुक्लध्यान तो बोल ही नहीं सकते।

प्रश्नकर्ता : तो वह प्रतिक्रमण कैसे करना है? जैसे कि मुझे प्रतिक्रमण करना है, मुझे संसार में सुख चाहिए तो वह प्रतिक्रमण कैसे और कैसा ध्येय रखकर करना है? यानी ध्येय रखकर, कैसे प्रतिक्रमण करना है?

दादाश्री : नहीं-नहीं! वह तो, जब प्रतिक्रमण करते हैं न, तब अपने भीतर जो दोष हुआ था, वह खत्म हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : खत्म हो गया तो हो गया, फिर?

दादाश्री : उससे पुण्य बंधता है न!

प्रश्नकर्ता : हाँ, तो वैसे ही इस मोक्षमार्ग में उसे पुण्य बंधता ही है न?

दादाश्री : नहीं।

प्रश्नकर्ता : तो उसे कैसे समझना है?

दादाश्री : मोक्षमार्ग में छूटने के लिए प्रतिक्रमण करते हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यह छूटने के लिए है और वह?

दादाश्री : उसका छूटने से कोई लेना-देना नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो मन में ऐसा निर्धारित किया होता है कि भाई हमें यह...

दादाश्री : नहीं! वे तो 'चंदूलाल' होकर प्रतिक्रमण करते हैं न?

प्रश्नकर्ता : अज्ञानी और ज्ञानी?

दादाश्री : बस।

प्रश्नकर्ता : उसका भेद। हाँ, तो ठीक है। अज्ञानी यदि प्रतिक्रमण करते हैं तो उससे उसको पुण्य मिलता है।

दादाश्री : अज्ञानी जो करते हैं, उसमें पुण्य या पाप ही है, इसके सिवा कुछ नहीं है। वहाँ तो मोक्ष का मार्ग ही नहीं है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, सही है।

क्या फल मिले प्रतिक्रमण से

प्रश्नकर्ता : अक्रम विज्ञान भी उन बाईस तीर्थंकरों के जैसी स्थिति में ले आता है न?

दादाश्री : इतनी अधिक स्थिति में नहीं लाता है लेकिन यह तो अक्रम विज्ञान है! मोक्ष फल देता है! और वह मोक्ष दे ऐसा नहीं है। उतना फर्क है।

प्रश्नकर्ता : कौन सा?

दादाश्री : यह अपना अक्रम मोक्ष दे ऐसा है और वह तो सिर्फ जागृति ही, इसलिए मोक्ष का पुण्य बाँधता है। वह जागृति ही देता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वे तीर्थंकरों के आश्रित थे न?

दादाश्री : तीर्थंकरों के आश्रय में गए इसीलिए तो मोक्ष पहुँच जाते हैं। बाकी, सब लोग हैं, वे सब पुण्य बाँधते हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन प्रतिक्रमण से उनके लिए मोक्षमार्ग नहीं खुलता?

दादाश्री : नहीं।

प्रश्नकर्ता : ऐसा क्यों? उस काल में नहीं?

दादाश्री : प्रतिक्रमण मोक्षमार्ग नहीं है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उनका पूरा जो हेतु है, वह उन्हें इस रास्ते पर ले आता है न?

दादाश्री : आत्मज्ञान, वह मोक्षमार्ग है। आत्मज्ञान होने के बाद के प्रतिक्रमण मोक्षमार्ग देते हैं, फिर सभी साधनाएँ मोक्षमार्ग देती है।

प्रश्नकर्ता : तो उन्हें आत्मज्ञान होने का कारण बन सकता है, यह प्रतिक्रमण?

दादाश्री : नहीं। वह पहले का प्रतिक्रमण करते हैं और फिर से मोह के नए अतिक्रमण उत्पन्न हो जाते हैं। मोह बंद नहीं हुआ है न! मोह रहा ही है न! दर्शन मोह यानी पुराने सब के प्रतिक्रमण करते हैं न, तो वे खत्म हो जाते हैं और नए उत्पन्न होते हैं। प्रतिक्रमण करते हैं, उस समय पुण्य बंधता है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् दोष की परतें, आवरण कम होते जाते हैं न?

दादाश्री : दोष ही खत्म होते जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : तो फिर उन्हें दूसरे कौन से दोष उत्पन्न होते हैं?

दादाश्री : सभी। दर्शन मोह है इसलिए दोष उत्पन्न होते ही रहते हैं और प्रतिक्रमण उसे निकालता रहता है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् प्रतिक्रमण उन्हें धर्मध्यान में रखता है?

दादाश्री : पूरा धर्मध्यान कैसे हो पाएगा? जहाँ शुक्लध्यान भी नहीं है वहाँ धर्मध्यान भी कहाँ से हो पाएगा?

प्रश्नकर्ता : क्या प्रतिक्रमण धर्मध्यान में नहीं आता?

दादाश्री : वह प्रतिक्रमण अलग तरह का है।

प्रश्नकर्ता : वह क्या है?

दादाश्री : वह प्रतिक्रमण तो, जो मोह होता है, उसे खत्म करता है। वहाँ फिर से मोह उत्पन्न नहीं होता। और दर्शन मोहनीय दूसरा

मोह उत्पन्न होने देता है और प्रतिक्रमण उसे फिर से खत्म करता है। दर्शन मोहनीय से वापस फिर मोह उत्पन्न होता है। प्रतिक्रमण उसे फिर से खत्म करता है। ऐसे करता ही रहता है।

प्रश्नकर्ता : मोह कम करने की जो प्रक्रिया है, उसे दोष कम करने जैसा कहते हो?

दादाश्री : पूरे जगत् के जितने परमाणु हैं, उतने सारे दोष हैं। ऐसे सारे दोष इस प्रतिक्रमण से खत्म हो जाते हैं।

संसार के लोग प्रतिक्रमण करते हैं, यदि कोई जागृत हो तो, रायशी-देवशी दोनों करते हैं, तो उतने दोष जो हैं, वे कम हो गए लेकिन जब तक दर्शन मोहनीय है, तब तक मोक्ष नहीं हो सकता, दोष उत्पन्न होते ही रहते हैं। जितने प्रतिक्रमण करते हैं, उतने सारे ही दोष (खत्म हो) जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : तो उसका एक उदाहरण दीजिए न, कि बाईस तीर्थंकरों के समय में कौन सा दोष हुआ और उसका कैसे प्रतिक्रमण किया?

दादाश्री : अपने यहाँ करते हैं, उसी तरह ही तो। अभी जैसे हमें दोष दिखाई देता है न, उसी तरह से वे भी करते थे।

प्रश्नकर्ता : कुछ चोरी की हो, उन्होंने कुछ गलत कह दिया हो तब ऐसा लगता है कि 'यह गलत हो गया, ऐसा नहीं होना चाहिए'।

दादाश्री : हाँ, तो फिर ऐसा सब उल्टा नहीं बोला जाएगा।

प्रश्नकर्ता : यानी सीधा बोलना चाहिए, क्या ऐसा उसका नया बंध हुआ?

दादाश्री : वापस वैसा होगा।

प्रश्नकर्ता : यानी इस तरह सारी प्रोसीज़र (कार्यवाही) बदलती है?

दादाश्री : हाँ, दर्शन मोहनीय है न! इसलिए इस बार फिर से हो गया। अगले जन्म में वापस फिर से लिपटता है वैसा ही।

प्रश्नकर्ता : यानी ऐसा सब उल्टा बोला गया, वह अटक गया और सीधा बोलना चाहिए, ऐसा चार्ज हुआ?

दादाश्री : सीधा तो इस जन्म में ही होता है, वापस अगले जन्म में यदि कोई कुसंग मिल गया तो फिर से उल्टा बोलना सीख जाता है।

प्रश्नकर्ता : यानी प्रतिक्रमण किया इसलिए उससे पहले का दोष गया?

दादाश्री : हाँ, गया बस।

प्रश्नकर्ता : फिर आपने कहा कि जब तक दर्शन मोहनीय है तब तक नया कर्म बाँधता ही है। नया दोष तो उत्पन्न करता ही है।

दादाश्री : वह तो नया दोष जारी ही रहता है।

प्रश्नकर्ता : उसका फल उसे अगले जन्म में मिलता है। अर्थात् जितना उल्टा बोला गया था, उतना दोष उसने खत्म किया था लेकिन वापस नया तो जारी ही रहता है।

दादाश्री : हाँ, लेकिन इस जन्म में उसका उल्टा बोलने का जो दोष था, वह चला गया। वह इस जन्म में उल्टा नहीं बोलता है लेकिन अगले जन्म में वापस यदि पहचान वाले अलग तरह के मिल जाए तो फिर से आदत पड़ जाती है। दर्शन मोह है इसलिए उगता ही रहता है न सब!

प्रश्नकर्ता : लेकिन उसने वह दोष निकाला कैसे? क्या प्रतिक्रमण किया होगा उस घड़ी?

दादाश्री : शास्त्र के आधारित ऐसा बोलता है कि 'यह गलत है, ऐसा नहीं होना चाहिए'। 'प्रतिक्रमण करता हूँ, प्रत्याख्यान करता हूँ, अब नहीं बोलूँगा' ऐसा निश्चय करता है। यानी वह सब दोष खत्म हो गया और उतना टाइम उसने आत्मा के लिए निकाला। उसमें *पुद्गल* (जो पूरण और गलन होता है) भाग हेतु नहीं है। इसलिए पुण्य बंधता है।

आपने हाथी को देखा नहीं है? वह नहाता है, उस समय देखना उसे। नहाने के बाद क्या करता है, वह देखा है न?

प्रश्नकर्ता : कहते हैं न, 'गजस्नानवत्'? वह वापस शरीर पर धूल उड़ाता है!

दादाश्री : और वापस धो देता है। अत: जब तक दर्शन मोहनीय है, तब तक 'गजस्नानवत्' चलता रहता है।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा, जैसे कि 'दोष हो गया, उसका वह अभी इस जन्म में प्रतिक्रमण कर लेता है यानी अब वह निर्दोष हो गया', तो फिर अगले जन्म में फिर से दोष करेगा ही कैसे?

दादाश्री : वह तो करेगा ही। दर्शन मोहनीय है इसलिए फिर जैसे संयोग मिलते हैं, वैसा करता है।

प्रश्नकर्ता : यानी मूल कहने की बात यह है कि आत्मज्ञान होने के बाद प्रतिक्रमण करें तभी निर्दोष हो पाते हैं और फिर किसी भी जन्म में ऐसा नहीं होता है।

दादाश्री : अनंत अवतार से चोरियाँ छोड़ते ही आया है और अगले जन्म में यदि माँ-बाप चोर मिलते हैं तो वापस चोर बन जाता है। जिन्हें दर्शन मोह है, वे क्या नहीं करते?

प्रश्नकर्ता : तो उन्होंने वह जो प्रत्याख्यान किया था, वह फल नहीं देता है?

दादाश्री : नहीं! वह तो उसे उस जन्म तक के लिए ही रहता है, फिर नहीं रहता। फिर जब दूसरे संयोग इकट्ठे होते हैं, तब दूसरा सब होता है।

यह तो हमें यहाँ पर प्रतिक्रमण उपयोग में आए हैं कि 'भाई, आवक बंद हो गई है इसलिए जावक का *निकाल* करो'। दर्शन मोह बंद हो गया यानी आवक बंद हो गई है। आवक यदि जारी रहे तो रहे? तो

उन लोगों को थोक में आवक जारी है। जावक से ज़्यादा आवक है। कितनी आवक होती है? जितनी कल्पना करते हैं, उतने कर्म!

ऐसे सर्जित हुआ उसका इतिहास

प्रश्नकर्ता : जैनों में यह संवत्सरी करने के लिए क्यों कहा है? इस पर्व का इतिहास क्या है?

दादाश्री : चाहे किसी भी तरीके से प्रतिक्रमण करना। ऐसा है, भगवान ने कहा था कि 'रोज़ झाड़ू लगाना'। रात को और दिन में, दो बार झाड़ू लगाना। सब से पहले कहा कि, 'शूट ऑन साइट' करना। तो कहते हैं, 'साहब, ऐसे कहीं हर बार क्या बंदूक साथ में होती है?' तब कहा, 'रात की जोखिमदारी के लिए सुबह बंदूक का प्रयोग करना तथा दिन की जोखिमदारी के लिए रात को करना'। और फिर वापस हज़ार में से दो लोगों ने कहा कि, 'साहब हमें क्या करना है? हम से ऐसा नहीं हो पाता, सुबह और शाम को करने का'। तब कहा, 'पाक्षिक करना'। जब वे (पाक्षिक करने वाले) भी नहीं निकले तब कहा, 'चार महीने में एक बार करना'। भगवान को आगे कोई रास्ता तो दिखाना पड़ता न! अंत में भगवान यहाँ आकर रुक गए कि, 'भाई, कुछ नहीं तो संवत्सरी के दिन तो करना। साधारण तौर पर कहना कि सब से माफी माँगता हूँ'।

अत: अभी इस काल में 'शूट ऑन साइट' की बात तो कहाँ रही लेकिन कहते हैं 'शाम को पूरे दिन का प्रतिक्रमण करना', वह बात भी कहाँ रही, 'हफ्ते में एकाध बार करना' ऐसी बात भी कहाँ रही और फिर पाक्षिक भी कहाँ रहा, बारह महीने में एक बार करते हैं। वह भी समझते नहीं है और अच्छे कपड़े पहनकर फिरते रहते हैं। यानी ऐसे रियल प्रतिक्रमण कोई नहीं करता है इसलिए दोष बढ़ते ही गए। प्रतिक्रमण तो उसे कहते हैं कि 'दोष कम होते जाएँ'।

अतिक्रमण से यह जगत् खड़ा हुआ है और प्रतिक्रमण से बंद हो जाता है।

मार्गदर्शन विचलित हुए, वहाँ क्या?

मुमुक्षु : दादा, वैसे तो हम प्रतिक्रमण करते हैं।

दादाश्री : क्या आपको प्रतिक्रमण करना आता होगा? वह तो सब ठीक है। वह तो बालक के हाथ में रत्न देने जैसा है। प्रतिक्रमण तो समझने के बाद प्रतिक्रमण, निज स्वरूप की प्राप्ति के बाद प्रतिक्रमण होते हैं। प्रतिक्रमण करवाने वाला चाहिए और प्रतिक्रमण करने वाला चाहिए। सब साथ में चाहिए। यह करवाने वाला है कौन आपके वहाँ?

मुमुक्षु : यह प्रतिक्रमण हमें महाराज करवाते हैं। प्रतिक्रमण क्या है, उसका मुझे पता भी नहीं है। लेकिन उसमें कहते हैं कि 'गुड्डे-गुड़ियों की शादी करवाई, ऐसा किया, वे सब पाप हैं'। उसके 'मिच्छामि दुक्कडम्' करवाते हैं।

दादाश्री : नहीं! ऐसा साधु महाराज कहते हैं 'इसमें किसी चीज़ में पाप ही नहीं है'। फुरसत मिली, उन्हें समकित नहीं आया तो उनका दिमाग़ बिगड़ गया और लोगों के दिमाग़ भी बिगाड़ दिए।

अब ऐसा कहना भी गुनाह है। क्योंकि कृपालुदेव ने कहा है कि 'ऐसा कर रहा हो और यदि आप उसे गलत कहोगे तो वह उसे भी छोड़ देगा'। यानी कुछ भी नहीं कहना है।

अतः यदि ऐसा कहेंगे तो चलेगा कि प्रतिक्रमण के ऐसा हो जाने से सब बिगड़ चुका है। फिर भी निकाल नहीं देना है। जो है, उससे काम चला लेना है। इसमें से सुधार आएगा आगे। काल सुधार रहा है।

ऑर्नामेन्टल की इसमें नहीं ज़रूरत

मुमुक्षु : क्या प्रतिक्रमण करने की कोई टेकनीक है?

दादाश्री : अब कुछ न आए तो माफी माँगना कि आपकी साक्षी में, 'हे दादा! मुझे यह सब समझ में नहीं आता है', तो चलेगा। और वहाँ टेकनीक की ज़रूरत नहीं है। आपका हेतु क्या है?

इसलिए फिर बुद्धिशाली लोग हेतु को ऑर्नामेन्टल बना देते हैं और ऑर्नामेन्टल बनाते हैं इसलिए वह बेचारा डरता रहता है कि 'हमें समझ में नहीं आता है, हम से नहीं होगा'। अरे, छोड़ो न बात, माफी माँगो, 'मुझे समझ में नहीं आता है, ऐसी सब भूलें हो गई हैं इसके लिए भगवान आपके समक्ष माफी माँगता हूँ'। वहाँ कहीं ऑर्नामेन्टल होता होगा?

अतिक्रमण, कदम-कदम पर

आप यह जो प्रतिक्रमण करते हो, उस प्रतिक्रमण से पूरे साल में दो आने मिलते हैं। यदि यथार्थ प्रतिक्रमण किए जाएँ न, तो साल भर में तीन सौ पैंसठ दिनों के, चौबीसों घंटों के सोलह आने मिलते हैं।

यथार्थ प्रतिक्रमण यानी समझ में आया आपको? वैसे तो व्यवहार में हम लोग क्रमण करते हैं। क्रमण यानी यदि हम कहें 'माँजी, मुझे खाना दो' तो माँजी खाना देती हैं। उसमें कोई हर्ज नहीं है। लेकिन यदि हम कहें कि 'माँजी, यह कढ़ी खारी बना दी'। तो अतिक्रमण किया कहलाएगा और अतिक्रमण किया तो प्रतिक्रमण करना पड़ता है। अतिक्रमण नहीं किया तो प्रतिक्रमण नहीं करना पड़ता। क्या लोग अतिक्रमण करते हैं?

प्रश्नकर्ता : अतिक्रमण तो ऑटोमैटिक हो ही जाता है।

दादाश्री : भगवान ने कहा है, 'अतिक्रमण करो तो प्रतिक्रमण करना'। अतिक्रमण नहीं करते हो तो कोई हर्ज नहीं है। 'आपने कढ़ी खारी दी और मैं खा लूँ' तो उसमें प्रतिक्रमण की ज़रूरत नहीं है।

प्रश्नकर्ता : कदम-कदम पर अतिक्रमण तो होता है।

दादाश्री : तो जब तक अतिक्रमण होगा, तब तक फिर ऐसा मनुष्य जन्म नहीं मिलेगा। सतर्क होकर चलना। यह कोई अंधेर नगरी नहीं है, यह तो वीतरागों का राज है। यहाँ ज़रा भी रिश्वत नहीं चलती। हाँ, सब जानते हैं, यहाँ पर तो घोटाला नहीं चलता है।

प्रश्नकर्ता : क्या उसके लिए रास्ता है?

दादाश्री : यदि इस बहन को आपके लिए ज़रा भी उल्टा विचार आए कि 'ये कहाँ यहाँ पर आ गए मुझे तंग करने?', ऐसा विचार भीतर आता है, लेकिन वह आपको पता लगने नहीं देती, चेहरा हँसता रखती है। उस समय भीतर प्रतिक्रमण करती है। उल्टा विचार किया, वह अतिक्रमण किया कहलाता है। वह रोज़ के पाँच सौ-पाँच सौ प्रतिक्रमण करती है। निरे दोष ही है, भान ही नहीं होता है।

चाहिए, नकद प्रतिक्रमण

मुमुक्षु : ये कर्म जब 'डिस्चार्ज' होते हैं, तब जो बुरा होता है, उसका प्रतिक्रमण करते हैं, फिर भी उतने कर्म के फल का थोड़ा असर तो भुगतना पड़ेगा न?

दादाश्री : किसको?

मुमुक्षु : हमें।

दादाश्री : दोष हो जाता है इसलिए प्रतिक्रमण करते हैं। लेकिन वे प्रतिक्रमण आपसे नहीं हो पाएँगे। साधुओं को नहीं आता है न, यह प्रतिक्रमण तो 'शूट ऑन साइट', दोष होते ही प्रतिक्रमण कर लेना है।

मुमुक्षु : हम रायशी और देवशी, दो प्रतिक्रमण करते हैं।

दादाश्री : ऐसे प्रतिक्रमण नहीं चलते। वे तो कैसे होने चाहिए? दोष होते ही तुरंत दोष पहचानना आना चाहिए, ऐसे होते हैं। ऐसे रायशी-देवशी करके ही तो अभी तक भटक रहे हो, अनंत अवतार से!

पहले के समय में प्रतिक्रमण 'शूट ऑन साइट' करते थे और अब लोगों से ऐसा नहीं हो पाता इसलिए फिर पूरे दिन जो दोष हो गए हो, रात को उसे याद करके पूरे दिन के प्रतिक्रमण करते हैं, वह देवशी कहलाता है और पूरी रात में जो दोष हुए हों, उन्हें याद करके सुबह प्रतिक्रमण करते हैं, वह रायशी कहलाता है।

नहीं होता कभी भी क्रिया प्रतिक्रमण

इस काल के इंसान को यदि धर्म जानना हो तो हम उसे क्या सिखाते हैं कि 'आपसे झूठ बोला जाए उसमें कोई हर्ज नहीं है, आप मन में अलग बोले उसमें कोई हर्ज नहीं है, लेकिन अब आप उसका प्रतिक्रमण करो कि 'फिर से ऐसा नहीं बोलूँगा'। हम प्रतिक्रमण करना सिखाते हैं।

मुमुक्षु : तो फिर हम सुबह-शाम, जो रायशी और देवशी प्रतिक्रमण करते हैं, क्या वह गलत है?

दादाश्री : वह तो मरे हुए मुर्दों के करते हो, जीवित के प्रतिक्रमण नहीं करते हो। वह तो मरे हुए मुर्दे हो ऐसा प्रतिक्रमण करते हैं तो उससे पुण्य बंधता है।

मुमुक्षु : उसका मतलब ऐसा हुआ कि 'जब गलत करें तब प्रतिक्रमण करना है?

दादाश्री : प्रतिक्रमण तो हमेशा 'शूट ऑन साइट' करना है। प्रतिक्रमण तो कभी भी उधार (पेन्डिंग) नहीं रखना है।

मुमुक्षु : जीव तो हमेशा कर्म के बंधन बाँधते ही रहते हैं, तो उसे क्या सतत प्रतिक्रमण करते रहना है?

दादाश्री : हाँ, करना पड़ता है।

इनमें से कई महात्मा रोज़ के पाँच सौ-पाँच सौ प्रतिक्रमण करते होंगे! यह नीरू बहन तो कितने करती होंगी? आज आठ साल से रोज़ पाँच सौ-पाँच सौ, हज़ार जितने प्रतिक्रमण करती हैं।

प्रश्नकर्ता : वे तो भाव प्रतिक्रमण हैं, क्रिया प्रतिक्रमण तो होते ही नहीं न?

दादाश्री : नहीं, क्रिया के प्रतिक्रमण होते ही नहीं। प्रतिक्रमण तो भाव प्रतिक्रमण की ही ज़रूरत है, जो काम करता है। क्रिया

प्रतिक्रमण नहीं होता। क्रिया प्रतिक्रमण तो मुर्दा है मुर्दा। उसमें तो गलत जगह पर टाइम व्यय न हो और सामायिक होती है, और सामायिक का फल मिलता है, इससे मन अच्छा रहता है।

प्रश्नकर्ता : वह *निर्जरा* (आत्मप्रदेश में से कर्मों का अलग होना) है या नहीं?

दादाश्री : *निर्जरा* तो हमेशा होती ही रहती है। *निर्जरा* तो हर एक जीव को हो ही रही है लेकिन वह आपका अच्छा भाव है कि 'आपको प्रतिक्रमण करना है'। भाव अच्छा है इसलिए *निर्जरा* अच्छी होती है, अन्यथा प्रतिक्रमण तो 'शूट ऑन साइट' करने हैं।

दिन में ये सब पचास-सौ बार प्रतिक्रमण करते हैं। बिना प्रतिक्रमण के तो कभी कुछ हो पाए ऐसा है नहीं और यह जो प्रतिक्रमण है, वह द्रव्य प्रतिक्रमण है, भाव प्रतिक्रमण (होने) चाहिए।

प्रश्नकर्ता : द्रव्य के साथ-साथ भाव भी चाहिए न!

दादाश्री : हाँ, लेकिन सिर्फ द्रव्य ही होता है, भाव नहीं होता है। क्योंकि दूषमकाल के जीवों के लिए भाव रखना बहुत मुश्किल चीज़ है। वह तो जब ज्ञानी पुरुष की कृपा हो जाए और सिर पर हाथ रख दें, तब ऐसा भाव उत्पन्न होता है। वर्ना भाव उत्पन्न नहीं हो सकता।

प्रश्नकर्ता : द्रव्य प्रतिक्रमण और भाव प्रतिक्रमण अर्थात् क्या, वह ज़रा समझाइए।

दादाश्री : भाव से बोलना है कि 'ऐसा नहीं होना चाहिए'। भाव ऐसा रखना कि 'ऐसा नहीं होना चाहिए', वह भाव प्रतिक्रमण कहलाता है और उस द्रव्य में तो पूरा, सब शब्द-शब्द बोलना पड़ता है। जितने शब्द लिखे हुए होते हैं न, वे सारे हमें बोलने पड़ते हैं, वह द्रव्य प्रतिक्रमण कहलाता है।

यथार्थ प्रतिक्रमण कौन सा?

भगवान ने कहा था कि 'यह प्रतिक्रमण की भाषा यदि समझ

में आए तो उस अनुसार प्रतिक्रमण करना'। भगवान ने इसमें हस्तक्षेप नहीं किया है। लेकिन यदि समझ में नहीं आता तो वह जो भी भाषा समझता है, उस भाषा में प्रतिक्रमण समझाना।

प्रश्नकर्ता : महावीर स्वामी के उसमें ऐसा आता है कि 'अंतत: आप संवत्सरी प्रतिक्रमण करेंगे तो भी हर्ज नहीं है।

दादाश्री : नहीं, ऐसा कुछ नहीं कहा है और वहाँ ऐसा प्रतिक्रमण था ही नहीं। भगवान महावीर के समय ऐसा प्रतिक्रमण था ही नहीं। ये प्रतिक्रमण तो महावीर भगवान के जाने के बाद शुरू हुए हैं।

प्रतिक्रमण तो होने ही चाहिए और वे प्रतिक्रमण खुद की भाषा में होने चाहिए। आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान बगैर तो किसी का मोक्ष ही नहीं है।

कोई आदमी इस तरह खाना खाना सीखे कि सिर्फ 'होइया, होइया, होइया' (डकार) करे, तो क्या भूख मिट जाएगी?

प्रश्नकर्ता : नहीं मिटेगी, वह तो जब खाना अंदर जाएगा तब मिटेगी।

दादाश्री : क्यों? थाली में लेकर हमने निवाले भरे न! डकार ली न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह पेट में नहीं गया, वह तो बाहर गया।

दादाश्री : तो यह प्रतिक्रमण भी यदि आज भगवान होते न, तो सभी को जेल में बंद कर देते। अरे, ऐसा किया? प्रतिक्रमण यानी 'एक गुनाह की माफी माँगकर साफ करना'। एक दाग़ गिरा हो, उस दाग़ को धोकर साफ करना, जगह (पहले) जैसी (साफ) थी वैसी की वैसी कर देना, वह है प्रतिक्रमण। अब तो निरे दाग़ वाली धोती दिखाई पड़ती है।

यह तो, एक भी दोष का प्रतिक्रमण नहीं किया है और निरे दोषों के भंडार बन गए हैं।

ये नीरू बहन हैं, उनके सब आचार-विचार जो हैं, वे किस तरह उच्च हैं? तो हर रोज़ के पाँच सौ-पाँच सौ प्रतिक्रमण करती हैं और इन लोगों ने एक भी नहीं किया है।

रायशी-देवशी

ऐसा है, प्रतिक्रमण अर्थात् दोष कम होना। यदि दोष कम नहीं होते हैं तो प्रतिक्रमण नहीं करते हैं, अतिक्रमण कर रहे हैं। उल्टा बढ़ा रहे हैं। इसलिए उसकी तुलना में रायशी-देवशी, वे दो कच्छी भाई अच्छे!

प्रश्नकर्ता : 'रायशी-देवशी कोई जीव थोड़े ही है, वह तो कल्पना है', ऐसा कृपालुदेव ने स्पष्ट लिखा है।

दादाश्री : लेकिन लोग तो ऐसा समझते हैं न, कि 'यह रायशी है, यह देवशी है', तो यह देवशी का भाई है। कच्छ में कोई व्यक्ति प्रतिक्रमण करने बैठा। उसने तो रायशी प्रतिक्रमण किया और उसे याद आया कि कितने लोग देवशी का प्रतिक्रमण करते हैं, कितने रायशी का करते हैं। तो हमारे खेतशी (भाई) का क्यों नहीं करते हैं? ऐसे नाम भी होते हैं न, देवशी और रायशी?

अब वे लोग जो प्रतिक्रमण करते हैं न, उसमें प्रतिक्रमण का बल ही नहीं होता। बगैर समझे करते हैं।

और फिर वह भी कैसे करते हैं? मागधी भाषा में, एक अक्षर भी समझते नहीं, बगैर समझे। अंग्रेजी में हम यदि कहें, 'पारडन मी, पारडन मी', ऐसे करते रहें तो क्या बरकत आएगी? अंग्रेजी तो समझते नहीं हो!

इतने प्रतिक्रमण करने के बावजूद, एक भी यथार्थ प्रतिक्रमण नहीं किया होगा! इसके बदले यदि गुजराती में सिखा दिया होता न, कि 'भाई, यह प्रतिक्रमण ऐसे करना' तो उसे समझ आता कि 'इसके साथ दोष हो गया है इसलिए प्रतिक्रमण कर रहा हूँ'। लेकिन ये तो समझते ही नहीं हैं और बारह महीने के इकट्ठे करते हैं या फिर रायशी-देवशी प्रतिक्रमण करते हैं।

तब दूसरा कहता है, 'मैंने प्रेमशी प्रतिक्रमण किया'। वह ऐसा समझता है कि, 'वे अपने नाम का गा रहे हैं तो मैं मेरे नाम का गाऊँ'।

ये तो चुपड़ने की दवाई पी गए हैं। अतः अब चुपड़ने की चुपड़ो और पीने की पीओ। यदि खुद की भूल खुद को पता चले तो वह परमात्मा बनता है।

हमेशा ही 'किए का' ('कर्तापन का') आवरण आता है। आवरण आता है इसलिए भूलें दब जाती हैं और फिर भूलें दिखाई ही नहीं देतीं। भूलें तो, जब आवरण टूटते हैं, तब दिखाई देती हैं और वे आवरण ज्ञानी पुरुष के पास टूटते हैं। अन्यथा खुद से आवरण टूटते नहीं हैं। ज्ञानी पुरुष तो सभी आवरण फ्रेक्चर करके खत्म कर देते हैं! फिर इन लोगों को तो रायशी और देवशी नहीं पुसाता। पूरे दिन का हिसाब रात को नहीं निकाल पाते, लोग भूल जाते हैं। ये लोग बेहोश हैं न!

ऐसा है, रायशी और देवशी, ऐसे दो प्रतिक्रमण जो करते हैं, भगवान उन्हें चार आने देते हैं। मेहनत की है न? उसमें दो घंटे तो लगते होंगे न? इसलिए मेहनत करने के चारे आने देते हैं। एक सामायिक के चार आने तो दो के आठ आने बनते हैं न, उसके? अपने महात्मा तो दिन में सौ-सौ प्रतिक्रमण करते हैं न, उसके एक लाख रुपये देते हैं। (उसकी कीमत समझाने के लिए उदाहरण देकर समझाया है।)

मृत प्रतिक्रमण

सही में तो कैसे होने चाहिए? आज से पाँच सौ साल पहले कैसे प्रतिक्रमण होते थे? यदि उन महाराज साहब से पूछेंगे कि 'साहब, मुझे शूट ऑन साइट प्रतिक्रमण कैसे करने हैं?' हम यह व्यवसाय करते हैं। उसमें सुपारी कम तौलकर देता हूँ, अच्छा नमक लेने आते हैं तो खराब नमक देता हूँ, तेल लेने आते हैं तो मिलावट वाला देता हूँ। तौलने में दोष होता है तो मैं उसके प्रतिक्रमण किस तरह करूँ? तब महाराज कहते हैं, 'देवशी प्रतिक्रमण करना'। पूरे दिन की भूलें याद

करके कि 'लल्लू को सुपारी कम दी थी, उसका प्रतिक्रमण, इसे खराब नमक दिया, उसका प्रतिक्रमण, इसे तेल मिलावट वाला दिया, इस तरह दुकान में बार-बार जो झंझट की उसके प्रतिक्रमण करने हैं। अत: देवशी की तरह करना। बहीखाते में उधार हैं, रायशी, देवशी करते-करते कच्छी लोगों ने नाम दे दिया। रायशी, करमशी, देवशी...!

रायशी अर्थात् रात में किए हुए दोषों का प्रतिक्रमण, ऐसे करते-करते नाम पड़ गए, तो फिर रहा ही क्या? पाँच-सौ साल पहले कुछ सजीवन था यह प्रतिक्रमण और अभी तो उस प्रतिक्रमण के मर जाने के बाद उसकी पूजा होती है! अरे छोड़ न, भाई! अब मृत प्रतिक्रमण छोड़ न! तब कहता है, नहीं उसकी पूजा करनी है। आज वहाँ पर प्रतिक्रमण है सब आना वहाँ पर। अरे भाई! मृत प्रतिक्रमण की पूजा किसलिए करते हो?

अरे, कैसे घनचक्कर पैदा हुए हो! भगवान ने पहले से ही सब बोल दिया है। भगवान सबकुछ जानते थे कि 'कैसे पैदा होने वाले हैं!'

मोक्ष के लिए (हेतु) पच्चखाण

क्रमिक मार्ग में प्रत्याख्यान करते हैं लेकिन प्रतिक्रमण नहीं करते हैं। महाराज से पच्चखाण लेते हैं लेकिन प्रतिक्रमण तो समझते ही नहीं हैं। प्रत्याख्यान भी समझते नहीं हैं। यह तो आलू नहीं खाना और ऐसे-वैसे पच्चखाण लेते हैं। हरी तरकारी नहीं खाऊँगा, ऐसे पच्चखाण लेते हैं। ऐसे पच्चखाण मोक्ष में जाने के लिए नहीं होते। मोक्ष में जाने के लिए तो अलग पच्चखाण होते हैं। जिसका प्रतिक्रमण करते हैं, उसी के लिए पच्चखाण होता है कि, 'फिर से ऐसा नहीं करूँगा'। हम (लोग) मोक्ष में जाने के लिए (जैसा) प्रतिक्रमण करते हैं, वैसा कहीं भी नहीं होता है। प्रतिक्रमण कभी भी उत्पन्न ही नहीं हुआ। क्रमिक मार्ग में प्रतिक्रमण होता ही नहीं है। अभी एक भी (व्यक्ति) ऐसा नहीं है कि जो (यथार्थ) प्रतिक्रमण करता है।

यह तो सब इकट्ठा प्रतिक्रमण करते हैं। इसमें जो मागधी भाषा

में लिखे गए हैं, उनको महाराज बोलते हैं और वे सुनते हैं। अर्थात् साबुन घिसो, ऐसा कहते हैं। अरे, लेकिन साबुन धोती में घिसना है या यहाँ टेबल पर घिसना है? ऐसे प्रतिक्रमण सब व्यर्थ जाते हैं।

महाराज प्रतिक्रमण करवाते हैं, यानी महाराज टेबल पर साबुन घिसते रहते हैं और वे ज़मीन पर, नीचे टाइल्स पर घिसते रहते हैं। किसी ने भी प्रतिक्रमण नहीं किए हैं। पच्चखाण लिए लेकिन वे कैसे पच्चखाण थे? हरी सब्ज़ियाँ नहीं खाऊँगा, फलाँ नहीं खाऊँगा, आलू नहीं खाऊँगा, कंदमूल नहीं खाऊँगा, रात्रि भोजन नहीं करूँगा। रात्रि भोजन नहीं करने का निश्चय, वह पच्चखाण कहलाता है। इसका और मोक्षमार्ग का कुछ लेना-देना नहीं है। वह जो पच्चखाण है, वह सब संसार मार्ग है। अगला जन्म अच्छा और भौतिक सुख वाला आता है।

अपने प्रत्याख्यान तो, जिसके प्रतिक्रमण करते हैं, उसी के पच्चखाण करने हैं, अब फिर से ऐसे दोष नहीं करूँगा। फिर से ऐसा होना, वह तो स्वाभाविक है। प्याज़ है इसलिए परतें आती रहती हैं। इसलिए यह गलत था, ऐसा हम नहीं कह सकते। पच्चखाण लेते हैं और फिर से ऐसा होता है, उसमें आपको क्या समझ में आएगा? आप क्यों संगत करते हो? दोष हो जाना, उसे पच्चखाण से कोई लेना-देना नहीं है न! उसे वह ऐसा समझता है कि 'यह पच्चखाण लिया इसलिए दोष बंद हो जाने चाहिए'। वे तो प्याज़ की परतें पंद्रह सौ-पंद्रह सौ, पाँच सौ, हज़ार, दो हज़ार या पाँच हज़ार होती हैं, वह परतें जब तक खत्म नहीं होती हैं, तब तक दोष होते रहते हैं। उसमें उस बेचारे को क्या समझ आएगा?

कैसी इस संसार की गति और गत कैसी है, वह उसे क्या समझ में आएगी?

जो गलत करता है, उसे प्रत्याख्यान करना होता है। जो गलत करता ही नहीं है, उसे प्रत्याख्यान किसका करना है?

प्रश्नकर्ता : तो फिर प्रतिक्रमण किसलिए?

दादाश्री : गलत करे तो प्रतिक्रमण, गलत करे तो आलोचना, गलत करे तभी प्रत्याख्यान करने हैं।

आज ये सब साधु-साध्वी जी, वे सब हमें कहते हैं कि 'आप प्रत्याख्यान नहीं करते हो, पच्चखाण लेते नहीं हो'। अरे, पच्चखाण उसे कहते हैं कि जिसे ग्रहण कर रहा हो, उसके पच्चखाण लेने होते हैं, यदि ग्रहण नहीं करता है तो पच्चखाण क्या ले?

अत: साधु-साध्वी पच्चखाण करते ही नहीं हैं। वे त्याग को पच्चखाण कहते हैं। त्याग को पच्चखाण नहीं कह सकते। पच्चखाण तो 'जिसका त्याग नहीं किया हो, उसके लिए पच्चखाण लेने होते हैं'। फिर वह त्याग में परिणामित होते हैं।

पच्चखाण किसके लेने हैं, वह आपको समझ में नहीं आया?

प्रश्नकर्ता : जो ग्रहण किया है, उसके?

दादाश्री : नहीं, नहीं! छोड़ना है, उसके पच्चखाण लेने हैं। वे लोग तो जो छोड़ दिया है, उसे पच्चखाण कहते हैं, 'हमने पच्चखाण लिए हैं'। जो छोड़ दिया है, उसे पच्चखाण कहते हैं।

व्रत तो बर्तते ही रहते हैं। 'हमें' व्रत बर्तते ही रहते हैं। देखो, हमें अहिंसा महाव्रत रहता है, फिर सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, यानी सभी व्रत हमें बर्तते हैं। परिग्रह तो हम में है ही नहीं। हमें इस शरीर का भी परिग्रह नहीं है अर्थात् व्रत ऐसा-वैसा नहीं है।

अत: अक्रम मार्ग में ऐसी कोई चीज़ नहीं होती। व्रत, नियम वगैरह कुछ भी नहीं होते। यह सब तो संसार मार्ग में होते हैं। ये सारे व्रत, जप, तप, उपधान (एक प्रकार का तप), नियम, ये सब संसार मार्ग में होते हैं।

संसार मार्ग में पुण्य इकट्ठा करते हैं।

भगवान ने दो रास्ते दिखाए हैं। एक पुण्य मार्ग और दूसरा

मोक्षमार्ग दिखाया। मोक्षमार्ग यानी कि 'आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान और जो इन तीनों के साथ चला, वह मोक्ष जाए बगैर रहेगा ही नहीं'।

प्रश्नकर्ता : वे जो पुण्य इकट्ठे किए हैं, वे अगले जन्म में संयोग अच्छे मिले, उसके लिए काम आते हैं न?

दादाश्री : वे जो पुण्य इकट्ठे किए हैं, वे अगले जन्म में हेल्प करते हैं, और क्या करेंगे?

नहीं रहे, इर्यापथिकि प्रतिक्रमण

क्रमिक मार्ग में इर्यापथिकि क्रिया पहले गुणस्थानक से बारहवें गुणस्थानक तक होती है। इर्यापथिकि क्रिया यानी क्या? कि जब तक अहंकार है, तब तक इर्यापथिकि क्रिया होती है। अर्थात् क्षायक समकित होने के बाद इर्यापथिकि क्रिया होती ही नहीं है। क्षायक समकित हो जाने के बाद अहंकार खत्म हो जाने के बाद इर्यापथिकि क्रिया नहीं होती है।

इर्यापथिकि क्रिया यानी क्या, कि 'खुद जो बाहर गया और वापस आया, उस दौरान जो-जो दोष हुए हों, उसके आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान करना'। अहंकार जाने के बाद उसे क्रिया नहीं होती है। जब तक अहंकार है, तब तक थोड़ी भी क्रिया होती है। क्रमिक मार्ग अर्थात् अहंकार रहता है, अंत तक। इसमें (अक्रम में) अहंकार नहीं होता है न!

आपको कुछ समझ में आया?

प्रश्नकर्ता : हाँ, बाद में प्रतिक्रमण करना पड़ता है।

दादाश्री : आपको इर्यापथिकि के प्रतिक्रमण करने नहीं हैं। वे तो क्रमिक मार्ग में करने पड़ते हैं और यदि अक्रम मार्ग में आप प्रतिक्रमण करोगे तो आप देह के मालिक हो, ऐसा फिर प्रमाणित हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : सही है।

दादाश्री : 'आप करोगे' तो क्या हो जाएगा?

प्रश्नकर्ता : इस देह के मालिक मानकर ही फिर प्रतिक्रमण करना है।

दादाश्री : ऐसा प्रमाणित हो गया।

प्रश्नकर्ता : प्रमाणित हो गया तो विरोधाभास है।

दादाश्री : यदि आपको करना हो, आपकी खुद की इच्छा हो तो आपको 'चंदूभाई' से कहना है कि 'आप प्रतिक्रमण कर लो'। बस इतना कहना। और आप बड़े-बड़े दोषों के प्रतिक्रमण करना। बहुत सूक्ष्म बातों में मत उतरना। क्योंकि सूक्ष्म करने जाओगे तो बड़े रह जाएँगे। रह जाएँगे या नहीं?

प्रश्नकर्ता : रह जाएँगे।

वह है करुणाजनक

ऐसा है न कि अंत:करण जिस भाषा को समझे उसी भाषा में प्रतिक्रमण करने के लिए कहा गया है।

अत: इसकी हमें निंदा नहीं करनी है। यह जो है, वह अच्छा है। फिर भी उन लोगों की नीयत तो अच्छी है, नीयत गलत नहीं है।

ऐसा नहीं कहना चाहता कि साधु-आचार्यों या किसी का दोष है। यदि समझ में न आए तो कोई क्या करे?

उन बेचारों का इरादा बहुत सही है कि 'हमें महावीर की आज्ञा का पालन करना है'। वह भी जितनी पालन हो सके उतनी, समझ में आती है, उतनी तो पालन करने के लिए तैयार ही है या नहीं है, उतना हमें देखने की ज़रूरत है और समझ में नहीं आए तो फिर मुख्य बात उनकी नीयत क्या है कि 'इसमें सौ में से अठासी लोग आज्ञा का पालन करने के लिए तैयार ही हैं'। फिर उस मार्ग को हम गलत कैसे कह सकते हैं? लेकिन उन अठासी लोगों को खुद का

एक भी दोष दिखाई नहीं देता है। यों तो बड़ी-बड़ी बातें करते हैं। 'हाँ, थोड़ा गुस्सा है और ऐसा है!' ऐसा बोलते हैं लेकिन दोष हैं, ऐसा नहीं कहते हैं।

हिन्दुस्तान में किसी को भी ऐसा बोलना नहीं चाहिए कि 'मुझे मोक्ष बर्तता है' क्योंकि अभी यदि कोई उकसाए न, तो *उपाधि* (बाहर से आने वाला दु:ख)। उकसाया कि फन फैलाएगा। फिर मोक्ष कहाँ से होगा वहाँ पर? और अपने यहाँ तो यदि दो धौल मारे न, तो भी कोई फन नहीं फैलाता है और कदाचित् फन फैल भी गया तो फिर उसके प्रतिक्रमण करते हैं। दूसरी जगह पर तो प्रतिक्रमण भी नहीं करते और कुछ भी नहीं करते हैं।

प्रतिक्रमण से नि:शेषता

मोक्ष में तो जब क्रेडिट (जमा) और डेबिट (उधार), दोनों खाते खत्म हो तब जा सकते हैं। यदि क्रेडिट शेष रहेगी तो जन्म रहता है। डेबिट शेष रहेगी तो जन्म लेना पड़ता है।

प्रश्नकर्ता : कर्म का शेष रहता है या भाव का शेष रहता है?

दादाश्री : कर्म की माँ कौन है? भाव। माँ है तो बेटा है।

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण, क्रेडिट और डेबिट, दोनों को नि:शेष करने के लिए है?

दादाश्री : हाँ, दोनों के लिए प्रतिक्रमण करने हैं, लेकिन क्रेडिट का याद नहीं रहता न? इसलिए इस क्रेडिट का प्रतिक्रमण तो हमेशा करते रहना है।

उसने पाया महावीर का मार्ग

लेकिन अभी सब ऐसा चलता आया है और बहुत साल पुराना हो चुका है। 2500 वर्ष हो गए हैं। बहुत साल पुराना हो जाए तो ऐसा हो ही जाएगा न! इतना बारह महीने बाद भी करता है, वह अच्छा

है न! बारह महीने बाद प्रतिक्रमण करते हैं, उससे दोष कहीं कम नहीं होते। आप कैसे प्रतिक्रमण करते हैं?

प्रश्नकर्ता : शूट ऑन साइट।

दादाश्री : ऐसे प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं और ऐसे प्रतिक्रमण करने के लिए जागृति चाहिए। जागृति के बगैर कैसे हो सकते हैं? खुद को पता ही नहीं चलता है कि वहाँ पर दोष हुआ, वह भी फिर थोड़ी देर बाद भूल जाता है न! ऐसी जागृति नहीं होती है इसलिए प्रतिक्रमण होते नहीं हैं। अत: जब 'हम' उसे जागृति की स्थिति में लाते हैं तब निरंतर जागृत हो जाता है। फिर वह सब शूट ऑन साइट होता है। किसी के हाथ से उसकी खुद की पतंग की डोर छूट गई हो और पतंग पलटी खा जाए फिर वह शोर मचाएगा तो क्या कुछ फर्क पड़ता है?

प्रश्नकर्ता : छूट जाने के बाद कुछ फर्क नहीं पड़ता।

दादाश्री : ऐसी स्थिति है, आज लोगों की। वह डोर यदि आपके हाथ में पकड़ा दें, फिर पलटी खाएगी तो आप खिंचो तो वापस ठिकाने पर आ जाएगी, वर्ना तब तक किसी भी तरह की कोई परिस्थिति खुद के हाथ में नहीं है।

भगवान महावीर के मार्ग को प्राप्त किया कब कहलाता है कि 'जब रोज़ खुद के सौ-सौ दोष दिखे, रोज़ के सौ-सौ प्रतिक्रमण होते हो, उसके बाद भगवान महावीर के मार्ग पर आया कहलाता है। उसके बाद 'स्वरूप का ज्ञान' तो अभी कितना दूर है! लेकिन यह तो चार पुस्तकें पढ़कर 'स्वरूप' पा लेने का कैफ लेकर घूमता है। ऐसे तो 'स्वरूप' का एक बूँद भी पाया नहीं कहलाएगा। जहाँ 'ज्ञान' रुका है, वहाँ कैफ ही बढ़ेगा। कैफ से ज्ञानावरण और दर्शनावरण का निरावरण रुका है।

अज्ञान दशा में प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : यथार्थ प्रतिक्रमण कैसे करने हैं?

दादाश्री : यथार्थ प्रतिक्रमण, आपको मैं दृष्टि दूँ, उसके बाद काम के। क्योंकि जागृति आए बगैर लोगों से प्रतिक्रमण हो नहीं सकते। और जागृति ज्ञान दिए बगैर नहीं आती है। जब ज्ञान देते हैं, बाद में जागृति निरंतर रहती है। ऐसे तो मैं आपको प्रतिक्रमण के बारे में बताऊँगा, समझाऊँगा, फिर भी कल आप वापस भूल जाओगे।

अब आपको यदि तुरंत का ही याद नहीं आता है तो शाम को क्या याद आएगा? पूरा दिन उलझा हुआ और पूरा दिन घबराया हुआ, फिर दोष कैसे याद आएँगे? जागृति ही कहाँ है? *बेभानपने* (बेहोशी) में! बेहोश घूमता है। 'मैं कौन हूँ' इसका भान नहीं है, अतः दोष कैसे दिखाई देंगे? दोष दिखेंगे तो कल्याण होगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जिन लोगों ने ज्ञान नहीं लिया हो, वे प्रतिक्रमण कर सकते हैं? जिन्होंने ज्ञान नहीं लिया है, ऐसे लोगों को यदि हम प्रतिक्रमण क्रिया समझाएँगे तो क्या उन्हें परिणाम मिलेगा?

दादाश्री : नहीं हो सकते, नहीं कर सकते। जागृति नहीं रहती न! ज्ञान से सारे पाप भस्मीभूत हो जाते हैं इसलिए जागृति उत्पन्न होती है और जागृति उत्पन्न होती है तो यह सब ध्यान में रहता है।

प्रश्नकर्ता : यानी यह प्रतिक्रमण का इलाज हर एक को दे सके ऐसा नहीं है।

दादाश्री : हो सकता नहीं न! दूसरों को उपयोग में नहीं आता है। लेकिन हम कहते हैं कि थोड़ा-बहुत हो पाए, उतना तो करना। थोड़ा-बहुत करेगा तो भी उसे लाभ होगा। लेकिन उसे जागृति रहती नहीं न! जागृति कैसे रहेगी? फिर भी थोड़ा-बहुत लाभ होता है, यदि ऐसे प्रतिक्रमण जानता होगा तो! लेकिन इस इलाज को जानते ही नहीं हैं, उन्हें क्या लाभ होगा?

अर्थात् पूरा जगत् जागृति नहीं होने से बारह महीने बाद पर्युषण करता है। बिल्कुल जागृति नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : आपने किसी दिन सामायिक या कुछ किया है?

दादाश्री : हम प्रतिक्रमण ही करते हैं, हमेशा ही प्रतिक्रमण करते हैं।

प्रश्नकर्ता : आपसे ज्ञान होने से पहले की बात पूछ रहा हूँ।

दादाश्री : उन दिनों में ऐसा नहीं था।

ज्ञान से पहले भी हम प्रतिक्रमण करते थे लेकिन वे कैसे? 'यह गलत कर्म बंध रहा है', ऐसे पछतावे सहित प्रतिक्रमण, लेकिन वे यथार्थ प्रतिक्रमण नहीं कहलाते। ज्ञान के बाद यथार्थ प्रतिक्रमण होते हैं।

समकित द्वारा यथार्थ प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण शुद्ध कैसे गिने जाते हैं? यथार्थ प्रतिक्रमण कैसे होते हैं?

दादाश्री : समकित होने के बाद यथार्थ प्रतिक्रमण होते हैं। सम्यक्त्व होने के बाद, दृष्टि सीधी होने के बाद, आत्म दृष्टि होने के बाद यथार्थ प्रतिक्रमण हो सकते हैं। लेकिन तब तक यदि प्रतिक्रमण करोगे और पछतावा करोगे तो उससे सब कम हो जाएगा। आत्म दृष्टि नहीं हुई हो फिर भी यदि जगत् के लोग गलत हो जाने के बाद पछतावा करेंगे और प्रतिक्रमण करेंगे तो उससे पाप कम बंधेंगे। प्रतिक्रमण, पछतावा करने से कर्म खत्म भी हो सकते हैं!

कपड़े पर चाय का दाग़ गिरते ही तुरंत धो देते हैं, वह किसलिए?

प्रश्नकर्ता : ताकि दाग़ निकल जाए।

दादाश्री : उसी तरह यदि अंदर दाग़ लग जाए तो तुरंत धो देना चाहिए। ये लोग तुरंत धो देते हैं। कोई कषाय उत्पन्न हुआ, कुछ हुआ कि तुरंत धो देते हैं तो साफ का साफ, सुंदर का सुंदर! आप तो बारह महीने में एक दिन करते हो, उस दिन सारे कपड़े भिगो देते हो।

हमारा 'शूट ऑन साइट' प्रतिक्रमण कहलाता है। यानी आप जो

करते हो, उसे प्रतिक्रमण नहीं कह सकते। क्योंकि आपका एक भी कपड़ा नहीं धुलता है और हमारे तो सब धुलकर स्वच्छ हो गए हैं। प्रतिक्रमण तो उसे कहते हैं जिससे कपड़े धुलकर स्वच्छ हो जाए!

हर रोज़ एक-एक कपड़ा धोना पड़ता है। यह तो बारह महीने होने के बाद बारह महीनों के सारे कपड़े धोते हैं! भगवान के वहाँ तो ऐसा नहीं चलेगा। ये लोग बारह महीने बाद कपड़े उबालते हैं या नहीं? यों तो एक-एक धोने पड़ते हैं। जब हर रोज़ के पाँच सौ-पाँच सौ कपड़े धोए जाएँगे तब काम होगा।

जितने दोष दिखते हैं, उतने कम हो जाते हैं। अभी भी दोष नहीं दिखते हैं, उसका क्या कारण है? उतना अभी भी कच्चा है। क्या बगैर दोष के हो गए हैं, जो नहीं दिखता है?

भगवान ने हर रोज़ बहीखाता लिखने के लिए कहा था जबकि अब तो बारह महीने बाद बहीखाता लिखते हैं। जब पर्युषण आता है, तब। भगवान ने कहा था कि 'यदि सचमुच में व्यापारी है तो हर रोज़ लिखना और शाम को हिसाब निकालना'। बारह महीने बाद बही लिखने पर फिर क्या याद रहेगा? उसमें कोई भी रकम याद रहेगी? भगवान ने कहा था कि 'सचमुच का व्यापारी बनना और रोज़ की बही रोज़ लिखना और बही में कुछ भूल हो जाए, अविनय हो जाए तो तुरंत ही प्रतिक्रमण कर लेना, उसे मिटा देना'।

❖❖❖❖❖

[4]

अहो! अहो! ये जागृत दादा!

निर्दोष दृष्टि फिर भी बोलते हैं दोषित

इस दुनिया में सभी निर्दोष हैं फिर भी देखो, ऐसी वाणी निकल जाती है न! हमने तो इन सब को निर्दोष देखा है, एक भी दोषित नहीं है। हमें दोषित दिखता ही नहीं है। सिर्फ दोषित बोला जाता है। हम ऐसा बोल सकते हैं? क्या हमें ऐसा अनिवार्य है? किसी के लिए नहीं बोल सकते। उसके बाद तुरंत ही उसके प्रतिक्रमण चलते रहते हैं। उतना यह हम में चार डिग्री कम हैं, उसका यह फल है। लेकिन प्रतिक्रमण किए बगैर नहीं चलता है।

हम दखलंदाज़ी करते हैं, कड़क शब्द बोलते हैं, ऐसा जान-बूझकर बोलते हैं लेकिन कुदरत में तो हमारी भूल हो ही गई न! तो हम उसका प्रतिक्रमण करवाते हैं। हर एक भूल का प्रतिक्रमण होता है। सामने वाले का मन टूट न जाए हमारा ऐसा होता है।

प्रश्नकर्ता : शुभ आशय से डाँटे फिर भी प्रतिक्रमण करना पड़ता है?

दादाश्री : शुभ आशय से पुण्य बंधता है। ज्ञान नहीं हो और इस पर क्रोध करेंगे फिर भी पुण्य बंधता है क्योंकि आशय पर आधारित है। इस जगत् में सब आशय से बंधता है।

मुझे जो 'हैं' उसे 'नहीं है' ऐसा नहीं कहना चाहिए और 'नहीं है' उसे 'है' ऐसा नहीं कहना चाहिए। इसलिए मुझसे कुछ लोगों को दुःख हो जाता है। जो 'नहीं है' उसे मैं 'है', ऐसा कहूँगा तो आपके मन में भ्रम बैठ जाता है और यदि ऐसा बोलता हूँ तो उन लोगों को मन में उल्टा पड़ता है कि 'ऐसा क्यों बोलते हैं?' ऐसा कह दिया तो मुझे रोज़ उस तरफ का प्रतिक्रमण करना पड़ता है! क्योंकि उसको दुःख तो होना ही नहीं चाहिए। वह मानता है कि यहाँ इस पीपल में भूत है और मैं कहता हूँ कि इस पीपल में भूत जैसी चीज़ ही नहीं है। इसका उसे दुःख तो होता है, इसलिए फिर मुझे प्रतिक्रमण करना पड़ता है। वह तो हमेशा करना ही पड़ता है न! मैं किसी को दुःखी करने के लिए नहीं आया हूँ। हम किसी को दुःख हो, उसके लिए नहीं आए हैं, हम तो सुख देने के लिए आए हैं और ज्ञानी व अज्ञानी, दोनों को सुख नहीं दे सकते, इसलिए इस तरफ का प्रतिक्रमण करना पड़ता है।

प्रश्नकर्ता : कई बार अज्ञान होता है, वह ज्ञान का चोला पहनकर प्रकट होता है।

दादाश्री : अज्ञान प्रकट होगा तो टिकेगा नहीं। एक सेकन्ड भी टिकेगा नहीं और अपने यहाँ तो बिल्कुल टिकेगा नहीं। क्योंकि अपना ज्ञान कैसा है? डिमार्केशन वाला ज्ञान है। यह अज्ञान और यह ज्ञान, दोनों के बीच डिमार्केशन वाला है इसलिए यहाँ तो कोई भी चलता ही नहीं न!

फिर उसे दुःख हो गया तो प्रतिक्रमण करना पड़ता है। जितना सुधार लिया जाए, उतना सुधार लेते हैं फिर कि 'भाई, हम से भूलचूक हुई हो तो हम प्रतिक्रमण करते हैं'।

लोगों को दुःख तो देना ही नहीं चाहिए। आपको उसकी नासमझी लगती है लेकिन उसके मन से तो वह समझ ही है न! हमें उसकी नासमझी लगती है लेकिन वह तो उसे समझ ही मान बैठा है न, हम उसे दुःख क्यों पहुँचाए?

तो प्रतिक्रमण नहीं

प्रश्नकर्ता : हमें ऐसा भाव रहता हो कि 'सामने वाला उदयकर्म के अधीन व्यवहार करता है' तो फिर प्रतिक्रमण करने की ज़रूरत नहीं है न?

दादाश्री : ऐसी स्थिति अच्छी कहलाती है न! लेकिन प्रतिक्रमण तो, यदि हमें उसके प्रति उल्टे भाव हुए हो तभी करने हैं।

प्रश्नकर्ता : और यदि नहीं हुए हो तो नहीं न?

दादाश्री : नहीं।

प्रश्नकर्ता : हम उसे गलत मानते ही नहीं है।

दादाश्री : तो फिर नहीं।

पूरा जगत् निर्दोष है। एक क्षण के लिए भी कोई जीव दोषित हुआ नहीं है। यह जो दोषित दिखाई देते हैं, वे खुद के दोष के कारण दिखाई देते हैं। दोषित दिखाई देते हैं इसीलिए कषाय करते हैं, वर्ना तो कषाय ही नहीं करते।

यानी दोषित दिखाई देते हैं, इसलिए गलत ही दिखते हैं। अंधा अंधे से टकराता है, ऐसी बात है यह। यदि अंधे लोग टकराएँ तो हम जान जाते हैं न, कि ये अंधे लगते हैं, इसलिए... इतने सारे टकराते हैं, उसका क्या कारण है? दिखाई नहीं देता।

अन्यथा जगत् में कोई दोषित है ही नहीं। दोष दिखते हैं इसलिए कषाय हो रहे हैं।

सत्य-असत्य, सापेक्ष

प्रश्नकर्ता : सत्य बात है, तो फिर उसके प्रतिक्रमण क्यों करने हैं?

दादाश्री : यह जो सत्य है, वही असत्य है। जो-जो सत्य हैं, वही सब असत्य हैं। कौन सी बात सत्य है, वह आप बताओ। आपको

कौन सी बात सत्य लगती है? मैं आपको बता सकता हूँ कि 'वह असत्य है'।

प्रश्नकर्ता : यदि हम सच कहते हैं, हम मुँह पर कह देते हैं तो उसे बुरा लग जाता है तो फिर उसका प्रतिक्रमण क्यों?

दादाश्री : कोई भी सच नहीं कह सकता। इस हिन्दुस्तान में ऐसा कोई इंसान नहीं है कि जो सच कह सके। इंसान सच कैसे कह पाएगा? वह तो अपनी-अपनी समझ से सच है। दूसरे की समझ से गलत लगता है न?

हमें कोई दोषित दिखाई ही नहीं देता। यह जो वाणी निकलती है, उसके साथ ही फिर प्रतिक्रमण होते हैं, यानी 'ऐसा नहीं होना चाहिए' ऐसे। हमारा अभिप्राय अलग होता है कि ऐसा है नहीं, दिखता है कैसा? निर्दोष दिखता है, फिर यह वाणी क्यों ऐसी निकलती है? अवर्णवाद नहीं होना चाहिए। हमें तो मौन रहना चाहिए। अब मौन रहेंगे तो आप सब नहीं जान पाओगे कि क्या हुआ, वह भी सत्य नहीं कहलाएगा। यह सत्य नहीं कहलाएगा।

शुद्धात्मा के अलावा सब झूठा

प्रश्नकर्ता : दूसरे की समझ से गलत लगता हो तो उसका क्या करना चाहिए?

दादाश्री : ये जितने सत्य हैं, वे सारे व्यवहारिक सत्य हैं। वे सारे झूठे हैं। व्यवहार के लिए सत्य हैं। मोक्ष में जाना हो तो सब झूठ ही हैं। सब का प्रतिक्रमण करना पड़ता है। 'मैं आचार्य हूँ', उसका भी प्रतिक्रमण करना पड़ेगा।

अत: यह सभी कुछ झूठ हैं, सभी झूठे हैं। आपको ऐसा समझ में आता है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : आता ही है।

दादाश्री : सभी झूठे हैं। सभी तो नहीं समझ पाने के कारण

कहते हैं कि 'मैं सत्य बोलता हूँ'। अरे, सत्य बोलता तो सामने कोई विरोध ही नहीं होता।

उसे सत्य कहते हैं?

मैं जब यहाँ पर बोलता हूँ तब क्या कोई मेरे सामने बोलने को तैयार होता है? विवाद होता है? मैं जो भी बोलता हूँ, वह सब सुनते ही रहते हैं न! विवाद नहीं करते हैं न! यह सत्य है। यह वाणी सत्य है व सरस्वती है और जिस वाणी से टकराव हो जाता है, वह बात गलत है, एक्ज़ेक्टली गलत!

किसी अन्य जगह तो विरुद्ध बोलते हैं कि 'बेअक्ल, बोल मत'। यानी वह भी गलत, यह भी गलत और फिर सुनने वाले भी गलत। सुनने वाले कुछ भी नहीं बोलते और वे सभी, पूरा समूह ही गलत।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अपने कर्म का उदय ऐसा हो कि हम सामने वाले को गलत ही लगते हैं, हमारी बात सत्य हो, बिल्कुल ठीक हो, हम कहे कि 'यह मैंने नहीं किया था' फिर भी कहते हैं 'नहीं, आपने ऐसा ही किया था', तो क्या वह अपने ही कर्म का उदय है न? तभी उसे गलत लगा न?

दादाश्री : सच होता ही नहीं। कोई सच बोल ही नहीं सकता है, झूठ ही बोलते हैं। सच तो, सामने वाला कबूल करे, वह सच है, वर्ना खुद की समझ से सत्य माना हुआ है। खुद का माना हुआ सत्य लोग स्वीकार नहीं करते हैं।

इसलिए भगवान ने कहा है कि सत्य किसका? वीतराग वाणी होगी उसका! वीतराग वाणी यानी क्या? वादी कबूल करें, प्रतिवादी कबूल करें, प्रमाण माना जाता है। ये तो सारी राग-द्वेष वाली वाणी, झूठी-कपटी, जेल में डाल दे ऐसी, उसमें सत्य हो सकता है क्या? राग वाली वाणी में सत्य नहीं हो सकता। क्या आपको लगता है कि उसमें सत्य है? हम जब यहाँ डाँटते हैं, तब (सामने वाले का) आत्मा कबूल करता है। विवाद नहीं होता। क्या अपने यहाँ किसी दिन विवाद

हुआ है? कोई ज़रा कच्चा पड़ गया होगा, अन्यथा कोई विवाद नहीं हुआ है। दादा के शब्दों पर फिर से कोई बोला नहीं है, क्योंकि आत्मा की निर्मल प्योर बात, प्रत्यक्ष सरस्वती! देशना!

और क्या राग-द्वेष वाली वाणी को सच कह सकते हैं?

प्रश्नकर्ता : नहीं कह सकते।

दादाश्री : लेकिन आप तो कहते हैं न, सत्य?

प्रश्नकर्ता : उसे तो व्यवहार सत्य कहते हैं न?

दादाश्री : 'व्यवहार सत्य' अर्थात् 'निश्चय में असत्य' है।

व्यवहार सत्य यानी सामने वाले को यदि फिट हुआ तो सत्य और नहीं फिट हुआ तो असत्य। व्यवहार सत्य यानी वास्तव में तो सत्य है ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : हम जिसे सत्य मानें और सामने वाले को फिट नहीं हुआ...

दादाश्री : वह सब झूठ। पूरा ही झूठ। फिट नहीं हुआ, वह झूठ। हम भी कहते हैं न, किसी को यदि हमारी बात समझ में नहीं आती तो उनकी भूल नहीं निकालते, हमारी भूल है, कहते हैं कि हमारी ऐसी कैसी भूल रह गई कि 'उन्हें बात समझ में नहीं आई'। बात समझ में आनी ही चाहिए। यदि सामने वाले को समझ में नहीं आए तो उसमें सामने वाले का दोष नहीं निकालते, हम हमारा दोष देखते हैं। मुझे उन्हें समझाना आना चाहिए। यानी कि सामने वाले का दोष तो है ही नहीं। सामने वाले का दोष देखना तो भयंकर भूल कहलाती है। हमें तो सामने वाले का दोष लगता ही नहीं है। किसी दिन लगा भी नहीं है।

यह तो, हमें पूछते हैं इसलिए जवाब देना पड़ता है और फिर हमें प्रतिक्रमण करना पड़ता है। अब सत्य तो हमेशा प्रतिक्रमण सहित ही कहा जाता है। यदि प्रतिक्रमण नहीं है तो ऐसा सत्य, सत्य ही नहीं है। जगत् का सत्य निश्चय में असत्य है।

ऐसे बोल कारुण्य धारा में से...

हम तो झट से दवाई कर देते हैं और फिर हम तो वीतराग ही होते हैं। हमें राग-द्वेष नहीं होते। दवाई करने में तैयार। और गलती से भी यदि उसकी ओर ज़रा भी अभाव हो जाए, वैसे तो होता ही नहीं है, लेकिन कभी हो जाए तो हमारे पास प्रतिक्रमण रूपी दवाई होती है, इसलिए तुरंत ही दवाई कर देते हैं, तुरंत ही! प्रतिक्रमण रूपी दवाई रहती है न!

यह तो मैं इस जन्म में महाराज के बारे में ऐसा कहता हूँ। पूरे जगत् के तमाम धर्म मार्गों में जो सब उल्टा कर रहे हैं, उन सब के लिए कहता हूँ। जैसे कि मैं ही धर्म का राजा हूँ! इस तरह से लोगों के बारे में बोलता हूँ जैसे मुझे ही लेना-देना है! लेकिन हमें क्या लेना-देना? मैं तो वन ऑफ द मैन! और ऐसा नहीं कहना चाहिए लेकिन 'लोग इससे छूटने ही चाहिए! इसलिए ऐसा कहकर पाप मोल लिए हैं'। कभी भी वे पाप मुझे भुगतने पड़ेंगे। दूसरा कोई पाप नहीं किया है और मेरे अन्य कोई स्वतंत्र पाप तो है ही नहीं।

नियम क्या है कि किसी भी व्यक्ति से आप ज्ञान की बात कर सकते हो लेकिन वे ऐसे हो, जो ज्ञान नहीं ले सकते, ठंडे हो तो आपको धीमा रखना है, वीतराग होना है। लेकिन इसके पीछे ऐसी करुणा है कि 'आप यहाँ तक आए हो तो प्राप्त कर लो न, भाई! इतना बुखार है फिर भी दवाई नहीं ले रहे हो! दवाई तैयार है' लेकिन ऐसे नियमानुसार नहीं माना जाता है। इसलिए फिर प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं। अपना कोई लेन-देन हुआ हो, उसका प्रतिक्रमण करना पड़ता है। इसे भगवान ने 'करुणा के प्रतिक्रमण' कहा है।

निर्दोष दृष्टि फिर भी सदोष वाणी

अब ऐसा जो कहना पड़ता है न, कि 'यह उचित नहीं है'। ऐसा कहा, वहाँ स्याद्वाद चूक जाते हैं। फिर भी उचित बनाने के लिए ऐसा कहना पड़ता है। लेकिन भगवान तो क्या कहते हैं कि 'यह भी

उचित है, वह भी उचित है, चोर ने चोरी की, वह भी उचित है, इनकी जेब कट गई, वह भी उचित है। भगवान तो वीतराग हैं! दखलंदाज़ी करते नहीं न! खटपट करते नहीं न! और हमें तो सभी में खटपट। हमारे हिस्से में ऐसी खटपट आई।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह भी हमारे रोग निकालने के लिए न?

दादाश्री : हाँ, वह तो लोगों को तैयार करने के लिए। इसमें हेतु अच्छा है और हमारा हेतु हमारे खुद के लिए नहीं है, सभी के लिए है।

साथ ही हमारी प्रतीति में है कि 'दोषित नहीं है'। प्रतीति में निर्दोष है। ऐसे प्रतीति पूरी ही बदली हुई है। अर्थात् निर्दोष है, ऐसा मानकर मैं यह बोलता हूँ।

प्रश्नकर्ता : निर्दोष है, ऐसा समझकर बोलते हैं?

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : तो फिर आपको प्रतिक्रमण क्यों करने पड़ते हैं?

दादाश्री : लेकिन नहीं कहना चाहिए। एक शब्द भी नहीं कहना चाहिए। ऐसा गलत शब्द भी क्यों बोले? यहाँ पर कोई सामने (व्यक्ति) तो है ही नहीं। सामने वाले को दुःख होता नहीं है और आप सब को कोई हर्ज नहीं है कि दादा को अपनी बिलीफ में तो सब निर्दोष ही है। फिर ऐसे भारी शब्द क्यों बोले? इसलिए प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं। भारी शब्द भी नहीं होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : आप तो जब बोलते हो तब भी अलग ही रहते हैं, तो फिर प्रतिक्रमण किसलिए?

दादाश्री : अलग हैं, इसलिए प्रतिक्रमण 'मुझे' नहीं करने हैं। यह अंदर ही अंदर, जो करते हैं न, जो बोलते हैं न, उसे ही कहना है, कि 'तुम प्रतिक्रमण कर लो'। आपके लिए भी ऐसा ही है। यह जो प्रतिक्रमण है, वह 'आपको' नहीं करने हैं, 'चंदूभाई' से कह देना

है। 'आपको' प्रतिक्रमण नहीं करने हैं। जिसने अतिक्रमण किया न, उसी को प्रतिक्रमण करना है।

प्रश्नकर्ता : तो भूल का प्रतिक्रमण कैसे करते हैं?

दादाश्री : फिर प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं। भूल, ज्ञान से संबंधित नहीं होती है। जब कोई स्याद्वाद के विरोध में जाता हो तब उस व्यक्ति पर सख्ती हो जाती है। यदि स्याद्वाद हो तो सख्ती नहीं होनी चाहिए। बिल्कुल, संपूर्ण स्याद्वाद! यह तो स्याद्वाद कहलाता है, लेकिन संपूर्ण स्याद्वाद नहीं कह सकते न! जब केवलज्ञान हो जाएगा तब संपूर्ण स्याद्वाद!

'केवलदर्शन' दिखाए भूल

हमारा ज्ञान अविरोधाभासी है लेकिन वाणी स्याद्वाद नहीं है। इसमें कोई झपट में आ जाता है और तीर्थंकरों की वाणी में कोई झपट में नहीं आता है। वह तो संपूर्ण स्याद्वाद! वे झपट में लिए बिना बोलते हैं। बातें तो वे वैसी ही बोलते हैं, लेकिन झपट में लिए बिना।

प्रश्नकर्ता : आपका यह स्याद्वाद किसी झपट में आ जाता है इसलिए संपूर्ण नहीं कहा गया है, फिर भी वह दर्शन में तो संपूर्ण है न, कि स्याद्वाद में भूल हो गई?

दादाश्री : हाँ, दर्शन तो संपूर्ण, दर्शन में कोई कमी नहीं है। ज्ञान भी है लेकिन ज्ञान में चार डिग्री कम है इसलिए यह वाणी स्याद्वाद नहीं होती। हमें दर्शन संपूर्ण होता है। दर्शन में सब तुरंत ही आ जाता है। तुरंत भूल का पता चल जाता है। तुरंत सूक्ष्मातिसूक्ष्म भूल का भी पता चल जाता है। आपको तो अभी ऐसी भूलों को देखने में बहुत टाइम लगेगा। आप तो स्थूल भूलें देखते हो। दिखाई दे ऐसी बड़ी-बड़ी भूलें ही देखते हो। इसलिए हम कहते हैं न, कि हमारा दोष होता है, फिर भी किसी को हमारा दोष दिखता नहीं है, हमें अपना (दोष) दिखाई देता है।

प्रश्नकर्ता : स्याद्वाद में भूल हो गई, ऐसे सभी दोष दिखाई देते हैं?

दादाश्री : स्याद्‌वाद-अनेकांत में भूल हो गई, ऐसे सभी दोष दिखाई देते हैं। अब हमारा स्याद्‌वाद पूर्णता की ओर जा रहा है। स्याद्‌वाद के संपूर्ण हो जाने पर केवलज्ञान पूर्ण हो जाता है। दर्शन है, इसीलिए तो पता चलता है कि 'यह भूल है'। 'फुल' (पूर्ण) दर्शन है, इसलिए सब से कहा न, कि 'केवलदर्शन' देता हूँ (ज्ञान देते समय)।

हमें प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं क्योंकि कभी कभार हमारे मुँह से ऐसी बातें निकल जाती हैं। देखो न, हमारा उतना अनिवार्य है। कभी-कभी आचार्य के बारे में बोला जाता है! बाकी, किसी के भी बारे में नहीं कहना चाहिए। ऐसा जानते हैं कि 'इस दुनिया में सभी निर्दोष हैं'। फिर किसी के बारे में कहना चाहिए क्या?

प्रश्नकर्ता : नहीं कहना चाहिए।

दादाश्री : ऐसी ही वाणी निकलती है और बाद में तुरंत ही उसके लिए हमारे प्रतिक्रमण चलते रहते हैं। अरे! देखो न, कैसी दुनिया है?

जो वाणी बोलते हैं, उस पर ही अलग अभिप्राय। यह जगत् कैसा है? जो वाणी बोलते हैं, उस पर अभिप्राय कैसा है कि 'यह ऐसा नहीं है, यह गलत है, ऐसा नहीं होना चाहिए'। लेकिन यह दुनिया कैसी चल रही है, उसके साथ जागृति में रहकर चलते हैं।

बोलते हैं और साथ ही ऐसी जागृति रहती है कि 'ऐसा नहीं होना चाहिए'। क्योंकि हमने पूरे जगत् को निर्दोष देखा है। सिर्फ अनुभव में ही नहीं आया है। वह अनुभव में किसलिए नहीं आया? तो यह जो वाणी है, वह दखल करती है।

प्रश्नकर्ता : दखल करती है, फिर भी आपकी तो निरंतर जागृति है।

दादाश्री : नहीं, लेकिन जागृति होने के बावजूद भी जब तक ऐसी वाणी बंद नहीं होगी, तब तक पूर्णपद तो मिल ही नहीं सकता न! यह वाणी कैसी निकलती है? ऐसी जोशीली!

अब यह वाणी कब भरी थी? जब जगत् निर्दोष देखा नहीं था, उस वक्त भरी थी कि 'ये, ये ऐसे दोषित, ऐसा क्यों करते हैं? ऐसा क्यों करते हैं? ऐसा नहीं होना चाहिए, जैन धर्म ऐसा क्यों है? यह जो भरा था, वह आज निकल रहा है। तब के अभिप्राय आज निकल रहे हैं और आज उस अभिप्राय से हम सहमत नहीं हैं।

ज्ञानी के प्रतिक्रमण

प्रतिक्रमण कर लिए सब? प्रतिक्रमण करना, वर्ना साफ नहीं रहेगा। हर रोज़ प्रतिक्रमण करना, दादा की हाज़िरी में आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान!

प्रश्नकर्ता : अपनी भावना नहीं हो, उनकी विराधना करने की, तो फिर क्या प्रतिक्रमण करने चाहिए? हम तो जो सच्ची बात है, वही कह रहे हैं न?

दादाश्री : ऐसा है न, हम जिस वक्त बोलते हैं, उस वक्त हमारा ज़ोरदार प्रतिक्रमण चल रहा होता है, बोलते ही।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जो सच्ची बात है, वह कह रहे थे, उसमें क्या प्रतिक्रमण करना?

दादाश्री : नहीं, लेकिन फिर भी प्रतिक्रमण तो करने ही पड़ते हैं न! आपने किसी का गुनाह क्यों देखा? निर्दोष है, फिर भी दोष क्यों देखा? निर्दोष है, फिर भी उसकी बदनामी तो हुई न? जिससे बदनामी हो, वैसी सच्ची बात बोलनी ही नहीं चाहिए। ऐसी सच्ची बात गुनाह है। संसार में ऐसी सच्ची बात बोलना, वह गुनाह है। सच्ची बात हिंसक नहीं होनी चाहिए। यह हिंसक बात कहलाती है।

हम तुरंत प्रतिक्रमण करते हैं। हमने साधु-आचार्य सब को निर्दोष देखा है। हमारे लिए एक भी दोषित नहीं है और दोषित जो बोला जाता है, उसमें भी हमें कोई दोषित दिखाई ही नहीं देता। लेकिन इतना है कि दोषित कहने के बाद फिर तुरंत हमारे प्रतिक्रमण हो जाते हैं।

इतनी हमारी यह चार डिग्री कम है न, उसका यह फल है। बाकी, नहीं तो संपूर्ण वीतरागता बरतती है।

और आपको तो बहुत ही प्रतिक्रमण करने पड़ेंगे। मैं बोलता हूँ लेकिन हमें जागृति रहती है लेकिन आपको ऐसा नहीं कहना चाहिए। जागृति रहनी चाहिए न! मुँह पर (सामने) नहीं कहना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण नहीं करेंगे तो फिर क्या होगा? दोष लगेगा?

दादाश्री : वह मुकदमा कर देगा। लोगों ने अपने पर कोर्ट में सौ मुकदमे किए होते हैं। उनका *निकाल* नहीं करेंगे तो क्या होगा? मुकदमे खड़े ही रहे, यानी जब तक प्रतिक्रमण नहीं करेंगे, तब तक मुकदमे खड़े ही रहेंगे।

आत्मज्ञान पश्चात् जलकमलवत्

प्रश्नकर्ता : वैसे 'यह' ज्ञान लेने के बाद जलकमलवत् (जल में कमल समान) रह सकते हैं।

दादाश्री : हाँ, जलकमलवत् ही रहता है। यह मार्ग ही जलकमलवत् का है। ऐसे कितने साल आप रह पाए? आपको कितने साल हुए ज्ञान लिए?

प्रश्नकर्ता : एक साल पूरा होगा।

दादाश्री : तो जब ऐसे दस साल हो जाएँगे, तब क्या दशा होगी? जब पहले साल में इतना ज़ोर कर रहा है, तो दस साल होने पर क्या दशा होगी? और इस जगत् में सब लोग बोलते हैं, 'अरे! हिमालय में भी जलकमलवत् रहते हैं!' लेकिन वे रह नहीं सकते, वे सब बातें हैं, कल्पनाएँ हैं सारी! कल्पनाओं के जाले!! वे यदि कहते हैं कि 'हम जलकमलवत् रहते हैं' तो जब वे जा रहे हों और तब यदि आप मुझे बताते हो कि 'ये जलकमलवत् रहते हैं' तो मैं उनसे कहूँगा कि 'महाराज, आपमें अक्ल का छींटा भी नहीं है'। तब तुरंत ही 'जलकमलवत्' का पता लग जाएगा! किसी भी महाराज से ऐसा नहीं

कहना चाहिए। व्यर्थ ही किसी का अपमान करना गुनाह है। इसलिए फिर महाराज को मैं दो सौ एक रुपया दे दूँगा और यदि वे दो सौ से नहीं मानेंगे, तब क्या कहूँगा? कि 'दिमाग़ ज़रा ऐसा है, ब्रदर (भाई) से झगड़ा हो गया है'। तब वे कहेंगे 'हाँ, इसका दिमाग़ ज़रा ऐसा ही है'। फिर बाद में मेरे सिर पर हाथ भी रख देंगे (आर्शीवाद देते हैं)!

इन लट्टूओं को मूर्ख बनाने में कितनी देर लगती है? निरे लट्टू! क्योंकि जिसे हार जाना आता है, वहाँ लट्टू कितना जीतेंगे? जिसे हार जाना आ गया, ऐसी कला आ गई, वहाँ लट्टू कितना कूदेगा?!

यह लट्टू कौन? हम व्यक्ति को नहीं कहते हैं। जिसे कृष्ण भगवान ने कहा है कि 'प्रकृति ज़बरदस्ती नचाती है और खुद नाचता है, फिर भी कहता है, 'मैं नाचा'', उसे लट्टू कहते हैं। कृष्ण भगवान ने कहा है, उसे ही कहते हैं। इसे दूसरे शब्दों में लट्टू कहा जाता है। और इसे, कोई लट्टू कहता नहीं है।

ऐसा बुरा लगे ऐसा कौन कहेगा? मुझे तो प्रतिक्रमण आता है इसलिए कहता हूँ। मैं तो बोल भी देता हूँ और दवाई भी पी लेता हूँ। लेकिन जगत् में से उल्टी बात निकल जानी चाहिए! उल्टे को ही प्रोत्साहन मिला है, वह निकल जाना चाहिए। फिर प्रतिक्रमण करें तो क्या हर्ज है? लेकिन प्रोत्साहन तो नहीं मिलेगा।

हम उसे 'अक्ल नहीं है', ऐसा कहें तो वह जलकमलवत् नहीं रहता न? जल भी नहीं रहता है और कमल भी नहीं रहता। अब लोग क्या कहते हैं? अपनी परीक्षा लो न, महीने तक। अरे भाई, इसमें नहीं ली जाती, परीक्षा में तो तू पागल हो जाएगा।

अत: रुपया (सिक्का) तुरंत बजाकर देखो न, बोदा है या कलदार है? पता लग जाएगा। फिर दो सौ रुपयों का खर्च दो! फिर ऐसे भी होते हैं जो दो सौ रुपयों में नहीं मानते। तब आप कहना, 'दिमाग़ ज़रा ऐसा है, ज़रा खिसक गया है' तो खुश, 'वर्ना कोई अच्छा व्यक्ति तो हमें कहेगा ही नहीं। यह तो खिसक गया है इसलिए ऐसा कह रहा है'। उन्हें न्याय

करना तो आता है न? लेकिन देखो, हमें तो पता चल गया न? हमें जो चाहिए था कि 'यह जल में है या कमल में, दोनों ही खत्म हो गए न? हम दुकान में बैठना बंद कर देंगे न? फिर परेशानी होगी क्या उसमें?

ऐसी परीक्षा करनी, कोई सिखाता नहीं। लोग क्या समझते हैं कि यदि मुझ पर प्रयोग करेंगे तो? और मैं तो, 'यदि मुझ पर करेंगे तो खुश हूँ' करके भी समझदार बनते हैं तो अच्छा है। लेकिन परीक्षा बिना के बोदे, कब तक घर में रख छोड़ोगे? बाहर लेने जाएँ तो जलेबी का एक टुकड़ा भी नहीं आएगा।

इतना ही है मोक्षमार्ग

आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान, वह मोक्षमार्ग है। अपने महात्मा क्या करते हैं? पूरे दिन आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान ही करते रहते हैं। अब यदि उन्हें कहें कि 'आप इस तरफ चलो, व्रत, नियम करो।' तो कहेंगे, 'हमें क्या करना है, व्रत, नियम से? हमें भीतर ठंडक है, हमें चिंता नहीं है। निरूपाधि रहती है। निरंतर समाधि में रहते हैं। फिर किसलिए?' वह कलह कहलाता है। उपधान (एक प्रकार का तप) तप और फलाना तप, वे सब तो उलझे हुए लोग करते हैं। जिन्हें ज़रूरत हो, शौक हो। इसलिए हम कहते हैं कि 'यह तप जो है, वह तो शौकीन लोगों का काम है। जो संसार के शौकीन हैं, उन्हें तप करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसी मान्यता है कि 'तप करने से कर्मों की *निर्जरा* (आत्मप्रदेश में से कर्मों का अलग होना) होती है'।

दादाश्री : कभी भी ऐसा नहीं होता। किस तप से *निर्जरा* होती है? आंतरिक तप चाहिए। अदीठ तप, जो कि हम कहते हैं न, कि अपने सब महात्मा अदीठ तप करते हैं, जो तप आँख से दिखाई नहीं देता है। आँखों से दिखाई दे, ऐसे तप और जो जाने जाते हैं, ऐसे तप, इन सब का फल पुण्य, और अदीठ तप यानी अंदर का तप, आंतरिक तप, जो बाहर नहीं दिखाई देता है, उन सब का फल है, 'मोक्ष'।

इसलिए लोगों के मन में ऐसा होता है कि, 'अरे! हम तो व्रत,

नियम नहीं करते हैं। ये व्रत, नियम मोक्षमार्ग के लिए नहीं हैं। नियम-वियम तो जिन्हें संसार में भटकना हैं, उनके लिए नियम हैं। जिन्हें मोक्ष जाना हैं, उन्हें तो तेज़ी से आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान की गाड़ी में बैठ ही जाना है। निरंतर चौबीसों घंटे वही करते रहना है, दूसरा कुछ करना नहीं है।

माफी माँगो सब कषायों की

इन साध्वीजियों को क्या करना चाहिए? ये साध्वीजियाँ जानती हैं कि 'मुझे कषाय होते हैं, पूरे दिन कषाय होते रहते हैं'। तो उन्हें क्या करना चाहिए? 'शाम को बैठकर, पूरा एक *गुंठाणा* (48 मिनट, गुणस्थानक), यह कषाय भाव हुआ, इनके प्रति यह कषाय भाव हुआ, इनके प्रति यह कषाय भाव हुआ' ऐसे बैठकर, साथ में वे प्रतिक्रमण करें और ध्यान से फिर प्रत्याख्यान भी करें कि 'ऐसा नहीं करूँगी, ऐसा नहीं करूँगी', तो वे मोक्षमार्ग पर चल रही हैं।

वे बेचारी ऐसा तो कुछ करती नहीं हैं, तब फिर क्या हो सकता है? यदि मोक्षमार्ग समझ लें तो चलेंगे न, समझने की ज़रूरत है।

प्रश्नकर्ता : जब तक वे प्रत्यक्ष माफी नहीं माँगते, तब तक उनमें डंक तो रहता ही है न? अतः प्रत्यक्ष माफी तो माँगनी ही पड़ती है न?

दादाश्री : प्रत्यक्ष माफी माँगने की ज़रूरत ही नहीं है। भगवान ने मना किया है। यदि भला व्यक्ति हो तो आप उससे माफी माँगना, प्रत्यक्ष माफी माँगना और यदि वह व्यक्ति कमज़ोर होगा तो माफी माँगने पर ताना मारेगा और फिर कमज़ोर व्यक्ति और कमज़ोर होता जाएगा। इसलिए प्रत्यक्ष मत माँगना और प्रत्यक्ष माँगना हो तो बहुत भला व्यक्ति हो तभी माँगना। कमज़ोर तो बल्कि ऊपर से ताने मारेगा। पूरा जगत् कमज़ोर ही है। बल्कि ताना मारेगी, 'हें! मैं कह रही थी न, तू समझ नहीं रही थी, मान ही नहीं रही थी। अब आई ठिकाने पर'। अरे भाई, वह ठिकाने पर ही है, वह बिगड़ी नहीं है, तू बिगड़ी हुई है, वह सुधरी हुई है, सुधर रही है।

ऐसा समझ में नहीं आता है, बेचारों को भान नहीं होता न!

यदि ज़रा भी भान रहे न, उसकी बात ही अलग होती है। ज़रा भी भान नहीं है, इतना भी भान नहीं है।

क्रियाकांड से नहीं है मोक्षमार्ग

मोक्षमार्ग यानी आलोचना-प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान। उसका नाम ही मोक्षमार्ग। खुद के गुनाह ज़ाहिर करना। फिर वह गलत है, ऐसा पश्चाताप करना और फिर से ऐसा नहीं करूँगा, ऐसा निश्चित करना है। ऐसा है, अपना यह 'मोक्षमार्ग'।

मोक्षमार्ग में क्रियाकांड या ऐसा कुछ नहीं होता। सिर्फ संसार मार्ग में क्रियाकांड होते हैं। संसार मार्ग यानी जिन्हें भौतिक सुख चाहिए, दूसरा कुछ चाहिए, उनके लिए क्रियाकांड हैं, मोक्षमार्ग में ऐसा कुछ नहीं होता। मोक्षमार्ग क्या है? आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान। गाड़ी चलाते ही जाओ। ऐसा अपना मोक्षमार्ग है। उसमें क्रियाकांड और ऐसा सब नहीं होता न! 'क्रियाकांड' आपको समझ में आया न! किसके लिए? भौतिक सुखों के लिए, इसलिए भगवान ने कहा था कि जिन्हें भौतिक सुख चाहिए, वे यह तप करना, इससे आपको भौतिक सुख, देवगति के सुख प्राप्त होंगे। संसार के सुख प्राप्त होंगे, लेकिन यदि आपको वे सुख नहीं चाहिए तो अपना मोक्षमार्ग है। फिर वहाँ पर लोग कहेंगे कि 'वहाँ क्रियाएँ क्यों नहीं हैं?' 'भाई, हमारी तो क्रिया की लाइन नहीं है न, हमारा धंधा, बिज़नेस नहीं है न!' वे झूठ बोलते हैं, उल्टा बोलते हैं, उसमें उनका दोष नहीं है। वे कर्म के उदय के अधीन बोलते हैं। आप भी कर्म के उदय के अधीन बोलिए लेकिन आप उसको जानने वाले होने चाहिए कि 'यह झूठ बोला जा रहा है'। और वह पुरुषार्थ है।

पुरुष और प्रकृति, प्रकृति क्या कर रही है, उसे जानना चाहिए और प्रकृति जब कुछ नहीं करेगी, उस दिन आपकी 360 डिग्री हो गई होगी। फिर कुछ भी, ज़रा भी, हिंसक वर्तन नहीं, हिंसक वाणी नहीं, हिंसक मनन नहीं।

आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान, वही है, यह मोक्षमार्ग। कितने ही जन्मों से हमारी यह लाइन, कितने ही जन्मों से आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान करते, करते, करते यहाँ तक आए हैं।

इसलिए तीर्थंकर भगवंतों ने कहा था कि 'अनंत जन्म बीतने के बाद, समकित हो जाने के बाद भी, कुछ भाग का व्यवहार समकित हो जाने के बाद, वह अर्ध*पुद्‌गल* परावर्तन काल होता है। तो बोलो अब कितने सारे जन्म कम हो गए! यदि अर्ध*पुद्‌गल* में आए तो भी बहुत जन्म कम हो गए।

प्रश्नकर्ता : लिमिट में आ गया।

दादाश्री : हाँ, लिमिट में आ गया, उसमें से फिर बढ़ता है। भगवान के सत्ताईस जन्म हुए थे, समकित होने के बाद। लेकिन लिमिट में आ गया है, ऐसा भगवान ने कहा था।

दो ही चीज़ों का धर्म

'कषाय नहीं करना और प्रतिक्रमण करना', ये दो ही धर्म हैं। कषाय नहीं करना, वह धर्म है। यदि पूर्व कर्म के अनुसार हो जाएँ तो उसके प्रतिक्रमण करना, वह भी धर्म है। अन्यथा दूसरी कोई धर्म जैसी चीज़ ही नहीं है और ये दो आइटम ही इन सब लोगों ने निकाल दी हैं!

अब अगर आपने उन्हें कुछ उल्टा बोल दिया तो आपको प्रतिक्रमण करना पड़ेगा लेकिन उन्हें भी आपका प्रतिक्रमण करना पड़ेगा। उन्हें क्या प्रतिक्रमण करना है कि, 'मैंने कब भूल की होगी कि उन्हें मुझे गाली देने का समय आया?' यानी उन्हें खुद की भूल का प्रतिक्रमण करना पड़ता है। उन्हें खुद के पूर्व जन्म का प्रतिक्रमण करना पड़ेगा और आपको आपके इस जन्म का प्रतिक्रमण करना पड़ेगा! एक दिन में ऐसे पाँच सौ-पाँच सौ प्रतिक्रमण करेंगे तो मोक्ष में जाएँगे।

अब ऐसा धर्म ध्यान और ऐसे प्रतिक्रमण तो अभी और कहीं रहे ही नहीं हैं न! फिर अब क्या हो सकता है? रो-रोकर भी भुगतना तो पड़ता ही है न? उसके बजाय हँसकर भुगते तो क्या गलत है?

यदि इतना ही करोगे न, तो दूसरा कोई धर्म नहीं ढूँढोगे तब भी कोई परेशानी नहीं होगी। इतना पालन करोगे तो बहुत है और मैं

आपको गारन्टी देता हूँ, आपके सिर पर हाथ रख देता हूँ। जाओ, मोक्ष के लिए अंत तक मैं आपको सहकार दूँगा! आपकी तैयारी चाहिए। एक ही शब्द का पालन करेगा तो बहुत हो गया!

मताग्रह, वह अतिक्रमण?

अतिक्रमण से जगत् खड़ा हुआ है तो प्रतिक्रमण से जगत् बंद हो जाता है। बस, इतना ही इसका 'लॉ' (कायदा)। वह प्रतिक्रमण इन शास्त्रों में रहा नहीं है। इसलिए यह सब बंद हो गया है। वे लोग जिसे प्रतिक्रमण कहते हैं, वे सब जड़ क्रियाएँ हैं, जिससे एक भी दोष का नाश नहीं होता और फिर भी दोष नाश करने की बातें करे और बोले, उससे कुछ बदलने वाला नहीं है।

प्रश्नकर्ता : मताग्रह, वह अतिक्रमण कहलाता है न?

दादाश्री : मताग्रह, वह सब से बड़ा अतिक्रमण है। उसके पॉइज़न से तो यह हिन्दुस्तान मर रहा है। अभी यह सब से बड़ा पॉइज़न है। हर एक व्यक्ति ने यह पॉइज़न इतना ज़्यादा फैला दिया है।

मूल तो हम महावीर के ही

प्रश्नकर्ता : आपकी वाणी में जैन धर्म के पारिभाषिक शब्द बहुत आते हैं।

दादाश्री : यह तो ज्ञान ही सब प्रकट हो गया है। अपने आप शब्द निकलते ही रहते हैं। अंततः मूल तो हम भगवान महावीर के ही हैं न! दूसरा पसंद नहीं आता। किसी और की बात पसंद नहीं आती। हम वैज्ञानिक की बात मानने के लिए तैयार हैं। भगवान महावीर वैज्ञानिक कहलाते हैं। हम भी वैज्ञानिक कहलाते हैं।

भगवान महावीर ने क्या आज्ञा दी है? दूषमकाल में आज्ञा अनुसार बरतने के लिए कहा है और यदि आज्ञा अनुसार बर्ताव नहीं हो पाए तो प्रतिक्रमण करने के लिए कहा है।

❖❖❖❖❖

[5]

अक्रम विज्ञान की रीति

अक्रम से नया यथार्थ धर्म

अब धर्म तो कैसा है? पॉज़िटिव अहंकार में धर्म आ जाता है। इन सब शास्त्रों में क्या कहा है कि, 'दया रखो, सत्य बोलो, चोरी मत करो'। अरे, जैसा चल रहा है, वैसा ही न! इसलिए इन लोगों ने पुस्तकों को पढ़ना बंद कर दिया। क्योंकि इन पुस्तकों में लिखे अनुसार होता नहीं है इसलिए ये पुस्तकें काम की नहीं हैं'। 'दया रख नहीं सकते, सत्य बोल नहीं पाते'। इन पुस्तकों में यही बार-बार लिखा गया है न? इसलिए लोगों ने (पुस्तकें) एक ओर रख दी हैं।

शास्त्रों में कहा है कि, 'चोरी मत करना, झूठ मत बोलना, चालबाजी मत करना'। 'तो करें क्या?' यह भी तो कहना चाहिए न, कि हम वह नहीं करें तो क्या करें? यदि हमें जाना हो और टिकट नहीं दे तो कालेबाज़ार का लेना पड़ता है न? अब इन शास्त्रों में ऐसा कहते हैं, 'ऐसा मत करना'। तब फिर हमें तो सूरसागर (बड़ौदा का एक तालाब) में डूबने जैसा ही हो जाता है!

जगत् परिणाम बदलना चाहता है। अब वह परिणाम कैसे बदलेगा, जहाँ सारे ही बदल गए हैं! पहले सैकड़े में जब पाँच प्रतिशत बिगड़े हुए होते थे, तब लोग कहा करते थे कि, 'भाई, अपना आचार शुद्ध

करो, आचार शुद्ध करो'। लेकिन आज तो पचानवे प्रतिशत आचार बिगड़ गए हैं, उसका क्या हो सकता है? जहाँ आचार का दिवाला ही निकल चुका है, वहाँ! तो हमने यह नई खोज की है! और लोग भी वास्तव में जो 'डिस्चार्ज' है, उसे 'चार्ज' मान रहे हैं। वह हमने निकलवा दिया कि 'भाई, आप 'डिस्चार्ज' को 'चार्ज' मान रहे हो, उसका क्या अर्थ है?' मीनिंगलेस (व्यर्थ) बात है। धर्म के बीच आचार आता ही नहीं है। यदि आप 'आचार मैं करता हूँ', ऐसा कहेंगे तो आचार फिर से खड़ा हो जाएगा। इससे धर्म खड़ा होगा लेकिन शुद्धता नहीं आएगी। 'डिस्चार्ज' में शुद्धता नहीं आएगी।

अर्थात् काल के अनुरूप ज्ञान दीजिए! हम ऐसी बात करें कि पहले तो बारह आने मन बाजरा मिलता था। ऐसी बातें बड़ा लाउड स्पीकर लेकर बोला करें कि 'अपने देश में तो ज़्यादा मोल रहता है, बारह आने मन बाजरा मिलता था। फिर से बारह आने मन बाजरा मिलेगा!' तब लोग क्या कहेंगे, 'अरे, ऐसी बात मत कीजिए। ऐसी बात इस काल के अनुरूप नहीं है। यह सब शास्त्र काल के अनुरूप नहीं हैं।

माँगिए प्रतिक्रमण करने की शक्ति

अपना अक्रम क्या कहता है? उससे पूछें कि 'तू बहुत दिनों से चोरी कर रहा है?' तब वह कहता है 'हाँ'। यदि प्रेम से पूछें तो सब बताता है, 'कितना, कितने साल से कर रहा है?' तब वह कहता है, 'दो-एक साल से कर रहा हूँ'। फिर हम कहते हैं, 'चोरी करता है, उसमें हर्ज नहीं है'। उसके सिर पर हाथ फिराते हैं। 'लेकिन उसका प्रतिक्रमण करना'। क्या सिखलाते हैं?

प्रश्नकर्ता : 'उसका प्रतिक्रमण करना।'

दादाश्री : तब वह कहता है, 'किस तरह?' तो मैं कहता हूँ 'इस तरह से', इससे उसे आश्वासन मिलता है कि 'ओहोहो! सब मेरा तिरस्कार करते थे और ये प्रेम दिखा रहे हैं'।

प्रतिक्रमण किया कि चोरी सारी मिट गई। अभिप्राय बदल गया।

यह (खुद) जो कर रहा है, उसमें खुद का अभिप्राय एक्सेप्ट नहीं करता है। नॉट हिज़ ओपिनियन! सेठ, आपको मेरी बात समझ में आई?

यानी मैं क्या कहता हूँ? भले तूने चोरी की, मुझे उससे आपत्ति नहीं है। 15-16 साल का लड़का हो और दो-चार बार चोरियाँ की हो तो हम उसे कहते हैं कि 'तूने चोरी की, उससे आपत्ति नहीं है लेकिन अब तू ऐसा करना जिससे जोखिमदारी न रहे'। तब कहता है, 'मैं क्या करूँ?' 'दादा का नाम लेना और फिर पछतावा करना। अब फिर से नहीं करूँगा, चोरी की, वह गलती की है, अब ऐसा फिर से नहीं करूँगा', ऐसा उसे सिखाते हैं।

ऐसा उसे सिखाने के बाद फिर उसके माँ-बाप क्या कहते हैं? 'वापस फिर से चोरी की?' 'अरे, यदि फिर से चोरी करे तब भी ऐसा कहना है (फिर से प्रतिक्रमण कर), ऐसा बोलने से क्या होता है, वह मैं जानता हूँ। इसके सिवा छुटकारा नहीं है।'

यानी यह अक्रम विज्ञान ऐसा सिखाता है कि 'यह जो बिगड़ गया है, वह सुधरेगा नहीं लेकिन उसे इस तरह सुधार'।

अब क्रमिक मार्ग में ऐसा नहीं है, सुधारने का। वे तो कहेंगे, 'मार-ठोककर उसे सुधारो', अरे, नहीं सुधरता। यह तो प्रकृति है। यदि कढ़ी में नमक ज़्यादा डल जाए तो उसे किसी भी तरह से निकाल सकते हैं। कढ़ी के लिए सब प्रयोग हैं। लेकिन इसका उपाय ऐसे करना पड़ता है। यानी इस उपाय से कई लोगों को फायदा हुआ है।

तूने चोरी की उससे आपत्ति नहीं है। तू जिस तरह करता है, उसके बजाय इस तरह करना तो वह जानेगा कि मेरा गुनाह है, ऐसा गिनते नहीं है। इससे उसका अहंकार घायल नहीं होता, वर्ना अहंकार घायल हो जाता है। मैंने तो ऐसा भी देखा है कि 'किसी लड़के को जब उसका बाप मारता है, तब वह लड़का भीतर ऐसा भाव करता है कि 'मैं जब बड़ा होऊँगा, तब बाप को मारे बगैर छोडूँगा नहीं'। 'अरे, आप चोरी छुड़वाने गए और उल्टा यह बैर बाँधा'। नहीं मारना

चाहिए। व्यर्थ ही इस तरह से डराकर किसी इंसान को सुधारना, वह कोई रास्ता नहीं है। डराने के लिए किसी दिन आँख दिखाना ठीक है। वह भी उल्टे स्वभाव का लड़का हो तो नहीं करना चाहिए!

अपने में कहावत है कि 'यदि काला होने पर भी कोठरी में हाथ डालता है, तब आँख दिखानी पड़ती है'। यानी कहाँ-कहाँ आँख दिखानी, कहाँ कैसे व्यवहार करना, उस विवेक और सद्विवेक के लिए कहा है। वह सद्विवेक तो है ही नहीं और लोग कहते हैं कि 'सद्विवेक करो'।

नहीं मिटते दर्द बिन दवा

यानी हमें कोई कहे, 'मैंने तो चोरी का धंधा शुरू किया है तो अब मैं क्या करूँ?' तब मैं उससे कहता हूँ कि, 'तू करना, मुझे आपत्ति नहीं है। लेकिन उसकी जोखिमदारी ऐसी आती है। तुझसे यदि वह जोखिम सहन हो तो तू चोरी करना। हमें कोई आपत्ति नहीं है'। तो वह कहता है कि, 'साहब, उसमें आपने क्या उपकार किया? जोखिमदारी तो मुझे ही आनी है'। तब मैं कहता हूँ कि 'मेरे उपकार के रूप में तुझे कह देता हूँ कि तू 'दादा' के नाम पर प्रतिक्रमण करना या महावीर भगवान के नाम पर प्रतिक्रमण करना कि 'हे, भगवान! मुझे यह धंधा नहीं करना है, फिर भी करना पड़ता है। उसकी मैं क्षमा माँगता हूँ', ऐसे क्षमा माँगते रहना और धंधा भी करते रहना। जान-बूझकर मत करना। जब तुझे भीतर इच्छा हो कि 'अब धंधा नहीं करना है' तब फिर तू बंद कर देना। तेरी इच्छा है न, धंधा बंद करने की? फिर भी अपने आप अंदर से धक्का लगे और करना पड़े तो भगवान से माफी माँगना। बस इतना ही! दूसरा कुछ नहीं करना है।

चोर से ऐसा नहीं कहना चाहिए कि 'कल से धंधा बंद कर देना'। उससे कुछ होगा नहीं। कुछ चलेगा ही नहीं न! 'ऐसे छोड़ दो, वैसे छोड़ दो' ऐसा कुछ कहना नहीं चाहिए। हम कुछ भी छोड़ने के लिए कहते ही नहीं हैं, इस पाँचवें आरे में छोड़ने के लिए कुछ भी कहने जैसा नहीं है। उसी तरह ऐसा भी कहने जैसा नहीं है कि 'यह ग्रहण करना'। क्योंकि छोड़ने से छूट जाए ऐसा नहीं है। हाँ, वर्ना फिर चिल्लाते

हैं कि 'करना है, लेकिन होता नहीं है, उपवास करना है, लेकिन होता नहीं है'। अरे, ऐसा क्यों गाए जा रहे हो? इसके बजाय भगवान से क्षमा माँगो न! 'हे, भगवान! उपवास तो करना था लेकिन होता नहीं है, उसके लिए क्षमा माँगता हूँ'। लेकिन ये तो 'नहीं होता, नहीं होता' ऐसे गाते रहते हैं। 'नहीं होता, नहीं होता' ऐसा कहना ही नहीं चाहिए। ऐसा कोई नियम है कि आपको ऐसा कहना चाहिए? वह एक प्रकार का अहंकार है। 'नहीं होता' तो आपको ऐसे गाते रहने की ज़रूरत नहीं है। लेकिन किस वज़ह से गाता रहता है? उसका अहंकार जताता है।

लोगों को यह विज्ञान बिल्कुल अनजान लगता है। सुना नहीं, देखा नहीं, जाना नहीं! अब तक तो लोगों ने क्या कहा? कि 'यह बुरे कर्म छोड़ो और अच्छे कर्म करो'। उनमें छोड़ने की शक्ति नहीं है, बाँधने की शक्ति नहीं है और व्यर्थ ही गाते रहते हैं, 'तुम करो' तब वह कहता है कि, 'मुझसे होता नहीं, मुझे सत्य बोलना है लेकिन होता नहीं'। तब हमने नया विज्ञान निकाला। 'भाई, आपको असत्य बोलने में आपत्ति नहीं न? वह तो माफिक आएगा न? अब, जब आप असत्य बोलो तब ऐसा करना, उसका फिर इस तरह प्रतिक्रमण करना'। आप चोरी करो उससे हमें आपत्ति नहीं है लेकिन उसका प्रतिक्रमण करना। और लोग कहते हैं, 'नहीं, चोरी बंद कर दे'। कैसे बंद होगी? कब्ज़ हो गया हो, उसे दस्त करने हो तो दवाई देनी पड़ती है और जिसे दस्त हो गए हो उन्हें बंद करना हो तो दवाई देनी पड़ती है! क्या यथावत् चले ऐसा है यह जगत्?

बाप मानता है कि 'यह लड़का चोरी कर रहा है, वह बंद करनी हो तो कर सकता है। यदि वह खुद बंद कर दे तो हो जाएगा'। 'लो कर दो न, आप अपने खुद के ही बंद कर दो न! आपसे जो दोष होते हैं, उन्हें बंद कर दीजिए'। गुरु महाराज भी ऐसा कहते हैं, 'यह छोड़ दो, यह छोड़ दो'। महाराज आप नसवार छोड़ दो न! और आप जो क्रोध करते हैं, वह छोड़ दो न! क्या 'हम' 'चंदूलाल' से नहीं कहते, कि आप क्रोध छोड़ दीजिए?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : यदि नहीं छोड़ते हैं तो प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं। क्या करना पड़ता है?

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण, दादा।

दादाश्री : कितने प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं?

प्रश्नकर्ता : बहुत प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं। हर रोज़ एक हज़ार करने पड़ते हैं।

दादाश्री : अर्थात् प्रतिक्रमण करते हैं तो वे छूट (मुक्त हो) जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : इस प्रतिक्रमण से तो पूरा भाव बदल जाता है।

दादाश्री : भाव ही बदल जाता है। पूरा रास्ता ही बदल जाता है। यदि मार-ठोककर बच्चों को सुधारोगे तो उससे कुछ होगा नहीं। वह तो उल्टा ही रास्ता है।

प्रश्नकर्ता : अब जो नासमझ लोग हैं, वे ऐसी दलील करते हैं कि 'दादा तो ऐसा कहते हैं कि तू चोरी करना'।

दादाश्री : हाँ, ऐसी दलील करते हैं। उन्हें समझ में नहीं आता न! उन्हें जब समझ में आएगा, तब यह काम आएगा। उन्हें समझ में नहीं आता है तो वह क्या करे? क्योंकि यह समझना बहुत मुश्किल चीज़ है। यह तो बहुत तीक्ष्ण बुद्धि हो तो समझ में आता है।

प्रश्नकर्ता : आप चोर को ऐसा कहते हो कि 'चोरी करना लेकिन इतना रखना कि 'यह गलत कर रहा हूँ'। मन में उसका पछतावा रखना, प्रतिक्रमण करना'। वह इतना ज़्यादा काम करता है?

दादाश्री : वह ज़बरदस्त काम करता है।

प्रश्नकर्ता : तो आखिरकार ऐसा होता है कि अब मुझे यह नहीं करना है।

दादाश्री : ये कोई भी शिक्षा-दंड, वे सब काम नहीं करते।

लेकिन यह एक ऐसा है, अक्रम विज्ञान की रीत, वह बहुत अलग प्रकार की है।

वर्ल्ड के तमाम 'रिलेटिव' धर्म देहाध्यासी

इसलिए हम कहते हैं न, कि जगत् के तमाम धर्म, सभी देहाध्यासी मार्ग हैं, देहाध्यास बढ़ाने वाले और अपना देहाध्यास रहित मार्ग है। सभी धर्म कहते हैं कि 'आप तप के कर्ता हो, त्याग के कर्ता हो। आप ही त्याग करते हो, आप त्याग करते नहीं हो'। 'करते नहीं हो' कहना, वह भी 'करता है' कहने के बराबर है। ऐसे कर्तापन स्वीकारते हैं और कहते हैं। मुझसे त्याग होता नहीं, वह भी कर्तापन है। हाँ, और कर्तापन स्वीकारते हैं, वे सब देहाध्यासी मार्ग हैं। हम कर्तापन स्वीकारते ही नहीं हैं। अपनी पुस्तक में कहीं पर भी 'ऐसे करो' ऐसा नहीं लिखा होगा।

यह तो कोई विरोध नहीं करते, विरोध करें तो हमें इसके हिसाब मिलेंगे कि भाई, इस वर्ल्ड में कोई भी व्यक्ति संडास जाने की शक्ति नहीं रखता। कोई विरोध करे तो हम उसे समझाएँगे कि 'ऐसा कैसे है'। यह बिना बात के उसके पीछे क्यों पड़े हो? यानी यह मैं करता हूँ, ऐसे तप करता हूँ, यह त्याग करता हूँ, इस तरह लोगों को उल्टे रास्ते पर चढ़ाते हो। मैंने त्याग किया, आप भी त्याग करो और आलू छोड़ो। अरे, क्यों बिना बात के लोगों के पीछे पड़े हो। यानी 'करना है', वह रह गया और 'नहीं करना है', वह करवाते हैं। वैसे भी 'नहीं करना है', वह होता नहीं है। होता भी नहीं है और बिना बात के अंदर वेस्ट ऑफ टाइम एन्ड एनर्जी (शक्ति व समय का व्यय)। करना क्या है? तो अलग चीज़ करनी है। जो करना है, उसके लिए आपको शक्ति माँगनी है और जिसकी पहले शक्ति माँगी थी, वह अभी हो रहा है।

प्रश्नकर्ता : पहले का तो इफेक्ट में ही आया है।

दादाश्री : हाँ, इफेक्ट में आया है। यानी कॉज़ेज़ के रूप में आपको शक्ति माँगनी है। हमने 'नौ कलमें' में जैसे शक्ति माँगने के

लिए कहा है, वह माँगे तो उसमें पूरे सारे शास्त्र आ जाते हैं। इतना ही करना है। दुनिया में करना कितना है? इतना ही। शक्ति माँगनी है, यदि कर्ताभाव से करना हो तो।

प्रश्नकर्ता : तो शक्ति माँगने की बात।

दादाश्री : हाँ, क्योंकि सब कहीं मोक्ष थोड़े ही जाते हैं? लेकिन कर्ताभाव से करना हो तो इतना करो, शक्ति माँगो। कर्ताभाव से शक्ति माँगना है, ऐसा कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : यानी ज्ञान नहीं लिया हो, उनके लिए यह बात है?

दादाश्री : हाँ, ज्ञान नहीं लिया हो, जगत् के लोगों के लिए है। अन्यथा अभी जिस रास्ते पर लोग चल रहे हैं न, वह बिल्कुल उल्टा रास्ता है। किसी व्यक्ति को उसका ज़रा भी फायदा नहीं मिलता।

प्रश्नकर्ता : मैंने बात की थी कि 'लोग लॉजिक नहीं समझते हैं कि इतना बढ़िया दादा का लॉजिक है'। उसे भी समझने की तैयारी नहीं है।

दादाश्री : वही कह रहा हूँ। समझने के लिए तैयार ही नहीं है। लोग इस तरफ गहरा उतरना ही नहीं चाहते हैं। 'यह कुछ नए प्रकार का है और उल्टा ही है', ऐसा उन्हें भय लग गया है।

प्रश्नकर्ता : दुनिया चल रही है, उससे यह कुछ अलग है इसलिए गलत है, क्या ऐसा मानते हैं?

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : और दूसरा क्या है कि मैंने पूरी ज़िंदगी जो किया, वह छोड़ दूँ?

दादाश्री : हाँ, वह मेरा किया व्यर्थ जाएगा? यह डर निकालना पड़ेगा न?

प्रश्नकर्ता : मुख्य बात तो वही है!

दादाश्री : तब वे कहेंगे, 'बहुत दुःख है लेकिन जो है, वह

चला लो'। तब मैंने कहा, 'अरे! आप चला लेना लेकिन आपके शिष्यों को तो वापस लौटने दो'। तब वे कहते हैं, 'नहीं! फिर हम अकेले क्या करेंगे?' यानी ऐसा है।

इस मिथ्यात्व के रोग को फैलाया, वह भी कुदरत ने ही फैलाया है और यह बदल देगी, उसमें भी कुदरत ही है। हम तो इसमें निमित्त हैं।

अरे, पुराने में किसी जगह पर सार नहीं था, इसीलिए तो यह नया निकला। असार को ही सार मान लिया था।

इसलिए कृपालु देव ने कहा, '*सर्वस्व लूंटावा जेवो योग कर्यो छे में, सर्वस्व लूंटावा जेवो योग आव्यो छे.*' ('सर्वस्व लुटाने जैसा योग किया है मैंने, सर्वस्व लुटाने जैसा योग आया है।')

'मुझसे नहीं होता' ऐसा नहीं कहना चाहिए?

यों तो पुस्तकों में सब व्यवहार ही बताया है न! 'ऐसा करो, वैसा करो, दया रखो, शांति रखो, समता रखो।' उसके अलावा और करेंगे भी क्या? और उसमें फिर खुद की सत्ता में कुछ भी नहीं है। आपकी सत्ता में कुछ नहीं हो और नया कहे कि 'यह करो, यह करो' उसका अर्थ क्या होता है?

प्रश्नकर्ता : घोटाला हो जाता है।

दादाश्री : घोटाला ही हो गया है न! लोग जानते हैं कि, 'यह तो हम से होता ही नहीं है' ऐसा फिर वापस मान लेते हैं। घोटाला होता हो, वह तो अच्छा है लेकिन 'नहीं होता' ऐसा मान लेता है इसलिए वह न्यूट्रल होता जाता है। मेल-फीमेल में से न्यूट्रल होता जाता है। 'मुझसे नहीं होता, ऐसे नहीं होता, करना है लेकिन नहीं होता।' अरे, आपको किसने सिखाया? नहीं कहना ऐसी बातें! क्या बोलते हैं ऐसा?

प्रश्नकर्ता : हाँ, बोलते हैं।

दादाश्री : क्योंकि आज के उपदेशकों ने मन में ऐसा बैठा दिया

है कि 'यह करो ही'। भगवान ऐसा नहीं बोलते। क्या महावीर भगवान ऐसा बोलते होंगे? इतना बड़ा शास्त्र पूरा मौखिक बोले हैं, क्या वे भगवान ऐसा बोलते होंगे? लेकिन आज के उपदेशक ऐसा बोलते हैं, 'ब्रह्मचर्य का पालन करो'। अरे, आपसे पालन होता है क्या? तो मुझसे क्यों बोल रहे हैं? एक तो जो यथार्थ साधु हों, वे पालन कर सकते हैं और दूसरा, गौ-पुत्र (बैल) पालन कर सकते हैं। दो लोग ब्रह्मचर्य पालन कर सकते हैं। यथार्थ साधु हों, वे पालन कर सकते हैं। वह यथार्थ ब्रह्मचर्य कहलाता है और ये गो-पुत्र (बैल) पालन करते हैं, वह परवश ब्रह्मचर्य कहलाता है।

कोई दोषित हैं नहीं बेचारे। मेरे ज्ञान में तो निर्दोष हैं। फिर भी मुझे व्यवहार में तो कहना पड़ता है न! वर्ना हकीकत प्राप्त नहीं होती न!

इन लोगों को ऐसा नहीं कहना चाहिए कि 'चोरी मत करो, चालबाजी मत करो, झूठ मत बोलो।' ऐसा वाक्य कहना चाहिए क्या। ऐसे वाक्य कहते हो? पूरे हिन्दुस्तान को बर्बाद कर दिया है। अंतिम कक्षा में बैठा दिया है!

'करना है लेकिन होता नहीं' यदि उदय टेढ़े आए तब क्या हो? भगवान ने तो ऐसा कहा था कि 'उदय स्वरूप में रहकर, उसे जानो'। 'करने के लिए' नहीं कहा था, 'उसे जानो' इतना ही कहा था। उसके बदले, कहते हैं 'यह किया लेकिन होता नहीं। करते हैं लेकिन होता नहीं, बहुत इच्छा है लेकिन होता नहीं'। अरे, लेकिन बेकार ही बिना बात के उसे क्यों गाए जा रहा है। 'मुझसे नहीं होता, नहीं होता' ऐसा चिंतवन करने से आत्मा कैसा हो जाता है? पत्थर हो जाता है। और ये तो क्रिया ही करने जाते हैं और साथ में नहीं होता, नहीं होता, नहीं होता, बोलते हैं। ऐसा कितने लोग बोलते होंगे?

प्रश्नकर्ता : सभी ही, लगभग सभी।

दादाश्री : वे जो 'नहीं होता' करते हैं, यानी जैसा सोचो आत्मा वैसा हो जाता है। अत: 'नहीं होता, नहीं होता, नहीं होता' कहने से फिर जड़ जैसे हो जाते हैं। ऐसा बोल-बोलकर तो उन्हें जड़ जैसा

होना पड़ेगा। लेकिन उन्हें इस ज़िम्मेदारी का पता नहीं है इसलिए बेचारे कह देते हैं। मैं मना करता हूँ कि नहीं कहना चाहिए, अरे, 'नहीं होता' ऐसा तो कहना ही नहीं चाहिए। आप तो अनंत शक्ति वाले हैं, हम जब ऐसा समझाते हैं तब तो ऐसा बोलते हैं, 'मैं अनंत शक्ति वाला हूँ'। वर्ना अब तक तो ऐसा ही बोलते थे 'नहीं होता'! क्या अनंत शक्ति कहीं चली गई है?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : ये तो क्या कहते हैं? 'शक्ति दीजिए'। 'ऐसा करो, ऐसा करना, वैसा करना' ऐसा नहीं कहते हैं। वे जो 'करो' ऐसा कहते हैं न, उन्होंने भटका दिया है। क्या इसमें 'करो' ऐसा शब्द है?

प्रश्नकर्ता : नहीं है। 'शक्ति दीजिए' ऐसा है।

दादाश्री : ये तो 'करो, करो' कहते हैं। अरे, क्या करो? आपने भी किया और हमने भी किया। कुछ बदला नहीं और यहाँ तो 'हे दादा भगवान, शक्ति दीजिए!' बस!

इतने करोड़ों वर्ष से, अरबों वर्ष से, इस हिन्दुस्तान देश में इतनी अध्यात्म-वाणी लोग गाए जा रहे हैं, लेकिन अध्यात्म-वाणी किसे कहते हैं?

ये तो जो 'हो गया हो' उसे 'मैंने किया' कहते हैं। जो इट हेपन्स है।

प्रश्नकर्ता : यह आर्तध्यान अभी ज़्यादातर लोगों में किस कारण होता है?

दादाश्री : यह सब दुःख ही इस कारण हुए हैं। सब दुःख इसके कारण खड़े हुए हैं। यदि ऐसा ज़ाहिर कर दिया जाए कि इतना भाग 'इट हेपन्स' है और इतने भाग पर आपके हस्ताक्षर होंगे तो काफी दुःख कम हो जाएँगे।

अब इस (बात) पर आपको क्या करना है? तो खराब हो जाए

तो सुधारना है। भाव से सुधारना है। यदि उल्टा हो जाए तो पंपिंग करना है। हेल्प करना है। बस, इतना ही करना है। खराब हो जाए तो सुधारना है।

अर्थात् 'हो जाता है'। मैंने एकदम किसी का अपमान कर दिया, वह 'हो गया' कहलाता है। फिर मैं अंदर सुधारूँ कि 'भाई, यह गलत हो गया, उस पर पश्चाताप करता हूँ, उसके प्रतिक्रमण करता हूँ, प्रत्याख्यान करता हूँ', वह सुधारा कहलाता है। उसे भ्रांत पुरुषार्थ कहते हैं।

जगत् में वास्तव में पुरुषार्थ तो है ही नहीं, लेकिन उसे भ्रांत पुरुषार्थ कहते हैं। खुद ने गलत किया और उसे खुद ही, 'उससे गलत हुआ है', ऐसे स्वीकार करके, खुद इस तरह उसका पश्चाताप करता है।

बाकी, सत्‌धर्म को तो कभी भी जगत् 'टच' नहीं हुआ, एक अंक (अक्षर) भी सत्‌धर्म का समझे नहीं है। यह जो हो रहा है, वही करेक्ट है।

वे तो कहते हैं, 'मेरा नहीं मानते हैं' अरे! क्यों मानेंगे? कोई किसी का मानता है क्या? वह करके आया है और आप भी करके आए हो। आप ऐसा बोलते हो और वह उस तरह से करता है। यह तो, ऐसा एडजस्ट हो जाता है कि, 'मैं कहता हूँ और वह मानता है'। वास्तव में तो वह भी मेरा नहीं मानता है, कभी भी। यह तो वह चीज़ है जो हो चुकी है। यह तो नाटक में हो चुकी है। उसमें रिहर्सल हो गया है इसलिए हम 'व्यवस्थित' कहते हैं न! उसका क्या कारण? हो चुका है। उसे क्या देखते हो? जो हो चुका है, उसे 'व्यवस्थित' कहते हैं।

वह तो समझना है, उसमें लोग धर्म-धर्म बोलते रहते हैं। सभी भले लोग, वे बड़े लोग हैं, उसमें हम इनकार नहीं कर सकते। लेकिन धर्म किसे कहते हो? सत्‌धर्म किसे कहते हो? यह तो सब ने गाया ही है, 'यही का यही गाते ही रहते हैं न, क्या किसी ने नया गाया?' कुछ फायदा-वायदा नहीं होना चाहिए? कुछ बदलाव नहीं आना

चाहिए? यह तो करके आए हैं। पिसा हुआ बार-बार पीसते रहते हैं और बीच में आटा उड़ा देते हैं!!!

क्योंकि मनुष्य कर सके ऐसा नहीं है। मनुष्य का स्वभाव कुछ कर नहीं सकता। करने वाली परसत्ता है। ये जीव मात्र जानने वाले ही हैं। यानी आपको जानते रहना है और आपके इस 'जानने' से ही गलत पर जो श्रद्धा बैठी थी, वह खत्म हो जाएगी और आपके अभिप्राय में बदलाव आएगा। क्या बदलाव आएगा? 'झूठ बोलना अच्छा है', वह अभिप्राय खत्म हो जाएगा। वह अभिप्राय खत्म हो गया, उसके जैसा कोई पुरुषार्थ नहीं है। इस दुनिया में यह बात सूक्ष्म है, लेकिन बहुत ही गहन विचार की ज़रूरत है।

प्रश्नकर्ता : नहीं, लेकिन पूरी बात लॉजिकल है।

दादाश्री : हाँ, यह लॉजिकल है। बहुत सोचने जैसा है और अपने लोग फिर क्या कहते हैं? 'जानते हैं ज़रूर लेकिन कुछ होता नहीं।' 'होता नहीं' यानी क्या होगा उसका? उसने क्या कहा?

प्रश्नकर्ता : कुछ होता नहीं।

दादाश्री : यह 'कुछ होता नहीं', यह सब से बड़ी जोखिमदारी है। कौन सी जोखिमदारी? तो भ्रांति में भी अंदर आत्मा होने से, जैसा बोलते हैं, वैसा हो जाता है, जैसा चिंतन करते हैं, वैसे हो जाते हैं। यानी 'कुछ होता नहीं, कुछ होता नहीं', इस कारण जानवर का जन्म या तो पत्थर का जन्म मिलता है। जो कुछ भी नहीं कर पाते हैं, ऐसा। अर्थात् मालूम नहीं हैं, इन ज़िम्मेदारियों के बारे में। 'कुछ नहीं होता है' ऐसा लोग कहते हैं, क्या वह सुनने में आया है?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : ऐसा नहीं कहना चाहिए। 'कुछ नहीं होता' ऐसा नहीं है। करना ही नहीं है, भाई। यदि संडास जाना भी परसत्ता के हाथ में है तो करने का आपके हाथ में कैसे हो सकता है? कोई इंसान ऐसा जन्मा नहीं है कि जिसके हाथ में ज़रा भी करने की सत्ता हो। आपको

जानना है और निश्चय करना है। इतना ही करना है आपको। यदि यह बात समझ में आ जाए तो काम निकल जाएगा। अब इतनी भी सरल नहीं है कि समझ में आ जाए।

आपको इसमें समझ में आया? कुछ 'करने से' बेहतर है 'जानना'? 'करना है', ऐसा तुरंत हो सकता है?

प्रश्नकर्ता : आप जो कह रहे हो, वह समझ में आ गया। बात तो सही है लेकिन ऐसा करना, वह समझने के बाद भी करने का तो रहता ही है न? जैसे करने की सत्ता नहीं है, वैसे जानने की भी सत्ता तो नहीं ही है न?

दादाश्री : नहीं! जानने की सत्ता है, करने की सत्ता नहीं है। यह बहुत सूक्ष्म बात है। यह इतनी बात यदि समझ में आ जाए तो बहुत हो गया।

बदलें अभिप्राय को

मान लो एक लड़का चोर बन गया है। वह चोरी करने लगा है। मौका मिले उसी वक्त जेब में से पैसे निकाल लेता है। घर पर गेस्ट आए हुए हों, उनको भी नहीं छोड़ता। अरे, कई गेस्ट का तो वापस लौटने का किराया खत्म हो जाए, तब भी लड़का उनके पैसे निकाल ले, तब वे बेचारे क्या करें? कैसे वापस माँगे? और जिस घर में से किसी ने लिए हैं, उस घर से माँग भी नहीं सकते क्योंकि ऐसा कहने से तो घरवाले लड़के को मारते इसलिए दूसरी जगह से उधार लेकर घर लौटे। क्या करें? वह लड़का खाली ही कर देता है न! अब उस लड़के को हम क्या सिखाते हैं? कि 'इस जन्म में तू दादा भगवान से चोरी न करने की शक्ति माँग'।

अब उसमें उसे क्या लाभ हुआ? कोई कह सकता है, 'इसमें क्या सिखाया?' वह तो शक्तियाँ माँगता रहता है और फिर भी चोरी तो करता है। अरे, भले ही, चोरी करता है लेकिन ये शक्तियाँ माँगता रहता है या नहीं? हाँ, 'शक्तियाँ तो माँगता रहता है'। यानी हम जानते

हैं कि 'यह दवाई क्या काम कर रही है'। आपको क्या पता कि 'दवाई क्या काम कर रही है?'

प्रश्नकर्ता : सच, वे जानते नहीं हैं कि 'दवाई क्या काम कर रही है', यानी माँगने से लाभ होता है या नहीं, वह भी नहीं समझते।

दादाश्री : अर्थात् इसका क्या भावार्थ है? कि एक तो वह लड़का माँगता है कि 'मुझे चोरी नहीं करने की शक्ति दीजिए'। यानी कि उसने अपना अभिप्राय बदल दिया, 'चोरी करना, वह गलत है और चोरी नहीं करना, वह सही है' ऐसी शक्तियाँ माँगता है, अतः चोरी नहीं करनी, उस अभिप्राय पर आया। सब से बड़ी बात है कि यह अभिप्राय बदल गया! और अभिप्राय बदल गया यानी तभी से वह गुनहगार होता अटक गया।

फिर दूसरा क्या हुआ? भगवान से शक्तियाँ माँगता है इसलिए उसमें परम विनय उत्पन्न हुआ। 'हे, भगवान! शक्ति दीजिए।' तो तुरंत शक्ति देते हैं वे। छुटकारा ही नहीं न! सब को देते हैं। माँगने वाला चाहिए। इसीलिए कहता हूँ न, 'यह तो आप माँगना भूल जाते हो!' आप तो कुछ माँगते ही नहीं हो, कभी भी नहीं माँगते।

यह बात आपको समझ में आई, 'शक्ति माँगना' वह?

प्रश्नकर्ता : यह तो बहुत वैज्ञानिक खुलासा है। अभिप्राय बदल गया और सही माँगा।

दादाश्री : और 'शक्ति दीजिए' ऐसा कहते हैं। 'दीजिए' कहते हैं, वह क्या ऐसी-वैसी बात है? भगवान खुश होकर कहते हैं, 'लो'।

और दूसरी बात, उसका अभिप्राय तो बदल गया। अन्यथा उसे मार-मारकर, मार-ठोककर अभिप्राय बदल नहीं सकते, वह तो अभिप्राय मज़बूत कर देता है, 'चोरी करनी ही चाहिए'। अरे, ऐसे मार-ठोककर दवाई नहीं होती, दवाई के लिए तो दादा के पास ले जाओ। गोद में बैठाकर सयाना कर देंगे। दवाई का जानकार चाहिए न!

अभिप्राय बदलना कोई सरल बात नहीं है। इस तरह गुप्त तरीके

से बदला जाता है। उसी प्रकार यदि हम कहें कि 'चोरी नहीं करना सही है, चोरी करना गलत है' तब मन में तो समझ जाते हैं कि 'जो काम का नहीं है, वह कर रहे हैं और 'नहीं करना है', ऐसा बोल रहे हैं'। इससे रास्ते पर नहीं आएगा। हमारी वैज्ञानिक खोज है सारी।

सब से बड़ा तो यह कि खुद का अभिप्राय बदल गया, लेकिन कहते हैं, वह तो अभिप्राय मेरा बदला, लेकिन भगवान! अब मुझे शक्ति दीजिए। अब मुझे आपकी शक्ति की ही ज़रूरत है। मेरा अभिप्राय तो बदल गया है।

प्रश्नकर्ता : और फिर, 'देने वाला बैठा है इसलिए माँगने जैसा है'।

दादाश्री : हाँ, माँगो, वह देने के लिए तैयार हूँ।

एक घंटे में मेरे जैसा बना दूँ, ऐसी मैंने गारन्टी दी है। सब बोला हूँ। ऐसी गारन्टी नहीं दी है? कितने ही वर्षों से यह गारन्टी दे रहा हूँ। 'मेरे जैसा एक घंटे में बना दूँ। आपकी तैयारी चाहिए।'

ज्ञानी पुरुष सब दवाई बता देते हैं, रोग का निदान भी कर देते हैं और दवाई भी बता देते हैं। हमें सिर्फ पूछ लेना है कि 'सच्ची बात क्या है, और मुझे ऐसा समझ में आया है'। इसलिए तुरंत जो बताते हैं न, वह 'बटन' दबाना है तो शुरू हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : जब भूल का पता चले तब प्रतिक्रमण विधि करनी है या नहीं?

दादाश्री : कोई बात नहीं। यदि बहुत बेलगाम हो जाए तो, 'दादा, माफी माँगता हूँ और फिर से मुझे शक्ति दीजिए। दादा से माफी माँगनी है और साथ ही जिस चीज़ के लिए माफी माँगे, उस चीज़ के लिए, मुझे शक्ति दीजिए, दादा शक्ति दीजिए। शक्ति माँगकर लेना, आपकी खुद की शक्ति का उपयोग मत करना। वर्ना आपके पास खत्म हो जाएगी। यदि माँगकर उपयोग करोगे तो खत्म नहीं होगी और बढ़ेगी, आपकी दुकान में कितना माल होगा?'

हर एक बात में, 'दादा, मुझे शक्ति दीजिए'। हर एक बात में शक्ति माँग-माँगकर ही लेनी है। यदि प्रतिक्रमण चूक जाएँ तो 'सही पद्धति से मुझे प्रतिक्रमण करने की शक्ति दीजिए'। सारी शक्ति माँगकर लेनी है। हमारे पास तो आप माँगते-माँगते थक जाओ, इतनी शक्ति है।

शक्ति माँगकर सँवारो काम

मैंने नौ कलमें दीं, एक भाई से मैंने कहा कि 'इसमें सब आ गया। इसमें कुछ बाकी रखा नहीं है, आप ये नौ कलमें रोज़ पढ़ना'। फिर वे कहते हैं, 'लेकिन यह नहीं होता'। मैंने कहा, 'अरे! मैं करने के लिए नहीं कह रहा हूँ। 'नहीं होता', ऐसा क्यों कहते हो? मैं आपसे यह करने के लिए नहीं कह रहा। आपको तो इतना कहना है कि 'हे दादा भगवान! मुझे शक्ति दीजिए', इतना कहता हूँ, माँगने के लिए कहता हूँ। तब कहने लगे, इसमें तो मज़ा आएगा, तब तो मज़ा आ जाएगा! इन लोगों ने तो करने का सिखाया है।

'हे दादा भगवान! मुझे, किसी भी धर्म का किंचिंत्मात्र भी प्रमाण न दुभे, न दुभाया जाए या दुभाने के प्रति अनुमोदना न की जाए, ऐसी परम शक्ति दीजिए।

मुझे, किसी भी धर्म का किंचिंत्मात्र भी प्रमाण न दुभाया जाए, ऐसी स्याद्वाद वाणी, स्याद्वाद वर्तन और स्याद्वाद मनन करने की परम शक्ति दीजिए।'

धर्म मतलब तो तीन लोग, जो डंडा हिलाते हैं, जब तीन लोग इकट्ठे होते हैं तब वह गच्छ कहलाता है। तीन साधु मिलकर बैठते हैं, उन्होंने प्रारंभ किया, बैठे, यानी कि गच्छ शुरू हो गया। भगवान ने कहा है कि सिर्फ एक व्यक्ति से गच्छ नहीं बन सकता। इसलिए कृपालुदेव ने कहा है कि '*गच्छ-मतनी कल्पना ते नहीं सद्व्यवहार.*' ('गच्छ-मत की जो कल्पना, वह नहीं सद्व्यवहार।')

अर्थात् यह पूरा ही फिर से कन्स्ट्रक्शन करना है। पूरी सब दीवारें, फाउन्डेशन सबकुछ निकालकर फिर से कन्स्ट्रक्शन करने के

लिए ही ये सब मटीरियल आ रहे हैं। वह रोड़ा, चूना-रेती डाले थे, वह निकालकर आर.सी.सी. के फाउन्डेशन होने वाले हैं। बाकी, धर्म के पाये कितने मज़बूत होने चाहिए!

वह भाई कहते हैं, 'यह नहीं होता, इसलिए करना नहीं है'। मैं कहता हूँ कि यह शक्ति माँगो। मुझे कहते हैं, 'वह शक्ति कौन देगा?' मैंने कहा, 'शक्तियाँ मैं दूँगा'। आप माँगो, वे शक्तियाँ देने के लिए तैयार हूँ। जिन्हें माँगना ही न आए, उनका मैं क्या करूँ? फिर मुझे ही सिखाना पड़ता है कि इस तरह शक्तियाँ माँगो। आपको खुद को न आए, तब मुझे इस तरह सिखाना पड़ता है कि इस तरह शक्ति माँगना। नहीं सिखाना पड़ता? देखो न, यह सारा सिखाया ही है न! यह मेरा सिखाया ही है न! एकाध कलम बोलिए न!

प्रश्नकर्ता : 'हे दादा भगवान! मुझे किसी भी देहधारी जीवात्मा का किचिंत्मात्र भी अहम् न दुभे (ठेस न पहुँचे), न दुभाया जाए या दुभाने के प्रति अनुमोदना न की जाए, ऐसी परम शक्ति दीजिए।'

'मुझे, किसी देहधारी जीवात्मा का किंचित्मात्र भी अहम् न दुभे, ऐसी स्याद्वाद वाणी, स्याद्वाद वर्तन और स्याद्वाद मनन करने की परम शक्ति दीजिए।'

दादाश्री : अत: वे समझ गए, फिर कहते हैं 'इतना होता है'। इसमें सबकुछ आ गया।

मुझसे कहते हैं, 'लेकिन यह होता नहीं, कैसे करें?' मैंने कहा, यह तो थोड़े ही करना है? आपको यह करना नहीं है। आप ज़रा भी करना नहीं। हर रोज़ आराम से दो रोटियाँ ज़्यादा खाना लेकिन यह शक्ति माँगना। तब मुझे कहते हैं, 'यह बात मुझे पसंद आई'।

प्रश्नकर्ता : पहले तो यही शंका होती है कि शक्ति माँगने से मिलती है या नहीं?

दादाश्री : वही शंका गलत साबित होने लगती है। अब वह शक्ति माँगते रहते हैं न?

'देखो व जानो' जैसे फिल्म हो

प्रश्नकर्ता : इन 'नौ कलमें' में हम शक्तियाँ माँगते हैं कि 'ऐसा न किया जाए, न करवाया जाए या न अनुमोदना की जाए' यानी इसका अर्थ ऐसा है कि भविष्य में ऐसा नहीं हो, उसके लिए हम शक्तियाँ माँगते हैं या फिर हमारा पिछला किया हुआ धुल जाए, उसके लिए है यह?

दादाश्री : वह धुल जाता है और शक्ति उत्पन्न होती है। शक्ति तो है ही लेकिन वह धुल जाने से जो शक्ति है, वह व्यक्त होती है। शक्ति तो है ही लेकिन व्यक्त होनी चाहिए। इसलिए दादा भगवान की कृपा माँगते हैं, यह हमारा धुल जाए तो शक्ति व्यक्त हो जाएगी।

शक्ति तो पूरी है ही भीतर लेकिन अव्यक्त रूप से रही है। क्यों अधूरी रहती है? हमें अभी भी यह सब अच्छा लगता है। फिर भी इस ज्ञान के बाद काफी कुछ कम हो गया है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : जैसे-जैसे कम होगा, वैसे-वैसे शक्तियाँ व्यक्त होगी। अच्छा लगता है, इसका अर्थ तिरस्कार नहीं करना है लेकिन उसमें भीतर तन्मयाकार हो जाता है। खुद भूल जाता है, खुद की शक्ति भूल जाता है और उसमें तन्मयाकार हो जाता है यानी उसका अर्थ 'अच्छा लगता है' कहलाता है। खाओ-पीओ लेकिन तन्मयाकार नहीं होना। देखो, जब सिनेमा देखने जाते हैं, तब यदि कोई अच्छी औरत या अच्छा मर्द हो तो क्या उसे गले लगाते हैं? और कोई किसी को मार रहा हो तो क्या वहाँ चिल्लाते हैं कि 'क्यों मार रहा है? मत मारो'। ऐसा कहते हैं क्या? मन में समझते हैं कि 'सिर्फ देखना ही है यह, कहना नहीं है'।

कितने साल पहले सिनेमा देखने गए थे? लेकिन तब देखा तो था न? तब कुछ बोलते नहीं थे न, कि 'क्यों मार रहा है?' हं, सिर्फ देखना ही है, वहाँ पर।

फिल्म ऐसा नहीं कहती कि आप अपने साथ हमें सिर पर ले जाओ। फिल्म तो कहती है कि 'देखकर जाओ'। फिर आप उल्टा करो, उसका फिल्म क्या करे बेचारी? फिल्म कहीं कहती है कि आप मुझे साथ में ले जाओ? लेकिन यदि खुद गोंद चुपड़कर जाता है तो फिर क्या हो? वह गोंद-वोंद धोकर जाना चाहिए। खुद गोंद चुपड़कर जाता है इसलिए जो कुछ भी हो, वह छूते ही चिपक जाता है।

अत: आपमें वह शक्ति आने के बाद, भीतर शक्ति उत्पन्न होने के बाद, वह शक्ति ही कार्य करवाएगी। आपको करना नहीं है। यदि आप करोगे तो इगोइज़म बढ़ जाएगा। 'मैं करने जाता हूँ और फिर होता नहीं है', ऐसे 'नहीं होता' फिर से ऐसा होगा। वह शक्ति माँगो। इन 'नौ कलमें' में पूरे जगत् का प्रतिक्रमण आ जाता है। अच्छी तरह से करो। हम आपको दिखा देते हैं, फिर हम हमारे देश चले जाएँगे न!

प्रश्नकर्ता : दोषों के प्रतिक्रमण करने के लिए हम 'नौ कलमें' बारी-बारी से रोज़ बोलते रहें तो उसमें शक्ति है क्या?

दादाश्री : आप जो 'नौ कलमें' बोलते हैं, वह अलग है और इन दोषों का प्रतिक्रमण करते हैं, वह भी अलग है। जो दोष हो जाए, उसके प्रतिक्रमण तो हर रोज़ करने हैं।

प्रश्नकर्ता : ये जो 'नौ कलमें' दी हैं, वे विचार, वाणी और वर्तन की शुद्धता के लिए ही दी हैं न?

दादाश्री : नहीं-नहीं! अक्रम मार्ग में ऐसी शुद्धता की ज़रूरत ही नहीं है। ये 'नौ कलमें' तो आपके जो सब हिसाब बंधे हुए हैं, अनंत जन्मों से सब के साथ, उन हिसाब से छूटने के लिए दी हैं, बहीखाते साफ करने के लिए दी हैं।

प्रश्नकर्ता : यह बहीखाते सब विचार, वाणी और वर्तन के ही हैं न?

दादाश्री : नहीं, विचार-वाणी-वर्तन तो अलग चीज़ है। वे क्या

कहना चाहते हैं कि 'आज क्रमिक मार्ग में जिस आचार का पालन करते हैं, उस आचार का यदि मैं राज़ी खुशी से पालन करता हूँ तो उससे बीज डलेगा'। और अगले जन्म में वापस आपकी लिंक चलती रहेगी। लेकिन यदि आचार का पालन ही नहीं करे तो क्रमिक मार्ग उसके लिए है ही नहीं और अक्रम में तो आचार-वाचार की ज़रूरत ही नहीं है, अक्रम में तो आर्तध्यान-रौद्रध्यान बंद हो जाने चाहिए।

प्रश्नकर्ता : यानी इसका अर्थ यह हुआ कि अक्रम मार्ग में जो भी ज्ञान लेते हैं, उनके विचार, वाणी और वर्तन डिस्चार्ज के रूप में हैं, इसलिए वह प्रश्न ही खड़ा नहीं होता।

दादाश्री : विचार, वाणी और वर्तन डिस्चार्ज के रूप में ही हैं न, उसे क्या लेना-देना है?

यह तो अनंत जन्मों से लोगों के साथ ही खिटपिट हुई होती है इसलिए ये 'नौ कलमें' बोलने से सब ऋणानुबंध छूट जाते हैं, यह प्रतिक्रमण है, यह सब से बड़ा प्रतिक्रमण है! ज़बरदस्त प्रतिक्रमण है यह!

प्रश्नकर्ता : ये जो नौ कलमें हैं, उन 'नौ कलमें' में जैसा कहा है, उसी अनुसार हमारी भावना है, इच्छा है, सब है, अभिप्राय से भी वही है।

दादाश्री : यह बोलने से, आपके अब तक के जो भी दोष हो चुके हैं, वे सब बोलने से ढीले हो जाते हैं और वैसे तो बाद में उसका फल तो आएगा ही। जली हुई रस्सी जैसे हो जाते हैं। वह हाथ लगाते ही बिखर जाती है न!

❖❖❖❖❖

[6]

रहें फूल, जाएँ काँटे

चित्त शुद्धिकरण, वही है अध्यात्म सिद्धि

प्रश्नकर्ता : कर्म की शुद्धि कैसे होती है?

दादाश्री : कर्म की शुद्धि चित्त की शुद्धि करने से हो जाती है। चित्त की शुद्धि हो जाए तो कर्म की शुद्धि हो जाती है। यह तो चित्त की अशुद्धि के कारण कर्म अशुद्ध हो जाते हैं। चित्त शुद्ध हो जाए तो कर्म शुद्ध हो ही जाता है।

प्रश्नकर्ता : हर एक कर्म शुद्ध हो जाता है? चाहे कैसा भी कर्म करे, वह शुद्ध हो जाता है?

दादाश्री : चित्त शुद्ध हो जाए न, तो फिर कर्म शुद्ध हो जाता है। यदि चित्त अशुद्ध हो तो कर्म अशुद्ध, चित्त शुभ हो तो कर्म शुभ, चित्त अशुभ हो तो कर्म अशुभ! अर्थात् चित्त पर उसका सारा आधार है इसलिए चित्त को रिपेयर करना है। अपने लोग क्या कहते हैं कि मुझे चित्तशुद्धि करनी है। इसलिए इस जगत् में चित्त शुद्धि करने के लिए ही अध्यात्म है। अत: चित्तशुद्धि करने की ज़रूरत है।

चोरी करने से चित्त अशुद्ध होता है और बाद में पश्चाताप करने से वही चित्त फिर शुद्ध हो जाता है, और पश्चाताप नहीं करने से ही

इन लोगों के चित्त की अशुद्धि रह गई है। जिससे सब अशुद्ध कर्म होते रहते हैं। जानते हैं फिर भी पश्चाताप नहीं करते। जानते हैं फिर भी क्या कहते हैं कि 'सब ऐसा ही करते हैं न!'

अर्थात् खुद का चित्त अशुद्ध हो रहा है, वह भान नहीं रहता।

प्रश्नकर्ता : व्यवहार शुद्धि कैसे होती है?

दादाश्री : वह तो व्यवहार में चित्त की शुद्धि रखे कि 'भाई, हमें इसे दगा नहीं देना है तो फिर वह व्यवहार शुद्धि हो गई। और यदि दगा दे दिया जाए तो व्यवहार अशुद्ध हो जाता है। अर्थात् नीति-नियम व ईमानदारी से चले तो व्यवहार शुद्धि रहती है।

ऑनेस्टी इज़ द बेस्ट पॉलिसी, डिसऑनेस्टी इज़ द बेस्ट फूलिशनेस। (प्रामाणिकता, वही उत्तम नीति है और अप्रामाणिकता, वह उत्तम मूर्खता है!)

व्यवहार शुद्धि के लिए, सामने वाले को दु:ख नहीं हो ऐसा व्यवहार रखें, वह व्यवहार शुद्धि कहलाती है। बिल्कुल भी दु:ख नहीं हो। हमें हुआ हो, वह सहन कर लेना है। लेकिन सामने वाले को तो होना ही नहीं चाहिए।

प्रश्नकर्ता : हम कर्मों के प्रतिक्रमण करें तो छूट सकते हैं या नहीं?

दादाश्री : प्रतिक्रमण करने से लगभग सब खत्म हो जाता है, थोड़ा-बहुत बाकी रह जाता है। कर्म अतिक्रमण से ही बंधते हैं। जैसे रस (इन्टरेस्ट) से अतिक्रमण किया था, वैसा रस भुगतना पड़ेगा। प्रतिक्रमण करे तब भी रस तो भुगतना ही पड़ता है। जितना रस, उतना भुगतना रहता है बाद में। भीतर रस लिया है न? ज़्यादा दोष अतिक्रमण का है। व्यवहार चलता हो, किसी को कोई आपत्ति नहीं हो, सहजता से चल रहा हो, उसमें कोई हर्ज नहीं है। परिणाम में प्रतिक्रमण से नए कर्मों का बंधन अटकता है। पुराने तो भुगतने पड़ते हैं।

कर्ताभाव जाने के बाद

प्रश्नकर्ता : ज्ञान प्राप्त होने के बाद अपना कर्ताभाव चला गया।

यानी अपना नया *पुद्गल* (जो पूरण और गलन होता है) बनना बंद हो गया?

दादाश्री : कर्ताभाव गया, वहीं से नया कर्म बंधना बंद हो गया।

प्रश्नकर्ता : तो अब जो पुराने कर्म बाकी रह गए हों, उन्हें जीर्ण करने के लिए क्या उपाय है?

दादाश्री : नहीं, अपने आप ही, यह पाँच आज्ञा दी हैं न? उनमें रहेंगे तो पुराने कर्म का समभाव से *निकाल* ही हो जाएगा सारा, नए कर्म बंधे बिना।

प्रश्नकर्ता : लेकिन भारी कर्म बंध गए हों तो वे हमें हल्के से भुगत कर खत्म करना है?

दादाश्री : नहीं, उसका प्रतिक्रमण बार-बार करना पड़ता है। जो बहुत भारी *चीकणा* (गाढ़) कर्म हो तो उसका प्रतिक्रमण ज़्यादा करना पड़ता है। ज़्यादा *चीकणा* हो न, ऐसा लगे तो यह प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान करने से वह धुल जाएगा सब। वह बिल्कुल नहीं चला जाता, क्योंकि यह एक अवतारी ज्ञान है।

प्रश्नकर्ता : अतिक्रमण हो जाए, लेकिन जागृति नहीं हो तो?

दादाश्री : यानी प्रतिक्रमण नहीं होता, ऐसा?

प्रश्नकर्ता : बाद में जागृति आती है तो प्रतिक्रमण होता है।

दादाश्री : वह तो फिर उसे झपकी आती है, लेकिन उस कारण कर्म नहीं बंधता। कर्म बंधता कब है? जब खुद 'मैं चंदूलाल हूँ', ऐसा मान ले तब। वह झपकी खाने का फल तो कच्चा रहा। वह जो कच्चा रहा, उसका फल बाद में आता है। कच्चा तो नहीं रहना चाहिए। झपकी खाए तो झपकी का फल तो मिलेगा न? कर्ता होने का फल नहीं, लेकिन जो यह कच्चा रहा, उसका फल आता है।

रह गया मात्र प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : यानी अब सिर्फ प्रतिक्रमण रह गया न, दादा?

दादाश्री : प्रतिक्रमण ही। और वह भी, जब अतिक्रमण हो जाए तब। अतिक्रमण पूरे दिन नहीं होता। पूरा दिन शांति ही रहती है। लेकिन टेबल पर कुछ खाने की बात में झगड़ा हुआ कि, 'अतिक्रमण हुआ वापस। अब वह कहीं आज का दोष नहीं है, वह पहले का है, चारित्रमोहनीय है। आज तो हमें ऐसा पसंद ही नहीं है। लेकिन हो जाता है न?'

अतिक्रमण और आक्रमण

प्रतिक्रमण इन दो शब्दों का करना होता है, एक, 'अतिक्रमण' और दूसरा, 'आक्रमण'। आक्रमण, चीज़ हम में नहीं होनी चाहिए। आक्रमण यानी अटैकिंग नेचर (हमलावर स्वभाव)। आक्रमण यानी बात-बात में, शब्दों में भी अटैक (हमला) करता है। शब्दों में अटैक होता है, उसे अटैकिंग नेचर कहते हैं, आक्रमण कहते हैं।

अतिक्रमण और आक्रमण में क्या फर्क है?

प्रश्नकर्ता : आक्रमण यानी सीधे ही अटैक हुआ?

दादाश्री : हाँ, अटैक ही, बस! हमला करना, आक्रमण! और क्रमण यानी क्या? तो जैसे व्यवहारिक बातचीत चल रही हों, उस तरह सुबह तक बातें करते रहें और यदि किसी को दुःख नहीं हुआ हो तो हमें जानना है कि वह 'क्रमण' है। ज़रा सा भी किसी से 'जोक' (मज़ाक) किया और सामने वाला यदि ज़रा कमज़ोर हो न, तो थोड़ा-बहुत चला लेता है, लेकिन भीतर उसे दुःख होता है तो उसे अतिक्रमण करना कहेंगे। हम सब का 'जोक' (मज़ाक) करते हैं लेकिन कैसे? निर्दोष 'जोक' करते हैं। हम तो उसका रोग निकालते हैं और उसे शक्तिशाली बनाने के लिए 'जोक' करते हैं। ज़रा खेल होता है, आनंद आता है और साथ ही वह आगे बढ़ता जाता है। निर्दोष जोक करते हैं सारा। बाकी, वह जोक किसी को दुःख नहीं देता!

अतिक्रमण हो जाना, वह स्वाभाविक है और प्रतिक्रमण करना, वह अपना पुरुषार्थ है।

प्रश्नकर्ता : यह अतिक्रमण हो जाता है, लेकिन इससे तो आदत हो

जाती है प्रतिक्रमण करने की। 'अतिक्रमण हुआ', ऐसा उसको एक प्रकार का अभिप्राय रहता है इसलिए उसे खुद को लगता है कि 'यह अतिक्रमण हुआ है' लेकिन वास्तव में अतिक्रमण न भी हुआ हो। ऐसा होता है न?

दादाश्री : लेकिन अतिक्रमण तो तुरंत ही पता चलता है। खुद को भीतर ज़रा भी ऐसा लगे कि यह कड़क निकल गया, ऐसा पता नहीं चलता? उल्टी की हो और कुल्ला किया हो, उसमें फर्क नहीं पड़ता?

प्रश्नकर्ता : पड़ता है।

दादाश्री : वह सब पता चलता है। खुद को यदि कुछ दुःख हो जाए तो जानना कि यहाँ अतिक्रमण हुआ है।

प्रश्नकर्ता : दूसरा एक शब्द आता है। पराक्रम यानी क्या?

दादाश्री : क्रम-अक्रम से परे, वह पराक्रम। अभी तो प्रतिक्रमण करो न? पराक्रम जब आएगा तब आएगा। स्टेशन बहुत बड़ा है, वह देर से आता है। अभी तो, यदि राह देखेंगे तो उल्टा यह रह जाएगा, अक्रम रह जाएगा।

प्रतिक्रमण करो न, अभी भी जब तक आक्रमण का प्रतिक्रमण करना पड़ता है, तब तक पराक्रम कैसे होगा?

प्रश्नकर्ता : पराक्रम की ज़रूरत आक्रमण के सामने है न?

दादाश्री : आक्रमण के सामने तो प्रतिक्रमण करने हैं। पराक्रम तो दोनों से परे है, क्रम-अक्रम से, दोनों से परे है। वह पराक्रम शब्द कहाँ से चुरा लाए आप?

प्रश्नकर्ता : आप्तवाणी छः का वाचन किया न!

दादाश्री : ऐसा! अपने पास प्रतिक्रमण का बहुत अच्छा साधन है। *आड़ाई* (अहंकार का टेढ़ापन) करते हैं तो प्रतिक्रमण करना पड़ता है। प्रतिक्रमण का बहुत बल है। आप प्रतिक्रमण का लश्कर नहीं भेजते हो न? आप यदि प्रतिक्रमण का लश्कर भेजो तो वह जीतेगा ही! लश्कर जीतेगा या नहीं जीतेगा?

प्रकृति क्रमण से बनी, अतिक्रमण से फैली

प्रश्नकर्ता : वैसे तो यह प्रतिक्रमण सभी तरह से मुख्य है न? क्योंकि यदि समझ में आए या न आए, भूल दिखती हो या नहीं दिखती हो, कुछ आता हो या नहीं आता हो, प्रतिक्रमण से सभी बातों का हल अपने आप आ जाता है न?

दादाश्री : अतिक्रमण से यह सब खड़ा हुआ है और अब यहाँ से अपने देश में (मोक्ष में) जाना हो तो प्रतिक्रमण करो। आसान बात है न? आसान है या कठिन?

प्रश्नकर्ता : बहुत आसान है।

दादाश्री : अतिक्रमण से ये सबकुछ खड़ा हुआ है और प्रतिक्रमण से बंद हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : पूरी प्रकृति अतिक्रमण से खड़ी हुई है न?

दादाश्री : प्रकृति क्रमण से खड़ी हुई है और अतिक्रमण से फैलती है, डालियाँ-वालियाँ सभी कुछ।

प्रश्नकर्ता : अतिक्रमण से पूरी प्रकृति फैलती है।

दादाश्री : और प्रतिक्रमण से वह सब फैला हुआ जब कम हो जाता है, तब उसे भान आता है।

प्रश्नकर्ता : अतिक्रमण से प्रकृति फैलती है, फिर आगे 'आक्रमण' कहते हैं न? आक्रमण से क्या होता है? अतिक्रमण और आक्रमण, अटैक से?

दादाश्री : वही अतिक्रमण न?

प्रश्नकर्ता : अतिक्रमण से भी भारी हुआ न?

दादाश्री : नहीं, वही यह सब। छोटा आक्रमण और बड़ा आक्रमण, सब आक्रमण में ही समा जाता है और वही अतिक्रमण है।

प्रश्नकर्ता : वह छोटा आक्रमण हो या बड़ा आक्रमण, सब अतिक्रमण ही है?

दादाश्री : हाँ।

नहीं गलत कोई पूरे जगत् में

लेकिन उन्होंने प्रश्न अच्छा पूछा, यों प्रश्न पूछें और साइन्टिफिकली समझें तो उसका हल आता है। नहीं तो उसका हल नहीं आता।

यानी मेरा क्या कहना है कि अभी आप किसी जगह पर दर्शन करने के लिए गए हों और वहाँ जाकर ऐसा लगे कि हमने सोचा था 'ज्ञानी' और निकले 'ढोंगी'! अब आप वहाँ गए, वह तो प्रारब्ध का खेल है और वहाँ मन में उसके लिए जो खराब भाव हुए कि, 'अरेरे! ऐसे नालायक के यहाँ मैं कहाँ आ गया?' वह अपना भीतर नेगेटिव पुरुषार्थ हो गया, उसका फल हमें भुगतना पड़ता है, उसे नालायक कहने का फल हमें भुगतना पड़ता है, पाप भुगतना पड़ता है। और विचार आना, वह स्वाभाविक है, लेकिन फिर तुरंत ही भीतर क्या करना चाहिए? कि, 'अरेरे! मुझे ऐसा गुनाह नहीं करना चाहिए' ऐसे तुरंत ही, सुल्टे विचार करके हमें धो डालना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : माफी माँग लेनी चाहिए?

दादाश्री : हाँ। मन में माफी माँग लेनी चाहिए। प्रतिक्रमण करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : मन-वचन-काया से जाने-अनजाने जो कुछ भूलचूक हुई है, उनके लिए माफी माँगता हूँ।

दादाश्री : हाँ, 'महावीर' भगवान को याद करके या किसी और भगवान को याद करके, 'दादा' को याद करके, प्रतिक्रमण कर लेना चाहिए कि 'अरेरे! वह चाहे कैसा भी हो, मुझसे क्यों ऐसा उल्टा हो गया? अच्छे को अच्छा कहने में दोष नहीं है, लेकिन अच्छे को बुरा कहने में दोष है और बुरे को बुरा कहने में भी बहुत दोष है, ज़बरदस्त दोष! क्योंकि

वह खुद बुरा नहीं है, उसके प्रारब्ध ने उसे बुरा बनाया है। प्रारब्ध अर्थात् क्या? उसके संयोगों ने उसे बुरा बनाया, उसमें उसका क्या गुनाह?

यह समझ में आया? ये सब बहुत सूक्ष्म बातें हैं। ये शास्त्रों में लिखी नहीं होती या कोई साधु से जानने को नहीं मिलती।

यानी संक्षेप में भीतर इतना समझ लें न, ये प्रारब्ध और पुरुषार्थ, ये सब समझ लें न, तो सब सीधी राह आ जाता है। फिर किसी भी जगह पर भाव नहीं बिगड़ने देती। जहाँ भाव बिगड़ें वहाँ तुरंत भाव सुधार लें, वहाँ कोई आपत्ति है ही नहीं।

मान लो यहाँ से बहुत सारी औरतें गुज़र रही हो और तब कोई आपसे कहे कि, 'देखो न, वह वेश्या, यहाँ पर आई है, यहाँ कहाँ आ गई?' किसी ने आपसे ऐसा कहा तो उसके कारण आपने भी उसे वेश्या कहा, उसका भयंकर गुनाह लगता है। वह कहती है कि 'संयोगवश मेरी ऐसी स्थिति हुई है। उसमें आप क्यों गुनाह कर रहे हो? मैं तो मेरा फल भुगत रही हूँ, लेकिन आप क्यों गुनाह कर रहे हो?' 'वह क्या अपनी मर्ज़ी से वेश्या हुई है?' संयोगों ने बनाया है। किसी जीवमात्र को खराब बनने की इच्छा होती ही नहीं। सबकुछ संयोग ही करवाते हैं और फिर उसकी आदत हो जाती है। शुरुआत उसे संयोग करवाते हैं।

नहीं होगा वह बुद्धि से

प्रश्नकर्ता : ऐसे तो पूरे मनुष्य जीवन में किसी न किसी जगह पर तो भूल होगी ही न?

दादाश्री : नहीं, वह भूल हो जाएगी लेकिन उस भूल को हम जानें और हम सच्चे न्यायाधीश बने तो भूल हमें दिखेगी कि 'यह भूल हुई है' इसलिए हम प्रतिक्रमण करके भूल का दाग़ निकाल देते हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह बुद्धि से करना पड़ता है न?

दादाश्री : नहीं, बुद्धि से नहीं। हम जो ज्ञान देते हैं, उस ज्ञान

प्रकाश से काम होता है। बुद्धि तो भूल देखने ही नहीं देती न! बुद्धि वकील है, यानी कि वह भूल देखने ही नहीं देती।

प्रश्नकर्ता : ज्ञान मिलने के बाद जब अंतरात्मा हो जाता है, तब सब दोष कम होते जाते हैं?

दादाश्री : दोष दिखते जाते हैं और कम होते जाते हैं। दिखते जाते हैं और कम होते जाते हैं। उसकी खुद के दोषों की ओर दृष्टि घूम जाती है। जब तक जीवात्मा है, मूढात्मा है, तब तक परायों के दोष देखता है। उसके खुद के दोष पूछें तो कहेगा, 'मुझ में तो दो-तीन दोष हैं, मुझ में नहीं हैं, कहेगा, ये इनमें हैं, ये तो बहुत निरे दोष की टोकरी है'।

अज्ञान दशा में प्रतिक्रमण कर सकते हैं?

प्रश्नकर्ता : अपना यह जो प्रतिक्रमण है, वह सिर्फ महात्माओं के लिए ही है या जिन्होंने ज्ञान नहीं लिया, उनके लिए भी है?

दादाश्री : ऐसा है न, ज्ञान नहीं लिया, उनके लिए यह प्रतिक्रमण तो है, वह तो सिर्फ शब्द में ही दूसरे सब के लिए उपयोग में आता है। लेकिन वह सिर्फ शब्द में भी दूसरे लोगों को प्रतिक्रमण रहेगा कैसे? जागृति होती ही नहीं न! जागृति बिना रहेगा कैसे?

वह जागृति किस काल में थी? ऋषभदेव भगवान के जाने के बाद बाईस तीर्थंकरों के वक्त में सब शिष्य जागृत रहते थे। वे निरंतर 'शूट ऑन साइट' प्रतिक्रमण करते थे।

जब कभी हम ज्ञान देते हैं तभी उन्हें जागृति रह सकती है, वर्ना जागृति रहती नहीं। वे तो खुली आँखों से सो रहे हैं, ऐसा शास्त्रकारों ने कहा था।

प्रश्नकर्ता : जिन्हें ज्ञान नहीं है, वे कुछ ही प्रकार के दोष देख पाते हैं?

दादाश्री : बस, इतना ही। दोष की माफी माँगना सीखो, ऐसा

संक्षेप में इतना कह देना है। जो दोष आपको दिखाई दे, उस दोष की माफी माँगनी है और ऐसा कभी भी मत कहना कि वह दोष सही है, वर्ना डबल हो जाएगा। गलत करने के बाद क्षमा माँग लो।

प्रश्नकर्ता : जिन्होंने ज्ञान नहीं लिया है, उन्हें अपनी भूलें दिखाई देती हैं, तो वे किस तरह प्रतिक्रमण करे?

दादाश्री : ज्ञान नहीं लिया हो, लेकिन ऐसे थोड़े जागृत लोग होते हैं कि जो प्रतिक्रमण को समझते हैं। वे कर पाते हैं, जबकि दूसरे लोगों का काम ही नहीं है। लेकिन प्रतिक्रमण शब्द का अर्थ हमें उसे 'पश्चाताप करना' ऐसा कहना है।

शुद्धात्मा पद की प्राप्ति के बाद प्रतिक्रमण किसलिए?

प्रश्नकर्ता : दादा, अभी भी मुझे वह समझ में नहीं आया कि एक शुद्धात्मा पद दे दिया फिर किसलिए प्रतिक्रमण करना है? (प्रतिक्रमण करना) होता ही नहीं न?

दादाश्री : नहीं, प्रतिक्रमण करोगे तो भी कोई आपत्ति नहीं है।

प्रश्नकर्ता : करना है, उसके लिए मुझे ऐसा नहीं है। लेकिन कैसे करना है? मैं चंदूलाल हूँ या मैं शुद्धात्मा हूँ।

दादाश्री : प्रतिक्रमण हमें खुद को नहीं करने हैं। आत्मा को भी प्रतिक्रमण नहीं करने हैं। यदि आत्मा को करने होते तब तो होते ही नहीं। यह तो, हमें 'चंदूलाल' से ऐसा कहना है, पड़ोसी की तरह कि 'भाई, ऐसे क्या अतिक्रमण कर रहे हो?'

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, हम पड़ोस में क्यों जाएँ?

दादाश्री : पड़ोसी, वह अपनी खुद की पिछली भूलों का परिणाम है। वह अपनी 'गुनहगारी' है।

बात बताता हूँ आपको, वह बात सुनो। एक लड़का इस अहमदाबाद शहर में ज़रा शौकीन हो जाए और दो-एक हज़ार का कर्ज़ा चढ़ा ले।

अब यदि वह लड़का आज से यह निश्चय करे कि, 'मुझे एक पाई का भी कर्ज़ा नहीं लेना'। आज निश्चय करे और एक्ज़ेक्टली वैसा ही व्यवहार करे, एक पाई का कर्ज़ा न ले और जितनी आमदनी है, वह घर में दे दे। फिर भी जो पिछला कर्ज़ है, वह तो चुकाना ही पड़ेगा न, या नहीं चुकाना पड़ेगा? अब नहीं करना है, फिर भी किसलिए पिछला कर्ज़ चुकाना पड़ता है? वैसे ही यह 'चंदूलाल', वह पिछली भूलों का फल है। वह तो बहीखाते में है, उसका निपटारा तो करना ही पड़ेगा न?

प्रश्नकर्ता : तो फिर ज्ञान लेने के बाद कोई प्रतिक्रमण नहीं करने पड़ते न?

दादाश्री : नहीं करे तो हर्ज नहीं है। यह करना ही है, ऐसा ज़रूरी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : मुझे करने में कोई हर्ज नहीं है। मेरा उसमें विरोध भी नहीं है। लेकिन मुझे यह समझना है। ऐसा प्रश्न उठता रहता है।

दादाश्री : प्रतिक्रमण करने से क्या होता है? कि आत्मा अपने खुद के 'रिलेटिव' पर खुद का दबाव डालता है। क्योंकि अतिक्रमण से रियल पर दबाव आता है। जो कर्म है, वह अतिक्रमण है और अब यदि उसमें इन्टरेस्ट आए तो फिर से डेन्ट (पिचकने का निशान) पड़ जाएगा। यानी कि जब तक हम गलत को गलत नहीं मानेंगे, तब तक गुनाह है। अर्थात् ये प्रतिक्रमण (चंदूलाल से) करवाने की ज़रूरत है।

प्रश्नकर्ता : वह मुझे अभी तक फिट नहीं बैठ रहा।

दादाश्री : आपके फादर को आपसे बुरा लगा, वह आपने अतिक्रमण किया। अब उन्हें बुरा लगा, आपको इस बात को बढ़ावा देना चाहिए या डिस्करेज करना चाहिए? 'चंदूलाल' से आपको क्या कराना चाहिए?

प्रश्नकर्ता : मैं मानता हूँ कि 'उन्हें बुरा लगे, ऐसा करना ही नहीं चाहिए'।

दादाश्री : नहीं, वह तो हो जाता है। अतिक्रमण तो हो ही जाता है। अतिक्रमण किसे कहते हैं? 'अपने आप हो जाए।' किसी को भी 'अतिक्रमण करना है', ऐसा नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह हमने जान-बूझकर किया हो तो ठीक है।

दादाश्री : जान-बूझकर तो कोई नहीं करता। जान-बूझकर किया जाए, ऐसा है भी नहीं। वह करना हो फिर भी नहीं हो पाता।

प्रश्नकर्ता : तो दादा, अतिक्रमण किया कहलाएगा ही कैसे?

दादाश्री : आप अपने फादर के सामने ज़्यादा बोल गए हो या बॉक्सिंग (लड़ाई) करते हो तो प्रतिक्रमण करते हो या नहीं करते? प्रतिक्रमण नहीं करते हो तो, तो आप अतिक्रमण के पक्ष में हो, ऐसा साबित होगा और यदि प्रतिक्रमण करते हो तो आपका पक्ष किसमें है? प्रतिक्रमण में।

प्रश्नकर्ता : ऐसा भाव नहीं है कि अतिक्रमण करूँ।

दादाश्री : भाव ऐसा नहीं है, फिर भी आप अतिक्रमण के पक्ष के हो। यदि आप वह विरोधी भाव नहीं बदलते तो आप इस अतिक्रमण पक्ष के ही हो। इसलिए प्रतिक्रमण करो अर्थात् आप अतिक्रमण पक्ष के नहीं हो ऐसा हुआ।

यदि किसी के पैर पर अपना जूता आ जाए तो हमें सॉरी कहना चाहिए या नहीं कहना चाहिए?

प्रश्नकर्ता : वह कहना चाहिए। वह उचित है।

दादाश्री : वही है 'प्रतिक्रमण!' प्रतिक्रमण और कुछ नहीं है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, उसी अर्थ में न? बाकी तो कुछ नहीं न?

दादाश्री : उसी को प्रतिक्रमण कहता हूँ। हम जैसे 'सॉरी' कहते हैं न, वह उस जैसा सब। उसे हम प्रतिक्रमण कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : मुझसे अतिक्रमण हो गया, उसका मैं प्रतिक्रमण करूँ, लेकिन सामने वाला मुझे माफ नहीं करे तो?

दादाश्री : सामने वाले का देखना नहीं है। आपको कोई माफ करे या नहीं करे, वह देखने की ज़रूरत नहीं है। आपमें से यह अतिक्रमण स्वभाव खत्म हो जाना चाहिए। अतिक्रमण के विरोधी हो, ऐसा होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : और यदि सामने वाले को दुःख होता रहे तो?

दादाश्री : सामने वाले का ऐसा कुछ भी नहीं देखना है। आप अतिक्रमण के विरोधी हो, ऐसा निश्चित होना चाहिए। आपको अतिक्रमण करने की इच्छा नहीं है। अभी हो गया उसके लिए पछतावा होता है और अब हमें ऐसा फिर से करने की इच्छा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : सामने वाले को सॉरी कहने की हिम्मत आ गई है, अतिक्रमण होगा फिर मैं प्रतिक्रमण कर लूँगा।

दादाश्री : इस वर्ल्ड में ऐसा कोई मनुष्य जन्मा ही नहीं है, जो एक बाल जितना भी कुछ कर सके।

प्रश्नकर्ता : अतिक्रमण इन्टेन्शनली (इरादे सहित) होता हो, एक-दूसरे को काट दिया जाता हो तो कैसे चलेगा? बाद में प्रतिक्रमण करके छूट सकते हैं?

दादाश्री : तो और क्या कर सकते हैं? इस भ्रांति में से वापस लौटने की सारी प्रक्रिया है। उसमें हमें भीतर गहरे उतरने में फायदा नहीं है। हमें काम से मतलब रखना है।

हमारे यहाँ कुछ पूछने जैसा रखा ही नहीं है। सिर्फ आज्ञा का ही पालन करना है, कभी कुछ पूछना हो तो पूछ सकते हैं लेकिन बेकार का विश्लेषण नहीं करना वर्ना भीतर का सब चला जाएगा। फिर बुद्धि के बहकावे में आ जाएगा। वे सब बुद्धि के बहकावे हैं! यह ज्ञान ऐसा है कि कुछ भी पूछना नहीं पड़ता।

संक्षिप्त प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : अब दूसरी एक बात पूछूँ? मानो कि लंबा प्रतिक्रमण

करना नहीं आता, फटाफट करना नहीं आता लेकिन जब कभी भूल हो जाती है, तब अंदर तो पता चल जाता है कि ऐसा नहीं कहना चाहिए, तो क्या उसे प्रतिक्रमण माना जाएगा?

दादाश्री : हाँ, वह प्रतिक्रमण है, इतना ही होना चाहिए। वह अपना अभी का अभिप्राय है, उस तरह धो डालना है।

वैसे तो, वह प्रतिक्रमण एक्ज़ेक्ट (यथार्थ) नहीं कहलाता लेकिन उस अभिप्राय से दूर हुआ न?

प्रश्नकर्ता : तो सही क्या है? ऐसे संक्षिप्त करना चाहिए?

दादाश्री : उसमें कोई आपत्ति नहीं है। प्रतिक्रमण नहीं करे तो चलता है, वहाँ पर वह प्रतिक्रमण ही है। लेकिन यदि हमेशा के लिए ऐसा बोलें तो फिर सब ऐसे ही ऊटपटाँग करेंगे। वह तो कुछ संयोगों में ऐसा हो जाए तो आपत्ति नहीं है, वह चलता है। वह प्रतिक्रमण ही है। 'ऐसा नहीं होना चाहिए', वह प्रतिक्रमण ही है। अपना अभिप्राय बदला न! जैसे-तैसे अभिप्राय बदलना है।

नहीं बनना विरोधी प्रतिक्रमण के

प्रतिक्रमण तो हमें वह अभिप्राय निकालने के लिए करना है। 'हम उस मत में रहे नहीं', ऐसे निकालने के लिए करना है। हम इस मत के विरुद्ध में है, ऐसा दिखाने के लिए प्रतिक्रमण करना है। क्या आपको समझ में आया?

प्रश्नकर्ता : जो अतिक्रमण हो गया है, उसके विरोधी है, ऐसा दिखाने के लिए प्रतिक्रमण करना है।

दादाश्री : हाँ, हमें यह इच्छा नहीं है, ऐसा फिर से करने की। अपने स्वभाव में से ऐसा निकालने के लिए प्रतिक्रमण करना है। यदि प्रतिक्रमण नहीं करेंगे तो अपनी वह इच्छा रह गई कहलाती है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन हमें तो सब *निकाली* (निपटारा) भाव है न?

दादाश्री : हाँ, *निकाली* भाव है सब, सभी *निकाली* ही है न, लेकिन आपको यदि स्वभाव में रखना हो तो रखना, उसमें आपत्ति नहीं है।

प्रश्नकर्ता : यदि वह *निकाली* है तो फिर प्रतिक्रमण किसलिए?

दादाश्री : सभी *निकाली* हैं, सिर्फ भाव ही नहीं, सभी *निकाली* है। प्रतिक्रमण तो, जितना अतिक्रमण किया, उतना ही प्रतिक्रमण करना है, दूसरा नहीं और यदि नहीं करेंगे तो अपना स्वभाव कुछ बदलता नहीं है, वैसे का वैसा ही रहता है न? आपको समझ में आया या नहीं आया?

यदि विरोधी के रूप में ज़ाहिर नहीं होगा तो फिर वह मत आपके पास रहेगा। यदि गुस्सा हो जाए तो हम गुस्से के पक्ष में नहीं हैं, इसलिए प्रतिक्रमण करना है। नहीं तो गुस्से के पक्ष में हैं, ऐसा निश्चित हो गया और यदि प्रतिक्रमण करें तो हमें गुस्सा पसंद नहीं हैं, ऐसा ज़ाहिर हुआ कहलाता है। यानी उसमें से हम छूट गए, मुक्त हो गए, हमारी ज़िम्मेदारी कम हो गई। हम उसके विरोधी हैं, ऐसा ज़ाहिर करने के लिए कुछ साधन तो होना चाहिए न? गुस्सा हमें रखना है या निकाल देना है?

प्रश्नकर्ता : वह तो निकाल देना है।

दादाश्री : यदि निकालना हो तो प्रतिक्रमण करो। फिर हम गुस्से के विरोधी हैं, भाई। वर्ना गुस्से में सहमत हैं, यदि प्रतिक्रमण नहीं करें तो।

प्रश्नकर्ता : जो होना था, वह हो गया। फिर हम प्रतिक्रमण करें या नहीं करें, उसमें फर्क ही नहीं पड़ता न?

दादाश्री : चले ऐसा है। लेकिन यदि अब यह ज़्यादा करोगे तो बहुत फायदा पहुँचेगा, हाँ। आपको चले ऐसा करना है या ज़्यादा करना है?

प्रश्नकर्ता : करने की बात नहीं है। मैं तो साइन्टिफिकली (वैज्ञानिक रूप से) पूछ रहा हूँ।

दादाश्री : सबकुछ *निकाली* है, लेकिन जहाँ अतिक्रमण हो जाए

वहाँ हमें सोच लेना चाहिए। वर्ना फिर अपना स्वभाव अपने में रह जाएगा। हम इस स्वभाव के विरोधी हैं, ऐसा नक्की तो होना ही चाहिए। हम उसमें सहमत नहीं हैं, ऐसा नक्की होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : सहमत नहीं हैं, यदि ऐसा तय हो जाए तो फिर वह प्रतिक्रमण तो मन में ही करना होता है न?

दादाश्री : वह तो मन में ही। सबकुछ मन में ही करना होता है। दूसरा कुछ करना नहीं है। बोलकर करना नहीं है, मुँह पर नहीं करना है। हम उसके विरोधी हैं। प्रतिक्रमण नहीं करें लेकिन 'यह हमें अच्छा नहीं लगता', इतना बोलें तो भी बहुत हो गया। आप अलग हो गए उससे। आपको उस झंझट में नहीं रहना है।

प्रश्नकर्ता : यदि हम प्रतिक्रमण करें तो क्या इसका मतलब यह है कि हम ज़रा क्रमिक में घुस गए हैं?

दादाश्री : यह इसलिए नहीं है कि क्रमिक मार्ग में घुस गए हैं। हम तो इस स्वभाव के विरोधी हैं, जब तक ऐसा कुछ तय नहीं हो जाएगा, तब तक स्वभाव अपने पास पड़ा रहेगा। यह बहुत ही गूढ़ बात है। यदि आपको समझ में आ जाए तो आपका कल्याण कर देगी। 'गाली दी' उसमें आपत्ति नहीं है लेकिन 'गाली दी', उसके हम विरोधी हैं, ऐसा तो होना ही चाहिए न, हमें?

प्रश्नकर्ता : हम प्रतिक्रमण करते हैं, लेकिन सामने वाला व्यक्ति तो कर्म ही बाँधता है न?

दादाश्री : वह आपको देखना नहीं है। आपको मन में बोल देना है तो आप छूटे।

वह सब व्यवहार निकाली

प्रश्नकर्ता : यह तो ऐसा कोई प्रसंग बना और अतिक्रमण करने से पहले ही हमें ऐसा रहे कि 'ये डिस्चार्ज भाव (*निर्जरा* भाव) हैं, मेरे भाव नहीं हैं', तो क्या वह प्रतिक्रमण नहीं है?

दादाश्री : आप जैसी जागृति सब को नहीं रहती। 'ये मेरे नहीं हैं', ऐसी जागृति सब को नहीं रहती। उसके बजाय ऐसा सरल सिखाना अच्छा है।

प्रश्नकर्ता : यह जो प्रतिक्रमण कहते हैं, वह कहीं खुद के भाव थोड़े ही मान लेता है?

दादाश्री : नहीं। उनका कहना सही है कि 'ये भाव मेरे नहीं हैं', इतना दिखाने के लिए ही हम प्रतिक्रमण कहना चाहते हैं। सभी को तो 'ये भाव मेरे नहीं हैं', ऐसी जागृति नहीं रह पाती न!

समभाव से *निकाल* करना और किसी के अतिक्रमण नहीं हो, वह सब *निकाली* व्यवहार है। अतिक्रमण नहीं होना चाहिए फिर भी अतिक्रमण हो जाए तो प्रतिक्रमण करो। तो वह *निकाली* व्यवहार के रूप में चल दी गाड़ी!

प्रतिक्रमण करता है, अतिक्रमण करने वाला

जब हम ज्ञान देते हैं, तब जाकर खुद के सब दोष दिखने लगते हैं। तब तक दूसरों के दोष दिखाई देते हैं लेकिन खुद का दोष नहीं दिखता। दूसरों के खोजने हों तो सब सौ खोज निकालते हैं और खुद के तो बड़े-बड़े दो-तीन ही दिखते हैं, दूसरे दिखते ही नहीं है। अब ज्ञान मिलने के बाद, ठीक से पोषण प्राप्त करके पौधा बड़ा हुआ, कि तुरंत सब दोष दिखने शुरू हो जाते हैं। आपको क्या दिखता है हर रोज़? खुद के दोष दिखते हैं या दूसरों के?

प्रश्नकर्ता : खुद के ही।

दादाश्री : यानी खुद के दोष दिखते हैं, वे बड़े हों तो प्रतिक्रमण करना है और छोटे हों तो भी प्रतिक्रमण करना है। 'जिसने' दोष किए थे, 'उसी को' प्रतिक्रमण करना है। अत: 'चंदूलाल' को प्रतिक्रमण करना है। आपको कुछ करना नहीं होता। हमें चंदूलाल से कहना है कि 'प्रतिक्रमण करो' और दूसरे दोष तो देखने से ही चले जाएँगे,

दूसरे जो हल्के प्रकार के दोष हों, वे। लेकिन जब सभी दोष दिखाई देंगे, तब चले जाएँगे। तब निर्दोष हो जाएगा।

मैंने ऐसी दृष्टि दी है कि आपको इस दुनिया में किसी का एक भी दोष नहीं दिखाई दे, आपको मारे तब भी आपको दोष नहीं दिखाई दे। आपको दोष दिखाई देते हैं?

प्रश्नकर्ता : खुद के दोष दिखाई देते हैं।

दादाश्री : यदि दूसरों का कोई दोष दिख जाए तो तुरंत प्रतिक्रमण करते हो?

प्रश्नकर्ता : हाँ, दादा।

दादाश्री : आपको किसी पर अटैक (अतिक्रमण) का विचार नहीं आता। यदि आपको कोई गाली दे या मार मारे या नुकसान पहुँचाए, फिर भी उसकी तरफ किसी दिन अटैक का विचार नहीं आता। और पूरा जगत्, साधु-सन्यासी सब अटैक करते हैं, 'क्या है, क्या कहा, ऐसा करेंगे, वैसा करेंगे'।

और इन्हें अटैक का विचार नहीं आता, उसका नाम 'ज्ञानी भक्त'। ज्ञानी भक्त यानी छूट (मुक्त हो) गया।

दोष कम हों तभी वह यथार्थ प्रतिक्रमण है

प्रतिक्रमण किसे कहते हैं कि हल्का हो जाए, हल्कापन महसूस हो, उसे फिर से वह दोष करने में बहुत दुःख होता है। और यह दोष तो गुणाकार करता है।

आपने कोई प्रतिक्रमण, यथार्थ प्रतिक्रमण देखा है? एक भी दोष कम हो ऐसा?

प्रश्नकर्ता : नहीं, यहाँ पर ही देखने मिला।

दादाश्री : सिर्फ आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान ही मोक्षमार्ग का साधन है, अन्य कोई साधन नहीं है इस जगत् में। दूसरा साधन

यही है कि ज्ञानी पुरुष से ज्ञान मिल जाए, उसके बाद यह काम आएगा। और उससे पहले यदि किया होगा तो दोष मंद हो जाएँगे। लेकिन वह इतना प्रतिक्रमण हो नहीं पाता, जागृति नहीं रह सकती इंसान को।

ज्ञान लेने के बाद यदि हमें अंदर पता चले कि 'यह दोष हुआ है' तभी प्रतिक्रमण होता है। तब तक प्रतिक्रमण होता नहीं न! ज्ञान लेने के बाद उसकी जागृति रहेगी कि, अतिक्रमण होते ही तुरंत आपको पता चल जाएगा, 'यह भूल हो गई' तो तुरंत ही प्रतिक्रमण करेंगे। फिर उसके नाम का सब पद्धति से प्रतिक्रमण होता ही रहेगा और प्रतिक्रमण हुआ यानी धुल गया। धुल गया यानी फिर सामने वाले को डंक नहीं रहता। वर्ना हम जब फिर से मिलेंगे तब सामने वाले से वह वाला भेद बढ़ता जाता है। ऐसा कुछ हो जाए तो भेद पड़ता है या नहीं पड़ता?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : कारखाने में भी किसी के प्रति यदि अतिक्रमण हो जाए और उसका हम प्रतिक्रमण करें तो उसका मन अपने साथ जुड़ जाता है, वर्ना मन अलग हो जाता है।

पाप धुल जाने की प्रतीति

प्रश्नकर्ता : हमारे पाप कर्म अभी कैसे धोने हैं?

दादाश्री : पाप कर्म के तो जितने दाग़ लगे हैं, उतने प्रतिक्रमण करने हैं, यदि वह दाग़ मुश्किल हो तो फिर से धोते रहना है। बार-बार धोते रहना है।

प्रश्नकर्ता : वह दाग़ चला गया या नहीं चला गया, उसका पता कैसे चलेगा?

दादाश्री : वह तो भीतर मन साफ हो जाता है न, तो तुरंत पता चल जाता है। मुँह पर मस्ती छा जाती है। आपको पता नहीं चलता? दाग़ ही चला गया? कैसे नहीं चलता? आपत्ति क्या है? और यदि नहीं धुल पाए तो भी हमें आपत्ति नहीं है। आप प्रतिक्रमण करो न!

आप साबुन लगाते ही रहना न! पाप को आप पहचानते हैं? पाप को आप पहचानते हैं क्या?

प्रश्नकर्ता : दादा की आज्ञा का पालन नहीं किया जाए यानी पाप?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है, उसे पाप नहीं कहते। सामने वाले को दु:ख हो जाए, वह पाप है। किसी भी जीव को, चाहे वह मनुष्य हो या जानवर हो या फिर पेड़ हो। पेड़ को, ऐसे ही बिना बात के पत्ते तोड़े तो उसे भी दु:ख होता है। यानी वह पाप कहलाता है।

और आज्ञा का पालन नहीं किया जाए, वह तो आपको खुद को ही नुकसान होता है। किसी को दु:ख हो जाए, वह है पाप कर्म। यानी ज़रा भी किंचित्‌मात्र दु:ख नहीं हो, ऐसा होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : यदि मनुष्य अपने स्वभाव अनुसार करे तो उसमें उसे पुण्य-पाप लगेगा?

दादाश्री : सामने वाले को यदि दु:ख हो जाए तो पाप लगेगा। वह स्वभाव अनुसार करता है, लेकिन उसे समझना चाहिए कि 'मुझसे सामने वाले को दु:ख होता है। इसलिए मुझे उसके लिए माफी माँग लेनी चाहिए कि मेरा स्वभाव टेढ़ा है न, उससे आपको दु:ख हुआ है, इसलिए माफी माँगता हूँ'।

हम प्रतिक्रमण करें तो बहुत अच्छा। अपने कपड़े साफ हो जाते हैं न? अपने कपड़ों में मैल क्यों रहने दें? दादा ने ऐसा रास्ता दिखाया है तो फिर क्यों साफ न कर दें?

भूल नहीं है, वहाँ नहीं है भोगवटा

किसी को हम से किंचित्‌मात्र दु:ख हो जाए तो जानना कि अपनी भूल है। अपने भीतर परिणाम ऊँचे-नीचे हों इसलिए भूल अपनी है, ऐसा समझ में आता है। सामने वाला व्यक्ति भुगत रहा है इसलिए उसकी भूल तो प्रत्यक्ष है लेकिन निमित्त हम बनें, हमने उसे डाँटा इसलिए अपनी भी भूल है। दादा को क्यों *भोगवटा* नहीं आता? क्योंकि उनकी एक भी

भूल नहीं रही। अपनी भूल से सामने वाले को कोई भी असर हो जाए, यदि कोई उधार हो जाए तो तुरंत ही मन से माफी माँगकर जमा कर लेना है। अपनी भूल हुई हो तो उधार हो जाता है लेकिन तुरंत ही कैश-नकद प्रतिक्रमण कर लेना है। और यदि किसी के कारण अपनी भूल हुई हो तब भी हमें आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान कर लेना है। मन-वचन-काया से, प्रत्यक्ष दादा भगवान की साक्षी में क्षमा माँगनी है।

कदम-कदम पर जागृति रहनी चाहिए। हम में क्रोध-मान-माया-लोभ रूपी कषाय हैं। वे भूल करवाते ही हैं और उधार चढ़ाते हैं। लेकिन उसके सामने हमें तुरंत ही तत्क्षण माफी माँगकर जमा करके साफ कर लेना है। यह व्यापार पेन्डिंग (बाकी) नहीं रखना है, यह तो असल नकद व्यापार कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : अभी जो भूलें होती हैं, वे पिछले जन्म की ही हैं न?

दादाश्री : पिछले जन्मों के पापों को लेकर ही ये भूलें हैं। लेकिन इस जन्म में फिर से भूल तोड़ता ही नहीं है और बढ़ाता जाता है। भूल को तोड़ने के लिए भूल को भूल कहना पड़ता है। उसकी तरफदारी नहीं करनी चाहिए। 'यह' 'ज्ञानी पुरुषों' की चाबी कहलाती है। उससे किसी भी प्रकार के ताले खुल जाते हैं।

अर्थात् जब खुद की भूल टूटेगी तब काम होगा या फिर ज्ञानी पुरुष आपको तारे तो हो सकता है। ज्ञानी पुरुष तार सकते हैं। आप यदि ऐसा कहो कि, 'मुझे बचाइए', तो बचाएँगे। उन्हें ऐसा नहीं है कि मुझे कुछ फीस लेनी है। क्योंकि अमूल्य चीज़ की फीस कितनी दोगे? और यह मूली तो मूल्यवान कहलाती है! मूली तो दस पैसे की। देखो, मूल्यवान है न? और यह तो अमूल्य चीज़ कहलाती है। यानी इसका मूल्य-वूल्य नहीं होता। अमूल्य! अमूल्य!! अर्थात् ऐसे कीमत नहीं होती!

दोष तो हुए बगैर रहता ही नहीं न! निरे दोष ही होते रहेंगे। वे दोष आपको दिखते रहेंगे। दोष दिखा यानी उस दोष का प्रतिक्रमण करना है, पश्चाताप करना है और फिर से ऐसा नहीं करूँगा, ऐसा

प्रत्याख्यान करना है। वह 'शूट ऑन साइट' कहलाता है। दोष हुआ कि तुरंत उसे धो डालो। ऐसे आपको तुरंत धोने की इच्छा है या बारह महीने बाद?

इसीलिए तो उल्टे गए फिर

प्रश्नकर्ता : जब क्रमिक के प्रतिक्रमण करते थे, तब दिमाग़ में कुछ बैठता नहीं था और अब यहाँ जो करते हैं तो हल्के फूल हो जाते हैं।

दादाश्री : लेकिन वह प्रतिक्रमण तो सब आपने नासमझी से किए थे। प्रतिक्रमण यानी तुरंत दोष घटना चाहिए, वह प्रतिक्रमण कहलाता है। हम उल्टे गए थे और फिर वापस लौटे, वही प्रतिक्रमण कहलाता है। यह तो वापस लौटे नहीं और वहीं के वहीं पर ही है! उल्टा वहाँ से आगे गए है! इसलिए उसे प्रतिक्रमण कहें ही कैसे?

गत जन्मों के प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : अतिक्रमण कब होता है, कि कुछ पिछले जन्मों का हिसाब होगा, तभी न?

दादाश्री : हाँ, तभी होता है।

प्रश्नकर्ता : यानी जब अपने लिए प्रतिक्रमण करते हैं, तब सारा प्रतिक्रमण पिछले सभी जन्मों के पापों के लिए होता है?

दादाश्री : वह हिसाब हम तोड़ देते हैं। अपने लोग 'शूट ऑन साइट' प्रतिक्रमण करते हैं। इसलिए अपने दोष तुरंत निर्मूल हो जाते हैं।

बड़े दोष के प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : अपना बड़ा दोष दिखे तो उसका प्रतिक्रमण कैसे करना है?

दादाश्री : प्रतिक्रमण तो मूल शब्दों के रूप में होता है, लेकिन

वह भी शब्दों की जंजाल ही न? इसके बजाय, नहीं आता हो तो कहना है कि 'हे दादा भगवान! या फिर जिस भगवान को मानते हो, उस भगवान को याद करके, कि मुझसे यह भूल हो गई, इस भाई पर ज़्यादा गुस्सा हो गया, इसकी मैं क्षमा माँगता हूँ। पछतावा करता हूँ, फिर से ऐसा नहीं करूँगा'। बस, इतना ही बोलेंगे तो भी चलेगा।

बाकी, शब्दों की जंजाल तो बहुत है। बड़े शब्दों में बताया होता है सब, लेकिन वह कब पूरा होगा? जब उन शब्दों को बोलते रहेंगे, तब। जबकि यह तो संक्षेप में बोल देना है।

परिणामिक प्रतिक्रमण

सामने वाले की भूल हो तो भी हमें माफी माँग लेनी है।

प्रश्नकर्ता : सब के बीच में, दादा की साक्षी में, हर एक व्यक्ति खुद की भूलों की माफी माँग ले तो?

दादाश्री : वह तो, मानो कि एक बिगिनिंग (शुरुआत) है। उससे कहीं धुल नहीं जाता। आपको प्रतिक्रमण ऐसा करना चाहिए कि सामने वाला खुद सामने से बुलाए। अभी मेरी हाज़िरी में शुरुआत करनी है।

जब भी उलझन होती है, तब 'दादा' अवश्य याद आ ही जाते हैं और उलझते ही नहीं है। 'हम तो क्या कहते हैं कि उलझनों में मत पड़ना और कभी उलझन हो जाए तो प्रतिक्रमण कर लेना।' उलझन हो तो तुरंत ही समझ में आ जाता है। लोग 'सत्य बोलो, दया रखो, चोरी मत करो', ये सुन-सुनकर तो थक गए हैं।

भीतर उलझन हो तो उलझन में रहकर सोना नहीं है। उलझन का हल लाना चाहिए। अंततः कोई हल नहीं मिले तो भगवान से माफी माँगते रहना कि 'इसके साथ उलझन हो गई है तो उसके लिए माफी माँगता हूँ'। तब भी हल आ जाएगा। माफी ही सब से बड़ा शस्त्र है। बाकी, दोष तो, निरंतर दोष होते ही रहते हैं।

अहंकार, पाशवी व मानवीय

जब सामने वाले को डाँटते हो तब आपको यह ख्याल नहीं आता कि यदि आपको कोई डाँटे तो? ऐसा ध्यान में रखकर डाँटना।

सामने वाले का ख्याल रखकर हर एक कार्य करना, वही है, मानव अहंकार और अपना ख्याल रखकर हर एक के साथ बर्ताव करना और नुकसान पहुँचाना, तो उसे क्या कहते हैं?

प्रश्नकर्ता : पाशवी अहंकार।

दादाश्री : पहले मारे थे? नहीं?

प्रश्नकर्ता : अब ज्ञान लेने के बाद जब ऐसे संयोग खड़े हों तब क्या करना चाहिए?

दादाश्री : ज्ञानी होने के बाद तो उन्हें ज्ञान अलग रहता है। अलग रहना आए तो उन्हें कुछ नहीं होता। यदि अलग रहकर सब नाटक देखते रहे तब तो कोई आपत्ति नहीं है और यदि जुड़ जाए तब भी वह नहीं है। कुछ भी अलग नहीं रहता तो वह फाइल बाद में फिर से साइन करनी पड़ेगी, अलग रहकर। वह फाइल वापस फिर से आएगी। सिग्नेचर (साइन) हुए नहीं, तो भी रह जाता है न कागज़, ऐसा। लेकिन निपटारा तो आपको ही लाना होगा। मैं कहता हूँ, वह सब पूरा समझ में आ गया?

प्रश्नकर्ता : हाँ, दादा!

दादाश्री : साइन नहीं हुई होगी तो फिर से वापस पेपर आएगा। वह देखकर, पढ़कर और समभाव से *निकाल* करें तो वहाँ से छूट गए।

अब ऐसा कब नहीं बनता? कि जब कर्म बहुत भारी हो और गाढ़ हो न, तब इंसान से भूलचूक हो जाती है इसलिए हो जाता है। तब फिर हम पछतावा करते हैं। हो जाने के बाद फिर उसे पछतावा होता है न! पछतावा करने से ढीला हो जाता है यानी फिर से जब इस तरफ आएगा तो इतना नरम हो जाएगा कि उस स्थिति में हम (समभाव से *निकाल*) कर सकेंगे। पछतावा करने से।

हमें कहना है, 'चंदूभाई' पछतावा करो। अतिक्रमण क्यों किया? दादा का नियम क्या है? अतिक्रमण किया इसलिए प्रतिक्रमण करो, बस! यह नियमानुसार है न?

अपना विज्ञान तो एक-एक कोने में से नियम में होता है। यह विज्ञान यानी पूर्णत: असल विज्ञान है।

पूरा क्रमिक ज्ञान तो भगवान ने केवलज्ञान में रहकर कहा और कल्पना में आया। और अपना यह भी केवलज्ञान में रहकर कहा, लेकिन यह कल्पना से बाहर की चीज़ है! उसमें तो विरोधाभास (देखने) मिलता है, लेकिन यहाँ नहीं मिलता।

भूल दिखाए उसे शाबासी?

आपकी भूल दिखाए तो आप शाबासी देते हो क्या?

प्रश्नकर्ता : अब वह तो जिसका जैसा अहंकार।

दादाश्री : अरे, राम तेरी माया! वहाँ तो क्या का क्या बोलता है! वहाँ मुड़कर तो देखो कि 'भाई, मुझे ऐसा कहे तो क्या करना चाहिए?

प्रश्नकर्ता : इस बात में तो मैं (समझ) पकड़ लेता हूँ कि तूने यह सही किया।

दादाश्री : नहीं, नहीं, नहीं। क्योंकि हमें खुद की सही में जो भूल है, वह मिलती नहीं। वह तो कुछ ही बातों में आप पकड़ सकते हो कि 'मुझसे यह भूल हो गई है' लेकिन दूसरी बात में नहीं पकड़ पाओगे इसलिए उल्टा ही बोलेंगे।

'चंदूभाई भूल करते हैं', कोई ऐसा कहे कि 'आपकी भूल है' तो हमें भी कहना है कि, 'चंदूभाई, आपसे भूल हुई होगी तभी वे कह रहे हैं न? वर्ना यों ही तो कोई कहता है क्या?' क्योंकि कोई यों ही नहीं कहता। कोई न कोई भूल हुई ही होगी। तो हमें ऐसा कहने में क्या परेशानी है, 'भाई, आपकी कोई भूल होगी इसलिए कह रहे हैं।

तो माफी माँग लो।' और यदि 'चंदूभाई' किसी को दुःख दे दें तो हमें कहना है कि, 'प्रतिक्रमण कर लो, भाई!' क्योंकि हमें मोक्ष जाना है। अब जो भी चाहें, वैसा करने जाएँ तो वह नहीं चलेगा।

अन्डरहैन्ड की मत देखना भूल

प्रश्नकर्ता : दूसरों के दोष दिखाई दें, खुद के दोष दिखाई दें तो क्या उन्हें देखते रहना है? क्या करना है?

दादाश्री : खुद के दोष दिखाई दें तो कुछ व्यक्तियों को कहना है, कुछ व्यक्तियों को नहीं कहना चाहिए और कुछ व्यक्तियों के दोष दिखाई दें तो उनका प्रतिक्रमण करके खत्म करना है, ऐसे तीन रास्ते हैं। यदि दोष दिखाई दें तो प्रतिक्रमण करके खत्म कर देना और यदि प्रतिक्रमण नहीं करो, दोष दिखते रहें तो किसके बताने हैं, पुलिस वाले के, मजिस्ट्रेटों के, उनके सारे दोष बताना कि आप सब ऐसे हो। लेकिन ये जो सब अन्डरहैन्ड (आश्रित) हैं, उनके दोष मत कहना। समझ में आया न?

हर एक चीज़ भूल से ही भरी हुई होती है। इसलिए सब भूलें तो होगी ही न? भूल बगैर का तो कोई नहीं होता, किसी की भूल निकालना, वह मूरख का काम है। आपको भूल निकालना पसंद है?

प्रश्नकर्ता : दूसरे का दोष दिखा, वह जो भूल हुई, उसका प्रतिक्रमण करना है?

दादाश्री : लोगों का दोष दिखाई दे तो उसे छोड़ देना है, फिर आगे हमें क्या करना है कि, 'ओहोहो! अभी भी आप दूसरों के दोष देखते हो? उसके प्रतिक्रमण करो', इसे अपना दोष देखा कहलाता है। ऐसे पचास हो जाएँ तो बहुत हो गया।

दूसरों के दोष देखने का अधिकार ही नहीं है। इसलिए उस दोष की क्षमा माँगनी है, प्रतिक्रमण करना है। परदोष (दूसरे के दोष) देखने की तो पहले से उन्हें हैबिट (आदत) थी ही न, उसमें नया कुछ है ही नहीं। वह हैबिट एकदम से छूटती नहीं। वह तो फिर इस

प्रतिक्रमण से छूटती है। जहाँ दोष दिखें, वहाँ प्रतिक्रमण करो, 'शूट ऑन साइट!'

निश्चय करना, वह क्या है?

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण होने चाहिए लेकिन अभी भी वे नहीं हो पाते।

दादाश्री : वह तो जो करना है न, उसका निश्चय करना पड़ता है।

प्रश्नकर्ता : निश्चय करना यानी उसमें करने का अहंकार तो आया न फिर? वह क्या चीज़ है? उसे समझाइए।

दादाश्री : कहने के लिए है, मात्र कहने के लिए है।

प्रश्नकर्ता : महात्माओं में कई लोग ऐसा समझते हैं कि, 'हमें कुछ करना ही नहीं है, निश्चय भी नहीं करना है'।

दादाश्री : नहीं, मुझसे पूछते हैं तो मैं उसे कहता हूँ कि अहंकार के बिना निश्चय कैसे हो पाएगा? इस निश्चय का क्या है कि डिसाइडेड पूर्वक करना। डिसाइडेड यानी क्या? यह नहीं और 'यह' बस। ऐसे नहीं बल्कि ऐसे होना चाहिए।

इस तरह हम 'रोंग बिलीफ' तो नहीं कह सकते न? लेकिन इस तरह शब्दों में कहना पड़ता है तभी बात पहुँचेगी। वर्ना पहुँचेगी ही नहीं न! लेकिन यह पहुँचती है।

प्रतिक्रमण देर से कर सकते हैं?

प्रश्नकर्ता : भीतर उत्पात हो जाता है और उसका 'शूट ऑन साइट' *निकाल* करना नहीं आता लेकिन शाम को दस-बारह घंटे बाद ऐसा विचार आता है कि 'यह सब गलत हुआ तो क्या उसका *निकाल* हो जाता है? देर से करें तो?

दादाश्री : हाँ। देर से हो तो उसका प्रतिक्रमण करना चाहिए।

गलत हो जाने के बाद प्रतिक्रमण करना है कि 'मुझसे यह भूल हो गई, अब फिर से नहीं करूँगा। हे दादा भगवान! मेरी भूल हुई। मुझसे भूल हो गई, अब फिर से नहीं करूँगा'।

प्रश्नकर्ता : स्वरूप ज्ञान लेने के बाद कुछ कर्म हो जाएँ, उदाहरण के तौर पर, कभी किसी के प्रति अतिक्रमण हो जाए तो तुरंत ही आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान होता नहीं है।

दादाश्री : किस वजह से होता नहीं है?

प्रश्नकर्ता : तुरंत नहीं हो पाता है।

दादाश्री : तुरंत नहीं हो पाए तो दो घंटे के बाद करो। अरे, रात को करो, रात को याद करके करो। रात को याद करके नहीं कर सकते, कि 'आज किसके साथ टकराव में आए?' ऐसा रात को नहीं कर सकते? अरे, हफ्ते बाद करो। हफ्ते बाद सब इकट्ठा करो। हफ्ते में जितने अतिक्रमण हुए हों, उन सब के इकट्ठे हिसाब करो।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह तुरंत होना चाहिए न?

दादाश्री : तुरंत हो जाए, उसके जैसी तो बात ही नहीं। अपने यहाँ तो ज़्यादातर सब 'शूट ऑन साइट' ही करते हैं। देखते ही शूट करो। देखते ही शूट करो।

अजागृति के प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : मैं जब दादा का नाम लेता हूँ या आरती करता हूँ, तब भी मन दूसरी जगह भटकता रहता है। फिर आरती में कुछ अलग ही गाने लगता हूँ। फिर पंक्तियाँ अलग ही गाई जाती है। फिर विचार आएँ, उनमें तन्मयाकार हो जाता हूँ। फिर थोड़ी देर बाद उसमें वापस लौट आता हूँ।

दादाश्री : ऐसा है न, उस दिन प्रतिक्रमण करना है। विचार आए तो हर्ज नहीं है, जब विचार आए, तब आप 'चंदूलाल' को देख सकते हो कि 'चंदूलाल' को विचार आते हैं, वह सब देख सकते हो

तो 'हम' और 'वह', दोनों अलग ही हैं। लेकिन उस वक्त ज़रा कच्चापन रह जाता है।

प्रश्नकर्ता : उस वक्त जागृति ही नहीं रहती।

दादाश्री : तो उसका प्रतिक्रमण कर लेना है कि 'यह जागृति नहीं रही, उसका प्रतिक्रमण करता हूँ। दादा भगवान क्षमा करना'।

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण करने का बहुत देर बाद याद आता है कि इस व्यक्ति का प्रतिक्रमण करना था।

दादाश्री : लेकिन याद तो आता है न? सत्संग में ज़्यादा बैठने की ज़रूरत है। सबकुछ पूछ लेना चाहिए, सूक्ष्मता से। यह तो विज्ञान है। सबकुछ पूछ लेने की ज़रूरत है।

आपकी इच्छा तो है न, प्रतिक्रमण करने की फिर भी नहीं हो पाता न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, इच्छा तो है ही न!

दादाश्री : हाँ। लेकिन प्रेक्टिस नहीं है न! इसलिए पहले प्रेक्टिस करनी होगी। पहले दो-तीन-चार दिन हमें प्रेक्टिस करनी होगी। यदि हमें डॉक्टर ने कहा हो कि आज दायें हाथ से मत खाना, फिर भी खाते वक्त दायाँ हाथ आगे आ ही जाता है।

प्रश्नकर्ता : निरंतर हमारे ध्यान में रहे तो प्रयत्न नहीं करना पड़ता। सहज ही हो जाता है।

दादाश्री : हाँ, यह सबकुछ सहज ही हो जाए, ऐसा है। उसके लिए कुछ करना नहीं पड़ता। यानी आपको मैं करके दूँगा।

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण करता हूँ न, तो आनंद होता है, अच्छा लगता है। लेकिन अभी भी, जितने दोष दिखने चाहिए न, उतने दिखते नहीं हैं।

दादाश्री : वे अब दिखेंगे। अभी तो देर लगेगी। जब परतें कम

होंगी तब वे दिखाई देंगे। अभी तो सब मोटा-मोटा (स्थूल) ही चल रहा है। लेकिन प्रतिक्रमण करने से परतें कम होंगी।

दोष दिखाई दे, वह सरल बात नहीं है। और फिर हम तो पूरा अनावृत कर देते हैं, लेकिन उसकी दृष्टि हो कि 'मुझे देखने हैं' तो दिखते रहते हैं। जैसे कि खाने की थाली में से खाना खाने के लिए खुद को हाथ तो उठाना पड़ेगा न? अपने आप ही खाना मेरे मुँह में आ जाए, ऐसा थोड़े ही होता है? प्रयत्न तो होना ही चाहिए न?

मनुष्य से दोष होना स्वाभाविक है। उससे विमुक्त होने का रास्ता कौन सा है? 'प्रतिक्रमण'! वह सिर्फ 'ज्ञानी पुरुष' ही दिखाते हैं।

सामने वाला बिल्कुल अनजान तब

प्रश्नकर्ता : किसी दिन ऐसा होता है कि 'हमें भूल लगती हो फिर भी सामने वाले व्यक्ति को ध्यान में ही नहीं होता', क्या ऐसा हो सकता है?

दादाश्री : हाँ। वह तो मुझे सब की भूल लगती हो, लेकिन उन्हें पता ही नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : ऐसा नहीं। मुझे लगता है कि मुझसे आपके प्रति भूल हो गई लेकिन आपको ऐसा होता ही नहीं कि, 'उसने मेरे प्रति भूल की है' तो मैं जो पछतावा करता हूँ, उसका क्या होता है?

दादाश्री : हाँ, तो यदि आप पछतावा करते हो कि 'मैंने भूल की तो आप छूट गए'। उसे समझ हो या नहीं हो, उससे हमें क्या?

प्रश्नकर्ता : मुझे लगा कि मैंने भूल की है?

दादाश्री : हाँ। उसका पोस्ट ऑफिस बंद हो, उससे हमें क्या? अपना पोस्ट ऑफिस तो चालू है न! हमने उल्टी मुहर लगाई थी। यह उल्टी लगी तो सीधी लगा देना है।

प्रश्नकर्ता : या फिर बुद्धि ही ऐसी होगी कि जो थोड़े-थोड़े दिन पर कुछ भूल ढूँढकर दखल करती रहती है?

दादाश्री : वह क्या दखल करती है?

प्रश्नकर्ता : कि 'यह तेरी भूल हो गई, ऐसा तुझे नहीं करना था'।

दादाश्री : हं! तो अच्छा ही कहती है न? लेकिन ऐसा सचेत करने वाला कौन मिलेगा?

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, शायद वह भूल नहीं हुई हो, तो भी?

दादाश्री : नहीं, भूल नहीं हुई हो ऐसा नहीं, भूल हो जाए तभी कहता है। भीतर सचेत करता है। वह कौन सचेत करता है इस दुनिया में? कोई सचेत करने नहीं आता। यह भीतर ज्ञान रखा है, वह सचेत करता रहता है। निरंतर सचेत करता है!

द्वेष गया, वही खुदा

भीतर अपने आप प्रतिक्रमण होते रहते हैं। लोग कहते हैं, अपने आप ही प्रतिक्रमण हो जाते हैं? मैंने कहा, 'हाँ! बोलो, मैंने कैसी मशीन रखी है? कि प्रतिक्रमण शुरू हो जाता है। आपकी नीयत साफ होगी तब तक सब तैयार रहता है।

प्रश्नकर्ता : यह हकीकत है दादा, प्रतिक्रमण अपने आप होते रहते हैं और दूसरा, यह विज्ञान ऐसा है कि 'ज़रा भी द्वेष नहीं होता'।

दादाश्री : हाँ, द्वेष नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : वह एक आश्चर्य है, दादा!

दादाश्री : उसे ही खुदा कहते हैं, द्वेष नहीं होता, उसे खुदा कहते हैं!

ऐसा नहीं बोलते

प्रश्नकर्ता : ये भाई कहते हैं, मुझसे प्रतिक्रमण नहीं होते, वह क्या कहलाता है?

दादाश्री : वह तो भीतर होते रहते हैं लेकिन ख्याल नहीं आता।

यानी एक बार बोलें कि, 'मुझसे नहीं होते' तो वह बंद हो जाता है। वह मशीन बंद हो जाती है। जैसी भजना करे, वैसी भक्ति, वह तो भीतर होती रहती है। कुछ टाइम के बाद होती है।

प्रश्नकर्ता : हम से किसी को दुःख हो, वह हमें पसंद नहीं है। बस इतना ही रहता है, फिर आगे नहीं बढ़ता। प्रतिक्रमण जैसा आगे हो नहीं पाता।

दादाश्री : वह तो हम भीतर जैसा बोलते हैं, वैसी मशीन रखी है, वह चलती रहती है! जैसी भजना करें, वैसा हो जाता है। आप कहो कि, 'मुझसे ऐसा नहीं होता', तो वैसा होता है और कहो कि, 'इतने ज़्यादा प्रतिक्रमण होते हैं कि मैं थक जाता हूँ' तो भीतर वह थक जाता है। यानी प्रतिक्रमण करने वाला करता है, आप अपना हाँकते चलो न, आगे पाँच सौ-पाँच सौ प्रतिक्रमण होते रहते हैं। आप तो हाँकते रहो न, कि 'मुझसे प्रतिक्रमण होते हैं'।

यह विज्ञान सर्वस्व दोषों को नष्ट करने वाला है, वीतराग बनाने वाला है। हमें प्रतिक्रमण करने हैं, ऐसा निश्चय करेंगे तो प्रतिक्रमण हो जाएँगे। 'नहीं होते' बोलेंगे तो फिर उल्टा होगा। 'नहीं होता', ऐसा नहीं कहना है। होंगे ही, क्यों नहीं होंगे?

हर रोज़ रात को प्रतिक्रमण

आपको प्रतिक्रमण से छुटकारा लेना है? कैसे होगा? वह तो, वही मुख्य है, वही टिकट है।

प्रश्नकर्ता : उल्टा ऐसा होना चाहिए कि 'प्रतिक्रमण कैसे ज़्यादा हों'।

दादाश्री : हं! वह जागृति से होगा। हर रोज़ करना है। पूरे दिन का प्रतिक्रमण करना है, ऐसे ऑन द मोमेन्ट। तुरंत ही नहीं हो पाए तो पूरे दिन का याद कर-करके शाम को करना है, आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान।

आलोचना में दादा भगवान से कहना है कि, 'ऐसा-ऐसा हो

जाता है। अब ऐसा नहीं होना चाहिए, फिर भी हुआ है। उसके लिए मैं पश्चाताप करता हूँ, अब फिर से नहीं करूँगा, ऐसा निश्चय करता हूँ'।

प्रश्नकर्ता : पूरे दिन में जो घटित हुआ हो, वह और सुबह से शाम तक घटित हुआ हो, वह, शाम को 'चंदूलाल' की खबर ले लेता हूँ कि आपने सही-गलत क्या किया? उसका सारा हिसाब शाम को कर लेना है।

दादाश्री : ऐसा है न, हो सके तो 'शूट ऑन साइट' रखना है। हो गया कि तुरंत ही प्रतिक्रमण करना है और यदि नहीं हो पाए तो शाम को इकट्ठा करके करना है। लेकिन इकट्ठे करने में दो-चार रह जाएँगे। वे क्यों बाकी रखें? और रखेगा भी कौन उन्हें? क्योंकि अपना काम तो 'शूट ऑन साइट' का है!

नहीं है जन्म लड़ने के लिए

प्रश्नकर्ता : दोषों के लिए तो संपूर्ण जागृति रखनी है। उसके पीछे पड़ना है?

दादाश्री : दोषों का निबेड़ा लाना है। *निकाल* कर देना है।

प्रश्नकर्ता : दोषों का प्रतिक्रमण करते हैं, उसमें अंदर जो प्रक्रिया होती है, उसमें दोष का निबेड़ा आता है, 'शूट' शब्द से निबेड़ा आ जाता है?

दादाश्री : वह तो मनोरंजन के लिए 'शूट' शब्द है। 'शूट' से शूरता रहती है, लोग सुनें तो शूरता आएगी न?

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण की प्रक्रिया से दोष का एन्ड आता है, समाधान करके निबेड़ा लाया जाता है क्या?

दादाश्री : समाधान हो जाए फिर शूट-वूट करना नहीं रहता। अपना विज्ञान क्या कहता है? आप उसको मारकर आए इसलिए प्रतिक्रमण करो। वास्तव में भगवान क्या कहते हैं? निबेड़ा लाओ, *निकाल* करो। अंत तक लड़ना नहीं है, लड़ने के लिए जन्म नहीं है। भगवान ने 'मार' शब्द लिखने नहीं दिया, कहते हैं 'मार' नहीं लिखना है। 'मार' शब्द से ही भीतर हिंसा की शुरुआत होती है।

तभी आयुष्य का अंत आता है

प्रश्नकर्ता : 'शूट ऑन साइट' प्रतिक्रमण करते हैं, वह भी ध्यान का परिवर्तन ही है न?

दादाश्री : हाँ, वह ध्यान का ही परिवर्तन है।

प्रश्नकर्ता : 'शूट' किया यानी उसने *पुद्‌गल* को नष्ट किया, जो 'व्यवस्थित' में था, उसमें दखल की। तो दूसरा जन्म होगा, वह कैसा होगा?

दादाश्री : वह भी उसके जैसा ही आएगा। जो लिंक है, वैसी की वैसी आती है।

प्रश्नकर्ता : जो 'शूट' करके बदल देते हैं, उनका उतना ही आयुष्य या छोटा?

दादाश्री : उसका आयुष्य यहाँ खत्म हो जाने वाला था इसलिए उस समय खत्म होने के सारे 'सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स' इकट्‌ठे होते हैं और आयुष्य खत्म हो जाता है, लट्‌टू झट-पट घूम जाता है!

आपको कैसा रहता है?

प्रश्नकर्ता : पाँच सौ से हज़ार दोष दिखाई देते हैं।

दादाश्री : देखो न, रोज़ पाँच सौ दोष दिखाई देते हैं। आप यदि अखबार में लिखेंगे तो आपके यहाँ दूसरे दिन दर्शन करने के लिए आएँगे लोग! बाकी, किसी को (खुद के) दोष दिखाई देते हैं क्या? पाँच दोष नहीं दिखते, बड़े-बड़े आचार्य हों लेकिन उन्हें भी दोष नहीं दिखते!

अब भीतर आपकी खुद की कितनी भूलें दिखती हैं?

प्रश्नकर्ता : अनेक।

दादाश्री : तो फिर? यदि एक ही दिखती है तब भी भगवान माना जाता है, तो सारी दिखे तब क्या होगा?

प्रश्नकर्ता : हर एक पल भूल दिखाई देती है, दादा।

दादाश्री : हाँ, हर पल दिखाई देती है और हर पल प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं।

नहीं है क्रमिक में इतना उघाड़

'शूट ऑन साइट' होने लगे तभी से वह ज्ञानी कहा जाता है। दोष दिखा और 'शूट आउट' करे, वह ज्ञानी कहलाता है। क्रमिक मार्ग में ज्ञानी 'शूट ऑन साइट' करते हैं, लेकिन उनका इतना उघाड़ नहीं होता। इतना ज़्यादा स्पष्ट नहीं होता।

जजमेन्ट क्लियर

प्रश्नकर्ता : हम दोषों का प्रतिक्रमण तो करें, लेकिन ऐसे सामने वाले के गुण हों, उसके लिए क्या करना है? उसका प्रतिक्रमण करने हैं?

दादाश्री : उसमें तो उस गुण से, उसके साथ भाव से ही अपना बर्ताव अच्छा होता है। उसमें दूसरा कुछ करना नहीं होता।

जब कर्म बहुत *चीकणा* हो और गांठें हो, तब इंसान भूल करता है। पछतावा करने से वह इतना ढीला हो जाता है कि अगले जन्म में धोया जा सके। प्रतिक्रमण करने पर भी दोष रह ज़रूर जाता है लेकिन वह कितना? कि यह गांठ दिखाई ज़रूर देती है, लेकिन अगले जन्म में हाथ लगाने से ही झड़ जाएगी। यह प्रतिक्रमण करने से बल मिलता है, रिफंड (प्रतिफल) मिलता ही है! यदि भीतर प्रतिक्रमण हों तो धुल जाता है। उसे खुद की भूल दिखनी ही चाहिए। क्या भूल हुई वह, तुरंत 'ऑन द मोमेन्ट' भूल दिखनी ही चाहिए। क्योंकि इतना तो अपना जजमेन्ट होता है, जजमेन्ट क्लियर (स्पष्ट न्याय) होना चाहिए। क्लियर जजमेन्ट हो तभी काम होता है।

छिपाए अहंकार को

जब से दोष दिखना शुरू हुआ, तब से जान लेना कि मोक्ष में

जाने की टिकट आ गई है। खुद का दोष किसी को भी दिखता नहीं है, बड़े-बड़े साधु-आचार्यों को भी नहीं! उन्हें अपने दोष नहीं दिखते हैं। मूल में सब से बड़ी कमी है यह। और यह विज्ञान ऐसा है कि यह विज्ञान ही आपको निष्पक्षपात रूप से जजमेन्ट देता है। खुद के सारे ही दोष खुले कर देता है। हो जाने के बाद कर देता है, लेकिन खुला कर देता है न? अभी हो गया सो हो गया। वह तो अलग है, गाड़ी की स्पीड (रफ्तार) तेज हो तो कट जाएगा न? लेकिन तब तो पता चला न?

किसी को पता नहीं चलता! इन साधु-सन्यासी, आचार्यों को, किसी को कुछ पता नहीं चलता! दोष हो गया, वह पता नहीं चलता और 'शूट ऑन साइट' करते नहीं। संभवत: खुद को ऐसा लगता है कि दोष हुआ है ज़रा।

बहुत भारी दोष हुआ हो तो मन में ऐसा समझता है कि यह गलत हुआ। लेकिन फिर जब कोई उनको आकर कहे कि, 'महाराज, इस शिष्य के साथ ऐसा क्यों किया?' तब खुद से भूल हुई है, ऐसा जानते हैं, फिर भी उल्टा बोलते हैं। क्या बोलते हैं? 'आप समझते नहीं, वह मेरा शिष्य कैसा है? ऐसा ही करने जैसा है।' ऐसा बोलते हैं, टेढ़ा बोलते हैं उल्टा। जहाँ टीला था, फिर वहाँ पर ही गड्ढा कर देते हैं! क्या अपना अहंकार संभालने के लिए ऐसा करते हैं कोई?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : अपना अहंकार संभालने के लिए सभी कुछ करते हैं, बड़े-बड़े साधु-आचार्य सभी ऐसा करते हैं। क्योंकि अहंकार को तो संभालना ही पड़ेगा न? वर्ना वह किसके साथ सोएगा? किसके साथ सोए? भले स्त्री न हो लेकिन अहंकार साथ लेकर सोना अनुकूल आएगा न? अब यदि अहंकार को संभालेगा नहीं तो सोएगा किसके साथ? इसलिए पहले उसे संभालता है।

❖❖❖❖❖

[7]

होता है सही व्यापार

व्यापार में प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : हम जब किसी को मानसिक दुःख पहुँचाते हैं, तब वह अन्याय कहा जाता है। व्यापार में माल तो वही का वही है, लेकिन जब भाव बढ़ाएँगे तभी कमाई होगी और हम भाव बढ़ाते हैं, उससे दूसरे का मन दुःखता है, तो क्या उससे हमें नुकसान होता है?

दादाश्री : आप भाव बढ़ाओगे तभी दुःख होगा। यदि भाव नहीं बढ़ाते हो, तो कोई हर्ज नहीं है। इसमें यदि आप कर्ता होकर करोगे तो दुःख होगा और यदि व्यवस्थित को कर्ता समझोगे तो आपकी कोई ज़िम्मेदारी नहीं है। स्वीकार करो, समझो, 'व्यवस्थित कर्ता है'। सचमुच तो आपकी जोखिमदारी नहीं है। मैंने आपको ऐसी स्टेज (भूमिका) पर लाकर रखा है कि आपकी जोखिमदारी बंद हो जाती है। जोखिमदारी का एन्ड (अंत) होता है। यानी कर्म करने के बावजूद भी आपको अकर्म की स्थिति पर रखा है।

फिर भी आपकी इच्छा ऐसी है कि, 'ऐसी अकर्म की स्थिति पर रखा, लेकिन हम कर सकें, ऐसे तो हैं'। यदि आप कर्ता बनोगे तो बंधन होगा! यह तो जिनको ज्ञान देता हूँ उनके लिए, दूसरे सब तो कर्ता हैं ही। मेरे ज्ञान को समझकर फिर पाँच आज्ञा समझे तो निबेड़ा आता है।

प्रश्नकर्ता : हम कर्ता नहीं है, लेकिन उस कर्म में हमारे भाग लेने से दूसरों को दु:ख पहुँचता है, अपने कर्म से।

दादाश्री : हम यानी कौन लेकिन, 'हू' (Who)? चंदूभाई या शुद्धात्मा?

प्रश्नकर्ता : चंदूभाई।

दादाश्री : आप तो शुद्धात्मा हो न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : तो चंदूभाई कर्ता हैं, उससे आपको क्या लेना-देना? आप जुदा और चंदूभाई जुदा।

प्रश्नकर्ता : चंदूभाई कर्ता बनकर तन्मयाकार तो हो जाते हैं, फिर पता चलता है कि सामने वाली पार्टी को मन दु:ख होता है।

दादाश्री : तो फिर चंदूभाई से कहना है कि, 'भाई, माफी माँग लो, क्यों ऐसे दु:खी किया?' लेकिन आपको माफी नहीं माँगनी है। जो अतिक्रमण करता है, उसे प्रतिक्रमण करना है। चंदूभाई अतिक्रमण करते हैं तो उनसे प्रतिक्रमण करवाना है।

प्रश्नकर्ता : मैं साड़ी बेचने का व्यापार करता हूँ। यदि आसपास की दुकान वाले पाँच रुपये बढ़ा दें और तब मैं भी पाँच रुपये बढ़ा दूँ तो क्या ऐसा कहा जाएगा कि मैंने गलत व्यापार किया? तो क्या मुझ पर उसका असर होगा या नहीं?

दादाश्री : लेकिन कर्ता कौन है वहाँ पर?

प्रश्नकर्ता : चंदूभाई। साड़ी बेचने वाले।

दादाश्री : 'आप' शुद्धात्मा हो और यह तो चंदूभाई करते हैं फिर यू आर नॉट रिस्पॉन्सिबल (आप ज़िम्मेदार नहीं हो)।

और दूसरी तरह से किसी को सामने प्रत्यक्ष दु:ख हुआ ऐसा लगे, उसके लिए तो आपको चंदूभाई से कहना है कि, 'भाई, आपने

अतिक्रमण किया, इसलिए प्रतिक्रमण करो'। बाकी, मैंने आपकी जोखिमदारी बिल्कुल नहीं रहने दी है। आपकी जोखिमदारी उड़ा दी है।

प्रश्नकर्ता : यदि आप उस तरह चंदूभाई को मुक्त छोड़ दोगे तो वे तो कुछ भी करेंगे?

दादाश्री : नहीं! इसीलिए मैंने वह 'व्यवस्थित' (साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स) कहा है कि, 'एक ज़िंदगी के लिए एक बाल जितना भी बदलने का अधिकार नहीं है। 'वन लाइफ' के लिए, हं! जिस लाइफ में मैं 'व्यवस्थित' देता हूँ, उस 'व्यवस्थित' में बदलाव हो सके ऐसा नहीं है इसीलिए तो मैं आपको मुक्त छोड़ देता हूँ। यानी मैं देखकर बता रहा हूँ और इसलिए मुझे डाँटना भी नहीं पड़ता, कि पत्नी के साथ क्यों घूम रहे थे? और क्यों ऐसा-वैसा? दूसरी लाइफ के लिए नहीं, लेकिन इस एक लाइफ के लिए यू आर नॉट रिस्पॉन्सिबल एट ऑल (बिल्कुल)! इतना सब कहा है फिर।

यह है अक्रम विज्ञान

यह तो विज्ञान है। तुरंत मुक्ति देने वाला है और यदि यह विज्ञान समझ जाए तो परिणाम मिले ऐसा है। जहाँ से मेल बैठाओ, वहाँ से परिणाम मिलता ही रहता है और जिस किसी भी चीज़ का परिणाम नहीं मिलता हो तो वह विज्ञान ही नहीं कहलाता। मेल बैठाना हो तो परिणाम मिलना ही चाहिए। विरोधाभास कभी भी नहीं आना चाहिए। सौ साल हो जाए, लेकिन विरोधाभास नहीं हो, उसे सिद्धांत कहते हैं। यह 'अक्रम सिद्धांत' बुद्धि से हार नहीं मानता। कई प्रतिष्ठित बुद्धिशाली मुंबई में आए, लेकिन किसी की अधीनता ही नहीं स्वीकारता। क्योंकि यह बुद्धि से परे वस्तु है! बुद्धि तो लिमिटेड (मर्यादित) होती है और इसकी तो लिमिट भी नहीं होती।

ब्याज लेना चाहिए या नहीं?

प्रश्नकर्ता : ब्याज लेना चाहिए या नहीं लेना चाहिए?

दादाश्री : चंदूलाल को ब्याज लेना है तो लें, लेकिन उनसे कहना कि बाद में प्रतिक्रमण कर लेना।

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण क्यों करना है? ब्याज लेना, वह क्या अतिक्रमण है?

दादाश्री : अतिक्रमण किया है इसलिए। ब्याज लेना अतिक्रमण कब कहा जाएगा? आप जो ब्याज लेते हो उससे यदि सामने वाले व्यक्ति को दु:ख हो जाए तो उसे अतिक्रमण कहा जाएगा।

प्रश्नकर्ता : इन शास्त्रों में ब्याज लेने के लिए मना किया है, उसके पीछे क्या हेतु है?

दादाश्री : ब्याज के लिए तो मना इसलिए किया है कि, 'जो ब्याज लेता है, वह इंसान उसके बाद कसाई जैसा हो जाता है, इसलिए मना किया है। वह अहितकारी है इसलिए! यदि नोबल (बड़े मन का) रह सकता हो तो हर्ज नहीं है।

आदर्श व्यवहार से हम से किसी को दु:ख नहीं होता, हम से किसी को दु:ख नहीं हो, उतना ही देखना है। फिर भी यदि हम से किसी को दु:ख हो जाए तो तुरंत ही प्रतिक्रमण कर लेना है। किसी को दु:ख हो जाए ऐसी भाषा में हमें नहीं बोलना है। यह जो व्यवहार में, पैसों की लेन-देन आदि व्यवहार है, वह तो सामान्य रिवाज़ है, उसे हम व्यवहार नहीं कहते। किसी को भी दु:ख नहीं हो, वह देखना है और दु:ख हो जाए तो प्रतिक्रमण कर लेना है, वही है, 'आदर्श व्यवहार'!

करो उगाही वाले के प्रतिक्रमण

इस प्रतिक्रमण से सामने वाले पर असर होता है और वह पैसे वापस लौटाता है। सामने वाले में ऐसी सद्बुद्धि उत्पन्न होती है। प्रतिक्रमण से ऐसा सुल्टा असर होता है। जबकि अपने लोग तो घर जाकर उगाही वाले को गाली देते हैं तो उसका उल्टा असर होगा या नहीं होगा? उल्टा लोग और ज़्यादा उलझा देते हैं। सारा जगत् असर वाला है।

प्रश्नकर्ता : हम किसी उगाही वाले का प्रतिक्रमण करने पर भी वह माँगता तो रहेगा न?

दादाश्री : माँगने-ना माँगने का सवाल नहीं है। राग-द्वेष नहीं होने चाहिए। कर्ज तो रहेगा भी!

काला बाज़ारी के भी प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : अभी टैक्स (कर) इतने ज़्यादा है कि चोरी किए बगैर बड़े-बड़े व्यापार का समतोलन नहीं होता। सब रिश्वत माँगते हैं तो उसके लिए चोरी तो करनी ही पड़ेगी न?

दादाश्री : चोरी करो लेकिन आपको पछतावा होता है या नहीं? पछतावा हो तो भी वह हल्का हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर इन संयोगों में क्या करना चाहिए?

दादाश्री : हम जाने कि यह गलत हो रहा है, वहाँ हमें हार्टिली (हृदयपूर्वक) पछतावा करना है। पछतावा होना चाहिए तभी छूट पाओगे। अभी यदि कुछ काले बाज़ार का माल लाए हो और बाद में वह काले बाज़ार में बेचना तो पड़ेगा ही, तो चंदूलाल से कहना है कि 'प्रतिक्रमण करो'। पहले प्रतिक्रमण नहीं करते थे इसलिए कर्म के तालाब सब भर गए। अब यह प्रतिक्रमण किया यानी साफ कर दिया। लोभ किसके निमित्त से होता है? लोहा यदि काले बाज़ार में बेचा तो हमें चंदूलाल से कहना है कि 'चंदूलाल आप बेचो उसमें हर्ज नहीं है, वह 'व्यवस्थित' के अधीन है, लेकिन अब उसका प्रतिक्रमण कर लो' और फिर कहना है कि फिर से ऐसा नहीं होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : कितनी जगह पर लोग भूख से मर जाते हैं और एक तरफ मैं ब्लैक (काले बाज़ार) में पैसे बनाता हूँ, उसका समभाव से *निकाल* कैसे हो सकता है?

दादाश्री : वे जो कर रहे हैं न, वही ठीक है। प्रकृति जो करती है न, वह कॉज़ (कारण) की इफेक्ट (परिणाम) ही है। फिर हम जानें,

हमें समझ में आए कि 'यह न्याय से नहीं हुआ' इसलिए हमें 'चंदूलाल' से कहना है कि 'ऐसा मत करो'। माफी माँग लेनी है कि 'फिर से ऐसा नहीं करूँगा', वे कहते हैं ज़रूर लेकिन फिर से ऐसा ही करते हैं। क्योंकि प्रकृति में ऐसा ही गुथा हुआ है न! फिर बाद में 'हमें' धोते जाना है।

चोरियों के भी प्रतिक्रमण

लोगों पर आपको चिढ़ आती है?

प्रश्नकर्ता : घर में किसी के दोष दिखते हैं तो चिढ़ आती है।

दादाश्री : चिढ़ आती है, चंदूलाल को?

प्रश्नकर्ता : चंदूलाल को ही न!

दादाश्री : और 'आपको'? 'आपको' चिढ़ नहीं आती?

प्रश्नकर्ता : चिढ़ भी उसे आती है और *भोगवटा* भी उसे आता है!

दादाश्री : जिन्हें चिढ़ आती है, उन्हें *भोगवटा* आता ही है, फिर आपको कितना नुकसान हुआ?

प्रश्नकर्ता : बहुत ज़्यादा नुकसान हुआ।

दादाश्री : ऐसा? लोगों को मारने के भाव तो नहीं होते न? लोगों से छीन लेने के भाव नहीं होते? पैसे छीन लें, ऐसा-वैसा?

प्रश्नकर्ता : ऐसा नहीं होता।

दादाश्री : लोगों से चुरा ले, ऐसे भाव होते हैं?

प्रश्नकर्ता : लोगों से चोरी, वह कैसे?

दादाश्री : माल बेचना है, उसमें वज़न ज़्यादा लिख देना।

प्रश्नकर्ता : वह थोड़ा-बहुत रहता है।

दादाश्री : अभी भी ऐसा है? फिर प्रतिक्रमण करते हैं आप?

प्रश्नकर्ता : कभी हो जाता है, कभी नहीं होता।

दादाश्री : सब ध्यान तो रखना पड़ेगा न? सौ किलो के बदले यदि एक सौ एक किलो लिख दो तो एक किलो की चोरी की न?

प्रश्नकर्ता : उसका प्रतिक्रमण करें तो क्या होता है?

दादाश्री : हम उसके अभिप्राय में नहीं है। ऐसा अभिप्राय आज नहीं है। आज तो यह बहुत फोर्स (धक्के) से होता रहता है। क्या आज आपका ऐसा चोरी करने का अभिप्राय है?

प्रश्नकर्ता : बिल्कुल नहीं।

दादाश्री : इसीलिए प्रतिक्रमण किया यानी जानना कि आज उसका अभिप्राय नहीं है। पूर्व के फोर्स से हो रहा है।

प्रश्नकर्ता : उसका अगले जन्म में कर्मफल बदल जाएगा?

दादाश्री : नहीं। इस जन्म में ही खत्म हो गया कहलाएगा न? जगत् के लोगों को चोरी करने का अभिप्राय होता है, वे तो अभिप्राय मज़बूत करते हैं कि 'यह करना ही चाहिए' और आपको क्या होता है?

प्रश्नकर्ता : ऐसा नहीं होना चाहिए।

दादाश्री : यानी आप उत्तर में जा रहे हैं और लोग दक्षिण में जा रहे हैं। यह तो चंदूलाल का पिछला स्वरूप दिख रहा है। उस हिसाब से कितना भयंकर था? पिछला स्वरूप कैसा था?

प्रश्नकर्ता : बहुत भयंकर। प्रतिक्रमण करने के बाद फिर से दोष कन्टिन्युअस (सतत) दिखते ही रहते हों तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : उसके बार-बार प्रतिक्रमण करने हैं। नहीं तो सब दोषों का इकट्ठा प्रतिक्रमण करना है, पाव घंटे दोष दिखते रहते हों, फिर सब का साथ में प्रतिक्रमण, इकट्ठा प्रतिक्रमण करना चाहिए।

लोग कहते हैं कि, 'हम मिलावट करेंगे और भगवान से माफी माँग लेंगे'। अब माफी देने वाला कोई है नहीं। आपको ही माफी माँगनी है और आपको ही माफी देनी है।

अनीति के बहुत-बहुत प्रतिक्रमण

एक जन कहता है, 'मुझे धर्म नहीं चाहिए। भौतिक सुख चाहिए'। उसे मैं कहूँगा, 'प्रामाणिक रहना, नीति का पालन करना', मंदिर जाने के लिए नहीं कहूँगा। दूसरों को आप देते हैं, वह देवधर्म है। लेकिन दूसरों का, '*अणहक्क*' (बिना हक़ का, अवैध) का लेते नहीं हैं, वह मानवधर्म है। यानी प्रामाणिकता, वह सब से बड़ा धर्म है। 'डिसऑनेस्टी इज़ द बैस्ट फूलिशनेस!!!' ऑनेस्ट नहीं हो पाता तो मुझे क्या समुद्र में डूबना? मेरे दादा सिखाते हैं कि डिसऑनेस्टी (अधर्म) हो जाए, उसका प्रतिक्रमण करना। तेरा अगला जन्म उज्जवल हो जाएगा। डिसऑनेस्टी को डिसऑनेस्टी जान और उसका पश्चाताप कर। पश्चाताप करने वाला इंसान ऑनेस्ट है, वह नक्की है।

दान देते हैं, अनीति से पैसे कमाते हैं, ऐसा सभी कुछ है। तो उसका उपाय बताया है, अनीति से पैसे कमाए तो चंदूलाल से रात को कहना है कि 'प्रतिक्रमण करते रहो, 'अनीति से क्यों कमाए? इसलिए प्रतिक्रमण करो'। हर रोज़ चार सौ-पाँच सौ प्रतिक्रमण करवाने हैं। खुद को नहीं करना है, चंदूलाल से करवाना है। 'जो अतिक्रमण करता है, उसी से प्रतिक्रमण करवाना है'।

अभी भागीदार के साथ मतभेद पड़ जाए, तो तुरंत आपको पता चल जाता है कि 'यह ज़्यादा बोल दिया' इसलिए तुरंत उसके नाम का प्रतिक्रमण करना है। अपना प्रतिक्रमण कैश पेमेन्ट वाला (रोकड़) होना चाहिए। यह बैंक भी कैश कहलाती है और पेमेन्ट भी कैश कहलाता है।

क्या करें कि अंतराय अटके?

ऑफिस में परमिट (छुट्टी) लेने गए, लेकिन साहब ने नहीं दी तो मन में होता है कि, 'साहब नालायक हैं, ऐसे हैं-वैसे हैं'। अब इसका फल क्या आएगा, वह जानता नहीं है। यानी भाव बदल देना है, प्रतिक्रमण करना है। उसे हम जागृति कहते हैं।

संसार में अंतराय कैसे आते हैं, वह आपको समझाता हूँ। आप जिस

ऑफिस में नौकरी करते हों, वहाँ आपके 'आसिस्टन्ट' (सहयोगी) को बेअक्ल कहो, वह आपकी अक्ल पर अंतराय आया! बोलो, अब पूरे जगत् ने इस अंतराय में फँसकर ही यह मनुष्य जन्म खो दिया है! आपको 'राइट' (अधिकार) ही नहीं है सामने वाले को बेअक्ल कहने का। आप ऐसा बोलते हो इसलिए सामने वाला भी उल्टा बोलता है, तो उसे भी अंतराय पड़ते हैं! बोलो, अब इस अंतराय से जगत् कैसे अटके? किसी को आप नालायक कहते हो तो आपकी लायकी पर अंतराय पड़ते हैं! यदि आप इसके तुरंत ही प्रतिक्रमण करो तो वे अंतराय पड़ने से पहले धुल जाते हैं।

अन्डरहैन्ड को डाँटा उसके प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : नौकरी के फर्ज़ निभाते हुए मैंने बहुत सख्ती से लोगों का अपमान किया था, धुतकारा था।

दादाश्री : उन सब का प्रतिक्रमण करना है। उसमें आपका खराब इरादा नहीं है। आपके खुद के लिए नहीं है। सरकार के प्रति वह सिन्सियरिटी (वफादारी) कहलाती है।

प्रश्नकर्ता : उस हिसाब से मैं बहुत खराब आदमी था, कई लोगों को तो दु:ख भी हुआ होगा न?

दादाश्री : वह तो आपको इकट्ठा प्रतिक्रमण करना है, कि मेरे इस कड़े स्वभाव के कारण जो-जो दोष हुए हैं, उसके लिए क्षमा माँगता हूँ, वह अलग-अलग नहीं करना है।

प्रश्नकर्ता : इकट्ठा प्रतिक्रमण करना है?

दादाश्री : हाँ, आपको ऐसा करना है कि मेरे इस स्वभाव के कारण सरकार का काम करने में जो-जो दोष हुए, लोगों को दु:ख हो जाए ऐसा किया है, उसके लिए क्षमा माँगता हूँ। रोज़ ऐसा बोलना है।

डाँटना, लेकिन...

प्रश्नकर्ता : एक अधिकारी हो, बॉस हो, वह अपने अन्डरहैन्ड

को डाँटे तो उसको दु:ख तो होगा न? कर्मचारी यदि गलत करता है तो उस अधिकारी का डाँटने का फर्ज़ तो बनता है न?

दादाश्री : ऐसा है न, वह डाँटने में तो बहुत ही बड़ा जोखिम है। डाँटना यानी अपना हाथ जले नहीं और सामने वाले को लगे नहीं, इस तरह डाँटना चाहिए। लोग देखते-करते नहीं है और डाँट ही देते हैं। वह डाँटने वाला बहुत बड़ा गुनहगार बनता है। डाँट सुनने वाले का जो होना होगा सो होगा, लेकिन डाँटने वाला तो फँस गया न!

प्रश्नकर्ता : उसका जो फर्ज़ हो, उस फर्ज़ के सामने उसे कितने कदम उठाने पड़ते हैं। तो उसमें वह क्या करे? उसके पास तो दूसरा कोई चारा ही नहीं है न, उसे तो करना ही पड़ेगा न?

दादाश्री : नहीं। वह करना है, लेकिन उसके लिए कोई ऐसा तरीका निकालो कि सामने वाले पर बहुत असर न हो।

प्रश्नकर्ता : दूसरी खोज तो क्या करे? वह यदि काम नहीं करे तो उसे डाँटना तो पड़ेगा ही न?

दादाश्री : लेकिन तौलकर डाँटते हो या तौले बगैर? लोग क्या तौलकर डाँटते हैं? यों पाव सेर, तौलकर देते हैं, नहीं? तो ऐसा तो कहीं करना चाहिए क्या?

प्रश्नकर्ता : वह तो बगैर तौले देते हैं लेकिन उसमें तो ऐसा है न, जहाँ नौकरी करते हैं, वहाँ तो निश्चित ही किया होता है कि 'भाई, यह इतना काम नहीं करता है तो उसके सामने इतने कदम उठाने हैं'। ऐसे सब उसके कोड (नियम) निश्चित किए होते हैं।

दादाश्री : नियमानुसार कार्यवाही करने में कोई हर्ज नहीं है लेकिन ऑन पेपर। लेकिन आप तो मुँह पर (सामने ही) डाँट देते हो। वह तौलकर देते हो या तौले बगैर देते हो?

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, यदि वह काम नहीं करे, हम उसे काम दें और वह काम नहीं करे और काम टाल दे, तब डाँटना तो पड़ेगा ही न?

दादाश्री : हाँ, डाँट देना।

प्रश्नकर्ता : कभी डाँटना पड़ता है। वर्ना उसे नौकरी से निकालना पड़ता है, डिसमिस करना पड़ता है। बाद में हमें मन में दु:ख होता है कि 'उसके बच्चे भूखे मरेंगे'।

दादाश्री : लेकिन ऐसा है न, हमें उसे चेताना है कि 'भाई, मुझे आपको नौकरी से निकलना पड़ेगा, डिसमिस करना पड़ेगा, इसलिए आप चेतकर काम करो'।

प्रश्नकर्ता : ऐसी चेतावनी देते हैं, उसे लिखकर देते हैं कि, 'आप काम करते नहीं हैं, आपको डिसमिस किया जाएगा, आपका काम संतोषजनक नहीं है', ऐसा सब लिखकर देते हैं।

दादाश्री : फिर?

प्रश्नकर्ता : फिर भी नहीं सुधरता तो फिर उसे नौकरी से निकालना पड़ता है और नौकरी से निकाल देते हैं इसलिए फिर उसके बच्चे बेचारे दु:खी होकर रोते-रोते घर आते हैं। हमें दु:ख होता है, उसे भी दु:ख तो होता है न?

दादाश्री : दु:ख बंद करना हो तो रहने देना। खुद काम कर लेना।

प्रश्नकर्ता : यदि कार्यवाही नहीं करेंगे तो बाद में हमें हमारे *ऊपरी* (बॉस) से डाँट सुननी पड़ती है।

दादाश्री : तो कार्यवाही करो न! लेकिन इस तरह करो कि 'आप तो शुद्धात्मा हो', अब चंदूभाई कार्यवाही कर रहे हैं, उससे जोखिमदारी नहीं रहेगी। चंदूभाई तो डिस्चार्ज हैं इसलिए कार्यवाही करेंगे तो आपको जोखिमदारी नहीं रहेगी। हमें चंदूभाई से कहना है कि 'जब तक हो सके तब तक कुछ नहीं करना है, ऐसी कार्यवाही नहीं करनी है। फिर भी यदि वह कर ले तो ठीक है!'

प्रश्नकर्ता : आपकी यह बात सही है। हमने अलिप्तता से

कार्यवाही की लेकिन उससे अगर उस व्यक्ति का मन दुःखी होता है तो प्रतिक्रमण के अलावा उसका और क्या रास्ता है?

दादाश्री : सिर्फ प्रतिक्रमण ही, दूसरा कुछ करना नहीं है।

पछतावा लेना, निमित्त बनने का

प्रश्नकर्ता : आज हम एक नौकरी पर हैं और हमारे ताबे में जो व्यक्ति है, वह यदि कोई भूल करे तो हमें दंड देना पड़ता है। क्योंकि नौकरी में हम ऐसी पोस्ट पर बैठे हैं।

दादाश्री : नहीं, लेकिन वह ऐसा कुछ हुआ हो तो हमें चंदूभाई से पछतावा करवाना है, हो जाने के बाद कि, 'यह नहीं करने जैसा हो जाता है'। अपने निमित्त से उसे दुःख हुआ, उसके लिए पछतावा करना है कि 'यह अपने हिस्से कहाँ आया? हम क्यों ऐसा निमित्त बने? हमें ऐसा निमित्त नहीं बनना चाहिए'। लेकिन अभी आप ऐसी जगह (पोस्ट) पर आ गए हो, ऐसा किए बिना चलता नहीं, इसलिए आपको तो अब 'रूटीन' में (रोज़ाना) सब करना पड़ेगा।

इसमें जिसका गुनाह, उसे दंड

प्रश्नकर्ता : मैं डी.एस.पी. का पी.ए. हूँ। तो मुझे तो कितनों को डिसमिस करना पड़ता है, तो उसका मुझे दुःख होता है, तो क्या उसमें बंधन है?

दादाश्री : कई बार ऐसा बनता है कि 'आप ऊपर लिखकर भेजते हो कि इस भाई को डिसमिस करो और वह डिसमिस नहीं होता, ऐसा बनता है क्या?

प्रश्नकर्ता : बनता है।

दादाश्री : यानी यह जो डिसमिस करते हो, वह आपका रूटीन है और मन में ऐसा भाव रहता है कि डिसमिस नहीं करना है, तो बंधन नहीं है। यह तो क्या है कि जिसका जितना गुनाह है, उतना उसे

दंड मिलेगा। ऐसा नियम है। वह अटका सकें ऐसी चीज़ नहीं है। यानी हमें ऐसा भाव रखना है कि इसे दुःख नहीं हो। बाकी, रूटीन तो चलता ही रहेगा।

भाव पलटने से, जोखिमदारी टले

फाँसी देने वाले व्यक्ति को यदि ज्ञान दिया जाए और फाँसी देना उसके हिस्से आए, लेकिन उसके भाव बदल गए हों तो उसे कोई बंधन नहीं होगा और जिसके भाव ऐसे हैं कि, 'इसे फाँसी पर चढ़ाना है', उसे बंधन है। वह फिर उसको फाँसी पर नहीं चढ़ाता तो भी बंधन है। यानी भाव, वही मुख्य चीज़ है। भाव बदल जाए न, उसे जेल में डालो, तो भी उसका पुण्य बंधता है, ऐसा यह पूरा जगत् है। खुद के भाव की समझदारी चाहिए।

फर्ज़ निभाना, 'ज्ञान' में रहकर

प्रश्नकर्ता : हम किसी के गुनाह की रिपोर्ट करें तो हमें गुनाह लगेगा या नहीं लगेगा?

दादाश्री : नहीं, कुछ नहीं होगा।

प्रश्नकर्ता : मेरे ताबे का व्यक्ति (अन्डरहैन्ड) ठीक से काम नहीं करता या घोटाला करता है, अब यह बात मैं अपने साहब को बता दूँ तो क्या हमें कर्म बंधता है?

दादाश्री : नहीं बंधता।

प्रश्नकर्ता : और यदि वह बात नहीं बताएँ तो अपना तंत्र पूरा बिगड़ जाएगा।

दादाश्री : इसलिए साहब को बताना ही पड़ेगा। लेकिन विनय रहना चाहिए। आपको उन्हें सब समझाकर कहना चाहिए। रौब से नहीं कह सकते।

प्रश्नकर्ता : बाहर व्यवहार में वह कैसे हो सकता है?

दादाश्री : आपको तो ऐसा भाव रखना है। फिर हुआ सो करेक्ट। आपको ऐसा भाव रखना है और उन्हें समझाकर कहना ज़रूरी है। जितनी बार समझाकर कह पाए, उतना करेक्ट और यदि समझाकर नहीं कहा, तो भी करेक्ट।

प्रश्नकर्ता : अब यदि कोई *आड़ाई* (अहंकार का टेढ़ापन) करे और हमारे पास सज़ा करने की सत्ता नहीं हो, लेकिन अपने *ऊपरी* (बॉस, वरिष्ठ मालिक) को उन्हें सज़ा देने के लिए रिपोर्ट करते हैं। अब सज़ा तो *ऊपरी* ने दी लेकिन रिपोर्ट तो मैंने की, इसलिए निमित्त मैं ही बना न?

दादाश्री : नहीं, लेकिन आपके मन में वैसा भाव नहीं हैं न! यह तो चंदूभाई कर रहे हैं न! तो आपको क्या करना है? चंदूभाई जो भी करते हैं, उसे देखते रहना है। संसार तो चलता ही रहेगा। उसके लिए किसी प्रकार का डर नहीं रखना है। मन में ऐसा भाव रखना है कि 'किसी भी जीव को किंचित्‌मात्र दुःख न हो'। फिर आपको अपना रूटीन करना है। जो रूटीन होता है, उसमें आपको हाथ नहीं डालना है, शंका-कुशंका नहीं करनी है। आपको अपने स्वरूप में रहना है। बाकी, फर्ज़ तो निभाने ही पड़ेंगे न?

अंत में, उपाय में प्रतिक्रमण

आज तक फँसे रहे, लेकिन अब कला आ गई न? ये लोग तो क्या कहते हैं, 'बिच्छु काटे तो काटने देना!' 'अरे, लेकिन शक्ति है?' तो कहते हैं, 'वह शक्ति नहीं हो, लेकिन बिच्छु को काटने दे, वही ज्ञानी की निशानी!' अरे, भीतर शक्ति नहीं है तो बिच्छु को एक ओर रख दो न, यहाँ से। बिच्छु हो या बिच्छु का बाप हो, एक ओर रख दो न! हाँ, उसे मारना नहीं।

प्रश्नकर्ता : क्या ऐसे ज्ञानी होतें हैं, जो बिच्छु को काटने दे?

दादाश्री : ऐसा लोग कहते हैं कि 'ज्ञानी हो तो बिच्छु को काटने देना'।

प्रश्नकर्ता : वह तो अहंकार हुआ न?

दादाश्री : यह सारा अहंकार ही है न!

प्रश्नकर्ता : यदि बिच्छु छोड़ नहीं रहा हो तो खींचना है, लेकिन मर ना जाए, इस तरह खींचना है?

दादाश्री : हाँ, लेकिन फिर भी मर जाए तो प्रतिक्रमण करना है। उसका उपाय ही ऐसा है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा मारने का आशय नहीं है।

दादाश्री : ऐसा कोई आशय नहीं है, लेकिन यदि कभी ऐसा हो जाए तो क्या करना चाहिए? उसका उपाय तो होना चाहिए न? और बिच्छु को काटने दे, ऐसी भीतर शक्ति तो है नहीं फिर बाद में मन में 'हाय-हाय, हाय-हाय' करते रहें, उसके बजाय पहले से ही चेतकर चलो न, कई उपाय हैं। अपने पास तो यह अक्रम विज्ञान है!

प्रश्नकर्ता : यह तो सब प्रैक्टिकल हुआ, दादा।

दादाश्री : हाँ, प्रैक्टिकल ही है।

❖❖❖❖❖

[8]

'ऐसे' टूटती है, श्रृंखला ऋणानुबंध की

ऋणानुबंध से कैसे छूटें?

प्रश्नकर्ता : पूर्व जन्म के ऋणानुबंध से छूटने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : हमें जिसके साथ पूर्व का ऋणानुबंध हो और वह हमें पसंद ही ना हो, उसके साथ रहना ही पसंद ना हो और फिर भी अनिवार्य रूप से सहवास में रहना पड़ता हो, तो क्या करना चाहिए? बाहर का व्यवहार उसके साथ रखना चाहिए, लेकिन अंदर उसके नाम के प्रतिक्रमण करने चाहिए। क्योंकि हमने पिछले जन्म में अतिक्रमण किया था, यह उसका परिणाम है। कॉज़ेज़ क्या किए थे? तो उसके साथ पूर्व जन्म में अतिक्रमण किया था। उस अतिक्रमण का इस जन्म में फल आया। यानी उसका प्रतिक्रमण करेंगे तो प्लस-माइनस (जोड़ना-घटाना) हो जाएगा। अत: अंदर आप उसके लिए माफी माँग लो। माफी माँगते रहो कि 'मैंने जो-जो दोष किए हैं, उसके लिए माफी माँगता हूँ'। किसी भी भगवान की साक्षी में माफी माँग लो, तो सब खत्म हो जाएगा।

सहवास पसंद न हो तो फिर क्या होता है? कि उसको बहुत दोषित देखने से, किसी पुरुष को स्त्री पसंद ना हो तो वह उसे दोषित ही देखता रहता है, इससे तिरस्कार होता है इसलिए भय लगता है।

हमें जिसके प्रति तिरस्कार हो न, उसका हमें भय लगता है। उसे देखते ही घबराहट होती है, यानी जानना है कि 'यह तिरस्कार है'। अतः तिरस्कार छोड़ने के लिए माफी माँगते रहो, दो ही दिन में वह तिरस्कार बंद हो जाएगा। वह नहीं जानता लेकिन आप अंदर माफी माँगते रहो, जिसके प्रति जो-जो दोष किए हों, उसके नाम की, कि 'हे भगवान! मैं क्षमा माँगता हूँ', यह दोषों का परिणाम है। आपने किसी भी व्यक्ति के प्रति जो-जो दोष किए हों, उसके लिए उसके भीतर बैठे भगवान से आप माफी माँगते रहो, तो सब धुल जाता है।

सगे-संबंधियों के प्रतिक्रमण

यह (रिलेटिव संबंध) तो नाटक है। नाटक में पत्नी-बच्चों को हमेशा के लिए खुद के बना दे तो क्या चलेगा? हाँ, जैसे नाटक में बोलते हैं, वैसा बोलने में हर्ज नहीं है कि 'यह मेरा बड़ा बेटा, शतायु', लेकिन सब ऊपरी, नाटकीय। इन सब को सही माना, उसके ही प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं। यदि सही नहीं माना होता तो प्रतिक्रमण करने ही नहीं पड़ते। जहाँ सत्य माना गया, वहाँ राग और द्वेष शुरू हो जाते हैं और प्रतिक्रमण से ही मोक्ष है। ये 'दादा' दिखाते हैं, उस आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान से मोक्ष है।

प्रश्नकर्ता : कभी कभार तो मन दुःखी हो जाता है कि उन्होंने भी ज्ञान लिया है, हमने भी ज्ञान लिया है, तो ऐसा क्यों होता है?

दादाश्री : ये तो सब कर्म के उदय हैं, उसमें हमें प्रतिक्रमण करना है, ये तो कर्म के उदय हैं। धक्का लगे बगैर रहता नहीं। उनकी इच्छा ऐसी नहीं होती, फिर भी सब कर्म के धक्के लगते रहते हैं। कर्म तो भुगतने ही पड़ेंगे न!

प्रश्नकर्ता : मुझे ऐसा होता है कि, 'उनका भला करूँ लेकिन मुझसे बिगड़ ही जाता है और मैं गलत साबित हो जाती हूँ'।

दादाश्री : लेकिन उसमें क्या हर्ज है? उससे हर्ज क्या है? हुआ वह करेक्ट! जिसे भला करना है, उसे कोई डर रखने की ज़रूरत नहीं है और

जिसे बुरा करना है, वह चाहे जितना भी डर रखे फिर भी उससे कुछ फायदा होने वाला नहीं। यानी हमें भला करना है, ऐसा निश्चित रखना है।

प्रश्नकर्ता : पहले मुझे बहुत डर लगता था। अब डर नहीं लगता।

दादाश्री : लेकिन ऐसी बातें भी करने की ज़रूरत नहीं है। वे यदि बुरा मानकर घर चले गए हों फिर भी जब वे दूसरे दिन आएँगे तब खुश हो जाएँगे, हमें प्रतिक्रमण करना है।

ये सब रिलेटिव संबंध हैं, रियल संबंध नहीं हैं। प्रतिक्रमण नहीं हो तो फट (टूट) जाते हैं। प्रतिक्रमण का अर्थ क्या है? जोड़ना। सामने वाला व्यक्ति फाड़े और हम सिलें तो वह कपड़ा टिकता है। लेकिन सामने वाला फाड़े और हम भी फाड़े तो क्या बचेगा?

प्रश्नकर्ता : मेरे पति मुझसे अलग रहते हैं, बच्चे भी ले गए हैं। तो मेरे कर्म में ऐसा होगा इसलिए हुआ होगा न?

दादाश्री : हाँ! और क्या? नया तो कुछ होता नहीं न! उसके प्रतिक्रमण नहीं किए, इसलिए ऐसा हुआ है। प्रतिक्रमण करने से हमारा (अहंकार) वापस लौटता है।

चुकाने हैं सिर्फ हिसाब ही

पूरा जगत् हिसाब ही है सारा और हिसाब चुकाने के लिए अपने यहाँ आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान हैं। अन्य जगहों पर उनके पास हिसाब चुकाने का कोई साधन नहीं है। अपने यहाँ साधन है, आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान! आप अब थोड़ा-बहुत चुकाने लगे हो क्या? हिसाब ही चुकाने हैं न? और क्या करना है?

किसी के हाथ में परेशान करने की भी सत्ता नहीं है और किसी के हाथ में सहन करने की भी सत्ता नहीं है। ये सब तो पुतले ही हैं, वे सब काम कर रहे हैं। अत: हम प्रतिक्रमण करते हैं तो पुतले अपने आप सीधे हो जाते हैं। बाकी, कैसा भी पागल व्यक्ति हो लेकिन वह अपने (दादाजी के बताए हुए) प्रतिक्रमण से सयाना बन सकता है।

प्रतिक्रमण का प्रतिसाद अवश्य

दोहरा नुकसान नहीं उठाना, वह है ज्ञान। यदि दो नुकसान उठाए लेकिन मन में फिर उसका प्रतिक्रमण कर ले तो दो नुकसान नहीं उठाने पड़ते। दो नुकसान नहीं उठाने चाहिए।

प्रश्नकर्ता : लेकिन प्रतिक्रमण करे तब तो माफी मिल जाती है न?

दादाश्री : प्रतिक्रमण तो, दोष हो जाता है उसका प्रतिक्रमण करते हैं। दोष नहीं हुआ तो प्रतिक्रमण करने की कोई ज़रूरत नहीं है। वह तो उसके साथ अपना हिसाब खत्म हो गया और यदि कुछ उल्टा नहीं हुआ हो तो कोई लेना-देना नहीं। जैसे-जैसे प्रतिक्रमण होते जाएँगे न, वैसे-वैसे उन लोगों के साथ सब हल्का होता जाएगा। लोगों के साथ संबंध बिल्कुल क्लियर हो जाएँगे।

एक व्यक्ति के साथ आपको बिल्कुल रास नहीं आता है। उसका यदि आप पूरे दिन प्रतिक्रमण करो, दो-चार दिन तक करते रहो तो पाँचवें दिन तो आपको खोजता हुआ यहाँ आएगा। आपके अतिक्रमण दोषों से ही यह सब अटका है।

प्रतिक्रमण तो कोई करता नहीं, ये सयाने लोग तो प्रतिक्रमण करते होंगे क्या? कहेंगे 'दोष उसका और मैं क्यों प्रतिक्रमण करूँ?' उनको पूछें कि भाई, आपको? तब वे कहेंगे, 'उसका दोष, फिर मैं क्यों प्रतिक्रमण करूँ?' चलो, शांति हो गई, अपने हिन्दुस्तान व पाकिस्तान, बॉम्बार्डिंग जारी ही रहने दो न!

वे हैं अपने ही परिणाम

प्रश्नकर्ता : जब हमें ऐसा जानने मिले कि, 'कोई हमारा अहित कर रहा है, तब वह परिणाम है, ऐसा समझकर, जो हो रहा है, उसे देखते व जानते रहना है या रात को सोते समय प्रतिक्रमण करना है या फिर रूबरू मिलकर रोकड़ प्रतिक्रमण करना है?'

दादाश्री : अहित कर रहा हो तो अज्ञानी के पास क्या उपाय

है कि उसके साथ झगड़ा करता है, लड़ाई करता है, गाली देता है, मार-मार करता है। अज्ञानी क्या उपाय करता है? यही उपाय करेगा न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : गाली-गलौच करते हैं, लड़ाई-झगड़ा करते हैं, उससे कहीं अहित बंद नहीं हो जाता। वह तो, जितना हिसाब लेकर आए हैं, तो वैसा होगा ही और ऊपर से यह सब जो किया, उससे अगले जन्म के लिए पूँजी इकट्ठी की। उसने अगले जन्म में के लिए *वटेशरी* (यात्रा में ले जाने का भोजन) जुटाया। हम सब *वटेशरी* तैयार नहीं करते। हमारा अहित कर रहा हो तो हमें उसे देखते व जानते रहना है। वह जो अहित कर रहा है, वह तो मेरा परिणाम आया। जैसे बावड़ी हमें 'चोर' कहती है, तो क्या ऐसा कहा जाएगा कि बावड़ी अहित कर रही है? नहीं, वह अपना परिणाम आया, क्योंकि वह तुरंत ही करती है न? इसलिए हमें ऐसा लगता है कि परिणाम आया, वर्ना पता ही नहीं चलता। यानी इसमें उसका प्रतिक्रमण करने की ज़रूरत ही नहीं है क्योंकि वह अहित करता है। यदि हम अहित करते हैं तो हमें प्रतिक्रमण करना है। वह अहित करे तो हमें प्रतिक्रमण करने की ज़रूरत नहीं है। आराम से देखते रहो।

यदि कोई अपना हित करे तो वह भी अपना परिणाम है और अहित करे तो वह भी अपना परिणाम है। जगत् के लोग इन दोनों जगह पर अलग बर्ताव करते हैं। हित करे, उस पर राग और अहित करे, वहाँ द्वेष। आपने तो मेरा बिगाड़ दिया और ऐसा है-वैसा है। दोनों राग-द्वेष के परिणाम हैं। ऐसा-वैसा कोई है नहीं, अहित व हित करने वाला कोई है ही नहीं, आपकी ही प्रतिध्वनि है। दूसरा कोई है ही नहीं। इसमें बाहर से कोई कैसे आएगा?

अपमान करे, उसके भी प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : कई बार हमें बुरा लगता है कि मैं इतना सब करता हूँ, फिर भी यह मेरा अपमान करता है?

दादाश्री : हमें उसका प्रतिक्रमण करना पड़ता है। यह तो व्यवहार है। इसमें सभी तरह के लोग हैं। वे मोक्ष नहीं जाने देते।

प्रश्नकर्ता : वह प्रतिक्रमण हमें क्यों करना है?

दादाश्री : प्रतिक्रमण इसलिए करना है कि 'इसमें मेरे कर्म का उदय था और आपको ऐसा कर्म बाँधना पड़ा', उसका प्रतिक्रमण करता हूँ और फिर से ऐसा नहीं करूँगा कि जिससे किसी को मेरे निमित्त से कर्म बाँधना पड़े।

जगत् किसी को मोक्ष जाने दे ऐसा नहीं है। सब तरफ से अँकुड़े (हुक) यों खींच ही लाते हैं। उसके लिए यदि हम प्रतिक्रमण करें तो अँकुड़े छूट जाएँगे। इसीलिए महावीर भगवान ने आलोचना-प्रतिक्रमण व प्रत्याख्यान, ये तीनों चीज़ें एक ही शब्द (प्रतिक्रमण) में दी हैं और कोई रास्ता ही नहीं है। अब खुद प्रतिक्रमण कब कर सकता है? जब खुद को जागृति हो तब। ज्ञानी पुरुष से ज्ञान प्राप्त होने पर वह जागृति उत्पन्न होती है। हमें प्रतिक्रमण कर लेना है, यानी हम ज़िम्मेदारी में से छूटे।

ऐसे विश्वास वापस लाया जा सकता है?

प्रश्नकर्ता : किसी व्यक्ति पर से अपना विश्वास उठ गया हो। उसने हमारे साथ विश्वासघात किया हो और अपना विश्वास उठ गया हो। वह विश्वास वापस लाने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : उसके लिए जो बुरे विचार किए हों न, उसके लिए पछतावा करना चाहिए। विश्वास उठ जाने के बाद हमने जो-जो बुरे विचार किए हों, उसका पश्चाताप करना पड़ता है, फिर सब ठीक हो जाता है। यानी प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं।

बार-बार प्रतिक्रमण किसलिए?

प्रश्नकर्ता : सब एक्सपर्ट (होशियार) बहनें इकट्ठी हुई हैं और एक-दूसरे के साथ कपट करती हैं। लेकिन बाद में तुरंत मन में

प्रतिक्रमण करती हैं और रूबरू माफी माँग लेती हैं। एक-दूसरे के साथ आमने-सामने कपट हो जाता है, लेकिन उन्हें तुरंत होता है कि 'यह भूल हो गई'। अब इसमें यह भाई कहते हैं कि ऐसी भूल होने ही नहीं देनी चाहिए।

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं चलता। फिर ऐसा नया कायदा ले आए? यहाँ तो नो लॉ लॉ। यहाँ कायदा ही नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : यदि एक बार भी यथार्थ प्रतिक्रमण किया जाए तो वह भूल दूसरी बार नहीं होनी चाहिए।

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं कह सकते। कितनों को तो पचास-पचास, सौ-सौ जितनी परतें होती हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसा कोई ज़ोरदार प्रतिक्रमण नहीं है कि सभी परतें एक साथ निकल जाएँ?

दादाश्री : ऐसा नहीं है। ऐसा नहीं हो सकता।

प्रश्नकर्ता : अक्रम प्रतिक्रमण करवा लीजिए न!

दादाश्री : ऐसे दो हाथों से नहीं खा सकते। एक ही हाथ से खाया जा सकता है। वह सब तो लिमिट में ही अच्छा है। बहुत दिनों से बुखार हो और एक ही दिन में दवाई की पूरी शीशी पी जाए तो क्या ऐसा चलेगा?

प्रश्नकर्ता : नहीं चलेगा।

दादाश्री : उससे फिर उल्टा हो जाएगा। सबकुछ लिमिट में ही शोभा देता है। वर्ना फिर वह निकल जाएगा।

वह है क्रिया दूध में से नमक निकालने की

दादा की कृपा से सब ठीक हो जाएगा यानी नया जोड़ लेना। आखिर हम जानते हैं कि यह दूध बिगड़ने वाला है और सुबह इस दूध की चाय नहीं बनेगी तो फिर हमें नमक निकालने की क्रिया करनी

है, डाला हुआ नमक निकाल देना है। वह तो अपना विज्ञान ही ऐसा है कि निकाल फेंकता है। वह तो फिर हं... दूसरी मरहम पट्टियाँ कर-करके फिर ठीक कर देना है। खून का बहना रोक देना है। फिर यदि उल्टा हुआ, ऐसा हमने जाना तो फिर, आपको समझ में नहीं आ जाता कि उल्टा हुआ?

प्रश्नकर्ता : समझ में आ जाता है।

दादाश्री : फिर हमें छोड़ देना है और उसको मरहम पट्टियाँ ही करते रहना हैं। फिर उसे खून नहीं निकलेगा। लेकिन फिर वह किसी दिन कहे कि आना, तो फिर हमें वहाँ जाना है और खून निकला तो उसका विस्तरण हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : यानी ऐसा हो जाता है। उस व्यक्ति का यदि ऑपरेशन करने जाएँ तो बाद वाले पच्चीस लोगों को परेशानी हो जाती है।

दादाश्री : हाँ। अगर ऐसा हो चुका है तो यों संभलकर काम लेना है। उसे विवेक कहा जाता है। सही चीज़ भी विवेक से देनी चाहिए। वह धौल मारकर नहीं दी जाती। सही चीज़ खिलाएँ तो भी धौल मारकर नहीं देनी चाहिए। क्योंकि सब का वोटिंग है न? गाँव का काम हो तो चल जाता है। वे लोग हार्टिली होते हैं, इसलिए आपका चल जाता है। बाकी, यहाँ शहर में नहीं चलता। शहर में कुछ अनुकूल नहीं आता।

प्रश्नकर्ता : सही है।

दादाश्री : वहाँ हार्टिली हैं, इसलिए सब चल जाता है। यानी देख लेना है। देख लेना है कि कहाँ बिगड़ जाता है और ऐसा नहीं होना चाहिए।

उसकी रीत आनी चाहिए

प्रश्नकर्ता : मैं आपको उसी कमी की बात पूछना चाहता था

कि जब किसी की बिलीफ टूटती है, उस वक्त उसके अहम् को ठेस पहुँचती है ?

दादाश्री : हमें यदि बिलीफ तोड़ना नहीं आए व उसे दु:ख हो, तो नहीं तोड़नी चाहिए।

मैं बिलीफ ही तोड़ देता हूँ न ? 'कि नहीं, आप चंदूभाई नहीं हो, चंदूभाई आप नहीं हो'। यानी ऐसा करते-करते उसकी कितने ही जन्मों की बहुत बड़ी बिलीफ जो है, वह फ्रेक्चर होने लगती है। एक्ज़ेक्टनेस होनी चाहिए। वर्ना उसे बहुत दु:ख होता है। भगवान के बारे में जो बिलीफ है, मैं वह तोड़ देता हूँ। यानी अगर ऐसा कहूँ कि 'भगवान नहीं हैं' तो मारा गया। अत: उसे समझाना आना चाहिए कि 'किस प्रकार से नहीं हैं और किस प्रकार से हैं'। ऐसा सब होना चाहिए। 'किसके लिए भगवान हैं और भगवान किसके लिए नहीं हैं', यों सब तरह से समझाता हूँ, उसके मन को ज़रा भी दु:ख नहीं होना चाहिए। अपना एक भी हथियार नहीं लगना चाहिए। अपना हथियार खुद को लगे लेकिन उसे नहीं लगे, वह आपको खास समझ लेना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : उसे ऑपरेशन कहते हैं। थोड़ी-थोड़ी कमी हो तो निकाल देना है। नई क्षमापना ले लेनी चाहिए। सामने वाले व्यक्ति को किंचित्मात्र दु:ख नहीं होना चाहिए। ऐसा ध्येयपूर्वक का जीवन होना चाहिए।

हम दु:ख देने के लिए नहीं आए हैं। अपना ध्येय है कि कुछ हो सके तो सुख हो लेकिन दु:ख तो किसी को नहीं होना चाहिए। यानी नासमझी से, अपनी भूल से ही सामने वाले को दु:ख होता है। 'उसकी भूल से होता है', ऐसा भी हमें नहीं होना चाहिए। 'उसकी भूल से', यानी वह भूल वाला ही है, उसे आप सुधारने निकले हो तो उसे दु:ख दिए बगैर ही सुधारना चाहिए।

देखते ही अभाव हो वहाँ...

प्रश्नकर्ता : कई बार किसी व्यक्ति को देखकर, उसका बर्ताव देखकर, अभाव हो जाता है।

दादाश्री : वह तो पहले की अपनी आदत है न, उस आदत का धक्का अभी भी लगता रहता है! लेकिन अपना ज्ञान हाज़िर रखना चाहिए न, आदत तो पहले की है, इसलिए आती रहेगी। लेकिन ऐसे करते-करते अपना ज्ञान सेट करेंगे न, तो ऐसा करते-करते स्थिर होता जाएगा। आदतें खत्म हो ही जानी चाहिए न!

प्रश्नकर्ता : प्रश्न ऐसा है कि कुछ ही व्यक्तियों के लिए क्यों होता है? तिरस्कार वृत्ति या ऐसा जो कुछ होता है, वह?

दादाश्री : पूर्व का हिसाब हो, तब आएगा न? लेकिन अब उससे आज लेना-देना नहीं है न! हम उसके शुद्धात्मा ही देखते हैं। उस दिन तो उसके बाहर के पैकिंग पर तिरस्कार था। पैकिंग के साथ हिसाब थे। आज अब उस पैकिंग से कोई लेना-देना नहीं है। उसकी पैकिंग का फल उसे मिलेगा। पहले तो हम ऐसा ही समझते थे कि 'यही चंदूलाल हैं' इसलिए हमें तिरस्कार हो जाता था।

प्रश्नकर्ता : क्या वह अभिप्राय के आधार पर रहता है न?

दादाश्री : ऐसे सब अभिप्राय किए थे, उसके फलस्वरूप यह अभाव रहा करता है, उसका हमें 'प्रतिक्रमण' करके बदल देना है कि सामने वाला व्यक्ति तो बहुत अच्छा है, फिर हमें वह अच्छा दिखेगा।

प्रश्नकर्ता : अभिप्राय का प्रतिक्रमण करना है या प्रत्याख्यान करना है?

दादाश्री : प्रतिक्रमण करना है। किसी के लिए खराब अभिप्राय बैठा हो, उसे हमें अच्छा बैठाना है कि बहुत भला है। जो खराब लगता हो, उसे अच्छा कहा कि (अभिप्राय) बदल जाता है। पिछले अभिप्रायों के कारण आज वह खराब दिखता है। कोई खराब होता ही

नहीं है। खुद के मन को ही कह देना है। अभिप्राय मन ने बनाए हुए हैं। मन के पास *सिलक* (जमापूँजी) है। हम जितने अभिप्राय देते हैं, वह धो डालते हैं।

प्रश्नकर्ता : साधन कौन सा है धोने के लिए?

दादाश्री : प्रतिक्रमण। जिन्हें यह अक्रम विज्ञान प्राप्त हो गया है और आत्मा-अनात्मा का भेदज्ञान हो गया है, उन्हें नया कर्म नहीं बंधता। हाँ, अभिप्रायों का प्रतिक्रमण नहीं हो तो सामने वाले पर उसका असर रहा करता है इसलिए उसे आप पर भाव नहीं आता। शुद्ध भाव से रहने पर एक भी कर्म नहीं बंधेगा और यदि प्रतिक्रमण करो तो वह असर भी चला जाएगा। सात से गुणा किया, उसे सात से भाग दिया, वही पुरुषार्थ!

यानी अपने मन की छाया उस पर पड़ती है! हमारे मन की छाया सभी पर किस तरह से पड़ती है! अगर घनचक्कर हो तो वह भी सयाना हो जाता है। अगर आपके मन में ऐसा हो कि, 'चंदूभाई' पसंद नहीं है, तो चंदूभाई के आने पर अच्छा नहीं लगेगा और उसका फोटो उस पर पड़ेगा। उसके अंदर तुरंत फोटो पड़ जाएगा कि 'आपके भीतर क्या चल रहा है?' आपके भीतर के वे परिणाम सामने वाले को उलझाते हैं। सामने वाले को खुद को पता नहीं चलता, लेकिन उसे उलझाते हैं, इसलिए अपने अभिप्राय तोड़ देने चाहिए। अपने सभी अभिप्राय आपको धो देने चाहिए, तो आप छूट गए। अतः अपना मन बदलता है।

कुछ लोगों की वाणी बहुत बिगड़ी हुई होती है, वह भी अभिप्राय के कारण होता है। यानी जो अभिप्राय भरें हैं, उसका झंझट है। यदि अभिप्राय ही नहीं रखे तो कोई झंझट नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अभी भी तिरस्कार हो जाए तो फिर हम गुनहगार है?

दादाश्री : नहीं, गुनहगार नहीं है। 'देखा व जाना!' यानी बहुत

हो गया कि 'यह आता है, तब उसके लिए तिरस्कार होता है और यह आता है, तब ज़रा भीतर आनंद होता है'।

प्रश्नकर्ता : तो प्रतिक्रमण करना चाहिए?

दादाश्री : यदि सामने वाले को दु:ख हो तो प्रतिक्रमण करने हैं। बाकी, विचार आता है और जाता है, तो उसका प्रतिक्रमण नहीं होता। उसके लिए तो ऐसा करना है कि 'ऐसा नहीं होना चाहिए'। इतना ही बोलें तो बहुत हो गया। प्रतिक्रमण तो कब करना है कि 'जब कभी गुस्सा निकल जाए या किसी को लग जाए तब हमें प्रतिक्रमण करना चाहिए'।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यदि मन में ऐसा विचार आ जाए तो प्रतिक्रमण नहीं करना है?

दादाश्री : वह तो ऐसा सब चलता ही है। घुसने में भी स्पीडी घुसता है और निकलने में भी स्पीडी निकलता है।

❖❖❖❖❖

[९]

निर्लेपता, अभाव से फाँसी तक

ऐसा पता चलता ही है

प्रश्नकर्ता : सामने वाले व्यक्ति को दुःख हुआ है, वह कैसे पता चलता है?

दादाश्री : वह तो उसका चेहरा देखने से पता चल जाता है। चेहरे पर से हास्य चला जाता है। उसका चेहरा उतर जाता है। अतः तुरंत पता चलता है न, कि सामने वाले को असर हुआ है। ऐसा पता नहीं चलता?

प्रश्नकर्ता : पता चलता है।

दादाश्री : मनुष्य में इतनी शक्ति तो होती ही है कि 'सामने वाले को क्या हुआ, वह पता चल जाता है!'

प्रश्नकर्ता : लेकिन कई ऐसे सयाने होते हैं कि जो चेहरे पर एक्सप्रेशन (हावभाव) नहीं आने देते।

दादाश्री : फिर भी खुद को पता चल जाता है कि 'ये भारी शब्द निकल गए हैं मेरे, इसलिए उन्हें लगेंगे तो ज़रूर'। यानी ऐसा समझकर प्रतिक्रमण कर लेना चाहिए। यदि भारी (शब्द) निकल गए हों तो खुद को पता नहीं चलेगा कि 'उन्हें दुःख हुआ होगा?'

प्रश्नकर्ता : पता चलता है न!

दादाश्री : वह भी उसके लिए नहीं करना है। वह तो, अपना अभिप्राय इसमें नहीं है और अपने अभिप्राय से अलग होने के लिए है। प्रतिक्रमण यानी क्या? वह पहले के अभिप्राय से अलग होने के लिए है और प्रतिक्रमण से क्या होता है कि 'सामने वाले पर जो असर हो जाता है, वह नहीं होता, बिल्कुल भी नहीं होता'। मन में तय करो कि, 'मुझे समभाव से *निकाल* करना है' तो उस पर असर होता है और उससे उसका मन सुधरता है। यदि आप मन में ऐसा तय करो कि 'इसे ऐसा कर दूँगा या वैसा कर दूँगा' तो उसके मन में भी वैसा ही रिएक्शन (प्रतिक्रिया) होता है।

प्रश्नकर्ता : इसका मतलब ऐसा है कि 'प्रतिक्रमण करते रहना है और धीरे-धीरे अपनी सभी आदतें चली जाएँगी?'

दादाश्री : प्रतिक्रमण से सब चला जाता है।

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण के पीछे जितना ज़ोरदार भाव होगा, उतना...

दादाश्री : नहीं, सच्चे दिल से होना चाहिए, भाव से, शब्द भले ही आएँ या नहीं आएँ, उसमें कोई बात नहीं लेकिन सच्चे दिल से होना चाहिए।

जहाँ प्रकृति का दिवाला निकल गया है, वहाँ

दादाश्री : उसे तो, कोई उसमें दखल करे या ऐसा कुछ करे तो सामने 'तू अक्ल बगैर का है और ऐसा करता है' ऐसा बोल दे, तब जाकर उसे संतोष होता है। फिर पूरी रात चैन की नींद आती है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा क्यों होता होगा?

दादाश्री : अहंकार ऐसा है कि इस बात का आनंद लेता है कि कैसे अच्छे से डाँट लगाई। आप भी डाँट लगाते थे न?

प्रश्नकर्ता : लेकिन मैंने बहुत प्रतिक्रमण किए, सभी के।

दादाश्री : तब ठिकाने आया।

प्रश्नकर्ता : उससे प्रतिक्रमण क्यों नहीं होते होंगे?

दादाश्री : उससे प्रतिक्रमण शुरू होते ही नहीं न!

प्रश्नकर्ता : क्यों नहीं होते?

दादाश्री : अभी तो वह दिवालिया है। कर्ज़ ही कम नहीं हुआ है न?

प्रश्नकर्ता : कैसा कर्ज़? किस प्रकार का कर्ज़?

दादाश्री : उसका दिवाला निकला है। आपसे तो प्रतिक्रमण हो सकता था। उसका अंतिम डिग्री का दिवाला निकल गया, पहला नंबर ही है, इसलिए चल सकता है!

प्रश्नकर्ता : फिर ऐसी स्थिति आती है कि दोष दिखाई देते हैं, दोष हो जाते हैं, लेकिन जब तक प्रतिक्रमण नहीं होते न, तब तक चैन नहीं पड़ता।

दादाश्री : उस जगह पर आने में बहुत देर लगेगी। ज़बरदस्त दिवाला निकला है। किसी को भी दु:ख देना बाकी नहीं रखा। जो भी मिला, उसे दु:ख ही दिया है।

प्रश्नकर्ता : यानी दु:ख देने से दिवाला निकलता है?

दादाश्री : तो और क्या होगा? दिवाला ही निकलता है न?

प्रश्नकर्ता : क्या-क्या करने से दिवाला निकलता है?

दादाश्री : ऐसा सब किया हो, 'लोगों को दु:ख दिए हों, उसने किसी को छोड़ा ही नहीं न, माँ-बाप हों या और कोई हो'। पूर्व जन्म में लुच्चे लोगों की टोली में चला गया था। कितने ही जन्मों तक ऐसा ही चलता रहा है, इसलिए उसे यही अच्छा लगेगा न!

प्रश्नकर्ता : अब अच्छा नहीं लगता।

दादाश्री : कितने ही कर्म भरे हुए थे। उसकी ऊँचाई देखी आपने? दबा हुआ, गांठों वाला होता है, ज़्यादा कर्म हों न, तो शरीर छोटा होता है, दुबला होता है।

प्रश्नकर्ता : अब क्या उपाय करें? प्रतिक्रमण नहीं हो पाते तो और क्या करें?

दादाश्री : कुछ देर के लिए करो, तो ज़रा-ज़रा आगे बढ़ेगा।

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण के सिवा दूसरा कोई उपाय ही नहीं है।

दादाश्री : अभी असरकारक नहीं लगता, लेकिन करते-करते फिर असरकारक होता जाएगा।

प्रश्नकर्ता : एक दिन होकर रहेगा।

दादाश्री : खत्म करने की स्पीड (तेज़ी) भी उतनी ही है।

प्रश्नकर्ता : यदि बचपन से ही ऐसा हो तो उसका अर्थ ऐसा है कि पिछले जन्म में ऐसे भाव किए थे?

दादाश्री : पिछले जन्म में रौब जमाने के भाव किए थे, दूसरों को धमका दूँ, दूसरों को ऐसा कर दूँ, डरा दूँ, दूसरों को ऐसा कर दूँ।

प्रश्नकर्ता : तो यह जो डराते हैं, वह तो कितना बड़ा दोष कहा जाएगा न?

दादाश्री : वह तो जब खुद पर बीतती है न, तब पता चलता है। जब कोई आपको डराता है, तब पता चलता है कि 'ओहोहो! ये लोग ऐसा करते हैं!' लेकिन वैसा ही जब आप करते हो, तब पता नहीं चलता?

दुःख दिए जाने का प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : ऐसा कुछ नहीं करना है कि 'मुझसे उसे दुःख हो, फिर भी उसे दुःख दे दिया जाता है'। आप ऐसी कृपा कीजिए कि 'मेरे परमाणु उछलें नहीं'।

दादाश्री : आज आपको आशीर्वाद देंगे। आपको उससे माफी माँगते रहना है। पिछले जन्म में उसे बहुत ही दुःख देती थी।

प्रश्नकर्ता : बहुत हो चुका। यह मेरी बड़ी ग्रंथि है।

दादाश्री : हाँ, उसका तो कुछ करना पड़ेगा न? उससे बार-बार माफी माँगते रहना है। फुरसत मिलते ही 'क्षमा माँगती हूँ' इस तरह प्रतिक्रमण करना। संक्षेप में करना है। उसके साथ अतिक्रमण किया है, इसलिए प्रतिक्रमण करना पड़ेगा, बार-बार दु:ख जो दिया है न?

प्रश्नकर्ता : मैं उसके बहुत ही प्रतिक्रमण करती हूँ।

दादाश्री : बहुत करना। 'मैं उससे क्षमा माँगती हूँ' और 'हे दादा भगवान! मुझे उसे कुछ भी दु:ख नहीं देने की, त्रास न देने की शक्ति दीजिए'। ऐसे बार-बार माँगते रहना। हम वह चीज़ देते भी हैं, आप माँगेंगी तो (शक्ति) मिलेगी।

प्रश्नकर्ता : रोज़ माँगूँगी।

दादाश्री : ठीक है।

प्रश्नकर्ता : हम से उन्हें किचिंत्‌मात्र भी दु:ख हो जाए और एकांत मिलने पर उनका प्रतिक्रमण कर ले, तो चलेगा?

दादाश्री : वह तो तुरंत ही, उसी वक्त कर लेना चाहिए।

अब किसी को दु:ख देने की आपको इच्छा होती नहीं न?

प्रश्नकर्ता : कभी कभार दे दिया जाता है।

दादाश्री : दु:ख दे दिया जाए तो क्या करते हो?

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण।

दादाश्री : प्रतिक्रमण किया यानी फिर कोर्ट में केस नहीं चलेगा। 'भाई, तुझसे माफी माँगते हैं' ऐसा करके *निकाल* कर दिया।

पछतावे से कर्म खपे

प्रश्नकर्ता : किसी भी व्यक्ति को *तरछोड़* (तिरस्कार सहित दुत्कारना) मारने के बाद पछतावा हो तो वह क्या कहलाएगा?

दादाश्री : पछतावा करने से *तरछोड़* मारने की आदत छूट

जाएगी। *तरछोड़* मारने के बाद पछतावा नहीं करे और ऐसा माने कि 'मैंने कितना अच्छा किया', तो वह नर्क में जाने की निशानी है। गलत करने के बाद पछतावा तो करना ही चाहिए।

प्रश्नकर्ता : सामने वाले का मन तोड़ा हो तो उससे छूटने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : प्रतिक्रमण करने चाहिए और आमने-सामने मिल जाए तो कहना कि 'भाई, मुझ में अक्ल नहीं है, मुझसे भूल हो गई'। ऐसा कहना चाहिए। ऐसा कहने से उसके घाव भर जाएँगे।

उपाय, तरछोड़ के परिणाम का

प्रश्नकर्ता : क्या उपाय करना चाहिए ताकि *तरछोड़* के परिणाम भुगतने की बारी न आए?

दादाश्री : *तरछोड़* के लिए और कोई उपाय नहीं है, सिर्फ प्रतिक्रमण ही करते रहना है। जब तक सामने वाले का मन फिर से बदल नहीं जाता, तब तक करते रहना है। यदि प्रत्यक्ष मिल जाए तो फिर से मधुर वाणी बोलकर क्षमा माँगनी है कि 'भाई, मुझसे तो बहुत बड़ी भूल हो गई, मैं तो मूर्ख हूँ, बेअक्ल हूँ'। इससे सामने वाले के घाव भरते जाएँगे। जब आप अपनी खुद की निंदा करते हैं तो सामने वाले को अच्छा लगता है, तब उनके घाव भरते हैं।

'हमें' पिछले जन्मों की *तरछोड़* के परिणाम दिखाई देते हैं। इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि, 'किसी को *तरछोड़* नहीं मारनी चाहिए। मज़दूर को भी *तरछोड़* नहीं मारनी चाहिए। अरे! आखिर में साँप बनकर भी बदला लेगा। *तरछोड़* से छुटकारा नहीं मिलता। सिर्फ प्रतिक्रमण ही बचा सकता है।

क्या ऐसे पाप धुलते हैं?

प्रश्नकर्ता : किसी को दुःख पहुँचाने के बाद हम प्रतिक्रमण कर लें, लेकिन यदि उसे ज़बरदस्त आघात व ठेस पहुँची हो तो उससे हमें कर्म बंधन नहीं होगा?

दादाश्री : आप उनके नाम से प्रतिक्रमण करते रहो और उन्हें जितना दु:ख हो गया हो, उतने ही प्रतिक्रमण करने पड़ेंगे।

प्रश्नकर्ता : सास ने बहू को कुछ कहा और उस बहू ने आत्महत्या कर ली, इतना सब हो गया। उसमें वह मर गई। फिर उसका प्रतिक्रमण करें तो सामने वाले को शांति होगी?

दादाश्री : हमें तो प्रतिक्रमण करते रहना है, अपनी दूसरी कोई ज़िम्मेदारी नहीं है और यदि वे जीवित हों तो हम उन्हें भी कह सकते हैं। 'क्या नाम है आपका?'

प्रश्नकर्ता : चंदूभाई।

दादाश्री : यदि वे जीवित हो तो आप उन्हें भी कह सकते हैं कि, 'इस चंदूभाई (फाइल नं-1) में अक्ल नहीं है। आप उसे माफ कर दीजिए' ऐसा कहना है आपको। तब वह खुश हो जाएगा। अपनी अक्ल कम है, ऐसा दिखाया कि सामने वाला खुश हो जाता है। ऐसा कहना है कि, 'चंदूभाई में कोई बरकत नहीं है, अक्ल नहीं है, इसीलिए आपके साथ ऐसा किया' तभी ऐसा हुआ होगा। ऐसा कहेंगे न, तो वह खुश हो जाएगा। हाथ टूट जाने के बाद भी यदि इतना कहोगे न, तो हाथ टूट जाने की हानि को (वह) कुछ भी नहीं मानेगा। वह खुश हो जाएगा। क्योंकि (हाथ) टूट जाना, वह डिसाइडेड (निश्चित) था लेकिन निमित्त तो आप ही थे। तो निमित्त बने, इसलिए माफी माँग लेनी है। रकम जमा-उधार हो गई।

ऐसे फाँसी देते हुए भी निर्लेप

प्रश्नकर्ता : अशुभ भाव हो जाते हैं, लेकिन तुरंत ही ऐसा होता है कि 'यह मैंने भूल की'।

दादाश्री : इसलिए यह आपको कहता हूँ कि, 'रिलेटिव में जो डिस्चार्ज भाव हैं, वे अशुभ भाव हैं'। डिस्चार्ज में अशुभ भाव होते हैं और चार्ज होता नहीं है। अशुभ भाव होने पर तुरंत ही ऐसा कहते हैं कि 'ऐसा नहीं होना चाहिए, ऐसा नहीं होना चाहिए'। वह क्या

कहलाता है? संयम! जबकि अशुभ भाव हो जाएँ और उनके साथ एकाकार होना, उसे कहते हैं, असंयम। लेकिन अलग ही रहता है न, अशुभ भाव से?

प्रश्नकर्ता : हाँ, हाँ।

दादाश्री : अब अशुभ भाव इफेक्टिव (असरदार) चीज़ है। टालने से टलते नहीं और अभी ये चंदूलाल किसी पर क्रोधित हों, तो आपको भीतर ऐसा होता है कि, 'ऐसा नहीं होना चाहिए'। वह किसलिए? ऐसा होता है? यानी चंदूलाल जो करते हैं, वह भी आपको जानना है। ये भीतर ऐसा करते हैं, उसे भी आपको जानना है और 'आप' जानने वाले, इन दोनों की बात को। संयम परिणाम को जानने वाले, असंयम को भी जानने वाले, वह आप 'स्वयं'। अनुभव में आता है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : हाँ। यह सब तमाशा देखते रहो। एक जज मुझसे कहते हैं कि, 'साहब, आपने मुझे ज्ञान तो दिया और अब मुझे कोर्ट में फाँसी की सज़ा देनी चाहिए या नहीं?' तब मैंने उन्हें कहा, 'उसके लिए क्या करोगे, फाँसी की सज़ा नहीं दोगे तो?' उन्होंने कहा, 'लेकिन (सज़ा दूँगा तो) मुझे दोष लगेगा'। मैंने कहा कि 'आपको मैंने चंदूलाल बनाया है या शुद्धात्मा बनाया है?' तब उन्होंने कहा, 'शुद्धात्मा बनाया है'। तो फिर चंदूलाल जो करते हैं, उसके आप ज़िम्मेदार नहीं हो और यदि ज़िम्मेदार बनना हो तो आप चंदूलाल हो। आप राज़ी खुशी से हिस्सेदार बनते हो तो हमें कोई हर्ज नहीं है लेकिन हिस्सेदार मत बनना। फिर मैंने उन्हें तरीका बताया कि ऐसा कहना है कि, 'हे, भगवान! मेरे हिस्से में यह काम कहाँ आया? और उसका प्रतिक्रमण करना और दूसरा, गवर्नमेन्ट (सरकार) के नियम के अनुसार काम करते जाना'।

फिर नहीं रहती ज़िम्मेदारी

प्रश्नकर्ता : यदि हम ऐसा ध्यान में रखें कि 'प्रतिक्रमण करने से छूट जाते हैं', तो सब लोगों को स्वच्छंदता का लायसन्स मिल जाएगा?

दादाश्री : नहीं, बात तो ऐसी ही है, लेकिन ऐसा समझना नहीं है। आपको प्रतिक्रमण करना है। प्रतिक्रमण किया यानी आप मुक्त। आपकी ज़िम्मेदारी में से आप मुक्त। फिर वह चिंता करके, सिर फोड़कर मर भी जाए, उससे अब आपको कुछ लेना-देना नहीं है।

प्रश्नकर्ता : हम जब प्रत्यक्ष में 'सॉरी' कहते हैं, और उसमें भी यदि जूनियर व्यक्ति को कहें तब उसका दिमाग़ आसमान पर चढ़ जाता है, जिसका कोई हिसाब ही नहीं।

दादाश्री : ऐसा कुछ भी नहीं कहना है। यदि आपने कुछ कह दिया तो बाद में आपको पछतावा होता है या नहीं? पछतावा होता है यानी प्रतिक्रमण करते हैं। फिर 'यू आर नॉट रिस्पॉन्सिबल एट ऑल' आप उसके ज़िम्मेदार नहीं हो। इसलिए हमने यह कहा कि उनकी ज़िम्मेदारी हम अपने पर लेते हैं। क्योंकि आप यदि इतना करोगे न, तो फिर आपकी ज़िम्मेदारी नहीं रहेगी। फिर उसकी वकालत करना हमें आता है। लेकिन हमारा कहा हुआ इतना करो, फिर आप कायदे में आ गए, फिर वकालत करना, वह तो हमें आता है। हम संभाल लेंगे लेकिन हमारा कहा इतना करो, तो बहुत हो गया।

अपने कहने से सामने वाला आत्महत्या कर ले, ऐसी स्थिति हो गई हो तो हमें आधे-पौन घंटे तक प्रतिक्रमण करते ही रहना है कि 'अरेरे! ऐसे सब संयोग कहाँ से आ गए? ऐसा सब मेरे निमित्त से?' फिर हमारी ज़िम्मेदारी नहीं रही। इसलिए इसमें घबराना नहीं है। यहाँ तक हमारी आज्ञा का पालन किया उसके बाद आगे कोर्ट का सब हम संभाल लेंगे। यदि झगड़ा हो जाए तो उसे हम निपटा देते हैं। लेकिन इतना भी किया न, तो बहुत हो गया। जितना हिसाब है, उतना ही, बहुत गहराई में उतरने की ज़रूरत नहीं है।

ज्ञानी के प्रतिक्रमण, बाड़ सहित

हम से भी किसी-किसी व्यक्ति को दुःख हो जाता है, हमारी इच्छा नहीं हो फिर भी। अब हम से सामान्य तौर पर ऐसा होता नहीं

है लेकिन किसी व्यक्ति को हो जाता है। अभी तक पंद्रह-बीस सालों में दो-तीन लोगों को हुआ होगा। वे भी निमित्त होंगे तभी न? बाद में हम उसका प्रतिक्रमण करके उस पर फिर से बाड़ लगा देते हैं, ताकि वह गिर न जाए। जितना हमने ऊपर चढ़ाया है, वहाँ से गिर न जाए इसीलिए, उसकी रक्षा करके वापस बाड़ रख देते हैं। उसे गिरने तो देते ही नहीं। यदि वह विरोध करे, गाली दे जाए, तब भी उसे गिरने नहीं देते। उस बेचारे को पता ही नहीं है, अनजाने में बोल गया है। उससे हमें परेशानी नहीं है। अगर गिरने दें तो हमने गलत चढ़ाया था।

हम सैद्धांतिक होते हैं कि, 'भाई, यह पेड़ रोपा, रोपने के बाद अगर वह रोड बनाने में बीच में आ रहा हो तो रोड मोड़ देते हैं, लेकिन पेड़ को कुछ नहीं होने देते। हमारे ऐसे सिद्धांत हैं सारे। ऐसे किसी को गिरने नहीं देते। वह फिर उसी जगह पर रहता है। हम उसके विचार ही बदल देते हैं। हम यहाँ पर बैठे-बैठे उसके विचार ही बदल देते हैं। वहाँ हम ज़रा ज़्यादा मेहनत करते हैं। मेहनत ज़्यादा करनी पड़ती है। आपके लिए, सब के लिए मेहनत नहीं करनी पड़ती। उसके लिए बहुत मेहनत करनी पड़ती है। उसके सब विचार ही हमें पकड़ लेने पड़ते हैं। इससे आगे विचार न कर सके, ऐसा करना पड़ता है। कोई-कोई केस ही ऐसा होता है न! सारे केस ऐसे नहीं होते न!!

प्रश्नकर्ता : यह बाड़-वाड़ रखना, यह सब क्या है? उसमें उसे क्या करते हैं?

दादाश्री : उसका अंत:करण पकड़ लेते हैं, उसका व्यवस्थित हमारे हाथ में ले लेते हैं।

प्रश्नकर्ता : वह कैसे?

दादाश्री : वह तो, सब हम ले लेते हैं, अगर नहीं लेंगे तो फिर गिर जाएगा न!

प्रश्नकर्ता : हम जो प्रतिक्रमण करते हैं, वह तो हम से अतिक्रमण हुआ इसलिए प्रतिक्रमण करते हैं। तो फिर हमारे अतिक्रमण के दौरान

सामने वाले को हमने जो दु:ख पहुँचाया, क्या उसका प्रतिक्रमण करना है?

दादाश्री : हाँ, उसके लिए ही। अन्य किसी कारण से नहीं। अब आपका (शुद्धात्मा का) तो लेना-देना ही नहीं रहा न! अब इसके साथ व्यवहार ही नहीं रहा है। सिर्फ किसी को दु:ख नहीं हो, उतना ज़रा देखना है और जो गुनहगार है, उसे बोल देना है कि 'प्रतिक्रमण कर'। बाकी, आपको यानी 'शुद्धात्मा' को कुछ धोना-करना है ही नहीं। धुल गया सबकुछ।

प्रश्नकर्ता : लेकिन क्या हम से दूसरी बार ऐसे अतिक्रमण नहीं होंगे?

दादाश्री : 'नहीं होंगे' ऐसा नहीं है, अतिक्रमण, वे डिस्चार्ज हैं इसलिए होते ही हैं। जितने हैं, उतने ही निकलेंगे। 'नहीं होंगे और होंगे' ऐसी बात ही नहीं है। हमें लगे कि 'ये अतिक्रमण हैं, अत: उसके प्रतिक्रमण करवाने हैं' और अतिक्रमण नहीं हो तो डिस्चार्ज देखते ही रहना है। और कुछ भी नहीं।

प्रश्नकर्ता : यदि हमारा कोई संबंधी इतनी सारी बड़ी-बड़ी भूलें करता है, ब्लंडर्स, कि उसे भगवान भी माफ न करें और हम से माफी माँगे कि 'भूल हो गई मुझसे, भूल हो गई', ऐसा कहता रहे तो वहाँ क्या करना चाहिए?

दादाश्री : इंसान माफ कर सकता है, भगवान माफ नहीं कर सकते। भगवान में निर्बलता है न! हम बलवान कहलाते हैं। क्योंकि भगवान तो, अंत में जब उसका पूरा बदला चुका देंगे, तभी माफी मिलेगी। उनको तो बदला चुकाना है। हमें कहीं बदला नहीं चुकाना है। हम तो माफी दे देते हैं, 'भला हो तेरा!'

यदि बार-बार वही भूल करे तो?

प्रश्नकर्ता : कोई व्यक्ति भूल करता है, फिर हमारे पास माफी

माँगे और हम माफ कर दें। वह माफी नहीं माँगे फिर भी हम मन से माफ कर दें, लेकिन बार-बार वह व्यक्ति भूल करे तो हमें क्या करना चाहिए?

दादाश्री : प्रेम से जितना समझा सको, उतना समझाना है, दूसरा कोई उपाय नहीं है और अपने हाथ में कोई सत्ता नहीं है। आपके पास माफ करने के अलावा कोई चारा नहीं है, इस जगत् में। यदि माफ नहीं करोगे तो फिर आप मार खाकर माफ करोगे, उपाय ही नहीं है। हमें उसे समझाना है, वह बार-बार भूल नहीं करे, ऐसे भाव बदल दे तो बहुत हो गया। वह भाव बदल दे कि 'अब भूल करनी ही नहीं है, फिर भी हो जाती है, वह अलग बात है'। इंसान तय करे कि अब मुझे भूल करनी ही नहीं है, फिर भी हो जाती है, वह अलग चीज़ है। लेकिन करनी ही है, ऐसा कहे, तो उसका अंत ही नहीं आएगा। वह तो उल्टी राह वाला इंसान कहलाता है। लेकिन करना नहीं है, ऐसा तय करने के बाद खुद को भी पछतावा होता है तो उस भूल से हर्ज नहीं है। भूल करने वाले को खुद को पछतावा हो और नहीं करूँगा ऐसा तय करे और इसके बाद फिर से भूल हो जाए तो हर्ज नहीं है। नहीं करूँगा ऐसा तय भी करता है, पछतावा भी होता है। पश्चाताप करना चाहिए, उसके बावजूद भी हो जाए तो फिर से पश्चाताप करना चाहिए।

इसका कारण क्या है? कि 'भूल की कई परतें हैं, प्याज़ की तरह। पछतावा करने से एक परत चली जाती है, लेकिन फिर से दूसरी परत आती है, इसलिए प्याज़ वैसे का वैसा ही दिखाई देता है'। वह तो जब सारी परतें चली जाएँगी, तब खाली हो जाता है। तब तक नहीं होता। अनंत जन्मों से अपार भूलें की हैं।

वह है अर्थहीन

प्रश्नकर्ता : उसे पता ही नहीं चलता कि 'मैं भूल कर रहा हूँ और भूल करता ही रहे तो? पछतावा भी नहीं हो तो?'

दादाश्री : तो फिर उसका अर्थ ही नहीं है। वह मीनिंगलेस

(अर्थहीन) है। जहाँ भान ही नहीं हो, वहाँ मीनिंगलेस है। हमें उसका विरोध तो करना ही चाहिए। उसे भान करवाना चाहिए। भान करवाने के लिए विरोध करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : कोई यदि बार-बार ऐसी भूल करता है तो हमें उसके लिए जो प्रेमभाव है, वह खत्म हो जाता है, उसके लिए जो मान हो, वह खत्म हो जाता है।

दादाश्री : तो और क्या होगा? हमें हो सके तो (प्रेमभाव व मान) खत्म नहीं करना चाहिए। क्योंकि इस कलियुग में तो इसके सिवा दूसरा और क्या होगा? अपने रिलेटिव संबंध हैं, दूसरा और क्या होगा? अपना तो वह खत्म हो जाने के बाद फिर उल्टा बिगड़ जाता है। हम जब अनजान (लोगों) में जाते हैं, तब क्या करते हैं, वैसा हमें रखना है।

बेटे को सब्ज़ी खरीदने भेजा और उसने पैसे दबा लिए, उसके बाद जानकर क्या फायदा है? वह जैसा है, वैसा चला लेना पड़ता है, छोड़ सकते हैं क्या? थोड़े ही दूसरा लेने जाएँगे? दूसरा मिलता नहीं न?

प्रश्नकर्ता : यदि मिल भी जाए तो उससे बढ़कर नहीं होगा, उसकी क्या गारन्टी?

दादाश्री : हाँ। आज सबकुछ पूछो और सब काम निकाल लो।

सामने वाले को निभा लो

प्रश्नकर्ता : तो फिर ऐसी व्यक्ति के लिए हमें क्या करना चाहिए? वह भूल करता रहता है, सामने वाला व्यक्ति और उसे कुछ पछतावा नहीं होता, पता भी नहीं चलता तो हमें वहाँ क्या करना चाहिए?

दादाश्री : हमें आत्महत्या नहीं करनी चाहिए। और क्या कर सकते हैं? इस देह की आत्महत्या यानी वह बड़ी आत्महत्या, फिर मन की आत्महत्या करता है। मन की आत्महत्या करता है, यानी संसार पर से मन उठ जाता है। ऐसा नहीं करना चाहिए। उसकी वजह से

बेटे पर से भी मन उठ जाता है, सब पर से मन उठ जाता है। ऐसा नहीं करना चाहिए। हमें निभा लेना चाहिए? यह संसार यानी जैसे-तैसे निभाकर *निकाल* करने जैसा है। अभी कलियुग है, उसमें कोई क्या करे? 'देअर इज़ नो सेफसाइड ऐनी व्हेर' (कहीं भी सलामती नहीं)। यह तो सेफसाइड मानकर सो जाना है। 'सिन्सियरिटी-मॉरेलिटी गॉन फोर एवर' (निष्ठा और नैतिकता तो हमेशा के लिए गई)। यानी यह ज्ञान ले लेना तो हमेशा के लिए सुखी हो जाओगे। फिर तो अड़चन नहीं किसी प्रकार की। बस मज़ा!

प्रतिक्रमण की सूक्ष्म कमियाँ

प्रश्नकर्ता : हम से किसी को दु:ख हो जाए इसलिए वह यहाँ नहीं आता है, फिर हम अहंकार करके झटक दें और कहें कि 'भाई, अब तो मैंने प्रतिक्रमण कर लिया, फिर भी यदि वह नहीं आता तो उससे मुझे क्या लेना-देना?

दादाश्री : ऐसा तो सब गलत है। लेकिन एक तरह से ये सब अपने निमित्त से हो गया न, तो हो सके उतना हमें करना चाहिए। फिर नहीं हो पाए तो छोड़ देना। नहीं हो पाए तो फिर उसके लिए मर नहीं सकते।

प्रश्नकर्ता : वह तो ठीक है लेकिन यह तो खुद को समझने की बात है कि खुद की समझ में क्या होना चाहिए? कि, 'अब मैंने प्रतिक्रमण कर लिया, मुझे उसके लिए कुछ नहीं है'। अब खुद गोली छोड़ दे, फिर खुद को तो इतना करके मिटा देना सरल है, लेकिन जिसे लगी हो, उसे तो जलन होगी न?

दादाश्री : लेकिन वह (यहाँ) दर्शन करने नहीं आता है, तो कितना जल रहा होगा कि यह नालायक इंसान मिला इसलिए मैं नहीं जा पाया। यानी उसका तो हमें समभाव से *निकाल* करना चाहिए न?

प्रश्नकर्ता : दूसरा यह कि वह डिमार्केशन कैसे पता चले कि

हमने उसका प्रतिक्रमण किया और अब हमें उसके लिए अभिप्राय नहीं रहे हैं? अब क्या हंड्रेड परसेन्ट अपना अभिप्राय खत्म हो गया है?

दादाश्री : फिर भी उसका नहीं जाता न?

प्रश्नकर्ता : उसका नहीं जाता और अपना भी शायद भीतर रहता है, कभी ऐसा भी हो जाता है न, कि, 'अरे! वे तो कितने सेन्सिटिव हैं। ज़रा सा कहा, उसमें इतना ज़्यादा क्या लगा लेना?' खुद को यदि ऐसा भी हो जाए न, तो अभिप्राय खत्म होने में उतनी कमी रह जाती है।

दादाश्री : हमें रहता हो तो भी उसका पता नहीं चलता।

प्रश्नकर्ता : नहीं चलता, वह बात सही है। बहुत सूक्ष्म है यह। यानी सेफसाइड के लिए उनका प्रतिक्रमण करना अच्छा है?

दादाश्री : ऐसे केस दुनिया में कम ही होते हैं। इसलिए मना लेना चाहिए। देखो न, फिर आते नहीं हैं न?

अकर्ता फिर भी सामने वाले को दुःख

अपने महात्मा तो जो 'करना है' ऐसा कहते हैं, वह तो डिस्चार्ज भाव से कहते हैं। वह तो, जैसे नाटक में ऐसा कहते हैं न, कि 'आपको मार डालेंगे'। तो उसे हिंसा नहीं लगती।

प्रश्नकर्ता : हम अकर्ता रहते हैं लेकिन चंदूभाई जो कुछ भी कर्म करते हैं, उससे उसके आसपास वालों को किसी को दुःख पहुँचता है, तो उन्हें ऐसा लगता है कि यह चंदूभाई ही उन्हें दुःख पहुँचाते हैं। तो उसका हमें जो असर पहुँचता है, उसके लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : वह तो मैंने कहा ही है न, कि चंदूभाई यदि किसी का अतिक्रमण करें तो दुःखदायी हो जाते हैं, तब फिर चंदूभाई से कहना है कि, 'भाई, प्रतिक्रमण करो, उसके नाम का'। यदि अतिक्रमण नहीं तो कुछ भी नहीं करना है।

❖❖❖❖❖

[10]

टकराव के खिलाफ

ऋणानुबंधी के साथ

प्रश्नकर्ता : जिनके साथ कुछ ऋणानुबंध हो, उन्हीं से टकराव हो जाता है न? अन्य किसी से टकराव नहीं होता न?

दादाश्री : वह तो, जहाँ पहले के हिसाब होते हैं न, वहीं पर टकराव होता है।

प्रश्नकर्ता : अब मेरा किसी से टकराव नहीं होता, सभी जगह संभाल लेता हूँ लेकिन इनके साथ छः-आठ महीने में, वैसे तो अब बहुत कम हो गया है लेकिन इनके साथ आंतरिक तप नहीं हो पाता, इन्हें बोल ही देता हूँ।

दादाश्री : उसमें कोई हर्ज नहीं है। उसका *निकाल* (निपटारा) किए बिना तो कोई चारा ही नहीं है न! उन्हें *निकाल* करना है फिर आपको *निकाल* करना है, वहीं पर टकराव हो गया यानी गलती किसी एक की नहीं कहलाती, दोनों की ही गलती होती है। किसी की चालीस प्रतिशत वाली, किसी की साठ प्रतिशत वाली, किसी की तीस प्रतिशत वाली या फिर अस्सी प्रतिशत, सत्तर प्रतिशत होती है, दोनों की कुछ न कुछ गलती है ही।

प्रश्नकर्ता : और फिर दो-पाँच मिनटों में ही समाधान तो आ जाता है।

दादाश्री : वह तो आ जाता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उस समय पराक्रम करके संयोग को संभाल लें तो आनंद होता है लेकिन अभी भी उसे संभाल नहीं पाते।

दादाश्री : इसीलिए तो, धीरे-धीरे ऐसी जागृति रखकर करना है। आप जितना मेरे साथ रहोगे न, वैसे-वैसे परिवर्तन होता जाएगा। यदि मेरा एक ही शब्द आपके कान में पड़ेगा न, तो वह शब्द ही काम करता रहेगा।

प्रश्नकर्ता : वह कहावत है न, जो निशाने से बचा, वह सौ साल तक जीवित रहता है। उसी तरह हमारे कषाय उत्पन्न होते हैं, उन पर काबू पा लिया जाए तो कितना कुछ जीत लेंगे!

दादाश्री : ऐसा है न, काबू किसे कहते हैं? हम जब चाहें तब कर सकें। हमें 'खुद का' ज्ञान मिल गया है तो ये सब (कषाय) कंट्रोल में ही रहेंगे, ज्ञान ही काम करेगा।

अतः सब से अच्छा उपाय यह है कि 'चंदूलाल, कैसे हैं, कैसे नहीं', ऐसे बातें करनी चाहिए, वही उपाय है, क्या कहना चाहिए?

प्रश्नकर्ता : उसके साथ निरंतर बातें करते रहना और कहते रहना चाहिए कि 'यह अच्छी बात नहीं है। निशाना क्यों चूक जाते हो?'

दादाश्री : ऐसा कह सकते हो, सबकुछ कह सकते हो। उसके बाद अगर वापस चूक जाओ तो फिर से कहना है और प्रतिक्रमण करवाना है। प्रत्याख्यान भी करना ही पड़ता है। वर्ना फिर ऐसा मान लेगा कि 'यही सही है'।

कर्मों के उदय के फोर्स के सामने

प्रतिक्रमण किया यानी अब अपना इस बात में अभिप्राय छूट गया कि 'यही सही है और यह गलत है', हमारा यह अभिप्राय टूट गया।

प्रश्नकर्ता : महात्माओं के अभिप्राय तो टूटकर चूर-चूर हो गए

हैं, लेकिन जब उदय आता है तब हिल जाते हैं। अभी ये भाई जो बोले, वह उनके स्वभाव से बाहर बोला गया है।

दादाश्री : हाँ, स्वभाव से बाहर बोला गया, इतना तो आप समझ गए न? कि इस कर्म के उदय ने इतना ज़्यादा ज़ोर किया कि जो खुद को नहीं कहना था, वह भी बोल गए। इसलिए अब हमें ज़्यादा पछतावा होता है कि 'यह क्या था?' तो, भीतर अभी भी बहुत बड़ा रोग है, उसे निकल जाने दो। उसके लिए आज फुरसत निकालकर पाँच घंटे तक पश्चाताप करते रहना।

पश्चाताप में क्या कहना पड़ता है? आपको कहाँ जाना है? आपको क्या परेशानी है? और यदि कभी झंझट-झमेला हो गया तो 'हुआ सो करेक्ट' कहकर छोड़ देना है। *खेंच* (अपनी बात को सही मानकर पकड़ रखना, आग्रह) रखी तो मार पड़ेगी। आपकी जो प्रकृति नहीं थी, वह निकली न?

प्रश्नकर्ता : ऐसा कभी नहीं करता, लेकिन पता नहीं ऐसा क्यों किया?

दादाश्री : उसे ही देखना है, उनका रोग निकलने वाला होगा और इनका रोग निकलने वाला होगा इसलिए इकट्ठा हो गए।

प्रश्नकर्ता : यह तो उनका उदय है, वे खुद नहीं बोलते।

दादाश्री : हाँ, वे खुद नहीं (बोलते), उनका उदय बहुत ज़ोर करता है। हमें पूछना है कि क्या आपकी ऐसी भावना थी? तब कहेंगे, 'नहीं, मेरी इच्छा ऐसी नहीं थी, फिर भी हो गया'। तो वह निकल गया, धुल गया और साफ हो गया, क्लियर कट! ऐसा है न, मन क्लियर करना है।

सामूहिक प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : अमुक कर्मों में ज़्यादा, लंबी बहस हो गई हो तो बड़ा बंध पड़ता है। उसके लिए दो-चार बार प्रतिक्रमण करने पड़ते

हैं या बहुत बार करने पड़ते हैं, या फिर एक बार करने से ही उसमें सब आ जाता है?

दादाश्री : जितना हो सके, उतना करना और बाद में सामूहिक (प्रतिक्रमण) कर लेना। एकदम से बहुत सारे प्रतिक्रमण इकट्ठे हो जाएँ, तो सामूहिक प्रतिक्रमण कर लेना। 'हे दादा भगवान! इन सब का सामूहिक प्रतिक्रमण करता हूँ।' हमें दादा भगवान से कह देना है, और किसी से नहीं। 'हे दादा भगवान! इन सब का सामूहिक प्रतिक्रमण करता हूँ' फिर खत्म हो जाएगा।

समाधान, आत्मज्ञान द्वारा ही

प्रश्नकर्ता : दादा, यह अहंकार की बात अच्छी है। घर में भी कई बार लागू होती है, संस्था में लागू होती है। दादा का काम करते समय भी बीच में कहीं अहंकार टकरा जाते हैं, वहाँ भी लागू होती है। वहाँ पर भी समाधान चाहिए न?

दादाश्री : हाँ, समाधान चाहिए न! अपने यहाँ तो 'ज्ञान वाला' समाधान लेता है, लेकिन जहाँ ज्ञान नहीं है, वहाँ कैसे समाधान लेगा? वहाँ तो फिर अलग होता जाता है, उसके साथ मन से अलग होता जाता है और अपने यहाँ अलग नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, टकराना नहीं चाहिए न?

दादाश्री : टकरा जाते हैं, वह तो स्वभाव है। ऐसा माल भरकर लाए हैं, इसलिए ऐसा हो जाता है। यदि ऐसा माल नहीं लाए होते तो ऐसा नहीं होता। अत: हमें समझ लेना चाहिए कि 'भाई की आदत ही ऐसी है', ऐसा हमें जानना है। चंदूभाई की आदत है, यदि हम ऐसा समझ जाएँगे तो फिर हम पर असर नहीं होगा। क्योंकि आदत, आदत वाले की (पूर्वसंचित संस्कार वाले जीव की) और 'हम' अपने वाले (शुद्धात्मा)! और फिर उसका *निकाल* (निपटारा) हो जाता है। आप अड़े रहो, तो परेशानी होगी। बाकी, टकराव तो होगा। टकराव न हो, ऐसा तो होता ही नहीं न! उस टकराव से हम अलग न हो जाए, सिर्फ

इतना ही देखना है। टकराव तो अवश्य होगा। वह तो पति-पत्नी में भी होता है। लेकिन फिर वे वापस कैसे एक होकर रहते हैं न? ऐसा तो होता है। उसमें किसी पर कोई दबाव नहीं डालते कि 'आप नहीं टकराना'।

प्रश्नकर्ता : उसमें तंत नहीं रहना चाहिए।

दादाश्री : 'तंत' रहता ही नहीं है। यदि कोई कहेगा कि मुझे तंत रहता है, वह भी तंत नहीं है। (महात्माओं के लिए)

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, टकराव नहीं हो, ऐसा भाव तो निरंतर रहना चाहिए न?

दादाश्री : हाँ, रहना चाहिए। यही करना है न! उसका प्रतिक्रमण करना है और उसके प्रति भाव रखना है! फिर से ऐसा हो जाए तो फिर से प्रतिक्रमण करना है, क्योंकि एक परत चली जाएगी, फिर दूसरी परत चली जाएगी। ऐसे परतें वाले हैं न? मुझे जब टकराव होता था तो नोट करता था कि आज अच्छा ज्ञान मिला! टकराने से फिसल नहीं जाते, हमेशा जागृत ही रहते हैं न! वह आत्मा का विटामिन है। अर्थात् इस टकराव में झंझट नहीं है। टकराने के बाद एक-दूसरे से अलग नहीं हो जाना, वही पुरुषार्थ है। यदि सामने वाले से हमारा मन अलग होने लगे तो प्रतिक्रमण करके राह पर ले आना। हम इन सभी से किस प्रकार तालमेल रखते होंगे? आपके साथ भी तालमेल बैठता है या नहीं बैठता? ऐसा है कि शब्दों से टकराव होता है। मुझे बहुत बोलना पड़ता है, फिर भी टकराव नहीं होता न!

एक आदमी ने मुझसे ऐसा कहा कि, 'मैं महान विद्रोही (बलवाई) हूँ, आपके यहाँ ही मुझे एलाउ किया है, बाकी, मुझे कोई एलाउ नहीं करता'। मैंने कहा, 'भाई, यहाँ तो सभी के लिए जगह है। विद्रोही की, सभी की जगह यहाँ है!' बलवा करो लेकिन आत्मा प्राप्त करो। बलवा करके पाँच-दस लोगों को गाली दे दोगे, और क्या करोगे? 'आप बेअक्ल हो, ऐसे हो, वैसे हो' कहेंगे। वह तो *पुद्गल* को ही गाली देगा न? आत्मा को कोई दे सकता है क्या?

टकराव तो होगा। टकराव तो, ये बर्तन टकराते हैं या नहीं टकराते? टकराना, वह *पुद्गल* का स्वभाव है, लेकिन ऐसा माल भरा होगा, तो। नहीं भरा होगा तो नहीं। हमारे भी टकराव होते थे लेकिन ज्ञान होने के बाद टकराव नहीं हुए। क्योंकि हमारा ज्ञान, अनुभव ज्ञान है और हम इस ज्ञान से *निकाल* करके आए हैं! सब सोच-विचार करके आए हैं और आपको *निकाल* करना बाकी है। आप तो मोक्ष में बैठ गए, ऊपर तीसरी मंजिल बनाकर। लेकिन यहाँ नीचे का चिनवाना बाकी रह गया है न? ऊपर बैठने के बाद अब उल्टी चिनाई करनी पड़ेगी। सीधे ही मोक्ष प्राप्ति के प्रयत्न करते हुए तो लोग नींव खोदकर, तसला और फावड़ा यहीं पर छोड़कर भाग गए। जहाँ भीतर शांति न हो, वहाँ कौन यह माथापच्ची करेगा? यहाँ हम पहले शांति करवा देते हैं, बाद में नीचे का सब वह कर लेता है। इसलिए यह अक्रम निकाला है न!

तीन जन्मों की गारन्टी

जिसका टकराव नहीं होगा, उसका तीन जन्मों में मोक्ष हो जाएगा। इस बात की मैं गारन्टी देता हूँ। टकराव हो जाए तो प्रतिक्रमण कर लेना। टकराव *पुद्गल* का है और *पुद्गल* से *पुद्गल* के टकराव का नाश प्रतिक्रमण से होता है।

सामने वाला 'भाग' लगाए तो हमें 'गुणा' करना है, ताकि रकम उड़ जाए। सामने वाले व्यक्ति के बारे में यह सोचना ही गुनाह है कि, 'उसने मुझे ऐसा कहा, वैसा कहा'। यहाँ रास्ते पर चलते समय यदि पेड़ से टकरा गए तो उससे क्यों नहीं लड़ते? पेड़ को जड़ कैसे कह सकते हैं? जो टकराते हैं, वे सभी पेड़ ही हैं। यदि गाय का पैर अपने (पैर) पर आ जाए तो हम कुछ कहते हैं क्या? ऐसा ही इन सब लोगों का है। 'ज्ञानी पुरुष' सभी को कैसे क्षमा कर देते हैं? वे समझते हैं कि ये बेचारे समझते नहीं हैं, पेड़ जैसे हैं। समझदार को तो कहना ही नहीं पड़ता, वह तो भीतर ही भीतर तुरंत प्रतिक्रमण कर लेता है।

अहिंसा तो ऐसी नहीं है कि पूर्णत: समझ में आ जाए और पूरी

तरह से समझना बहुत कठिन है। उसके बजाय ऐसा तय किया हो कि, 'घर्षण में कभी भी नहीं आना है' तो फिर क्या होगा? कि शक्तियाँ अमानत रहेगी और दिनोंदिन शक्तियाँ बढ़ती ही जाएगी। उसके बाद घर्षण से होने वाला नुकसान नहीं होगा।

यदि कभी घर्षण हो जाए तो घर्षण के बाद हम प्रतिक्रमण करेंगे तो साफ हो जाएगा। यह समझना चाहिए कि घर्षण हो जाए तो प्रतिक्रमण करना चाहिए, वर्ना बहुत जोखिम है। इस ज्ञान से मोक्ष तो जाओगे, लेकिन घर्षण से मोक्षमार्ग में विघ्न बहुत आएँगे और देर लगेगी!

यदि इस दीवार के लिए उल्टे विचार आएँ तो हर्ज नहीं है, क्योंकि इसमें एक तरफा नुकसान है। जबकि जीवित के लिए एक उल्टा विचार आया तो जोखिम है! दोनों तरफ से नुकसान होता है। लेकिन यदि हम उसका प्रतिक्रमण करेंगे तो सारे दोष खत्म हो जाएँगे। अत: जहाँ-जहाँ घर्षण होता है, वहाँ उसके प्रतिक्रमण करो। जिससे घर्षण खत्म हो जाएँ।

टकराव, स्थूल से सूक्ष्मतम तक के

प्रश्नकर्ता : तो वे जो स्थूल टकराव के उदाहरण दिए, उस साँप का, खंभे का कहा, फिर सूक्ष्म, सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम, उनके उदाहरण? सूक्ष्म टकराव कैसे होते हैं?

दादाश्री : तेरे फादर के साथ जो हो जाते हैं, वे सब सूक्ष्म टकराव हैं।

प्रश्नकर्ता : वे कौन-कौन से हैं?

दादाश्री : मारपीट करते हो क्या?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : वे सूक्ष्म टकराव!

प्रश्नकर्ता : सूक्ष्म यानी मानसिक? क्या वाणी से हो, वह भी सूक्ष्म में जाएगा?

दादाश्री : वह स्थूल में, जिसका उसे पता नहीं चलता। जो दिखाई नहीं देते, वे सब सूक्ष्म में जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : उस सूक्ष्म टकराव को कैसे टालें?

दादाश्री : पहले स्थूल, फिर सूक्ष्म, फिर सूक्ष्मतर और फिर सूक्ष्मतम टकराव टालना है।

प्रश्नकर्ता : सूक्ष्मतर टकराव किसे कहते हैं?

दादाश्री : तुम किसी को मार रहे हो और वह भाई ज्ञान में देखे कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ, यह 'व्यवस्थित शक्ति' मार रही है', इस प्रकार देखे लेकिन मन से ज़रा सा भी दोष देख ले, वह सूक्ष्मतर टकराव है।

प्रश्नकर्ता : फिर से कहिए न, ठीक से समझ में नहीं आया।

दादाश्री : यह जो तुम सभी लोगों के दोष देखते हो न, वह सूक्ष्मतर टकराव है।

प्रश्नकर्ता : यानी दूसरों के दोष देखना, वह सूक्ष्मतर टकराव है?

दादाश्री : ऐसा नहीं, खुद ने निश्चय किया हो कि दूसरों में दोष हैं ही नहीं, उसके बावजूद भी दोष दिखाई दें, वे सूक्ष्मतर टकराव हैं। वे दोष तुझे दिखने चाहिए। क्योंकि वह शुद्धात्मा है और दोष अलग है।

प्रश्नकर्ता : जो दोष देखता है, वह कौन है?

दादाश्री : दोष को देखने वाला।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उस मन का स्थान वहाँ नहीं है, वह चीज़ मानसिक स्तर पर नहीं है?

दादाश्री : वह चाहे किसी भी स्तर पर है, लेकिन दोष देखता है।

प्रश्नकर्ता : तो उसे ही मानसिक टकराव कहा है?

दादाश्री : वह (मानसिक) तो पूरा ही सूक्ष्म में गया।

प्रश्नकर्ता : तो इन दोनों के बीच फर्क कहाँ है?

दादाश्री : यह तो मन से भी ऊपर की बात है।

प्रश्नकर्ता : मानसिक टकराव और जो दोष...

दादाश्री : वे मानसिक नहीं हैं।

प्रश्नकर्ता : यानी यह सूक्ष्मतर टकराव है, उस समय सूक्ष्म टकराव भी साथ में होता है न?

दादाश्री : वह हमें नहीं देखना! सूक्ष्म अलग होता है और सूक्ष्मतर अलग होता है। सूक्ष्मतम अर्थात् अंतिम बात!

प्रश्नकर्ता : एक बार सत्संग में ऐसी ही बात हुई थी कि चंदूलाल में तन्मयाकार होना, वह सूक्ष्मतम टकराव कहलाता है।

दादाश्री : हाँ, सूक्ष्मतम टकराव! उसे टालना। यदि भूल से तन्मयाकार हो जाते हो तब फिर बाद में पता चलता है न, कि यह भूल हो गई?

प्रश्नकर्ता : अब सिर्फ शुद्धात्मा तत्त्व के अलावा इस संसार की कोई भी विनाशी चीज मुझे नहीं चाहिए, फिर भी इस चंदूभाई को तन्मयाकारपना बार-बार रहता है। यानी वह सूक्ष्मतर टकराव हुआ न?

दादाश्री : वह तो सूक्ष्मतम कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : एक भावना ऐसी है कि 'सिर्फ शुद्धात्मा तत्त्व के अलावा और दादा की पाँच आज्ञा के अलावा अन्य किसी भी चीज़ की इच्छा ही नहीं है'।

दादाश्री : यही तो मुख्य चीज़ रहती है न, सभी को। अतः धीरे-धीरे ऐसा करना है जिससे कि वह दिखाई दे।

प्रश्नकर्ता : ऐसा तो दिखाई देता है कि हम से यह तीसरी आज्ञा भंग हुई, दूसरी आज्ञा भंग हुई, ऐसा स्पष्ट दिखाई देता है।

दादाश्री : हाँ, स्पष्ट दिखाई देता है, ठीक है।

प्रश्नकर्ता : वह (जो आज्ञा) भंग हुई, वह टकराव हुआ कहलाएगा?

दादाश्री : वह तो, फाइल को फिर से जाँचने की ज़रूरत है।

प्रश्नकर्ता : वह सूक्ष्मतर टकराव की जो बात की, कि सामने वाला अपने अभिप्राय में निर्दोष ही है उसके बावजूद भी दोषित ठहरा दिया जाता है। इसलिए उसके साथ टकराव हो जाता है न?

दादाश्री : दोषित ठहरा दिया जाता है। वह गुनाह लागू होता है न?

प्रश्नकर्ता : उसमें थोड़े-बहुत अंश तन्मयाकार हुआ और वापस आ गया।

दादाश्री : वापस आ जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : तो टकराव टालने का उपाय सिर्फ प्रतिक्रमण ही है या दूसरा कोई है?

दादाश्री : दूसरा कोई हथियार है ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : ये जो अपनी नौ कलमें हैं, वे भी प्रतिक्रमण ही हैं। दूसरा कोई हथियार नहीं है। इस दुनिया में प्रतिक्रमण के अलावा दूसरा कोई साधन नहीं है। यह सर्वोच्च साधन है। क्योंकि अतिक्रमण से उत्पन्न हुआ है जगत्।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, प्रतिक्रमण तो इतनी तेज़ी से हो जाते हैं, उसी क्षण!

दादाश्री : हाँ, उसी क्षण हो जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : यह तो ग़ज़ब है, दादा!

दादाश्री : यह ग़ज़ब ही है!

प्रश्नकर्ता : दादा की कृपा, वह ग़ज़ब है!

दादाश्री : हाँ, वह ग़ज़ब है। सिर्फ साइन्टिफिक चीज़ है!

क्या वह अहंकार नहीं है?

प्रश्नकर्ता : वह सब तो इतना आश्चर्यजनक है! 'हुआ सो करेक्ट', भुगते उसी की भूल', ये सब जो एक-एक वाक्य हैं, वे सब अद्भुत वाक्य हैं! और यदि दादा की साक्षी में प्रतिक्रमण करते हैं न, तो उसके स्पंदन पहुँचते ही हैं।

दादाश्री : हाँ, सही है। स्पंदन तुरंत पहुँच ही जाते हैं और उसका फल मिलता है। हमें भरोसा हो जाता है, ऐसा लगता है कि यह असर हुआ है। सभी स्पंदन पहुँच जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, हमें जो प्रतिक्रमण करना पड़ता है, वह अपना अहम् नहीं कहलाता?

दादाश्री : नहीं। यानी हमें प्रतिक्रमण नहीं करना है। वह गुनाह चंदूभाई का है, शुद्धात्मा तो जानता है, शुद्धात्मा ने तो कोई गुनाह किया ही नहीं इसलिए 'उसे' नहीं करना पड़ता। सिर्फ जिसने गुनाह किया हो 'उसे' ही। यदि चंदूभाई के नाम का किया तो वे चंदूभाई ही प्रतिक्रमण करेंगे। अतिक्रमण से ही संसार खड़ा हुआ है। अतिक्रमण कौन करता है? अहंकार और बुद्धि, दोनों मिलकर।

❖❖❖❖❖

[11]

पुरुषार्थ, प्राकृत दुर्गुणों के सामने...

राग में से द्वेष और द्वेष में से राग

प्रश्नकर्ता : अकारण किसी को बैर रहे, अकारण कोई द्वेष करे, अकारण कोई कपट करता रहे, तो क्या उसका अर्थ यह हुआ कि किसी जन्म में हमें उसके लिए राग था?

दादाश्री : हाँ, हमने यह हिसाब लगाया है। उसी का यह रिएक्शन (प्रतिक्रिया) है।

प्रश्नकर्ता : तो वह अपना कौन सा हिसाब है? अपने राग का या द्वेष का?

दादाश्री : कपट, वह सारा राग में आ जाता है। अहंकार और क्रोध वाला सब द्वेष में जाता है। कपट और लोभ राग में जाता है, लोभ की इच्छाएँ हुई हों, वे सब राग में जाती हैं। मैं क्या कहना चाहता हूँ, वह पहुँच रहा है?

प्रश्नकर्ता : हाँ, पहुँच रहा है।

दादाश्री : यह राग कौन सा? तो, लोभ और कपट! और मान व क्रोध, वह द्वेष में गया। यानी कोई कपट करे तो वह राग में गया, राग वाला, जिनके साथ हमें राग होता है न, वहाँ कपट करते रहते हैं।

राग के बगैर तो कोई लाइफ गई ही नहीं। जब तक ज्ञान नहीं मिलता, तब तक राग और द्वेष, दोनों ही करता रहता है, तीसरी कोई चीज़ होती ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, द्वेष वह तो राग की ही संतान है न?

दादाश्री : हाँ, वह उसकी संतान है, लेकिन उसका परिणाम है, संतान यानी उसका परिणाम है। वह राग बहुत हुआ है न, जिस पर राग करते हैं न, यदि वह एक्सेस बढ़ जाए तो उस पर ही वापस द्वेष होता है। कोई भी चीज़ उसके प्रमाण से बाहर जाए न, तो हमें नापसंद हो जाती है और नापसंद होना, उसे द्वेष कहते हैं। समझ में आया?

प्रश्नकर्ता : हाँ, समझ में आया।

दादाश्री : वह तो हमें समझ लेना है कि सब अपने ही रिएक्शन आए हैं! हम उसे मान से बुलाए और हमें ऐसा लगे कि उसका मुँह फूला हुआ है तो हमें समझ लेना है कि यह अपना रिएक्शन है। तो क्या करना है? प्रतिक्रमण करना है। दूसरा कोई उपाय नहीं, जगत् में। तब फिर संसार के लोग क्या करते हैं? उल्टा उस पर मुँह फुलाते हैं। यानी फिर वापस वैसे का वैसा ही करते हैं। हम शुद्धात्मा हुए इसलिए उसे मनाकर, अपनी भूल एक्सेप्ट (स्वीकार) करके भी छोड़ देना चाहिए। हम तो ज्ञानी पुरुष होकर भी ऐसी सभी भूलों को एक्सेप्ट करके केस छोड़ देते हैं।

मान, शुभ मार्ग के लिए

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, मान के परमाणु बहुत ही हों तो वे नुकसानदायक कहलाते हैं न?

दादाश्री : कौन से?

प्रश्नकर्ता : ऐसा मान हो कि चलो भाई, इसका भला करें, इसका अच्छा करें।

दादाश्री : नहीं, कोई चीज़ नुकसानदायक नहीं है। नुकसानदायक तो दूसरों का तिरस्कार करने वाला मान, वह व्यक्ति के लिए नुकसानदायक है।

मान किसे कहेंगे? कि जो एक्सेस मान है, लोगों का तिरस्कार करता है, बाकी, 'यह मैं अच्छा करता हूँ', उसमें कोई हर्ज है ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : मैं ऐसे बहुत एनालिसिस (पृथक्करण) करता हूँ तब ऐसा लगता है कि अंदर में एक ऐसी इच्छा रहती है, कि यह मान, रुतबा और वह भी किस प्रकार का, किसी का लाभ लेने के लिए नहीं, किसी का भला करने के लिए।

दादाश्री : यह जो (आपका) मान है न, वह मान आपको इस जगह पर खींच लाया है। वर्ना यदि यह मान नहीं भरा होता तो आप दूसरी जगह होते।

प्रश्नकर्ता : क्योंकि सीमंधर स्वामी का मंदिर बनता है न, तो मुझे ऐसा लगता है कि मैं तो इसमें स्पर्धा में उतरूँ।

दादाश्री : उसके जैसी तो बात ही नहीं होती न, इस दुनिया में। वह तो बहुत ही अच्छी चीज़ है।

बाकी, मान किसे कहते हैं? मैं आपसे कुछ कहता हूँ, लेकिन उससे दूसरे को दु:ख हो जाए, फिर अपना बर्ताव भी ऐसा हो, उसे मान कहते हैं। इससे तो लोगों को बहुत आनंद होता है। सुबह उठते हैं न, जिन्हें भगवान पर भाव है, उन पर दादा का भाव संपूर्ण ही रहता है। यानी यह तो अच्छी चीज़ है। ऐसा नहीं होता। फिर भले ही वह (मंदिर) बना या नहीं बना, वह अलग बात है लेकिन यह उच्च भाव हुआ, वह बहुत अच्छा है। आपको सारी बात समझ में आ गई?

प्रश्नकर्ता : हाँ, निरंतर ऐसी भावना रहती है कि कुछ करूँ, कुछ करूँ और चाहे कितना भी करूँ तब भी ऐसा ही लगता है कि अभी कुछ किया ही नहीं!

दादाश्री : हाँ, ऐसा लगता रहता है। मानो भूखे के भूखे ही हों! बहुत ऊँची चीज़ है यह! किसी महापुण्यशाली को प्राप्त हो ऐसी चीज़ है यह।

वे हैं, पूर्व में भरे हुए परमाणु

प्रश्नकर्ता : ईर्ष्या होती है, वह नहीं हो उसके लिए क्या करना है?

दादाश्री : उसके दो उपाय हैं। ईर्ष्या हो जाने के बाद पश्चाताप करना है और दूसरा, ईर्ष्या होती है, वह आप ईर्ष्या नहीं करते। ईर्ष्या, वह पूर्व जन्म के भरे हुए परमाणु हैं, उसे एक्सेप्ट (स्वीकार) मत करो, उसमें तन्मयाकार नहीं होंगे तो ईर्ष्या उड़ जाएगी। ईर्ष्या होने के बाद पश्चाताप करना, वह उत्तम है।

शंका में से निःशंकता

प्रश्नकर्ता : सामने वाले पर शंका नहीं करनी है, फिर भी शंका हो जाए तो उसे कैसे दूर करें?

दादाश्री : वहाँ फिर उसके शुद्धात्मा को याद करके क्षमा माँगनी है, उसका प्रतिक्रमण करना है। यह तो पहले भूलें की थीं इसलिए शंका होती है।

प्रश्नकर्ता : अपने कर्म के उदय की वजह से जो भुगतना पड़ता है, उसका प्रतिक्रमण करते रहें तो कम हो जाता है न?

दादाश्री : कम हो जाता है। 'हमें' भुगतना नहीं पड़ता। 'हमें' 'चंदूभाई' से कहना है कि, 'प्रतिक्रमण करो' तो कम होगा। जैसे-जैसे प्रतिक्रमण करेंगे वैसे-वैसे वह कम हो जाएगा न! फिर सब ठीक हो जाएगा।

यह तो, कर्म के उदय के कारण सब इकट्ठे हुए हैं। इसे अज्ञानी भी नहीं बदल सकते और ज्ञानी भी नहीं बदल सकते तो फिर हम क्यों अपना दोहरा नुकसान उठाएँ?

प्रश्नकर्ता : सही कहा दादा कि यह जगत् पहले से ऐसा ही है।

दादाश्री : इसमें और कुछ है ही नहीं। यह तो ढका हुआ है इसलिए ऐसा लगता है और शंका ही मारती है। इसलिए शंका हो तो होने

नहीं देना है और प्रतिक्रमण करने हैं। प्रतिक्रमण करने बाकी नहीं रहे यानी आप पर किसी को शंका ही नहीं रहती, नि:शंक पद हो जाता है।

किसी के लिए ज़रा भी उल्टा-सीधा विचार आए तो तुरंत उसे धो डालना। यदि वह विचार थोड़ी ही देर टिक जाए न, तो वह सामने वाले तक पहुँच जाता है और फिर उगता है। चार घंटे बाद, बारह घंटे बाद या दो दिन बाद भी वह उगता है, इसलिए स्पंदन का बहाव उस तरफ नहीं जाना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : उसके लिए हमें क्या करना है?

दादाश्री : प्रतिक्रमण करके साफ कर देना है तुरंत ही। यदि प्रतिक्रमण नहीं हो पाए तो 'दादा' को याद करके या आपके इष्टदेव को याद करके संक्षेप में कह देना कि, 'यह विचार आ रहे हैं, वह सही नहीं है, वे मेरे नहीं हैं।'

जंगल में जाएँ और लौकिक ज्ञान के आधार पर अगर ऐसे विचार आएँ कि लुटेरा मिलेगा तो? अथवा बाघ मिलेगा तो क्या होगा? ऐसे विचार आए तो उसी समय प्रतिक्रमण कर लेना। शंका हुई यानी बिगड़ा। शंका नहीं होने देना। किसी भी व्यक्ति पर कुछ भी शंका हो तो प्रतिक्रमण करना है। शंका ही दु:खदायी है।

शंका होने पर प्रतिक्रमण करवा लेना। हम तो इस ब्रह्मांड के मालिक हैं, हमें शंका क्यों होगी? इंसान हैं इसलिए शंका तो होगी। लेकिन भूल हुई इसलिए नकद प्रतिक्रमण कर लेना है।

जिसके लिए शंका होती हो उसके प्रतिक्रमण करना है। वर्ना शंका आपको खा जाएगी।

प्रश्नकर्ता : संशय, वह ग्रंथि में जाता है?

दादाश्री : संशय यानी शंका न?

प्रश्नकर्ता : हाँ। वह दुर्गुण में जाता है या ग्रंथि में जाता है?

दादाश्री : ग्रंथि में या दुर्गुण में किसी में भी नहीं जाता। वह तो भयंकर आत्मघात है। वह अहंकार है, एक प्रकार का। शंका यानी संदेह करना। शंका करना, वह संदेह से लेकर शंका तक के सभी लक्षण आत्मघाती हैं। उसमें एक भी फायदा नहीं होता। भयंकर नुकसान ही होता रहता है। इसीलिए तो हम शंका करने को मना करते हैं। शंका मत करना। वह हुई, सिर्फ ऐसा लगता है और यदि कुछ हो जाए तब भी शंका करने से आपको कुछ नहीं मिलेगा।

वह एक प्रकार का अहंकार है। मेरी बात समझ में आई?

प्रश्नकर्ता : शंका के उपाय में प्रतिक्रमण कर लेना है? शंका हो कि तुरंत ही प्रतिक्रमण कर लेना है?

दादाश्री : हाँ, जिसके लिए शंका हो उसके प्रतिक्रण करना है।

प्रश्नकर्ता : यानी यही उपाय है न, इसका?

दादाश्री : हाँ, यही उपाय है। वर्ना शंका तो आपको खा जाएगी।

प्रश्नकर्ता : कोई भी शंका हो तो उसका समाधान कर लेना अच्छा है, तो शंका का *निकाल* (निपटारा) होगा।

दादाश्री : किसी भी चीज़ की शंका होती हो न, तो सब जाँच कर आना और आकर सो जाना। अंत में जाँच भी बंद कर देना है।

भय का मूल कारण

प्रश्नकर्ता : यह जो भय है न, भय संज्ञा, वह किस प्रकार की है? वह कैसे उत्पन्न होती है? वह कैसे चार्ज और डिस्चार्ज होती है?

दादाश्री : भय तो, जितना खुद को टेम्परेरी (विनाशी) समझेगा, उतना अधिक भय लगता है।

प्रश्नकर्ता : वह समझ में नहीं आया। खुद को टेम्परेरी समझना यानी क्या?

दादाश्री : 'मैं चंदूभाई ही हूँ', वह टेम्परेरी है और वैसा खुद को माने इसलिए भय लगता रहता है। 'मैं शुद्धात्मा हूँ, मुझे कुछ भी नहीं होता, मैं तो सनातन हूँ' तो भय किसलिए लगेगा?

प्रश्नकर्ता : फिर नहीं लगेगा।

दादाश्री : फॉरेन के लोगों को टेम्परेरी ज़्यादा लगता है, अपने यहाँ के लोगों को टेम्परेरी कम लगता है क्योंकि कर्ताभाव हुआ है। मैं करता हूँ और यह कर्म मेरे करने से होता है। इसलिए यहाँ ज़रा फॉरेन की तुलना में कम भय वाला है। फॉरेन वाले तो चिड़िया की तरह उड़ जाते हैं।

शंका और भय

प्रश्नकर्ता : यह भय और शंका, इन दोनों में पारस्परिक संबंध है क्या?

दादाश्री : शंका से ही भय उत्पन्न होता है न! और भय से शंका होती है। वे दोनों कारण-कार्य जैसे हैं। शंका बिल्कुल नहीं रखनी चाहिए। किसी भी मामले में शंका मत रखना। लड़का बिगड़ रहा है या लड़की बिगड़ रही है, ऐसी शंका नहीं करना। उसके लिए प्रयत्न करना।

प्रश्नकर्ता : लेकिन शंका तो बार-बार हो जाती है।

दादाश्री : शंका, वह तो खुद की आत्महत्या है। शंका तो कभी भी मत करना।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह शंका क्यों हो जाती है? शंका करने का कोई सवाल ही नहीं है, फिर भी शंका प्रतिक्षण हो जाती है।

दादाश्री : वह हो जाती है इसलिए हमें कहना है कि भाई, शंका नहीं है मेरी, यह नहीं है मेरी, जब हो जाए तब तुरंत कहना है।

हमें शंका नहीं होती। शंका से ही यह जगत् सड़ रहा है, पतन

हो रहा है। खुद मरने वाला है लेकिन शंका क्यों नहीं होती? नहीं मरने वाला?

प्रश्नकर्ता : वह तो पता ही होता है कि मरने वाला ही है।

दादाश्री : लेकिन वहाँ शंका क्यों नहीं होती? मरने की शंका होती है न, तो वह निकाल फेंकता है। शंका हुई कि तुरंत निकाल फेंकता है। बहुत भय लगता है। इसलिए निकाल देना है। उखाड़कर फेंक देना है। जैसे ही हुई कि तुरंत उखाड़कर फेंक देना है।

हो जाए जली हुई रस्सी समान

किसी भी कार्य का पछतावा करो तो हमेशा उस कार्य के फल का ज़्यादातर हिस्सा नाश हो ही जाता है। फिर जली हुई रस्सी हो न, उसके जैसा फल देता है। अगले जन्म में उस जली हुई रस्सी को छूते ही, उड़ जाता है (राख हो जाता है)। कोई भी क्रिया यों ही व्यर्थ तो जाती ही नहीं। प्रतिक्रमण करने से वह रस्सी जल जाती है। लेकिन डिज़ाइन वही की वही रहती है। फिर अगले जन्म में क्या करना पड़ता है? यों ही झटका, झाड़ा कि उड़ गया।

अक्रम में क्रिया मात्र मृत

की हुई क्रिया तो जाती ही नहीं। लेकिन यह ज्ञान लेने के बाद, आपने जो चेतन बाहर अलग कर दिया उसके बाद, वे क्रियाएँ मृत क्रियाएँ हैं, निश्चेतन क्रियाएँ हैं इसलिए उनकी ज़िम्मेदारी छूट जाती है।

यह अक्रम विज्ञान है। ऐसा कोई विज्ञान नहीं होता कि संसार में संपूर्ण रूप से रहने के बावजूद भी, संपूर्ण रूप से मोह में रहने के बावजूद भी मोक्ष जा सके। ऐसा कोई विज्ञान नहीं होता, ऐसा यह विज्ञान है।

मोक्ष जाना यानी क्या? क्रमिक, स्टेप बाइ स्टेप, जितना मोह कम हुआ, उतने स्टेप आप आगे बढ़ते हो और उस क्रमिक मार्ग में तो ज्ञानियों को भी चिंता होती है। अंदर आनंद होता है और बाहर

चिंता होती है। जबकि यहाँ तो बाहर भी चिंता नहीं और अंदर भी चिंता नहीं। चिंता बगैर की लाइफ वर्ल्ड में कहीं भी नहीं हो सकती। लेकिन इस अक्रम विज्ञान के प्रताप से हज़ारों लोगों को है!!

वे घटने लगते हैं बाद में

दादाश्री : अब प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं क्या?

प्रश्नकर्ता : अब प्रतिक्रमण तो करने ही पड़ेंगे न!

दादाश्री : अब कम हुए हैं? पहले जितने नहीं रहे न?

प्रश्नकर्ता : अब कम हुए हैं, लेकिन करने पड़ते हैं।

दादाश्री : प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और आलोचना, ये ही साधन हैं मोक्ष जाने के लिए। अन्य कोई साधन नहीं है। कर्म तो होते ही रहेंगे। इच्छा नहीं हो तो भी कर्म तो होते ही रहेंगे।

प्रश्नकर्ता : कर्म तो आड़े आकर गले में फँसते हैं।

दादाश्री : हाँ, गले में फँसते हैं। कर्म का नियम ही ऐसा है। आपको पता चल जाता है न कि यह अतिक्रमण हुआ। समभाव से *निकाल* न हो तो अतिक्रमण हो जाता है। जब आपसे अतिक्रमण हो जाता है तब क्या करते हो?

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण करता हूँ।

दादाश्री : अच्छा। वैसे तो बहुत पक्की है। जितनी बाहर है, उतनी भीतर है, बोलो! इतनी पक्की है कि ज़रा भी कर्म ना बंधे ऐसा कर दिया है। तब तो अच्छा है न! इतना तो बहुत अच्छा। इसमें पक्की हो तो बहुत अच्छा। संसार में पक्का आदमी खुद का नुकसान कर रहा है और इसमें पक्का हो तो अच्छा है।

तोड़ना है, इफेक्ट को इफेक्ट से

प्रश्नकर्ता : हम प्रतिक्रमण करते हैं, वह कर्म के कारण ही

करते हैं न? हम जो प्रतिक्रमण करते हैं, वह अपने हाथ में नहीं है। वह तो इफेक्ट (असर) है न?

दादाश्री : प्रतिक्रमण, वह इफेक्ट ही है, लेकिन इफेक्ट को इफेक्ट से तोड़ना है और वह साफ हो जाएगा, तुरंत धो डालना है। हमें कहना है कि, 'भाई, चंदूभाई, धो डालो! यह क्यों ऐसा किया?' लेकिन ऐसे कर्म करने में कोई हर्ज नहीं है जिससे सामने वाले को दुःख नहीं होता है। सब खाओ-पीयो, जितने करेले खाने हों, उतने खाओ न! गुड़ डालकर भी करेले खाओ। क्योंकि कड़वे रस की शरीर को ज़रूरत है। इसलिए ऐसे ही न खाया जाए तो उसमें गुड़ डालकर खाओ, लेकिन खाओ।

'वह' है पुरुषार्थ

किसी को किंचित्मात्र दुःख नहीं होना चाहिए। यह तो, अनजाने में अपार दुःख होते हैं। सामने वाले को दुःख नहीं हो, उस तरह से आप काम लो। वह क्रमण कहलाता है। जबकि अतिक्रमण कब कहलाता है? आपको जल्दी हो और वह चाय पीने चला जाए, फिर जब वह वापस आता है तब आप तुरंत उस पर चिल्लाते हो कि, 'कहाँ गया था? नालायक है और ऐसा-वैसा', ऐसा करना अतिक्रमण कहलाता है। और वह स्वाभाविक रूप से आपसे हो जाता है। उसमें आपकी कोई इच्छा नहीं होती।

अतिक्रमण होना, वह स्वभाविक है लेकिन प्रतिक्रमण करना, वह अपना पुरुषार्थ है। यानी वह जो किया हो, वह साफ हो जाता है। प्रतिक्रमण से दाग़ तुरंत साफ हो जाता है।

❖❖❖❖❖

[12]

छूटें व्यसन, ज्ञानी के तरीके से

निकाल करो समभाव से

घर में यदि दाल थोड़ी तीखी बनी हो तो हम चिल्लाते हैं कि, 'यह दाल बिगाड़ दी और ऐसा है और वैसा है'। फिर हमें पता चले कि यह तो हम से भूल हो गई। इस फाइल का समभाव से *निकाल* नहीं किया। फाइल का समभाव से *निकाल* करना यानी क्या? हमें दाल कम लेकर, किसी भी तरह से हल लाना है, व्यवहारिक रूप से। वर्ना फिर हमें प्रतिक्रमण करना पड़ेगा। ऐसा दोष दिखाई देता है न, तुरंत?

प्रश्नकर्ता : तुरंत पता चल जाता है।

'उससे' शारीरिक दर्द भी चले जाते हैं

दादाश्री : अपना ज्ञान प्रतिक्रमण करने के लिए कहता है। कम खाया, वह भी अतिक्रमण है क्योंकि दो बजे भूख लगती है और ज़्यादा खाया, वह भी अतिक्रमण है। यानी नॉर्मेलिटी में रहना है।

शरीर के जितने दर्द हैं, वे सब अतिक्रमणों से हुए हैं। वे सब प्रतिक्रमणों से जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण कैसे करते हैं?

दादाश्री : दर्द का स्वभाव खोजना पड़ता है। किस निमित्त से

वह हुआ, उसे खोजना पड़ता है। हर एक के साथ के संबंधों की गहरी खोजबीन करनी पड़ती है। जितने संबंध याद आते हैं, वे ही ज़रूरत से ज़्यादा हैं। वे ही फाइलें हैं। जो याद नहीं आते उनसे कोई दिक्कत नहीं है।

ज़रूरत से ज़्यादा दें और ज़बरदस्ती करें, वह भी दु:ख है। यदि आपको ज़्यादा दें तो क्या करोगे?

प्रश्नकर्ता : हमें मना ही करना पड़ेगा। वर्ना खाएँगे तो दु:खी हो जाएँगे।

दादाश्री : हाथ जोड़कर जैसे-तैसे करके निपटाना पड़ता है। इस संसार में सब ऐसा है। नॉर्मेलिटी आनी मुश्किल है।

नियमभंग के प्रतिक्रमण

ध्येय के अनुसार जो नहीं हो पाया, उसे लिखकर रात को प्रतिक्रमण करना, इतना करेंगे तो भी बहुत हो गया।

प्रश्नकर्ता : दादा अभी भी, कई बार ज़रा ज़्यादा खा लिया जाता है, लेकिन उसका प्रतिक्रमण हो जाता है।

दादाश्री : उसमें हर्ज नहीं है।

प्रश्नकर्ता : हम प्रतिक्रमण इस तरह से करते हैं, 'हे दादा भगवान! ज्ञानी पुरुष से मैंने जो नियम लिया है, उसका भंग हुआ है। उसके लिए मैं क्षमा माँगता हूँ'। इस तरह से करेंगे तो चलेगा न?

दादाश्री : यानी हम नियम से ही जुड़े हैं और देह जो है, वह नियम से बाहर गया है। क्योंकि हम सत्संग करवाते हैं न, इसलिए हम नियम के पाबंद रहे हैं, वह पक्का है। हमें आज्ञा का पालन करना है।

प्रश्नकर्ता : हाँ।

प्रत्याख्यान करके पी चाय

प्रश्नकर्ता : मुझे सिगरेट पीने की बुरी आदत लग गई है।

दादाश्री : तो उसके लिए 'तू' ऐसा रखना कि यह गलत है, बुरी चीज़ है और यदि कोई पूछे कि सिगरेट क्यों पीते हो? तो उसका रक्षण मत करना। 'खराब है', ऐसा कहना या फिर ऐसा कहना कि 'भाई, यह मेरी कमज़ोरी है' तो किसी दिन छूटेगी वर्ना वह छोड़ेगी नहीं। छोड़ने का प्रयत्न करते हो क्या?

प्रश्नकर्ता : करता तो हूँ लेकिन नहीं छूटती।

दादाश्री : नहीं, लेकिन ऐसे प्रयत्न नहीं करने हैं। हमें उसका रक्षण नहीं करना है। जब कोई कहे, 'सिगरेट छोड़ दो न'। तब तू कहता है कि, 'नहीं भाई, उसे छोड़ने की ज़रूरत नहीं है', ऐसा-वैसा तू किसी भी तरह से रक्षण कर लेता है। अपमान होने पर वह (आदत) जाने वाली थी, तब तू ऐसा कहता है कि नहीं, सिगरेट पीनी चाहिए। तो फिर क्या होगा? वह नहीं जाएगी और इसे हमेशा ऐसा मानोगे कि यह गलत चीज़ है तो एक दिन छूट जाएगी।

प्रश्नकर्ता : जो डिस्चार्ज हो रहा है, उसे हम देखते रहें और यदि प्रतिक्रमण न करें तो वह बढ़ेगा या घटेगा?

दादाश्री : वह कुछ बढ़ेगा नहीं। यदि प्रतिक्रमण नहीं करेंगे तो वे जो परमाणु हैं, वे वापस फिर से अगले जन्म में दिखाई देंगे।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अभी भरते नहीं, सिर्फ देखते रहते हो तो?

दादाश्री : प्रतिक्रमण करने की ज़रूरत ही नहीं है। हंड्रेड परसेन्ट (सौ प्रतिशत) ज़रूरत नहीं है। यह प्रतिक्रमण करने का तो मैंने इसलिए रखा है, क्योंकि इसके अलावा अभिप्राय से नहीं छूट पाओगे। प्रतिक्रमण किया यानी अभिप्राय के विरोधी हो गए। अब वह अभिप्राय हमारा नहीं रहा। वर्ना अभिप्राय थोड़ा सा भी रह जाएगा। इस विज्ञान में प्रतिक्रमण करने की ज़रूरत नहीं है। यह सिर्फ इसलिए रखा है कि 'कोई हर्ज नहीं है' ऐसा कहकर, फिर एक अभिप्राय रह जाएगा।

शास्त्रकारों ने विरोध किया कि इसमें प्रतिक्रमण क्यों रखते हो?

लेकिन उन्हें यह पता नहीं है कि यह अक्रम मार्ग है और लोगों का वह अभिप्राय रह जाएगा। एक तो भीतर, शराब पी तो पी लेकिन फिर यदि प्रतिक्रमण नहीं करेगा तो वही अभिप्राय रह जाएगा।

हम भी प्रतिक्रमण करते हैं न, अभिप्राय से मुक्त होना ही चाहिए। प्रतिक्रमण करने में हर्ज नहीं है, लेकिन अभिप्राय रह जाए तो उसमें हर्ज है।

इसलिए साइन्टिफिक रूप से इसकी ज़रूरत नहीं है लेकिन अभी आपको टेकनिकली ज़रूरत है।

प्रश्नकर्ता : और इसमें नुकसान भी क्या है? प्रतिक्रमण करने में क्या नुकसान है?

दादाश्री : नुकसान का सवाल नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो?

दादाश्री : यों नुकसान क्या है और क्या नुकसान नहीं, उसके लिए यह नहीं रखा गया है। एक्ज़ेक्टनेस के लिए रखा गया है।

'क्या नुकसान है' ऐसा तो कहना ही नहीं है। 'क्या नुकसान है' ऐसा कहाँ बोल सकते है? अपने साधारण व्यापारों में बोल सकते हैं।

प्रतिक्रमण करने वाला व्यक्ति सर्वोत्तम चीज़ को प्राप्त करता है। यानी यह टेकनिकली है, साइन्टिफिकली इसमें ज़रूरत नहीं रहती लेकिन टेकनिकली ज़रूरत है।

प्रश्नकर्ता : साइन्टिफिकली कैसे?

दादाश्री : साइन्टिफिकली वह फिर उसका डिस्चार्ज है, फिर उसे ज़रूरत ही क्या है? क्योंकि आप अलग हो और वे अलग हैं। लोगों में इतनी सारी शक्तियाँ नहीं हैं, यदि प्रतिक्रमण नहीं करोगे तो वह अभिप्राय रह जाएगा और यदि आप प्रतिक्रमण करोगे तो अभिप्राय से अलग हुए, वह बात पक्की है न?

जितना अभिप्राय रहेगा, उतना मन रह जाएगा क्योंकि मन अभिप्राय से बनता है। आगे-पीछे इतना सोचते हैं, उसके बावजूद भी रह जाता है, तो फिर थोड़ा रहेगा तो सही न! लेकिन अब उसका फल नहीं आएगा। वह हमें अभी से ही समझ में आ जाता है कि भाई, देखो जब यही ऐसा है तो वह तो इसकी तुलना में...

प्रश्नकर्ता : तो इसका अर्थ ऐसा हुआ कि 'चंदूभाई' और 'चंदूभाई' के परमाणु डिस्चार्ज हैं। अब यदि प्रतिक्रमण नहीं करेंगे तो उतने बाकी रह जाएँगे।

दादाश्री : उतना मन हमें परेशान करेगा। अगर शराब पी हो तो कैसा लगेगा?

प्रश्नकर्ता : यानी कॉज़ेज़ के रूप में अगले जन्म के लिए बाकी रहेगा?

दादाश्री : हंअ। अभिप्राय से मन बनता है और अभिप्राय बाकी रहा यानी उतना मन बाकी रहा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, ज्ञान मिलने से पहले जो हुआ हो, वह?

दादाश्री : उसका तो कोई सवाल ही नहीं है। वह तो ज़्यादातर इस ज्ञान से ही खत्म हो चुका होता है। यदि थोड़ा-बहुत रहेगा तो अगले जन्म में उससे कोई दिक्कत नहीं आएगी।

प्रश्नकर्ता : यानी ज्ञान लेने के बाद भी थोड़ा-बहुत बाकी रहेगा क्या?

दादाश्री : रहेगा तो सही। अपना हल हमें स्वयं ही लाना है। यदि प्रतिक्रमण नहीं किए, आलस की तो उतना बाकी रहा। पुरुषार्थ तो करना ही चाहिए न? पुरुष होने के बाद पुरुषार्थ नहीं करे, ऐसा चलेगा क्या?

चंदूभाई के किसी कार्य से आपको कोई लेना-देना नहीं है, लेकिन आपको चंदूभाई का ध्यान रखना चाहिए। 'क्या करते हैं? कितनी

बीड़ी पीते हैं? और यदि चंदूभाई अतिक्रमण करे तो कहना कि प्रतिक्रमण करो'। क्रमण का अधिकार है, अतिक्रमण का अधिकार नहीं है।

हमने क्या कहा कि अभी व्यसनी बन गए हो, उसमें मुझे आपत्ति नहीं है, लेकिन जिसका व्यसन हुआ हो, उसका भगवान से प्रतिक्रमण करना कि 'हे भगवान! यह शराब नहीं पीनी चाहिए, उसके बावजूद भी पीता हूँ, उसके लिए माफी माँगता हूँ। फिर से नहीं पीऊँ, ऐसी शक्ति दीजिए'। इतना करना भाई। जबकि लोग तो विरोध करते हैं कि तू शराब क्यों पीता है? अरे, ऐसा करके तू इसे और ज़्यादा बिगाड़ रहा है। उसका अहित कर रहा है। मैंने कहा न, कि तू कितना भी बड़ा गुनाह करके आए फिर भी इस तरह से प्रतिक्रमण करना क्योंकि प्रतिक्रमण का अर्थ क्या होता है?

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण का अर्थ यह है कि, 'मुझसे प्रकृतिवश कर्म तो हो जाते हैं, लेकिन मुझे उसका पछतावा है, मुझे छोड़ना है'। इस तरह से?

दादाश्री : हाँ। यह तो पछतावा हुआ लेकिन प्रतिक्रमण का अर्थ ही क्या है? कि वह खुद 'शराब पीनी है' उस अभिप्राय के विरुद्ध चला। जिसका अभिप्राय छूट गया, वह दूसरे जन्म में शराब भी नहीं पीएगा। प्रतिक्रमण नहीं छोड़ना चाहिए, इसके लिए ऐसे-ऐसे सारे वाक्य लिखे गए हैं कि सबकुछ छुड़वा दें।

प्रश्नकर्ता : आपने सुबह 'चाय' पीते वक्त कहा कि हमने प्रत्याख्यान करने के बाद चाय पी है।

दादाश्री : ओहोहो! हाँ।

प्रश्नकर्ता : उसकी ही बात है।

दादाश्री : वैसे 'चाय' तो मैं नहीं पीता हूँ, फिर भी पीने के संयोग आ मिलते हैं और जब अनिवार्य रूप से ऐसा होता है, तब क्या करना पड़ता है? यदि प्रत्याख्यान किए बगैर पी लूँ तो 'वह'

चिपक जाएगी। इसलिए तेल चुपड़कर फिर रंग वाला पानी डालना है, लेकिन तेल चुपड़कर। हाँ। हम पहले प्रत्याख्यान रूपी तेल चुपड़ते हैं फिर हरे रंग वाला पानी डालते हैं, लेकिन भीतर चिपकता नहीं। इसलिए मैंने पहले प्रत्याख्यान किया, फिर चाय पी।

यह इतना समझने जैसा है। यह सब प्रत्याख्यान करके करना है। समझ में आया न? प्रतिक्रमण तो जब अतिक्रमण हो जाए तब करना है। यह चाय पीना, वह अतिक्रमण नहीं कहलाता। चाय तो अनिवार्य रूप से पीनी पड़ती है, उसे अतिक्रमण नहीं कहते। वह तो, यदि प्रत्याख्यान नहीं करोगे, तेल नहीं चुपड़ोगे तो थोड़ा चिपक जाएगा। अब सबकुछ तेल चुपड़कर (प्रत्याख्यान करके) करना न!

प्रश्नकर्ता : ज़रूर।

दादाश्री : जब कार लेकर घुमने जाते हो, तब प्रत्याख्यान करके जाना। यह मुझे अनिवार्य रूप से करना पड़ता है इसलिए प्रत्याख्यान कर रहा हूँ।

प्रश्नकर्ता : इनके यहाँ आलू और प्याज़ खाने पड़े थे।

दादाश्री : तो उसका प्रतिक्रमण कर लेना है। प्रतिक्रमण कर लेंगे तो चलेगा। संयोग अनुसार चलना है।

शारीरिक वेदनीय में

प्रश्नकर्ता : जब सामने वाले को दु:ख हो जाए तब तो हम प्रतिक्रमण करते हैं, लेकिन जब खुद अपनी ही शारीरिक वेदना भुगत रहे हो और दु:ख हो जाए तो उसका भी प्रतिक्रमण करना है?

दादाश्री : उसे देखते रहना है। तन्मयाकार हो जाए, उसे भी देखते रहना है और भुगतना आता है व वेदना होती है, उसे भी देखते रहना है। वेद यानी जानना और वेद यानी भुगतना। अत: ज्ञानी भुगतने से लेकर जानने तक के पद में होते हैं।

प्रश्नकर्ता : जब बहुत ज़्यादा दर्द हो तब तो *पुद्गल* उछलने लगता है।

दादाश्री : हाँ, आप उछलते हो, उसका तो सभी को पता चल जाता है, लेकिन किसी को दुःख न हो जाए, वह भी देखना है। यदि कभी दुःख हो जाए व दुःख पहुँचे ऐसा बुरा बोल दिया और सामने वाले को दुःख हुआ तो आपको 'चंदूभाई' से कहना है कि 'आप प्रतिक्रमण करो'।

प्रश्नकर्ता : उस बात का तो पूरा प्रतिक्रमण हो जाता है लेकिन शरीर की वेदना के समय मन में भावों का बहुत परिवर्तन होता है। उस समय ऐसा समझ लीजिए न, कि वे आर्तध्यान, रौद्रध्यान में ही परिवर्तित हो जाते हैं।

दादाश्री : यह ज्ञान ही ऐसा है कि आर्तध्यान-रौद्रध्यान होते ही नहीं। पर जो आर्तध्यान-रौद्रध्यान होते हैं, वे बाह्य विभाग में होते हैं। यानी वास्तव में वे चिपकते नहीं (बंधन नहीं करते)। आर्तध्यान-रौद्रध्यान तो किसे कहते हैं? कि जिसमें हिंसक भाव हो। आपमें तो हिंसक भाव नहीं दिखता है।

प्रश्नकर्ता : अशाता वेदनीय कर्म उदय में आए तो वे कर्म भुगतने पड़ते हैं। उन्हें भुगतते वक्त, 'अरेरे! मर गया, मर गया', ऐसा करते हैं। मैंने तो कोई बुरा काम नहीं किया। फिर मुझे यह कर्म उदय में क्यों आया? तो ऐसे संयोगों में उस व्यक्ति को कौन सी भावना करनी चाहिए?

दादाश्री : 'इस वेदना से मैं अलग हूँ', यदि ऐसी भावना करेगा तो हल्का लगेगा और यदि 'मुझे हो रहा है' कहेगा तो ज़्यादा लगेगा।

प्रश्नकर्ता : यानी जब वह वेदना के कारण उद्वेग भुगतता है तब ऐसा आर्तध्यान की वजह से होता है या रौद्रध्यान की वजह से होता है?

दादाश्री : आर्तध्यान से। इसमें ध्यान का तो सवाल ही नहीं है। वह यदि 'ज्ञान' में हो न, तो यह वेदना कौन भुगत रहा है, उसे जानना चाहिए और खुद कौन हैं, वह भी जानना चाहिए। यानी हमें

चंदूभाई से ऐसा कहना चाहिए कि 'भाई, चंदूभाई आप ही भुगतो। अब आपने जो किया है, वह आप भुगतो'। उसमें यदि हम अलग रहेंगे तो जुदापन का लाभ होगा। वर्ना 'मुझे बहुत दु:ख हो रहा है' कहेंगे तो ज़बरदस्त वेदना आएगी। अनेकगुना होकर आएगी।

प्रश्नकर्ता : वह बात तो अपने महात्माओं की की। जिन्होंने दादा का ज्ञान लिया है, उनकी। उनके अलावा जो लोग भुगतते हो, वे भुगतते हैं, उसमें वह आर्तध्यान हुआ कहलाएगा न?

दादाश्री : आर्तध्यान ही होता है, दु:खमय परिणाम ही होता है। दु:खमय परिणाम अर्थात् आर्तध्यान।

प्रश्नकर्ता : और फिर वह सामने वाले पर चिढ़ता रहता है तो रौद्रध्यान भी होता है न?

दादाश्री : तो रौद्रध्यान (होता है)। निर्दोष जगत् में कोई दोषित नहीं दिखना चाहिए। जगत् बिल्कुल निर्दोष है। यानी जो दिखाई देता है, वह अपनी दृष्टिदोष की वजह से दिखाई देता है।

प्रश्नकर्ता : वेदनीय कर्म अतिचार से बंधता है या अतिक्रमण से?

दादाश्री : अतिक्रमण से बंधता है।

हमें अशाता कम होती है। देखो न, हमें महीने भर ऐसा हुआ कि 'दादा' को एक्सिडेन्ट का समय आ गया। फिर जब यह (एक्सिडेन्ट) हुआ, तब मानो यह दीया बुझने वाला हो, ऐसा हो गया था।

प्रश्नकर्ता : ऐसा कुछ नहीं होगा, दादा।

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं, 'हीरा बा' (दादाजी की धर्मपत्नी) चली गईं तो क्या 'इन्हें' (ए.एम.पटेल को) नहीं जाना पड़ेगा? यह कौन सा वेदनीय कर्म आया?

प्रश्नकर्ता : अशाता वेदनीय।

दादाश्री : लोग समझते हैं कि हमें वेदनीय है, लेकिन हमें

वेदनीय (स्पर्श) नहीं करता, तीर्थंकरों को (भी स्पर्श) नहीं करता, हमें हीरा बा के जाने का खेद नहीं है। हमें कुछ असर ही नहीं होता, लोगों को ऐसा लगता है कि हमें वेदनीय कर्म आया, अशाता वेदनीय आया। लेकिन हमें तो इन बीस सालों से एक मिनट, एक सेकन्ड भी अशाता ने स्पर्श नहीं किया! और वही विज्ञान मैंने आपको दिया है। यदि आप कमज़ोर पड़ जाओगे तो आपका नुकसान है। समझदारी हो तो कच्चे पड़ेंगे ही नहीं न, कभी? एक मिनट भी नहीं?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : तब ठीक है।

प्रश्नकर्ता : अंबालाल भाई को तो स्पर्श करता है न? 'दादा भगवान' को तो वेदनीय कर्म स्पर्श नहीं करता?

दादाश्री : नहीं, किसी को भी स्पर्श नहीं करता, ऐसा यह विज्ञान है। यदि स्पर्श करता तब तो पागल ही हो जाते न? यह तो नासमझी से दुःख हैं। यदि समझदारी हो तो इस फाइल को भी स्पर्श नहीं करेगा। किसी को भी स्पर्श नहीं करेगा। जो भी दुःख हैं, वे नासमझी से ही हैं। इस ज्ञान को यदि समझ लें न, तो दुःख रहेगा ही कैसे? अशाता भी नहीं होगी और शाता भी नहीं होगी।

❖❖❖❖❖

[13]

विमुक्ति, आर्त-रौद्र ध्यान से

आर्तध्यान का मतलब...

प्रश्नकर्ता : आर्तध्यान और रौद्रध्यान प्रतिक्षण होते ही रहते हैं, तो आर्तध्यान किसे कहेंगे और रौद्रध्यान किसे कहेंगे, इसका ज़रा स्पष्टीकरण कर दीजिए न!

दादाश्री : खुद अपने लिए ही, किसी को भी बीच में नहीं लाए, किसी को भी दुःख न हो, इस तरह संभलकर खुद अपने आप ही दुःख झेलता रहे, वह आर्तध्यान है और जो किसी को दुःखी कर दे, वह रौद्रध्यान।

आर्तध्यान तो, जब खुद को ज्ञान नहीं होता और 'मैं चंदूभाई हूँ' ऐसा हो जाता है और फिर मुझे ऐसा हो जाए या ऐसा हुआ तो क्या होगा? बेटियों की शादी क्या तू करवाने वाला था? जब 24 साल की हो जाए तब शादी करवाना या जब 30 साल की हो जाए तब लेकिन यह तो पाँच साल की हो तभी से ही चिंता करने लगता है, उसे आर्तध्यान करना कहते हैं।

खुद के लिए उल्टा सोचना, उल्टा करना, खुद की गाड़ी चलेगी या नहीं चलेगी? बीमार हुए और मर जाएँगे तो क्या होगा? यह सब आर्तध्यान कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : अग्रशोच, भविष्य की चिंता?

दादाश्री : अग्रशोच, वह सब आर्तध्यान कहलाता है। वह भी जब ज्ञान न हो, तब आर्तध्यान कहलाता है। कल क्या होगा? फलाना चिट्ठी आई है। इन्कम टैक्स वाला क्या करेगा? भविष्य के विचार करने पर जो भय लगता है, उस वक्त यदि आर्तध्यान हुआ हो तभी भय लगता है। भविष्य के विचार करने पर यदि भय लगे तो समझना कि आर्तध्यान हुआ है।

आर्तध्यान में खुद अपनी चिंता करता रहता है कि ऐसा होगा तो क्या होगा? ऐसा होगा तो क्या होगा? ऐसी घबराहट होती रहती है।

रौद्रध्यान से दूसरों पर असर

रौद्रध्यान तो, आप दूसरों के लिए कल्पना करें कि इसने मेरा नुकसान किया, वह सब रौद्रध्यान कहलाता है।

दूसरों के लिए विचार करें, दूसरों का कुछ भी नुकसान हो ऐसा विचार आया तो वह रौद्रध्यान हुआ कहलाएगा। मन में विचार आया कि कपड़ा खींचकर देना। जब तूने कहा, खींचकर देना, तभी से ग्राहकों के हाथ में कपड़ा कम जाएगा। ऐसी कल्पना करके और उसके ज़्यादा पैसे मिलेंगे ऐसी कल्पना की, वह रौद्रध्यान कहलाता है। दूसरों का नुकसान करे ऐसा ध्यान, वह रौद्रध्यान कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : रौद्रध्यान, हम से दूसरों को दु:ख होता है यानी रौद्रध्यान हुआ न?

दादाश्री : हाँ। वह दु:ख हो या न हो लेकिन हम उन्हें कहें कि ये सभी नालायक हैं, लुच्चे हैं, चोर हैं, वह सब रौद्रध्यान ही कहलाता है।

वास्तव में जगत् में कोई दोषित है ही नहीं। जो दोषित लगता है, वह अपनी गलत समझ से लगता है।

प्रश्नकर्ता : रौद्रध्यान तो मुझे होता है। मैं दूसरों की भूल देखता हूँ, उसमें दूसरों को क्या दु:ख होता है? यदि मैं उसे दोषित मानता हूँ तो उसे दु:ख कैसे हो सकता है? सामने वाले व्यक्ति को तो उसका पता भी नहीं चलता, तो फिर वह रौद्रध्यान कहलाएगा या नहीं?

दादाश्री : उसका असर होता है, वह रौद्रध्यान ही कहलाता है। उसे असर होता है, और क्यों नहीं होगा? वह तो आपको ऐसा लगता है कि उसे पता नहीं चलता। उसका असर तो सभी जगह हुए बगैर रहता ही नहीं। उसे खुद को भी पता नहीं चलता।

आर्तध्यान-रौद्रध्यान में से धर्मध्यान

प्रश्नकर्ता : कई बार ऐसा होता है कि हम आर्तध्यान और रौद्रध्यान में बहुत गहराई में उतरते जाते हैं और उसके बावजूद भी हम समझ नहीं पाते तो उसे कैसे समझ सकते हैं?

दादाश्री : वह तो, दु:ख होता है यानी वह आर्तध्यान ही हुआ न! और रौद्रध्यान में जलन का दु:ख होता है, बहुत ज़्यादा दु:ख होता है। आर्तध्यान और रौद्रध्यान मनुष्य के लिए दु:खदायी हैं। वे सभी अशाता वेदनीय ही हैं।

प्रश्नकर्ता : वह भी प्रतिक्षण होती रहती है। उसमें से मुक्त होने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : हमें उसे देखते रहना है कि वास्तव में वह दोषित है नहीं, यह तो मेरे कर्म के उदय की वजह से मुझे (दोषित) दिखाई देता है लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। यानी यदि वह दोषित दिखाई दे तो निर्दोष है, ऐसा करते रहना और प्रतिक्रमण करना।

हमें किसी व्यक्ति के लिए बुरे विचार आए तो हमें हिसाब निकाल लेना है कि भाई, ये मेरे ही कर्म के उदय हैं, इसमें इस बेचारे का क्या दोष। यह मेरे कर्म का उदय है। फिर जब वह दोषित दिखना बंद हो जाता है और तब वह धर्मध्यान कहलाता है। जहाँ यह रौद्रध्यान होने वाला था, वहीं पर धर्मध्यान हो गया और अंदर वह बहुत आनंद देता है। मेरे ही कर्म के उदय से वह दोषित दिखाई देता है। वह तो निमित्त मात्र है। वास्तव में सामने वाला दोषित होता ही नहीं। वह निमित्त ही होता है।

अपने ही कषाय अपने शत्रु

आपको कभी निमित्त मिलते हैं क्या?

प्रश्नकर्ता : मिलते हैं कभी-कभी।

दादाश्री : हाँ। वे तो निमित्त ही हैं, वास्तव में नहीं हैं। कोई चोर अपनी जेब काट ले, वह निमित्त है। वास्तव में वह गुनहगार नहीं है। वास्तव में गुनहगार तो अपने कषाय हैं।

खुद के कषाय ही खुद के दुश्मन हैं। दूसरा कोई बाहर दुश्मन है ही नहीं। वे कषाय ही उसे मार रहे हैं। बाहर वाला कोई उसे नहीं मारता।

पश्चाताप, से ध्यान परिवर्तन

अब जबरदस्त रौद्रध्यान किया हो, लेकिन प्रतिक्रमण से वह आर्तध्यान में परिवर्तित हो जाता है। दो लोगों ने एक ही प्रकार का रौद्रध्यान किया। दोनों ने कहा कि, 'मैं फलाँ को मार डालूँगा'। ऐसे दो लोगों ने मारने का भाव किया, वह रौद्रध्यान कहलाता है। लेकिन उनमें से एक को घर जाकर पछतावा हुआ कि, 'मैंने ऐसा भाव क्यों किया?' यानी वह आर्तध्यान में बदल गया और दूसरे भाई का रौद्रध्यान ही रहा।

अत: पछतावा करने से रौद्रध्यान भी आर्तध्यान में बदल जाता है। पछतावा करने से नर्कगति तिर्यंचगति में परिवर्तित हो जाती है। यदि अधिक पछतावा करे तो वह धर्मध्यान बन जाता है। एक बार पछतावा करने से आर्तध्यान बन जाता है और बार-बार पछतावा करते रहे तो धर्मध्यान बन जाता है। यानी क्रिया वही की वही है, लेकिन ध्यान बदलता रहता है।

रौद्रध्यान होने पर पश्चाताप किया कि परिवर्तन होता जाता है और यदि आनंद व्यक्त किया कि, 'नहीं, उसे मारना ही चाहिए। मैंने जो सोचा था, वही ठीक था' तब वह निगोद तक पहुँच जाता है। दोबारा मनुष्य में आना भी मुश्किल हो जाता है, उस हद तक नीचे जाता है, यानी रौद्रध्यान में आनंद लेने पर वह निगोद तक पहुँच सकता है।

यानी रौद्रध्यान करना ही मत और यदि रौद्रध्यान हो जाए तो पश्चाताप करना। आर्तध्यान करना ही मत और यदि आर्तध्यान हो जाए तो पश्चाताप करना।

यदि आर्तध्यान हो जाए और 'वह' पश्चाताप कर ले तो भगवान ने कहा है कि 'हम तेरा धर्मध्यान जमा करेंगे'। क्या गलत कहा भगवान ने? भगवान समझदार होंगे या घनचक्कर होंगे?

प्रश्नकर्ता : भगवान को घनचक्कर कहकर कहाँ जाना है? भगवान समझदार ही हैं।

प्रतिक्रमण से पुद्‌गल पाए धर्मध्यान

दादाश्री : 'दादा' का नाम लेकर पछतावा करना तो आर्तध्यान-रौद्रध्यान का धर्मध्यान हो जाएगा। जितना समझ में आया, उतना तो आगे बढ़ा! रौद्रध्यान हो जाए तो भी पछतावा करना और आर्तध्यान हो जाए तो भी पछतावा करना। इस काल में धर्मध्यान तो समझ में आए ऐसा नहीं है इसलिए रौद्रध्यान और आर्तध्यान पर पछतावा करके धर्मध्यान बनाया, इतना कारखाना खोल लेना। आजकल के लोगों को धर्मध्यान सीधी तरह से समझ में नहीं आ सकता क्योंकि भगवान के दर्शन करते समय भी ध्यान बाहर जूतों में रहता है। इसलिए खुद भगवान ही कहते हैं कि 'मेरे दर्शन करता है, उस समय साथ में जूतों के भी दर्शन करता है। यानी साथ में जूतों की भी फोटो ले लेता है, तो मैं क्या करूँ?!'

यानी इस काल में धर्मध्यान नहीं हो पाता। इसलिए ये दादा क्या कहते हैं कि 'जितने भी आर्तध्यान हो जाएँ, उनका पछतावा करो तो धर्मध्यान का फल मिलेगा और बिना धर्मध्यान के इस *पुद्‌गल* (जो पूरण और गलन होता है) का छुटकारा नहीं होगा। इस *पुद्‌गल* को शुक्लध्यान कभी होने वाला नहीं है!

यानी आर्तध्यान हो जाए उसका हर्ज नहीं, उसे धर्मध्यान में परिवर्तित किया जा सकता है।

हमें कहना चाहिए कि, 'हे चंदूभाई, किसलिए आप आर्तध्यान करते रहते हैं? आर्तध्यान किया, इसलिए पछतावा कीजिए, प्रतिक्रमण कीजिए', यानी धर्मध्यान हो गया।

प्रश्नकर्ता : 'हम' खुद अलग रहकर प्रतिक्रमण करवाएँ तो वह क्या कहलाएगा?

दादाश्री : ऐसा है न, आप तो शुद्धात्मा बन गए, लेकिन इस *पुद्गल* का छुटकारा होना चाहिए न? इसलिए जब तक उससे प्रतिक्रमण नहीं करवाओगे, तब तक छुटकारा नहीं होगा। अर्थात् जब तक *पुद्गल* को धर्मध्यान में नहीं रखोगे, तब तक छुटकारा नहीं होगा क्योंकि *पुद्गल* को शुक्लध्यान नहीं हो सकता। इसलिए *पुद्गल* को धर्मध्यान में रखो। यानी बार-बार प्रतिक्रमण करवाते रहना है। जितनी बार आर्तध्यान हो जाए, उतनी बार प्रतिक्रमण करवाना है।

आर्तध्यान होने का कारण, वह पूर्व की अज्ञानता है। यानी आर्तध्यान हो जाए तो 'आप' उससे प्रतिक्रमण करवाना।

नहीं हटता शुक्लध्यान कभी

प्रश्नकर्ता : शुक्लध्यान में से पतन होकर आर्तध्यान-रौद्रध्यान में आ जाते हैं, इसलिए इसे वहाँ प्रतिक्रमण करना पड़ता है?

दादाश्री : वह सब बात सही है, लेकिन वस्तुस्थिति में प्रतिक्रमण 'खुद को' नहीं करना है। शुक्लध्यान हटता ही नहीं है। यह तो संयोगवश है। संयोगों से काम लेना है। 'खुद' प्रतिक्रमण करेगा तो शुक्लध्यान उड़ जाएगा न?

प्रश्नकर्ता : रौद्रध्यान और आर्तध्यान जो हैं, वे 'डिस्चार्ज' रूप से हो जाते हैं तो फिर उनका 'ऑन द मोमेन्ट' (तत्क्षण) प्रतिक्रमण कर लेते हैं।

दादाश्री : रौद्रध्यान और आर्तध्यान बहीखाते में उधार नहीं रहना चाहिए।

आप भी उसी पद में, शुक्लध्यान और धर्मध्यान के पद में ही हो, सिर्फ इतना ही है कि आपको प्रतिक्रमण करना पड़ता है और ज़्यादा कुछ नहीं न! आपको हमारे बराबर संसारी लाभ नहीं मिलते। लेकिन आप भी उसी पद में बैठे हुए हो न!

रौद्रध्यान और वह सब हो ही जाता है, स्वाभाविक रूप से हो जाता है, लेकिन उसका प्रतिक्रमण तुरंत होना चाहिए।

जो यहाँ आया वह फँस गया

आपको तो कुछ नहीं करना है न, आप तो शुद्धात्मा बन गए, आपको चंदूभाई से कहना है, 'प्रतिक्रमण करो। अतिक्रमण क्यों किया?' क्या कहना है आपको? 'आपने अतिक्रमण किया इसलिए प्रतिक्रमण करो।' ऐसा कुछ किसी को दान दिया हो, उसके लिए आपको प्रतिक्रमण करने की ज़रूरत नहीं है क्योंकि यहाँ पर यह विज्ञान धर्मध्यान सहित है।

अतिक्रमण का प्रतिक्रमण करना है। यह विज्ञान सिर्फ शुक्लध्यान नहीं है। मोक्ष में सीधे नहीं जा सकते, एकावतारी बन सकते हैं, कोई दो अवतारी, कोई तीन अवतारी बन सकता है। यदि कोई लोभी होगा तो पंद्रह पूरे करेगा। वह कहेगा, कि 'भाई, अब दोबारा तो आना है नहीं, तो अतिक्रमण कर लो न!'

हमारे साझेदार ऐसे थे इसलिए मैं उन्हें कहता था कि, 'आप पंद्रह जन्म पूरे करोगे?' तब वे कहने लगे, 'क्या आपको ऐसा लगता है?' मैंने कहा, 'हाँ! आपका लोभ तो... अब वापस यहाँ आने को नहीं मिलेगा तो अब पंद्रह जन्म पूरे ही कर लो न! लेकिन फिर पंद्रह से ज़्यादा तो नहीं होंगे न!'

यदि बहुत लोभी होगा तो, पंद्रह से ज़्यादा तो नहीं होंगे न! वह तो अब *अटकण* (जो आगे नहीं बढ़ने दे) में आ गया। अत: यदि अभी भी संसार भोगने की, भौतिक सुखों की ही इच्छाएँ होती रहती हैं और पाँच-छ: हज़ार जन्म भोगने हों, तो दादा से मत मिलना। और यदि मिल ले तो ज्ञान मत लेना। वर्ना फिर यदि तू तय करेगा कि 'अब मुझे (मोक्षमार्ग में से बाहर) निकलना है' फिर भी नहीं निकल पाएगा। मोक्ष में जाना ही पड़ेगा। लेकिन कोई ऐसा मूर्ख नहीं होता। लेकिन फिर भी मैं तो पहले से ही कह देता हूँ कि, 'भाई, चेतकर रहना। बाद में तू कहेगा कि, 'अब मुझे इसमें से छोड़ दो', तो पंद्रह जन्मों में से

नहीं छूट पाएगा (पंद्रह से ज़्यादा जन्म नहीं होंगे) क्योंकि यह ज्ञानी कि मुहर है। किसी से मिटाया नहीं जा सकता, काटा नहीं जा सकता'।

ज्ञानी अर्थात् लाइसेन्स वाले इंसान कहलाते हैं। उनके पास पूरे वर्ल्ड का लाइसेन्स होता है। यह ऐसा विज्ञान है जहाँ देव लोग बैठते हैं, जिसे देव लोग सुनने आते हैं। यह परमहंस की सभा कहलाती है। जहाँ आत्मा व परमात्मा के अलावा अन्य कोई बात नहीं है, संसार से संबंधित कोई बात नहीं है, लेकिन यह धर्मध्यान सहित है। अपना यह अक्रम है न!

जहाँ आत्मज्ञान, वहाँ नहीं आर्त-रौद्रध्यान

आर्तध्यान और रौद्रध्यान, वह तिर्यंचगति और नर्कगति का कारण है।

प्रश्नकर्ता : आर्तध्यान व रौद्रध्यान करना ही नहीं चाहते हैं फिर भी हो जाता है?

दादाश्री : मेरा कहना यह है कि वह तो हो जाएगा, उसमें हमें हर्ज नहीं है, आप प्रतिक्रमण करो न! उसमें हमने आपत्ति उठाई ही नहीं, कि आप क्यों ऐसा करते हो? आप प्रतिक्रमण करो, ऐसा कहते हैं। हम किसी को निकालना नहीं चाहते हैं। अपने यहाँ 'नेगेटिवसेन्स' (नकारात्मक समझ) है ही नहीं, 'पॉज़िटिवसेन्स' (हकारात्मक समझ) ही है। हम किसी का निकंदन नहीं करना चाहते। दोष को कहो, 'आप रहो, हम प्रतिक्रमण करेंगे', तब वे अपने आप ही चले जाएँगे।

अपना ज्ञान ही ऐसा है कि आर्तध्यान और रौद्रध्यान होते ही नहीं। आर्तध्यान व रौद्रध्यान होने ही न दे ऐसा है और जो आर्तध्यान व रौद्रध्यान दिखाई देते हैं, वे अपने ध्यान नहीं हैं, सिर्फ घुटन है। वास्तव में वे कभी नहीं होते। यदि आत्मज्ञान है तो आर्तध्यान और रौद्रध्यान नहीं हैं और जहाँ आर्तध्यान और रौद्रध्यान हैं, वहाँ आत्मज्ञान नहीं है। दो भाषाएँ अलग-अलग नहीं होती।

देह में धर्मध्यान होता है और आत्मा में शुक्लध्यान होता है लेकिन जब घुटन होती है न, तो मन में ऐसा लगता है कि यह रौद्रध्यान

व आर्तध्यान हो गया। बस, इसलिए हमें उससे कहना है कि अतिक्रमण क्यों किया? इसलिए प्रतिक्रमण करो।

जहाँ आत्मज्ञान होता है, वहाँ आर्तध्यान व रौद्रध्यान नहीं होते। वर्ना, कभी भी आत्मा प्राप्त नहीं होता। अब आपको जो आर्तध्यान और रौद्रध्यान होते हैं, वे सिर्फ घुटन हैं। आर्तध्यान व रौद्रध्यान किसे होते हैं? वह जो जीवित इगोइज़म रहता है, उसे। उस जीवित इगोइज़म को मैंने खत्म कर दिया। अब मृत इगोइज़म रहा। उसे कोई आर्तध्यान-रौद्रध्यान नहीं होता। मरा हुआ कोई नई हलचल नहीं करता।

यानी विगत में कुछ है ही नहीं, ठीक तरह से समझो। मैं क्या कहता हूँ? यदि समझो तो इसमें कुछ भी नहीं है।

यह ज्ञान ही ऐसा दिया है कि इटसेल्फ (स्वयं) सब काम करता रहेगा और संपूर्ण रूप से समझना है। विस्तार से समझना है और अंत में यदि समझ में नहीं आए तो प्रतिक्रमण करते रहना न, अत: जिसे समझ में नहीं आए, उसे प्रतिक्रमण करने के लिए कहा है और यदि समझ में आ जाए तब तो खुद को कुछ होगा ही नहीं, लगता बाहर ही है लेकिन उसके मन में ऐसा लगता है कि यहीं पर लगा, वास्तव में लगता है बाहर!

प्रश्नकर्ता : यानी ये सभी भ्रांति ही हैं?

दादाश्री : नहीं। भ्रांति नहीं हैं। ये सब तो घुटन होती है। जब कर्म के बहुत बखेड़े हों न, तब ऐसा होता है। यहाँ पर बहुत धूल उड़ाए तो क्या होगा? हमें आगे का नहीं दिखेगा।

प्रश्नकर्ता : आवरण हैं?

दादाश्री : ये सब तो मोहनीय कर्म हैं, जो भरे हुए हैं। वे सब जैसे-जैसे उखड़ते हैं, वैसे वैसे वे निकलते रहते हैं।

हमें अब मोक्ष का काम निकाल लेना है! प्रतिक्रमण करते रहना। वही उसका उपाय है और वही उसका इलाज! आपको कुछ लेना-देना

नहीं है, यानी महात्माओं को आर्तध्यान होता ही नहीं है। आत्मा को आर्तध्यान-रौद्रध्यान होते ही नहीं। अपने महात्माओं को आर्तध्यान-रौद्रध्यान होते ही नहीं क्योंकि वे शुद्धात्मा हैं, खुद नामरूप नहीं है।

प्रश्नकर्ता : भूतकाल में आर्तध्यान और रौद्रध्यान में उलझ गए हों और यदि पूर्व में भी ऐसे ही काम कर चुके हों, तो आज जब उनके परिणाम उदय में आएँ तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : वे तो आएँगे ही न! आने वाले ही हैं। लेकिन आज ज्ञान से उन्हें छोड़ते जाएँ। उन दिनों ज्ञान नहीं था इसलिए छोड़ नहीं पाते थे। अब हम ज्ञान से छोड़ सकते हैं। उसका प्रतिक्रमण करना है। उन दिनों प्रतिक्रमण नहीं किए थे इसलिए अप्रतिक्रमण दोष लगा है। सारा संसार इस दोष की वजह से खड़ा रहा है। जब प्रतिक्रमण होते हैं, तभी से छुटकारा होने लगता है।

'ज्ञान' लेने के बाद कर्म कब बंधते हैं?

प्रश्नकर्ता : ज्ञान लेने के बाद, जाने-अनजाने, आर्तध्यान-रौद्रध्यान हो जाए और उसी क्षण मन में खूब पछतावा होने के बाद फिर प्रतिक्रमण किए जाए, तो ज्ञान लेने के बाद महात्माओं को कर्म बंधेंगे क्या?

दादाश्री : प्रतिक्रमण करेंगे तो नहीं बंधेंगे, हर बार प्रतिक्रमण करते हो क्या?

प्रश्नकर्ता : तुरंत प्रतिक्रमण कर लेता हूँ।

दादाश्री : और आप 'चंदूभाई' हो या 'शुद्धात्मा'?

प्रश्नकर्ता : मैं तो शुद्धात्मा हूँ।

दादाश्री : तब तो हर्ज नहीं। प्रतिक्रमण करते हो तो हर्ज नहीं है।

प्रश्नकर्ता : कुछ निमित्त से रौद्रध्यान हो गया फिर प्रतिक्रमण नहीं हुआ और वह उलझन में रहा, तो क्या वह कर्म बंध गया?

दादाश्री : कर्म तो कब बंधता है? यदि दर्शन बदल जाए तो

बंधता है। दर्शन बदल जाए, श्रद्धा में डावाँडोल हो जाए तो, वर्ना कर्म नहीं बंधता। जिसकी प्रतीति नहीं हटती, उसे कुछ भी नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : यानी कोई टाइम लिमिट नहीं? कि इतने टाइम में कर्म बंध जाएगा?

दादाश्री : कर्म कब बंधता है? कि जब प्रतीति डावाँडोल हो जाए, ऐसा-वैसा हो जाए, चीनी और नमक मिक्स करने पर क्या होता है?

प्रश्नकर्ता : बदलाव हो जाता है।

दादाश्री : इसलिए फिर सारे कर्म बंध जाते हैं, चीनी को चीनी में रहने दें, नमक को नमक में रहने दें, यानी प्रतीति नहीं बिगड़नी चाहिए। प्रतीति पर दाग़ नहीं लगना चाहिए।

द्रव्य परिणाम और भाव परिणाम

अब आर्तध्यान-रौद्रध्यान नहीं होते हैं न?

प्रश्नकर्ता : अब नहीं होते। दस दिनों से बंद हो गए हैं।

दादाश्री : फिर कब होंगे?

प्रश्नकर्ता : जब दूसरों के दोष देखेंगे तब होंगे?

दादाश्री : दोष दिखे तो प्रतिक्रमण करना। अब हम कर्ता नहीं रहे न, इसलिए आर्तध्यान-रौद्रध्यान नहीं होते और यदि किसी के दोष दिखते हो तो वह उसका पहले का द्रव्य है, वह भाव नहीं है, जब भाव होता है तब आर्तध्यान-रौद्रध्यान कहलाते हैं। यह तो द्रव्य है, इसलिए भीतर जैसा भरा हो वैसा बोलेगा।

प्रश्नकर्ता : दूसरों के दोष देखना यानी आर्तध्यान-रौद्रध्यान कहलाता है?

दादाश्री : हाँ, भीतर वह दूसरों के दोष देखने का माल भरकर लाया है तो ऐसा देखेगा। फिर भी वह खुद दोष में नहीं आता। उसे

प्रतिक्रमण करना चाहिए कि ऐसा क्यों होता है? ऐसा नहीं होना चाहिए। बस इतना ही। वह तो जैसा माल भरा हो न, वैसा ही सब निकलेगा। उसे हम अपनी सादी भाषा में 'भरा हुआ माल' कहते हैं और भगवान ने उसे द्रव्य कहा है। भरा हुआ माल बाहर निकलने पर ऐसा कहेंगे तो सामने वाले को तुरंत समझ में आ जाएगा। अब उसे शास्त्रीय भाषा में द्रव्य परिणाम है ऐसा कहेंगे और भाव परिणाम है, ऐसा कहेंगे।

अब ऐसा यह सब सूक्ष्म इन सभी को कैसे आएगा? और यदि इन सभी को सिखाने जाएँगे तो उल्टा दूसरा भी भूल जाएँगे। इसके बजाय अपनी गाँव की भाषा अच्छी है, तुरंत समझ में आ जाता है। आपको समझ में आया न? यह जो भरा हुआ माल है, वह अब खाली हो रहा है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा होता है, मानो कि हम किसी के पीठ पीछे बुरा बोलें कि ऐसा है, वैसा है, नालायक है और फिर अपने आपको मानें कि मैं सही हूँ। मेरा सब करेक्ट है। मैं बिल्कुल भी दोषित नहीं हूँ, मेरी कोई भूल है ही नहीं, ऐसे आर्तध्यान-रौद्रध्यान अंदर प्रतिक्षण चलते ही रहते हैं तो उसमें किस प्रकार से जागृति रखनी है, जिससे कि अलग रह सकें?

दादाश्री : वह तो होता ही रहेगा। उसके बाद हमें जानना है कि 'यह जागृति नहीं रही' तो दिनभर में जो कुछ भी हुआ हो, उसके लिए शाम को फिर तय करना है कि मुझे रात को नौ से ग्यारह बजे तक प्रतिक्रमण करना है।

प्रश्नकर्ता : ठीक है, प्रतिक्रमण, वह उसका उपाय है।

दादाश्री : हाँ। वे सभी जो रास्ते में, मुहल्ले में मिले हों, अन्य सब जो मिले हों, रात को बैठकर उन सब के प्रतिक्रमण करो।

प्रश्नकर्ता : जो-जो मिले हों।

दादाश्री : मिले हो या नहीं मिले हो, लेकिन घंटे-दो घंटे सभी के प्रतिक्रमण करो। उस समय उसकी शक्ति इतनी अधिक बढ़ेगी कि न पूछो बात! और आनंद भी बहुत होगा।

प्रश्नकर्ता : समझ गया। यानी फिर अंत में, निवृत्ति में भी प्रतिक्रमण कर लेना है।

दादाश्री : याद करके प्रतिक्रमण करना है।

उसे कहते हैं धर्मध्यान

प्रश्नकर्ता : आर्तध्यान का प्रतिक्रमण करें तो वह किसमें जाता है?

दादाश्री : किसी में भी नहीं जाएगा, प्रतिक्रमण किया यानी जो दाग़ लगे थे, वे धुल गए।

प्रश्नकर्ता : और यदि रौद्रध्यान का प्रतिक्रमण करें तो?

दादाश्री : वह तो सामने वाले का करना पड़ता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन इस किताब में तो ऐसा छपा है कि वह धर्मध्यान में जाता है।

दादाश्री : हाँ। यानी रौद्रध्यान का प्रतिक्रमण करेगा तो वह धर्मध्यान में ही जाता है क्योंकि रौद्रध्यान को रोका।

प्रश्नकर्ता : तो फिर आर्तध्यान का प्रतिक्रमण करें तो वह किसमें जाता है?

दादाश्री : ऐसा नहीं, ऐसा नहीं लिखा है। किताब में अलग लिखा है, रौद्रध्यान होने से रोका, उसे धर्मध्यान कहते हैं। क्या ऐसा नहीं लिखा?

प्रश्नकर्ता : और आर्तध्यान को?

दादाश्री : जो रौद्रध्यान होने से रोके, उसे धर्मध्यान कहते हैं और आर्तध्यान होने से रोके उसे भी धर्मध्यान कहते हैं। हाँ, दोनों में, दोनों को।

प्रश्नकर्ता : और पश्चाताप करें तो?

दादाश्री : और पश्चाताप करता है यानी उसका धुल जाता है!!

प्रश्नकर्ता : आप कई बार सत्संग में ऐसा कहते हैं कि जहाँ आर्तध्यान-रौद्रध्यान होने वाले हों तब कंट्रोल रहता है, वह धर्मध्यान है।

दादाश्री : वह धर्मध्यान कंट्रोल में कैसे रहता है कि यह मेरे ही कर्म का उदय है। उसमें वह निमित्त है, वह उसका धर्मध्यान कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : हाँ। लेकिन वह कंट्रोल में रहे तो न?

दादाश्री : हाँ। यदि गोली छूट गई तो प्रतिक्रमण करना पड़ता है।

प्रश्नकर्ता : क्या रौद्रध्यान के प्रतिक्रमण करने से सीधा धर्मध्यान होता है?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं। ऐसा है न, यथार्थ शब्दों पर आधारित है यह। प्रतिक्रमण और पश्चाताप, इन दोनों में फर्क है। यथार्थ प्रतिक्रमण करना अर्थात् खुद शुद्ध भाव से करना।

हमें देख लेना है, बस। प्रतिक्रमण विधि के शब्दों में अन्य किसी का हस्तक्षेप तो नहीं है, इतना देख लेना है। उसमें मेरे (दादा का) शब्द हैं या नहीं? आपको बस उतना ही देख लेना है। उसमें अन्य किसी का दखल हो तो देख लेना। औरों की भूल देखने की हमें ज़रूरत ही नहीं है।

प्रश्नकर्ता : भूल की बात नहीं है, लेकिन एक्ज़ेक्ट (यथार्थ) जानना तो चाहिए न?

दादाश्री : नहीं, वे सभी एक-एक शब्द सच्चे हैं। उनमें परिवर्तन करने का, उन्हें काटने का, भविष्य में किसी को भी अधिकार नहीं है!

यथार्थ प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : काटने की बात नहीं कर रहा हूँ, क्योंकि दो-तीन वाक्य एक साथ में आए न...

दादाश्री : नहीं, वह तो ऐसे किसी संयोगवश वह पूरी किताब

लेकर आया था तब मुझसे निकल गया, कि किन संयोगों में, कैसी बात हुई हो... उसके आसपास का कनेक्शन (लिंक) चाहिए। आप अधूरा वाक्य लो न, उसका सही अर्थ नहीं निकलता।

प्रश्नकर्ता : नहीं-नहीं, आप्तवाणी-2 में पेज 109 पर है कि रौद्रध्यान में पश्चाताप होता है तो वह आर्तध्यान में जाता है और यदि रौद्रध्यान में यथार्थ प्रतिक्रमण हो तो धर्मध्यान में जाता है।

दादाश्री : पूरा वाक्य जो बोला गया है, उसमें आपको तो सिर्फ इतना ही देखना है कि दूसरे की दखल है या नहीं। यदि दखल हो तो मुझसे कहना। दूसरा, इसे तौलने मत जाना। इसका अर्थ ऐसा होता है या नहीं, वह संयोगों के अनुसार होता है।

यथार्थ अर्थात् जैसा होना चाहिए, वैसा वाक्य सिर्फ ज्ञानी पुरुष बना सकते हैं, दूसरा कोई नहीं बना सकता।

प्रश्नकर्ता : उस यथार्थ का स्पष्टीकरण कीजिए।

दादाश्री : यथार्थ यानी जैसा होना चाहिए वैसा संपूर्ण! अब ऐसा समझ में नहीं आता न? कुछ विशेष बड़े लोग जो अपने में हो चुके हैं, यदि आप समझते हो तो ऐसा कर सकते हो।

प्रश्नकर्ता : अब तक तो मैं ऐसा ही समझता था कि हमारे मन में ऐसे किसी का बुरा करने का विचार आए न, तो वह काम हम से नहीं होगा। उसे मैं धर्मध्यान मानता था। इसने मेरा नुकसान किया तो तुरंत ही मुझमें रिएक्शन (प्रतिक्रिया) होता है, कि इनका ऐसा करूँ। तो कहता कि 'भाई, वह अपना काम नहीं है'।

दादाश्री : हाँ। वह धर्मध्यान कहलाता है। लेकिन वह तो धर्मध्यान है, वही तो देखने लायक है जो आर्तध्यान-रौद्रध्यान को रोक दें। वह तो, नकद धर्मध्यान ही है लेकिन यह यथार्थ प्रतिक्रमण करना, वह तो बहुत बड़ी बात है और वह प्रतिक्रमण अलग बात है। आप कहते हो उसी अनुसार लेकिन यथार्थ।

प्रश्नकर्ता : दादा, किताब में छप गया इसलिए कॉमन लैंग्वेज (सामान्य भाषा) में चला गया।

दादाश्री : हाँ, लेकिन जो सही व्यक्ति होगा, उसे तो पहुँचेगा ही न? यथार्थ कौन समझेगा?

प्रश्नकर्ता : फिर मैंने सोचकर ऐसा अर्थ निकाला था कि यथार्थ प्रतिक्रमण यानी ज़रा भी कर्ताभाव न हो।

दादाश्री : नहीं, वह तो बिल्कुल नहीं होता। यह ज्ञान लेने के बाद तो कर्ताभाव नहीं होता। पर यथार्थ यानी जैसा होना चाहिए वैसा एक्ज़ेक्टली। यथार्थ का अर्थ ही ऐसा होता है। जैसा होना चाहिए वैसा!

प्रश्नकर्ता : ज्ञानियों को प्रतिक्रमण नहीं करना पड़ता न?

दादाश्री : इन अक्रम विज्ञानियों को करना पड़ता है।

प्रश्नकर्ता : नहीं। लेकिन यथार्थ प्रतिक्रमण है न?

दादाश्री : यथार्थ तो जो हमारे साथ रहते हैं न, वे सभी कर सकते हैं। कुछ लोग अभी अपने हैं ही। दूसरे भी कर सकते हैं। आप भी उनके जैसे कर सकते हो। आप यथार्थ नहीं समझते हो, उसमें हर्ज नहीं है लेकिन आप यथार्थ करेंगे ज़रूर, वह मैं जानता हूँ। यथार्थ का अर्थ ही बहुत भारी होता है। 'जैसा होना चाहिए वैसा!'

ध्यान अंदर 'शुक्ल' और बाहर 'धर्म'

अपना साइन्स क्या कहना चाहता है, वह मैं आपको बताता हूँ। अभी उदय में दोष निकल रहा है या उदय में अच्छा भाव निकल रहा है, दो ही प्रकार के भाव निकलेंगे न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : तो उस उदय को देखो, जिससे खुद के दोष दिखाई दें। जो दोष वाला है, उसे दोष दिखाई देंगे और जो अच्छा है, उसे

अच्छा ही दिखाई देगा लेकिन हमें खुद के ही दोष देखने हैं। दूसरा कुछ नहीं देखना है।

इस पुरुषार्थ से अगले जन्म में फर्क पड़ता है लेकिन हम तो ऐसा नहीं कहना चाहते। हम क्या कहते हैं, कि हम तो 'शुद्धात्मा' बन गए और अगला जन्म तो चाहिए ही नहीं। यानी हम क्या कहना चाहते हैं, यह जो उदय है, उसका हम *निकाल* कर देते हैं, उसे जानते हैं।

जो दोष हुआ उसे जाना, उसे धर्मध्यान कहते हैं और भीतर में शुक्लध्यान है। जब धर्मध्यान और शुक्लध्यान दोनों साथ में हों तब एकावतारी बन सकते हैं और जब सिर्फ शुक्लध्यान हो तब मोक्ष हो जाता है।

इसलिए अगर दोष हो जाए तो उस दोष से आपको चिपकना नहीं है। यह जो, पहले पुस्तकें पढ़ी हैं इसलिए आपको ऐसा लगता है कि यह क्या हुआ? यह क्या हुआ? हमने अच्छी आदतें और बुरी आदतें, दोनों से सेफसाइड कर ली है। हम शुद्धात्मा हैं और हम स्वरूप में आ चुके हैं। अब जो पहले के दोष हैं, वे हमें दिखाई देते हैं। वे हमें दिखने लगते हैं। सभी सूक्ष्म से सूक्ष्म दोष दिखाई देंगे और जैसे-जैसे दोषों को देखने की दृष्टि खिलेगी, वैसे-वैसे वे और ज़्यादा दिखते जाएँगे।

अब प्रतिक्रमण नहीं हो पाए तो मैं कहता हूँ न, कि कोई हर्ज नहीं है लेकिन सिर्फ उन दोषों को देखते रहो और ऐसा जानो कि 'यह चीज़ गलत है'। जब से ऐसा जाना तभी से वह धर्मध्यान कहलाता है। अत: यह बाहर से धर्मध्यान और अंदर से शुक्लध्यान, यह मार्ग बिल्कुल अलग है। साफ मार्ग है और स्वाभाविक मार्ग है।

अरे! अभी कहाँ से?

अब रात को साढ़े ग्यारह बजे सात-आठ लोग आपके यहाँ आएँ और 'चंदूभाई हैं क्या?' इस तरह आवाज़ दें, तो आप क्या कहोगे? वे आपके गाँव से आए हो और उनमें से एक-दो लोग आपके जान-पहचान वाले हो और दूसरे सभी उनके पहचान वाले हो (उनके साथ

आए हो)। अब इस तरह रात के साढ़े ग्यारह बजे उनके आवाज़ देने पर क्या कहोगे आप उन लोगों से? दरवाज़ा खोलोगे या नहीं खोलोगे?

प्रश्नकर्ता : हाँ, खोलेंगे।

दादाश्री : और फिर उन लोगों से क्या कहोगे? वापस चले जाइए, ऐसा कहोगे?

प्रश्नकर्ता : नहीं, नहीं। वापस जाइए, ऐसा कैसे कह सकते हैं?

दादाश्री : तो क्या कहोगे?

प्रश्नकर्ता : हम उन्हें अंदर बुलाएँगे, 'अंदर आइए'।

दादाश्री : 'आइए, पधारिए, पधारिए।' अपने संस्कार हैं न! इसलिए 'आइए, पधारिए' कहते हैं, सभी को सोफे पर बैठने के लिए कहते हैं। बच्चा सोफे पर सो रहा हो तो उसे जल्दी से उठाकर, मेहमानों को सोफे पर बैठने के लिए कहते हैं। लेकिन मन में ऐसा होता है कि 'अरे! अभी ये लोग कहाँ से आ गए?'

यह आर्तध्यान नहीं है, रौद्रध्यान है, सामने वाले व्यक्ति के प्रति भाव बिगाड़ना! आर्तध्यान का मतलब तो खुद अपनी ही पीड़ा भुगतना! और ये तो पराए की *उपाधि* (बाहर से आने वाले दुःख) खुद लेकर पराए पर 'ब्लेम' (आरोप) किया। 'अरे! अभी कहाँ से आ गए?'

फिर भी उस समय आप क्या कहोगे? आपके संस्कार तो छोड़ेंगे नहीं न! धीरे से कहते हो कि, 'थोड़ी... थोड़ी... थोड़ी...' अरे लेकिन क्या? तब कहते हो, 'थोड़ी सी चाय...' तब वे भी ऐसे खुलकर कहने वाले होते हैं, वे कहेंगे, 'चंदूभाई, इस समय चाय रहने दो न, अभी खिचड़ी-कढ़ी बना दोगे तो बहुत हो गया।' ऐसा कहते ही, फिर देखो आपकी घर वाली की हालत! रसोईघर में क्या हो जाएगा?

अब यहाँ (ऐसे समय पर) क्या करना चाहिए? भगवान की आज्ञा, जिसे मोक्ष में जाना हो उसे क्या करना चाहिए? 'अरे! इस समय

कहाँ से आ गए?', ऐसा भाव तो लोगों को हो ही जाता है। अभी तो, इस दूषमकाल का दबाव ऐसा है, वातावरण ऐसा है, इसलिए उसे ऐसा विचार आ ही जाएगा। कोई बड़ा व्यक्ति हो उसे भी आ जाएगा। संयमी को भी आ जाता है लेकिन संयमी उस समय अपने भाव सुधार लेता है कि, 'ये तो रहने वाले ही हैं, तो तुम भीतर क्यों ऐसे भाव चित्रित कर रहे हो? बाहर अच्छा दिखा रहे हो और भीतर उल्टा चित्रित कर रहे हो'। अर्थात् आप यह जो अच्छी तरह से उनको अंदर बुलाते हो, बातें करते हो, वह पिछले जन्म का फल भुगत रहे हो और अंदर भाव बिगाड़कर अगले जन्म के लिए नया कर्म बाँधते हो। 'अरे! इस समय कहाँ से आ गए', ऐसा सोचकर उल्टा (कर्म) बाँधते हो।

अत: तब आप भगवान से माफी माँगकर कहना कि, 'भगवान मेरी भूल हो गई, वातावरण के दबाव की वजह से ऐसा बोल दिया गया लेकिन ऐसी मेरी इच्छा नहीं है, वे भले ही रहें'। इस तरह से आप उनके लिए अंदर से साफ कर लो न, वह आपका पुरुषार्थ कहलाता है।

ऐसा होगा तो सही, ऐसा तो बड़े-बड़े संयमधारियों को भी हो जाता है। यह काल ही ऐसा विचित्र है लेकिन यदि आप साफ कर दोगे तो आपको वैसा फल मिलेगा।

स्त्रियाँ भी अपना अंदर से सुधार लें कि, 'छोड़ो न! अब आएँ हैं तो भोजन किए बिना रहने वाले नहीं हैं, तो मैं क्यों भाव बिगाड़ूँ? उसके बजाय कहना है 'आइए, आराम से भोजन कीजिए'।

यानी हमें इस तरह उपाय करना चाहिए। यदि भाव बिगड़ जाएँ तो उसका उपाय करना है, क्योंकि अब जो आ धमके हैं, वे तो चार दिनों तक जाएँगे नहीं!

प्रश्नकर्ता : हम तो रात को खिलाते ही नहीं, हम सभी चोविहार करते हैं।

दादाश्री : तो आप क्या कहते हो, यहाँ पर भोजन नहीं मिलेगा?

प्रश्नकर्ता : मना कर देते हैं।

दादाश्री : चाय माँगे तो?

प्रश्नकर्ता : माँगे तो भी नहीं देते हैं।

दादाश्री : ऐसा? फिर लोग क्या करते हैं? बाहर ले जाकर खिला देते हैं।

प्रश्नकर्ता : बाहर ले जाकर खिलाया, वह तो वही का वही हुआ न?

दादाश्री : तो क्या करेंगे? भूखा सुलाएँगे। अपने हिन्दु लोग किसी को भूखा नहीं सुलाते। अपने संस्कार ऐसे हैं!

वे जो (मेहमान) आए हैं, वे कर्म के उदय की वजह से आए हैं। अपने कर्म का और उनके कर्म का उदय है! अब, जब तक कर्म के उदय पूरे नहीं होते, तब तक वे नहीं जाने वाले।

अब बीवी क्या पूछती है, चंदूभाई से? ये आपके पहचान वाले कब जाएँगे? तब वे कहते हैं, 'कौन से मेरे पहचान वाले?' वे तो कहीं से भी आ गए हैं। इसलिए फिर पहचान वालों की बातें नहीं करते।

अभी तो लोग डेवेलप (विकसित) हो चुके हैं न! इसलिए बीवी कहती है कि आपके पहचान वाले, और यदि उनके मायके वाले आएँ तो (आप) कहते हैं, 'ये आपके पहचान वाले'! यानी ऐसे झगड़ते रहते हैं। अत: लोग उसे लेट गो (जाने दो) करते हैं।

अब लोगों ने इसमें बड़ा मन बना लिया है, कि भाई, ऐसी कोई दखलंदाज़ी नहीं करनी है, क्योंकि अंतत: तो ये रहने ही वाले हैं। यानी मन में ऐसा मान लेना है कि, 'जब तक कर्म के उदय हैं, तब तक भले ही रहें। जब मेरे और उनके कर्म के उदय पूरे होंगे तब अपने आप ही वे लोग चले जाएँगे', ऐसा कहना है, अब भले ही रहें। यानी आर्तध्यान और रौद्रध्यान नहीं करने हैं।

अब फिर जब वे जाने लगे, चार दिनों के बाद जब वे जाने

लगे और तब हम कहें कि, 'नहीं, आज तो आपको रुकना ही पड़ेगा', फिर भी वे आपका हाथ छुड़ाकर तुरंत भाग जाएँगे क्योंकि कर्म के उदय हैं। वे रुकेंगे ही नहीं। वे अपनी मर्ज़ी से नहीं रुकते हैं, कर्म रोकते हैं और जब वे जा रहे हों तब आप रखना चाहोगे न, कि आज रुक जाओ तो भी झटका देकर चले जाएँगे।

यानी सबकुछ कर्म के अधीन हैं, इसलिए आपको क्या करना है कि आप अपने अगले जन्म का चित्रांकन मत बिगाड़ना। भाव कर्म से अगला जन्म बंध जाता है इसलिए इतना संभाल लोगे तो बहुत हो गया।

आर्तध्यान और रौद्रध्यान संभाल लिया तो अगला जन्म तो अच्छा आएगा।

मन न बिगड़े इसलिए

प्रश्नकर्ता : आप क्या सलाह दे रहे हो? हमारे यहाँ तो ऐसा रिवाज़ है कि सभी चोविहार करते हैं, तो फिर रात में कोई आए तो हमें खाना खिलाना है या नहीं?

दादाश्री : वही तो कह रहे हैं कि 'उन्हें खिलाओ'। वे सेठ तो मुझे ही दोष देंगे कि इनकी आज्ञा से खिलाते हैं, तो उसमें भी कोई हर्ज नहीं। दरअसल आपका गुनाह नहीं होगा। हमने आज्ञा दी है न, इसलिए गुनाह हमारा, लेकिन खिलाओ। वे कहे, कि मुझे खिलाओ, तो भूखा मत रखना।

प्रश्नकर्ता : इसमें, धर्म में 'अतिथि देवो भव', ऐसा आता है, उसमें वास्तविकता क्या है?

दादाश्री : इसीलिए तो यह 'अतिथि देवो भव' रखा गया है। पहले से ही रखा है कि लोगों के मन नहीं बिगड़े, इसलिए रखा है। अतिथि यानी क्या जो पहले से चिट्ठी लिखे बगैर, तिथि लिखे बगैर आए। जब हम देखते हैं तब पता चलता है कि, 'ओहोहो! चंदू सेठ आए अभी!'

भीतर ऐसा होता है कि 'अरे! ये कहाँ से आए?' ऐसे भाव नहीं बिगड़ने देना है। भाव नहीं बिगड़ा तो अगला जन्म सुधर जाएगा। भाव बिगड़े तो तुरंत प्रतिक्रमण कर लेना है। आर्तध्यान-रौद्रध्यान करने ही नहीं हैं।

जमा करके छूट जाओ

सबकुछ कर्म के उदय की वजह से हैं, वह गाली दें तो भी अपने कर्म के उदय के कारण है। चंदूभाई को एक आदमी सौ लोगों के सामने चार गाली दे गया, वह भी कर्म के उदय की वजह से वह दे गया। यानी हमें समझ जाना चाहिए कि यह मेरे कर्म के उदय की वजह से है और वह तो निमित्त है। अतः हमें मन में क्या करना चाहिए? उसके लिए भाव नहीं बिगाड़ना चाहिए, लेकिन उसका भला हो, उसने मुझे कर्म में से मुक्त किया। इस कर्म में से मुझे छुड़ाया।

चार गालियाँ खाकर भी छूट तो गए न, यानी हल्के हो गए न! अब छूटते समय बीज उल्टे नहीं डले, बस इतना ही देखना है।

लोग चार गालियाँ तो खाते हैं, लेकिन बीज उल्टे डालते हैं। सामने वाले को पाँच गालियाँ देता है। अरे, चार तो सहन नहीं होती और फिर भी वापस पाँच (गालियाँ) दे दीं! ये चार जमा कर ले न! तुझे यदि सहन नहीं होती हैं तो वापस फिर से क्यों देता है?

इस तरह से भटकते ही रहता है। बगैर काम के वह गुनाह में आ जाता है। किसी के लिए भाव मत बिगाड़ना और यदि बिगड़ जाए तो तुरंत ही सुधार लेना और फिर इसमें से हमें कैसे काम निकालना है, यदि मोक्ष में जाना है तो, वह कला सीख लो। वे ज्ञानी पुरुष कला सिखाते हैं कि 'इस तरह से निकल जाना'।

उससे नहीं नए भाव

दादाश्री : क्या कहते हैं? 'अरे! अभी कहाँ से आए?' उसे क्या हेल्प (मदद) करता है?

प्रश्नकर्ता : नहीं, कुछ भी हेल्प नहीं करता। बल्कि हैरान करता है।

दादाश्री : उल्टा उसने अपना अगला जन्म बिगाड़ा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, उसी समय प्रतिक्रमण व पछतावा करें तो? महात्मा ने प्रतिक्रमण किया यानी भाव बदल दिया, लेकिन फिर भी दूसरे नए भाव तो रहे ही न? खराब भाव में से अच्छे भाव किए यानी उसके भावकर्म तो रहेंगे ही न? जब तक केवलज्ञान न हो जाए तब तक?!

दादाश्री : प्रतिक्रमण करने से खराब भाव जो हैं, वे अच्छे भाव नहीं बन जाते। प्रतिक्रमण तो उसे धो (साफ कर) देता है। कि, 'भाई, यह मैंने अतिक्रमण किया इसलिए मैं प्रतिक्रमण करता हूँ और फिर से ऐसा नहीं करूँगा'।

प्रारब्ध फल और कर्मबंध

'मैं चंदूभाई हूँ', इससे कर्म बंधता है। अब आपको 'मैं शुद्धात्मा हूँ!' *लक्ष* (जागृति) बैठा इसलिए अब वे सारे प्रारब्ध कर्म रहे, खाते हो, पीते हो, सबकुछ, रात को सो जाते हो, वह सबकुछ करते हो।

प्रश्नकर्ता : तो आपने ऐसा कहा था कि जो अग्नि है, उस अग्नि को छूएँगे तो जलेंगे तो सही न? हमें अग्नि का ज्ञान है कि इससे जल जाते हैं, उसके बावजूद भी यदि उसे छू लिया जाए तो जलेगा तो सही न? तो वह फल देता है या नहीं? वह फल दिया कहलाएगा न?

दादाश्री : नहीं, वह तो प्रारब्ध फल कहलाता है। यह अज्ञानी व्यक्ति मैं ही हूँ, उस मान्यता से कर्म बंधता है। यदि वह मान्यता छूट गई तो कर्मबंध छूट गए।

प्रश्नकर्ता : यानी दादा, ज्ञान से यह बात ठीक है, लेकिन जब

वह कार्य कर रहा होता है तब मन में बुरा विचार आता हो तो फिर प्रतिक्रमण करना पड़ेगा क्या?

दादाश्री : हमें नहीं करना है। 'उससे' करवाना है। जवाबदारी तो मिटा देनी पड़ेगी न? प्रतिक्रमण करते हैं यानी जवाबदारी मिटा देते हैं। चंदूभाई ने अतिक्रमण क्यों किया इसलिए प्रतिक्रमण 'कर' कहना है। वह जवाबदारी हमें मिटा देनी है।

प्रश्नकर्ता : और यदि प्रतिक्रमण नहीं हो पाए तो जोखिमदारी है क्या?

दादाश्री : फिर उतना प्रतिक्रमण करना बाकी रहा। बल्कि उसके बजाय प्रतिक्रमण कर लेना अच्छा है न? अतिक्रमण क्यों किया? इसलिए प्रतिक्रमण कर। बाकी, यह ज्ञान मिलने के बाद सिर्फ, प्रारब्ध कर्म ही भुगतना बाकी रहा है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन प्रारब्ध कर्म भुगतते-भुगतते अतिक्रमण हो जाता है न?

दादाश्री : बाद में प्रतिक्रमण करने ही पड़ते हैं। उससे ही करवाना है और उससे ही धुलवाना है।

प्रश्नकर्ता : यदि वह नहीं धोएगा तो क्या होगा?

दादाश्री : फिर से धोना पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : फिर से यानी कितने जन्म होंगे?

दादाश्री : फिर से यानी एक-दो जन्म ज़्यादा होंगे। सब अपनी ही जोखिमदारी है, दूसरा बाहर वाला कोई जोखिमदार नहीं है। 'चंदूभाई' ने गलत किया इसलिए हमें 'चंदूभाई' से कहना है 'क्यों अतिक्रमण किया? इसलिए प्रतिक्रमण करो।' हमें उसके पास ही धुलवाना है। कपड़ा खराब किया, इसलिए धो डालना।

प्रश्नकर्ता : उसमें तो बोझ लगता है इसलिए दोबारा नहीं होता। तो फिर सारा दिन उपयोग रहता ही नहीं न?

दादाश्री : वही उपयोग।

प्रश्नकर्ता : वह कौन सा उपयोग हुआ?

दादाश्री : वही शुद्ध उपयोग।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यह अतिक्रमण किया न?

दादाश्री : हाँ। लेकिन प्रतिक्रमण करवाएँ, वह शुद्ध उपयोग।

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण या अतिक्रमण?

दादाश्री : अतिक्रमण हो जाए उसका प्रतिक्रमण करवाएँ, वह शुद्ध उपयोग। अतिक्रमण करने के लिए हमें उससे लेना-देना नहीं है। अतिक्रमण को सिर्फ जाना और प्रतिक्रमण वह है शुद्ध उपयोग।

प्रश्नकर्ता : सामान्य रूप से एक घंटे में पाँच-पच्चीस अतिक्रमण हो जाएँ, तो?

दादाश्री : उन सब का एक साथ करना। एक साथ किया जा सकता है। 'उनका एक साथ प्रतिक्रमण करता हूँ', ऐसा कहना।

प्रश्नकर्ता : तो कैसे करना है? क्या कहना है?

दादाश्री : इतने सारे (अतिक्रमण) हो गए हैं इसलिए इन सभी का एक साथ प्रतिक्रमण करता हूँ। विषय (सब्जेक्ट) बोलना है कि इस बारे में, ऐसा कहना है और इनका एक साथ प्रतिक्रमण करता हूँ तो हल आ जाएगा और उसके बावजूद भी यदि बाकी रह जाए तो उसे धो देंगे। आगे जाकर धुल जाएगा। लेकिन उसके लिए बैठे नहीं रहना है। यदि बैठे रहोगे तो पूरा ही रह जाएगा। उलझने की ज़रूरत नहीं है।

❖❖❖❖❖

[14]

निकाले कषाय की कोठरी में से...

जहाँ द्वेष हुआ वहाँ प्रतिक्रमण

यह तो जंजाल है सारी। तुझे उनके लिए जितने विचार आए, उतनी बार प्रतिक्रमण करने हैं। जिस दिन जो विचार आए, उसका बार-बार प्रतिक्रमण करते रहना हैं, बस। उन्हें तुरंत मिटा देने हैं। प्रतिक्रमण करने से अपने सारे अटैकिंग विचार बंद हो जाते हैं। इसलिए फिर मन में द्वेष नहीं होता। जिसके प्रति मन में अकुलाहट होती हो उसके प्रतिक्रमण करने से फिर बंद हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण करने हैं तो वे मन से करने हैं या पढ़कर या बोलकर?

दादाश्री : नहीं। मन से ही, मन से करे, बोलकर करे, चाहे किसी भी तरीके से लेकिन मेरा उसके प्रति जो दोष हो गया है, उसके लिए माफी माँगता हूँ। ऐसा मन में बोलोगे तो भी चलेगा। मानसिक अटैक किया इसलिए उसके प्रतिक्रमण करने हैं, बस। छोटी जाति वालों में मारपीट करते हैं और अपने में शब्दों से मारते हैं। नहीं तो मन से मारते हैं, शब्दों से मारते हैं या नहीं मारते?

प्रश्नकर्ता : मारते हैं।

दादाश्री : ये बहनें तो कहती हैं, अभी तक मेरे कलेजे में से

शब्द जाता नहीं है, ऐसा घाव लगा है मुझे। ऐसे शब्द बोलती हैं! और मन से दुःख देते हैं, वे भी उनके घर के लोग होते हैं।

प्रश्नकर्ता : मन से, यानी बोले बगैर ही न?

दादाश्री : यदि (भारी) शब्द बोलोगे और वह विरोध करे ऐसी होगी तो मन से मारते हो। पत्नी भी, यदि पति विरोध करे तो वह मन से मारती है। मुझे मौका मिलते ही उसे मैं सीधा करूँगी, मौका ढूँढती है!

प्रश्नकर्ता : एक बुरा प्रसंग आए, कोई व्यक्ति आपके लिए बुरा बोले या करे तो उसके रिएक्शन में अंदर हमें जो गुस्सा आता है और कुछ कह देते हैं लेकिन मन अंदर से कहता है कि, 'यह गलत है'। तो बोल देते हैं उससे ज़्यादा दोष लगता है या मन से जो किया उससे लगता है?

दादाश्री : बोल देते हो, उससे? बोलकर उससे झगड़ा किया, वह?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : बोलकर जो करते हो न, वह झगड़ा तुरंत ही हिसाब देकर चला जाता है और मन से किया हुआ झगड़ा आगे बढ़ता है। जब बोलकर करते हो न, तब तो आपने सामने वाले को कहा फिर वह भी तुरंत वापस दे देगा। तुरंत ही उसका फल मिल जाएगा और मन से करते हो तो उसका फल तो तब आएगा जब वह फल पकेगा। लेकिन अभी तो सिर्फ बीज ही बोए हैं इसलिए कॉज़ेज़ कहा जाएगा। कॉज़ेज़ नहीं पड़ें उसके लिए, यदि मन से हो जाए तो मन से प्रतिक्रमण कर लेना है।

राग के सामने प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : हमने अभी तक जो प्रतिक्रमण किया है, उसमें किसी पर गुस्सा किया हो, द्वेष हुआ यानी द्वेष के प्रतिक्रमण किए हैं। तो राग के भी हमें प्रतिक्रमण करने हैं या नहीं?

दादाश्री : उसके प्रतिक्रमण नहीं करने हैं। यह जो राग होता है, उसे हमें बंद करने की ज़रूरत है। बस, उतना ही।

प्रश्नकर्ता : वह कैसे बंद करना है?

दादाश्री : मुझे वीतराग होना है इसलिए राग बंद कर देना है। मुझे जिस स्टेशन पर जल्दी पहुँचना है, तो फिर जहाँ पर बैठे हों वहाँ से उठना पड़ेगा न, ऐसा ही होता है न? इसी तरह बंद कर देना है।

क्योंकि ज्ञान लेने के बाद, ये राग-द्वेष, दोनों डिस्चार्ज स्वरूप में हैं। यदि सामने वाले पर द्वेष हो तो उसे दु:ख होता है, इफेक्ट (असर) होता है इसलिए हम प्रतिक्रमण कर लें तो द्वेष धुल जाता है और राग से तो किसी को कुछ नहीं होता। डिस्चार्ज है इसलिए वह तो खत्म हो जाएगा। अत: प्रतिक्रमण नहीं हो पाए तब भी खत्म हो ही जाना है यानी यदि प्रतिक्रमण नहीं हो पाए तब भी कुछ नहीं होगा।

जैसे कि हम व्यापार करते हों और हमें दूसरे लोगों से दस लाख रुपये लेने के हों और किसी और को हम से पाँच लाख रुपये लेने के हों। अब उन्हें ऐसा विचार आए कि चलो इनके यहाँ से ले आते हैं। अब, वे तो रात के दो बजे भी वसूल करने आएँ, तो हमें तो मोक्ष में जाना है, इसलिए उन्हें दे देना है। और यदि अपने रुपये वापस नहीं आए तो हम समझौता कर सकते हैं। इसी प्रकार, राग व द्वेष का करना है।

प्रश्नकर्ता : इसका अर्थ यह है कि राग से हर्ज नहीं है, द्वेष से हर्ज है लेकिन राग से आत्मा की प्रोग्रेस (प्रगति) में अंतराय आते हैं?

दादाश्री : वह तो, जो राग भरा हुआ है, वह आए बगैर रहेगा नहीं और अपना राग है वह बढ़ेगा भी नहीं, वह डिस्चार्ज है। वह हमें बाधक रूप नहीं है। जो भरा हुआ माल है, वह आए बगैर रहेगा नहीं न? हम राग करते नहीं है, यह तो भरा हुआ माल है। इसलिए राग हो जाता है। यानी हम उसके साथ मिठास से बोलते हैं, उतना ही! यह पूरा ही डिस्चार्ज है। अवरोध तो करना ही चाहिए था लेकिन वह डिस्चार्ज हो गया इसलिए आज्ञा का पालन तो करना चाहिए न! यानी, यदि आप आज्ञा का पालन करो तो निरंतर आत्मा में ही हो। आप नौकरी करते हो या चाहे कुछ भी लेकिन आज्ञा का पालन करते हो तो निरंतर आत्मा में ही हो।

प्रश्नकर्ता : जहाँ राग हो, वहाँ पर आज्ञा में कैसे रह सकते हैं?

दादाश्री : ये दोनों, जो राग और द्वेष हैं, वे किसे कहेंगे? कॉज़ेज़ राग को राग कहा जाता है। इफेक्टिव राग को राग नहीं कहा जाता। अब यह जो राग है न, वह कॉज़ेज़ राग नहीं है, इफेक्टिव है क्योंकि आप शुद्धात्मा हो गए। शुद्धात्मा को राग-द्वेष नहीं होते और जो इफेक्ट है, वह चंदूलाल की है।

इफेक्ट में, राग हो या द्वेष हो तो हमें 'चंदूभाई' से ऐसा कहना है कि 'बिगड़ गया उसमें सामने वाले पर 'अटैक' क्यों करते हो? उसका प्रतिक्रमण करो।' और राग के लिए कुछ भी नहीं करना है।

राग में जुदापन की जागृति नहीं रहे, आज्ञा में नहीं रहे तो फिर उसका प्रतिक्रमण करना पड़ता है।

स्वमान छूटते ही मोक्ष

प्रश्नकर्ता : क्या ऐसा कोई रास्ता है कि अपने स्वमान को भी ठेस न पहुँचे और प्रतिक्रमण भी हो जाए?

दादाश्री : प्रतिक्रमण तो किया जा सकता है। प्रतिक्रमण और स्वमान का क्या लेना-देना? उससे स्वमान को कहाँ ठेस पहुँचती है? भगवान के सामने स्वमान नहीं होता न! स्वमान तो लोगों के सामने होता है। भगवान के सामने तो हमें दीनता दिखाने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। दूसरों के सामने दीन नहीं होना चाहिए। स्वमान का अर्थ क्या है कि दूसरों के सामने दीन मत बनो। जिसका स्वमान छूटा, वह मोक्ष का अधिकारी बन गया।

अपने अभिमान का सामने वाले पर असर

प्रश्नकर्ता : हमारे अभिमान से किसी को तकलीफ न हो, संताप न हो, उसके बजाय सामने वाले को सुख हो, उसके लिए हमें क्या करना है?

दादाश्री : इतना ही भाव करना है, अन्य कुछ नहीं करना है। 'अपने अभिमान से किसी को दुःख न हो बल्कि सुख हो', ऐसा भाव करना है। फिर भी यदि दुःख हो जाए तो प्रतिक्रमण करने हैं और

आगे बढ़ जाना है। और कर भी क्या सकते हैं? हम क्या वहाँ सारी रात बैठे रहें? वहाँ बैठे रहें ऐसा है भी नहीं! हम बैठना चाहें तो भी बैठ नहीं पाएँगे, तब क्या करें?

फिर भी लोगों को दुःख नहीं हो, इस तरह हमें कदम उठाने चाहिए।

प्रश्नकर्ता : यानी कि सारा संसार अहंकार का ही परिणाम है। 'मैं चंदूभाई हूँ' इसका परिणाम ही सारा संसार है न?

दादाश्री : लेकिन अब आपका वह अहंकार इस 'ज्ञान' के बाद चला गया। फिर अहंकार रहेगा तो परिणाम खड़े होंगे न? इस 'ज्ञान' के बाद तो नए परिणाम खड़े नहीं होंगे न! और पुराने परिणाम तो खत्म होते जाएँगे। सिर्फ पुराने ही खत्म हो जाएँगे। यानी हल आ गया और टंकी में नया कुछ जमा नहीं होगा। किसी की टंकी पचास गैलन की होती है और किसी की पच्चीस लाख गैलन की होती है। जब टंकी बड़ी हो तब देर लगती है लेकिन अब खाली होने लगा है तो फिर क्या?

प्रश्नकर्ता : लेकिन टंकी खाली होने तक तो उस फ्लड (बाढ़) की तरह किसी को गिरा देंगे। किसी से टकराएँगे और फिर किसी को मार भी देंगे न!

दादाश्री : हाँ। वह तो, जो मारते हो न, वे सब तो उसके परिणाम हैं न! उसमें आपको क्या लेना-देना है? लेकिन किसी को दुःख हो जाए तो उसका प्रतिक्रमण कर लेना है।

क्रोध के प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : मुझे क्रोध आता है, उसका प्रतिक्रमण कैसे करना है?

दादाश्री : इस ज्ञान के बाद आपको क्रोध होता ही नहीं है। पराई चीज़ों में तंत रहता है उसे हम क्रोध कहते हैं। इस ज्ञान के बाद अब आपको तंत नहीं रहता। अब उग्रता रही। परमाणु के गुण बाकी रहे हैं।

यह ज्ञान लेने के बाद क्रोध-मान-माया-लोभ सब चला जाता है। इन्हें यदि क्रोध हुआ हो न, तो दूसरा कोई व्यक्ति कहेगा, 'नहीं,

ये गुस्सा कर रहे थे।' मैंने कहा, 'गुस्सा और क्रोध, दोनों अलग चीज़ें हैं। गुस्सा, वह पौद्गलिक चीज़ है। क्रोध, वह *पुद्गल* और आत्मा की तन्मयाकार चीज़ है। अब जो गुस्सा हो जाता है न, वह गुस्सा हो जाए तब भी क्रोध क्यों नहीं कहलाता? क्योंकि क्रोध के पीछे हमेशा हिंसक भाव होता है जबकि इन्हें हिंसक भाव नहीं होता, ये तो भीतर तुरंत प्रतिक्रमण करते हैं। एक तरफ क्रोध होता रहता है और साथ ही प्रतिक्रमण कर रहे होते हैं। एक तरफ यह जो (क्रोध) हो गया, उसके प्रतिक्रमण करते हैं। भीतर करते हो या नहीं? निरंतर प्रतिक्रमण करते हैं। प्रतिक्रमण करते हैं, यानी वहाँ हिंसक भाव नहीं है।'

और तंत नहीं होता। तंत यानी क्या? रात को कोई झगड़ा हुआ हो न, तो सुबह में प्याले बजते हैं।

जगत् के लोगों को सजीव क्रोध है और आपको निर्जीव क्रोध है। लेकिन निर्जीव क्रोध किस निमित्त से होता है। उस बिचारे को थोड़ा तो नुकसान होगा न?

फर्क, क्रोध और गुस्से में

तंत और हिंसक भाव, ये दोनों हों तो वह क्रोध कहलाता है, तो मान कहलाता है, कषाय कहलाता है, यह तीर्थंकर भगवान ने कही हुई बात है। फिर भी यदि गुस्सा होने लगे, किसी को बहुत दुःख हो जाए, ऐसा बोल दिया हो तो हमें चंदूभाई से कहना है कि 'चंदूभाई चौहत्तर साल हुए। ज़रा सीधे रहो न! और प्रतिक्रमण करो, पश्चाताप करो। किसलिए ऐसा किया?' कहना चाहिए या नहीं कहना चाहिए?

प्रश्नकर्ता : कहना चाहिए। कहना ही चाहिए।

दादाश्री : यों भले ही गवर्नमेन्ट (सरकार) के बड़े ऑफिसर हों लेकिन उनका लिहाज़ नहीं रखना है। आपको कहना ही चाहिए कि आप चौहत्तर साल के हो गए, अब तो ज़रा शांत हो जाओ। यानी ऐसा हो जाए, किसी को बहुत दुःख हो जाए तो क्षमा माँग लेना। क्रमण में हर्ज नहीं है। अतिक्रमण में हर्ज है। अतः यदि अतिक्रमण

हो जाए तो उसे सरकार भी गुनाह मानती है। यह सब, जो बोलते हैं उससे हर्ज नहीं है। नए ही प्रकार का कुछ तृतीयम बोल दे और सभी को मन में ऐसा लगे कि, 'अरेरे! ऐसा कैसा बोल रहे हैं!' तो वह अतिक्रमण कहा जाएगा। जिनकी चोर नीयत है, वह अतिक्रमण कहा जाएगा। यदि इरादा बुरा हो तो वह अतिक्रमण कहलाता है।

तंत चला जाए तो समझना कि अब ये क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं रहे। अब आप शुद्ध ही हो गए। आप ज्ञाता-द्रष्टा परमानंदी! 'चंदूभाई' क्या कर रहे हैं, उसे देखते रहना है। चंदूभाई का कौन चलाएगा? व्यवस्थित नामक शक्ति और बहुत अच्छा चलेगा।

गुस्सा हो जाए और सामने वाले व्यक्ति के लिए दु:खदायी हो जाए, भले ही क्रोध नहीं हुआ हो, लेकिन यदि दु:खदायी हो जाए तो यह तो ऐसा मानता है कि, 'मैं शुद्धात्मा हूँ', लेकिन जिसने अतिक्रमण किया है, उससे प्रतिक्रमण करवाओ। अतिक्रमण करने वाले चंदूभाई, तो आपको चंदूभाई से कहना पड़ेगा कि, 'प्रतिक्रमण करो'। आपको नहीं करना है। आत्मा हो जाने के बाद प्रतिक्रमण नहीं होता लेकिन जिसने अतिक्रमण किया, उससे प्रतिक्रमण करवाओ, आपके पड़ोसी से।

अब क्रोध-मान-माया-लोभ नहीं होंगे, लेकिन बेटी के सामने अचानक बहुत उग्र हो गए तो आपको चंदूभाई से कहना है कि, 'इतने ज़्यादा उग्र किसलिए हो जाते हो? बेटी को कितना बुरा लगेगा!' मन ही मन माफी माँग लो। बेटी से मुँह पर नहीं कहना है लेकिन मन ही मन माफी माँग लो। फिर ऐसा नहीं करना। यदि आपको कुछ किच-किच या दु:ख हो जाए ऐसा नहीं किया हो तो माफी नहीं माँगनी है।

प्रश्नकर्ता : कषायों के तंतों से प्रतिक्रमण नहीं हो पाता।

दादाश्री : उद्वेग में प्रतिक्रमण बहुत देर से होता है, और तंत में थोड़ी देर लगती है। उद्वेग यानी बॉम्बार्डिंग करते हैं, उसके जैसा है। और तंत यानी टियर गैस छोड़कर दम घोटे, उसके जैसा।

प्रकृति को देखना वह पुरुषार्थ

प्रश्नकर्ता : वह ठीक है। क्रोध हो जाए तो उस समय अंदर भाव में होता है कि यह गलत है। तुझे क्रोध नहीं करना चाहिए।

दादाश्री : हमें चंदूभाई से कहना है कि भाई, अतिक्रमण क्यों किया? प्रतिक्रमण करो।

प्रश्नकर्ता : जब क्रोध आता है तब अंदर ऐसा होता है कि 'यह चंदू ऐसा क्यों कर रहा है? ऐसा क्या कर रहा है? यह गलत है। लेकिन फिर कभी वह क्रोध हमें गिरा तो नहीं देगा न?' तब क्या करे?

दादाश्री : हमें कोई गिरा नहीं सकता। वे सब मृत हैं। जीवित को कैसे गिरा पाएँगे? सारे *पुद्गल* मृत है। कोई नाम नहीं देगा। 'मैं तो दादा का हूँ, मेरे पास कहाँ आ रहे हो? शर्म नहीं आती?' दादा, दादा, दादा करते रहना।

प्रश्नकर्ता : इसलिए ऐसा होता है कि क्रोध वापस परिभ्रमण में डाल देगा, नए बंध डालेगा?

दादाश्री : वह क्या डालेगा? वह (क्रोध) बेचारा न्यूट्रल, नपुंसक जाति के लोग! वह तो, जो क्रोध से दबे हुए हैं, उनके लिए है। हम दबे हुए नहीं हैं।

और प्रतिक्रमण नहीं हो पाता हो उसे ऐसा कह सकते हो कि 'भाई, प्रतिक्रमण करो'।

प्रश्नकर्ता : क्रोध की शुरुआत होती है, उसके बाद में प्रतिक्रमण की शुरुआत होती है?

दादाश्री : शुरुआत तो होती है, दोनों साथ ही होते हैं।

प्रश्नकर्ता : क्रोध होता रहता है और साथ में प्रतिक्रमण भी चलता है। दोनों एक साथ। मारपीट करते हैं दोनों, अतिक्रमण और प्रतिक्रमण आमने-सामने।

दादाश्री : यानी अब, इन सब का छेद उड़ (नाश हो) जाता है। हिसाब खत्म हो रहा है। यह प्रकृति है और आप पुरुष हो, पुरुष, वह शुद्धात्मा है। शुद्धात्मा को कोई नहीं छू सकता। शुद्धात्मा ज्ञाता-द्रष्टा है। प्रकृति को देखते रहना, वह पुरुषार्थ!

अब आप पुरुष हुए और यह प्रकृति है। प्रकृति क्या करती है, उसे देखते रहना है। चंदूभाई बुरा करते हों या अच्छा करते हों, उससे आपको लेना-देना नहीं है। आप अलग, देखने वाला अलग। जैसे कि ज़बरदस्त कोई होली जल रही हो और देखने वाला (अलग) होता है न! खुद का मकान अगर होली की तरह जल रहा हो लेकिन 'देखने वाला' जो होता है, वह नहीं जलता और 'मेरा जल रहा है' ऐसा हुआ कि तुरंत जल उठता है।

प्रश्नकर्ता : 'देखने वाले' को 'मेरा है' नहीं होता।

दादाश्री : 'देखने वाले' को नहीं होता कि, 'मेरा है'। वह तो प्रेक्षक है। हमें ऐसा नहीं होता कि, 'मेरा'। 'मेरा' उड़ा दिया है। 'मेरा', वह आप 'मुझे' अर्पण कर दिया है।

देखते रहो तो उससे प्रकृति जाने ही लगेगी, उतने कर्म खत्म हो जाएँगे।

गुनाह हैं लेकिन मृत

प्रश्नकर्ता : अतिक्रमण से जो आक्रोश होता है, क्या वह प्रतिक्रमण से ठंडा हो जाता है?

दादाश्री : हाँ, ठंडा हो जाता है। प्रतिक्रमण तो '*चीकणी फाइल*' (गाढ़ ऋणानुबंध वाले व्यक्ति अथवा संयोग) हो, उसमें तो पाँच-पाँच हज़ार प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं, तब जाकर ठंडा पड़ता है। गुस्सा बाहर नहीं दिख रहा हो और भीतर अकुलाहट हो रही हो फिर भी हम उसके प्रति प्रतिक्रमण नहीं करते हैं न, तो उतना दाग़ हमें रह जाता है। प्रतिक्रमण करें तो स्वच्छ हो जाता है। अतिक्रमण किया यानी प्रतिक्रमण करो।

प्रश्नकर्ता : किसी के प्रति क्रोध हो जाने के बाद पता चले और उसी समय उससे हम माफी माँग लें तो वह क्या कहलाता है?

दादाश्री : अब ज्ञान लेने के बाद क्रोध हो जाए और बाद में माफी माँग ले तो कोई हर्ज नहीं है। तो हो गया उससे मुक्त! माफी रूबरू नहीं माँग सकें ऐसा हो तो अंदर से माफी माँग लें तो हो गया।

प्रश्नकर्ता : रूबरू में सब के बीच?

दादाश्री : उसमें कोई हर्ज नहीं, कोई ऐसे नहीं माँगे और यदि यों ही भीतर में कर ले तो भी चलेगा क्योंकि यह गुनाह जीवित नहीं है, यह 'डिस्चार्ज' है। 'डिस्चार्ज' गुनाह यानी जीवित गुनाह नहीं होता यह, इसलिए इतना अधिक बुरा फल नहीं देता।

नकद परिणाम, दिल से प्रतिक्रमण के

प्रश्नकर्ता : किसी पर बहुत गुस्सा हो गए और फिर बोलकर चुप हो गए, बाद में ऐसा जो बोले उसके लिए जी बहुत जलता रहे तो क्या उसके लिए एक से ज़्यादा प्रतिक्रमण करने होंगे?

दादाश्री : उसमें दो-तीन बार सच्चे दिल से करोगे और बिल्कुल सही तरीके से होगा तो फिर खत्म हो जाएगा। 'हे दादा भगवान! बहुत परेशानी आ गई। ज़बरदस्त क्रोध हो गया। सामने वाले को कितना दुःख हुआ? आपकी साक्षी में सामने वाले की माफी माँगता हूँ, ज़बरदस्त माफी माँगता हूँ।' माफी कौन माँगता है? आपको नहीं माँगनी है, चंदूभाई को माँगनी है। जिसने अतिक्रमण किया, वह प्रतिक्रमण करेगा। आप अतिक्रमण नहीं करते हो।

अतिक्रमणों के झड़ी के सामने

प्रश्नकर्ता : किसी से ज़्यादा विवाद हो जाए, तो उससे फिर मन में अंतर बढ़ता जाता है। कभी-कभी एकाध-दो प्रतिक्रमण हो जाते हैं। तो कुछ का चार-पाँच बार या ज़्यादा करने पड़ते हैं। तो क्या एक ही बार करने से सब का हो जाएगा?

दादाश्री : जितना हो पाए उतना करना है और फिर सामूहिक कर देना है। बहुत सारे प्रतिक्रमण इकट्ठे हो जाएँ न, तो सामूहिक

प्रतिक्रमण कर लेना है कि इन सभी कर्मों के प्रतिक्रमण मुझसे नहीं हो रहे हैं। इन सभी का इकट्ठा प्रतिक्रमण कर रहा हूँ। अन्य किसी से नहीं, आप दादा भगवान से कह देना, कि 'हे दादा भगवान! इन सभी का इकट्ठा प्रतिक्रमण करता हूँ।' तो वह पहुँच जाएगा।

रूबरू माफी

प्रश्नकर्ता : दादा, जब पश्चाताप या प्रतिक्रमण करते हैं तब कई बार ऐसा होता है कि कोई भूल, किसी पर क्रोध हो जाए तो अंदर से तो दु:ख होता है कि, 'यह गलत हो गया', लेकिन उससे माफी माँगने की हिम्मत नहीं होती।

दादाश्री : इस तरह से माफी माँगनी भी नहीं है। वर्ना फिर वे उसका दुरुपयोग करेंगे। 'हाँ, अब आई न ठिकाने?' ऐसा है यह! नोबल (खानदानी) जाति नहीं है! ये लोग माफी माँगने लायक नहीं हैं। अंदर से साफ हैं, साफ हैं अंदर से। वैसे तो, हज़ारों में दसेक लोग ऐसे होते हैं जो कि माफी माँगने से पहले ही झुक जाते हैं। आपके माफी माँगने से पहले ही झुक जाते हैं। बाकी के तो कहेंगे, 'हाँ, देखो कब से कह रहा था, मान ही नहीं रही थी न? अब ठिकाने आई न?' अत: अंदर ही अंदर माफी माँग लेना, उसके शुद्धात्मा का नाम लेकर!

वह हमें नहीं देखना है

प्रश्नकर्ता : हम सामने वाले व्यक्ति पर क्रोध करें, फिर तुरंत ही हम प्रतिक्रमण कर लें, फिर भी हमारे क्रोध का असर सामने वाले व्यक्ति पर तुरंत तो नाबूद नहीं होगा न?

दादाश्री : वह नाबूद हो या न हो, वह आपको नहीं देखना है। आपको तो खुद के ही कपड़े धोकर स्वच्छ रहना है। सामने वाला मिला तो वह सामने वाले का हिसाब होगा तभी वह मिला होगा। आपकी इच्छा नहीं है फिर भी। आपको अंदर अच्छा नहीं लगता हो फिर भी हो जाता है न?

प्रश्नकर्ता : क्रोध हो जाता है।

दादाश्री : इसीलिए तो आपको उसे देखना नहीं है, प्रतिक्रमण करना है। आपको कहना है कि 'चंदूभाई, प्रतिक्रमण करो।' फिर कपड़ा बिगड़ते ही धो लेगा! बहुत दुविधा में मत पड़ना। वर्ना फिर से बिगड़ जाएगा।

व्यवहार, अन्डरहैन्ड से

प्रश्नकर्ता : अब निंदा की, उस समय चाहे उसे जागृति न रहे, निंदा हो जाए या गुस्सा आ जाए तब क्या उस वक्त उसे निंदा करना कहा जाएगा?

दादाश्री : उसी को कषाय कहते हैं। कषाय यानी दूसरे के ताबे में आ जाना। भले ही उस समय वह बोले लेकिन फिर भी वह खुद जानता है कि 'यह गलत हो रहा है'। कभी पता चलता है और कभी बिल्कुल भी पता नहीं चलता, यों ही चला जाता है। फिर थोड़ी देर बाद पता चलता है। यानी कि जब ऐसा हुआ उस समय भी वह 'जानता' था।

प्रश्नकर्ता : हमारे ऑफिस में तीन-चार सेक्रेटरी हैं। उनसे कहें कि ऐसे करना है। एक बार, दो बार, चार-पाँच बार कहने पर भी वही की वही गलती करते हैं, तब फिर गुस्सा आ जाता है, तो क्या करें उसके लिए?

दादाश्री : आप तो शुद्धात्मा बन गए हो। अब आपको कहाँ गुस्सा आता है? गुस्सा तो चंदूभाई को आता है। फिर आपको चंदूभाई से कहना है कि 'अब दादा मिल गए हैं, ज़रा गुस्सा कम करो न!'

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह सेक्रेटरी बिल्कुल भी इम्प्रूव (सुधार) नहीं होती तो उसके लिए क्या करें? सेक्रेटरी से कुछ कहना तो पड़ेगा न, वर्ना वह तो वैसी की वैसी गलतियाँ करती ही रहेगी। वह ठीक से काम नहीं करती।

दादाश्री : उसके लिए तो, आपको 'चंदूभाई' से कहना है कि 'उसे ज़रा डाँटो'। आपको इनसे कहना है कि 'समभाव से *निकाल* करके डाँटो'। यों ही नाटकीय रूप से डाँटना कि 'यदि ऐसा सब करोगी तो आपकी सर्विस कैसे रहेगी?' ऐसा सब कहना है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उस समय उसे दु:ख होगा न, आपने तो कहा है न, कि किसी को दु:ख नहीं देना है?

दादाश्री : दु:ख नहीं होगा क्योंकि आप नाटकीय रूप से बोलोगे तो उन्हें दु:ख नहीं होगा, सिर्फ उनके मन में जागृति आएगी, उनका निश्चय बदल जाएगा। आप दु:ख नहीं दे रहे हैं। दु:ख तो कब होगा? यदि आपका हेतु दु:ख देने का होगा न, कि उन्हें सीधा कर दूँ, तो उन्हें दु:ख उत्पन्न होगा।

और फिर ऐसा कहकर तुरंत वापस 'चंदूभाई' से कहना कि, 'इन्हें ज़रा कड़े शब्दों में कह दिया, यह दोष हो गया इसलिए प्रतिक्रमण करो।' फिर उसके लिए मन में माफी माँग लेनी है। लेकिन कहना भी है और प्रतिक्रमण भी करना है, दोनों साथ में करना है। संसार व्यवहार तो चलाना पड़ेगा न!

डिस्चार्ज द्वेष, ज्ञान के बाद

प्रश्नकर्ता : यदि ऐसे नौकर को निकाल दें जो काम नहीं करता तो क्या उससे दोष लगेगा? या फिर वह व्यवस्थित है?

दादाश्री : वह दोष नहीं है। जहाँ पर राग-द्वेष नहीं हैं, वहाँ पर आमने-सामने *पुद्गल* की मस्ती है। जहाँ पर राग-द्वेष हैं, वहाँ पर फँस जाता है। ज्ञान मिलने के बाद राग-द्वेष नहीं रहते और यदि रहते हैं तो उसका गुनाह लगेगा। लेकिन क्योंकि वह डिस्चार्ज द्वेष है इसलिए बड़ा गुनाह नहीं लगता।

कोई भी क्रिया राग से होती है या द्वेष से होती है लेकिन ज्ञान के बाद राग-द्वेष नहीं होते। जहाँ पर राग-द्वेष नहीं हैं, वहाँ पर *पुद्गल* आमने-सामने टकराते हैं। उसे देखने वाला 'ज्ञाता-द्रष्टा', वही आत्मा! उसमें यदि तन्मयाकार हो जाएगा तो मार खाएगा। तन्मयाकार कब होता है कि उसमें बहुत गहरे उतर जाए तो तन्मयाकार हो जाता है लेकिन फिर आपको चंदूभाई से प्रतिक्रमण करने को कहना है ताकि सब साफ हो जाए।

गुस्से का ज्ञाता-द्रष्टा रहने पर गुस्सा साफ होकर चला जाएगा। वे परमाणु शुद्ध होकर चले जाएँगे। उतना ही आपका फर्ज़ है।

प्रश्नकर्ता : गुस्सा हो जाने के बाद प्रतिक्रमण करें तो वह पुरुषार्थ कहलाएगा या पराक्रम कहलाएगा?

दादाश्री : उसे पुरुषार्थ कहेंगे, पराक्रम नहीं कहेंगे।

प्रश्नकर्ता : तो फिर पराक्रम किसे कहेंगे?

दादाश्री : पराक्रम तो पुरुषार्थ से भी आगे है। यह पराक्रम नहीं है। यह तो, जलन होती है इसलिए दवाई लगाते हैं, उसमें पराक्रम कहाँ है? जब इन सब को जाने और उस जानने वाले को भी जाने तब उसे पराक्रम कहते हैं और प्रतिक्रमण करने को पुरुषार्थ कहते हैं। अंत में प्रतिक्रमण करते-करते शब्दों का पूरा जंजाल कम होता जाएगा, सब कम होता जाएगा अपने आप। नियम से ही सब कम होता जाएगा। कुदरती रूप से सब बंद हो जाएगा। सब से पहले अहंकार जाएगा, बाद में बाकी का सब जाएगा। सब चले जाएँगे अपने-अपने घर। अंदर ठंडक है। अब अंदर ठंडक है न?

प्रश्नकर्ता : बिल्कुल, दादा।

दादाश्री : हाँ, तो बस। यही चाहिए हमें।

विविध गुणस्थानकों में कषाय कम-ज़्यादा

प्रश्नकर्ता : गुणस्थानकों को समझाइए।

दादाश्री : पहले तीन गुणस्थानक मोक्ष के लिए काम नहीं आएँगे, वहाँ नहीं चलेंगे। उनमें तो बस इतना ही है कि मंदिर में आते-जाते हैं। भटकते रहते हैं। जब अंदर समकित हो जाता है, उघाड़ हो जाता है उसके बाद चौथे गुणस्थानक से काम में आता है। समकित का उघाड़ हो जाने के बाद। इसीलिए तो ये सब प्रथम तीन गुणस्थानकों में भटकते रहते हैं। चौथे में प्रकाश हो जाता है। समकित होने के बाद वह आगे बढ़ता है। फिर चौथे में से पाँचवें में आता है। और

ज़्यादा प्रतिक्रमण करते-करते छठे में आता है। बस, वही प्रतिक्रमण करते-करते आगे बढ़ता है।

अनंतानुबंधी कषाय

अब शास्त्रकारों ने क्या लिखा है? कि भाई, मान लो कोई व्यक्ति इन बहन को दो ही वाक्य ऐसे कहता है जिससे कि इनका मन टूट जाए। उस भाई ने ऐसा बोला कि मन टूट जाए, ऐसा कि अब ज़िंदगी भर जुड़ नहीं सकता। यदि इस तरह मन हमेशा के लिए टूट जाए तो शास्त्रकारों ने उसे क्या कहा है? अनंतानुबंधी क्रोध। ऐसा क्रोध जो अनंत जन्मों तक भटकाता है।

यदि अन्य किसी प्रकार का क्रोध हो तो वह साल भर तक नहीं बोलता। साल भर बाद घाव भरता है। क्रोध को भूल जाता है और घाव भर जाता है। यानी कि साल भर की मुद्दत वाला। वह किस प्रकार का क्रोध है? अप्रत्याख्यानी क्रोध, यानी कि 'ऐसा क्रोध जिसके लिए पश्चाताप नहीं किया, प्रतिक्रमण नहीं किए थे इसलिए यह निकल गया', कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : एक बार जो गुस्सा आ गया था, वही गुस्सा वापस निकला है? क्या ऐसा कह सकते हैं?

दादाश्री : नहीं, ऐसे नहीं। गुस्सा होने के बाद यदि प्रतिक्रमण नहीं करे तो फिर वैसे के वैसे फोर्स में निकलता है। गुस्सा हो जाने के बाद प्रतिक्रमण नहीं करता है तो साल भर का, और यदि बाद में प्रतिक्रमण कर ले तो पंद्रह दिन का। पंद्रह दिन में दोनों वापस बोलने लगते हैं, भूल जाते हैं सब। उसे क्या कहते हैं? प्रत्याख्यानी क्रोध।

पूरी ज़िंदगी के लिए (संबंध) टूट जाए, वह है अनंतानुबंधी क्रोध। इन पत्थरों की चट्टानों के बीच में दरार हो जाए फुट या दो फुट की तो उसमें चाहे कितनी भी चीज़ें गिरें, फिर भी मूलत: दरार तो है, वह हमेशा रहती है।

उसके बाद एक साल वाला कौन सा बताया? अप्रत्याख्यानी।

उसमें, जैसे कि खेत की जमीन में, मिट्टी में दरार पड़ जाती है तो वह साल भर में जुड़ जाती है।

फिर उसके बाद वाला क्रोध - पंद्रह दिनों वाला कौन सा है? वह है प्रत्याख्यानी। उसमें, जैसे कि रेत में एक लकीर बनाए, आज यदि समुद्र की रेती में लकीर खीचें तो क्या होता है? कितनी देर में मिट जाती है?

प्रश्नकर्ता : तुरंत, हवा आते ही, तुरंत!

दादाश्री : हवा आते ही एक हो जाती है। एक घंटा-दो घंटा भी लग सकता है, वह प्रत्याख्यानी क्रोध। और चौथा, पानी में लकीर खींचें तो तुरंत मिट जाती है। तो यह जो पानी की लकीर जैसा कहलाता है, वह है संज्वलन क्रोध। महात्माओं में सभी को पानी की लकीर जैसा नहीं होता। सभी को पंद्रह दिनों बाद जुड़ता है। कईंयों का पानी जैसा भी होता है।

बुद्धि कबूल करे ऐसी बात की है न, इन शास्त्रकारों ने!

प्रश्नकर्ता : आत्मा कबूल करे ऐसी बात है।

दादाश्री : वह आत्मा यानी कौन सा? व्यवहार आत्मा, प्रतिष्ठित आत्मा। वह बुद्धि का खेल है और वह आत्मा कौन सा है? वह सारा व्यवहार आत्मा है। मूल आत्मा तो उसे भी जानता है, सबकुछ जानता है!

अप्रत्याख्यानावरण कषाय

प्रश्नकर्ता : एक बार अनंतानुबंधी टूटे तो फिर क्या वह निचली कक्षा में चला जाता है यानी कि फिर धीरे-धीरे कम होता जात है?

दादाश्री : वह तो बढ़ भी सकता है लेकिन जब अप्रत्याख्यान आता है तब जो कषाय हो जाते हैं, उनके लिए कभी भी प्रतिक्रमण या प्रत्याख्यान नहीं किया है। यानी कि जो भी कषाय होते हैं, इसलिए होते हैं क्योंकि उनके प्रत्याख्यान नहीं किए हैं। अत: यदि प्रतिक्रमण व प्रत्याख्यान की शुरुआत करे, वहाँ पर फिर प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान

करता रहे, पाँचवें गुणस्थानक में तो उसके फल स्वरूप छठ्ठे गुणस्थानक में जाएगा। छठे में क्या होता है? प्रत्याख्यानावरण कषाय!

प्रत्याख्यानावरण कषाय

प्रत्याख्यानावरण यानी क्या? प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान करने पर भी कषाय होते हैं। वे तो कितनी ही परतों वाले हैं, वे होते हैं। थोड़ी परतों वाले चले गए, लेकिन बहुत परतों वाले प्रत्याख्यान आवरण, लाखों प्रतिक्रमण करो तो भी नहीं जाते।

प्रश्नकर्ता : वे कौन से दोष हैं?

दादाश्री : उन्हें प्रत्याख्यानावरण कहा है। प्रत्याख्यान किया है फिर भी वे नहीं जाते।

प्रश्नकर्ता : उसका क्या कारण है, इतना बड़ा?

दादाश्री : बहुत गहरे, मोटे! पाँच हज़ार परतें होती हैं न, प्याज़ की! तो आप उन परतों को एक-एक करके निकालोगे फिर भी वह दिखाई देती है न! एक प्रकार का आवरण है। सभी में एक-दो होते हैं, ज़्यादा नहीं होते।

प्रश्नकर्ता : वे बार-बार आते रहेंगे?

दादाश्री : हाँ, बार-बार वे आते रहेंगे।

प्रश्नकर्ता : लेकिन कभी न कभी तो चले जाएँगे न?

दादाश्री : जाने लगेंगे। हिसाब खत्म होने लगे इसलिए कम ही हो जाता है, उनके जाने में कोई रुकावट नहीं होगी। जाएँगे तो सही लेकिन आज क्या परेशानी है? प्रतिक्रमण करते हो, प्रत्याख्यान करते हो लेकिन वापस आ जाते हैं?

यानी अप्रत्याख्यान आवरण मिटाए प्रत्याख्यान करके लेकिन अब वह प्रत्याख्यान का आवरण बना उसका क्या?

प्रश्नकर्ता : उसका भी आवरण होता है?

दादाश्री : हाँ, साबुन से तू अभी मैल निकाल देगा, लेकिन साबुन का मैल चढ़ा उसका क्या? यानी प्रत्याख्यानावरण। इसलिए फिर ऐसे करते-करते, बढ़ता-बढ़ता साफ होता है न, वह है प्रत्याख्यानावरण! प्रत्याख्यान किए हों फिर भी यदि दोष हो जाए तो वह प्रत्याख्यानावरण कषाय कहलाता है क्योंकि सामूहिक प्रतिक्रमण किया था न, इसलिए।

संज्वलन कषाय

निरंतर प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान हो, उसे प्रत्याख्यानावरण कहते हैं। वह है छट्ठा गुणस्थानक। पहले के अप्रत्याख्यान का अभी प्रत्याख्यान करता है। साधु महाराज का छठा निश्चय का और व्यवहार का गुणस्थानक कब कहलाता है? जब क्षण-क्षण पर प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान हो तब। पहले के प्रत्याख्यान का अभी उदय आने पर त्याग बरतता है।

यानी छठा गुणस्थानक किसे कहेंगे? कषाय कार्यकारी हो जाते हैं। रूपक में दिखाई दें वैसे कार्यकारी हो जाते हैं। रूपक की बात तो अलग है लेकिन कार्यकारी कषाय दिखाई देते हैं। अब प्रतिक्रमण करने के बावजूद कार्यकारी हो जाते हैं, यानी कि पच्चखाणी प्रतिक्रमण किए हैं, लेकिन फिर भी अभी यह बाकी रह गया है। यह गांठ बड़ी है इसलिए प्रत्याख्यानी कहा जाता है। प्रत्याख्यान आवरण है और अंदर उदय होता है लेकिन कार्यकारी नहीं होता तो वह संज्वलन कहलाता है। धौल-वौल नहीं मारता लेकिन प्रत्याख्यानावरण में भीतर दुःख होता है, वेदना होती है। लेकिन समाधि रहती है, वह तो जब अनुभव होगा न तब पता चलेगा कि 'यह क्या है।' इसलिए यह बात अलग प्रकार की है!

क्रोध-मान-माया-लोभ प्रत्याख्यानी होते हैं। ऐसे कि दूसरों को पता नहीं चलता। दूसरा कोई बुद्धिशाली भी बुद्धि से नाप नहीं सकता कि ये अभी क्रोधित हैं। सिर्फ वे खुद जानते हैं। ऐसे कषाय प्रत्याख्यानी होते हैं। यानी पंच महाव्रतधारी की तो बात ही क्या करें? यदि इस काल में ऐसे कोई हों तब तो बहुत हो गया! वे प्रत्याख्यानी (कषाय) चले गए तो सिर्फ संज्वलन कषाय रहे।

छठे से नौवें गुणस्थानक की दशाएँ

व्यवहार गुणस्थानक सभी का बदलता रहता है। कोई चौथे में आता है, कोई पाँचवें में आता है, कोई छठे में आता है। पहले अप्रत्याख्यान थे, अप्रतिक्रमण थे। तो अब आलोचना हुई, प्रतिक्रमण हुए, प्रत्याख्यान हुए! यानी वे अप्रत्याख्यान आवरण भी नहीं रहे।

जिनकी अभी व्यवहार में मोटी 'फाइलें' हैं उनके लिए कहा जाएगा कि वे अभी छठे गुणस्थानक में आए हैं।

व्यवहार में छठा गुणस्थानक किसे कहते हैं? स्त्री-पुरुष, वगैरह छोड़ दिए हों, उसे नहीं लेकिन यह कि अप्रत्याख्यान आवरण नहीं होना चाहिए। प्रत्याख्यान करने पर भी वापस वही का वही दिखाई देता है, यानी फिर से वापस प्याज़ की परतें दिखाई देती है। वह प्रत्याख्यान आवरण है। कभी कभार जब घंटा भर बैठ जाएँ तब अप्रमत आता है, सातवाँ गुणस्थानक। और फिर कभी कभार आठवाँ, अपूर्व आता है! वहाँ ऐसा आनंद-आनंद हो जाता है न! लेकिन नौवाँ नहीं लांघ पाते। क्योंकि जब तक स्त्री परिग्रह है तब तक नौवाँ भी नहीं लांघ पाते।

परिणाम स्वरूप में भी कषाय रहितता

इस देह में ज़रा भी क्रोध जैसी चीज़ नहीं होनी चाहिए। यानी क्रोध का परमाणु नहीं होना चाहिए, लोभ का परमाणु नहीं होना चाहिए, मान का परमाणु, कपट का कोई परमाणु नहीं रहता, उसके बाद वह भगवान कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : कषाय की शून्यता, कम्प्लीट (संपूर्ण) शून्यता हो जानी चाहिए?

दादाश्री : वे तो समझो कि गए, कषाय तो गए, उसके बाद उसका परमाणु भी नहीं रहना चाहिए। यानी कि परमाणु स्वरूप में भी नहीं रहना चाहिए। कषाय का जाना क्या है? यदि कॉज़ेज़ (कारण) स्वरूप से भी चला जाए तो उसे 'कषाय जाना' कहा जाता है लेकिन

उसका परिणाम भी चला जाता है, शरीर में परिणाम नहीं रहता। अभी 'कॉज़ेज़' तो आपके चले गए हैं, लेकिन परिणाम के रूप में बाकी है। किसी जगह पर चिपका हुआ है।

प्रश्नकर्ता : डिस्चार्ज भी खत्म हो चुका होता है?

दादाश्री : हाँ, वह दशा मैंने देखी है। तब तो यह मूल स्वरूप उत्पन्न होता है, अनुभव होता है, नहीं तो नहीं होता। आत्मा नहीं दिखता। कषाय का अभाव वहीं पर आत्मा रहा है।

प्रश्नकर्ता : और वह टोटल (संपूर्ण) अभाव।

दादाश्री : वह नहीं हो सकता, इम्पॉसिबल (अशक्य) चीज़ है इस काल में, और सुषमकाल में इम्पॉसिबल जैसी चीज़ नहीं थी।

प्रश्नकर्ता : यानी कषाय के उद्भवस्थान में भी नहीं होता, जहाँ उसका उद्भव होता है, वहाँ भी नहीं होता?

दादाश्री : वहाँ भी नहीं होता।

कषाय सहित प्ररूपणा, वह है नर्क की निशानी

प्रश्नकर्ता : तो क्या ऐसा है कि कषाय जैसी कोई चीज़ होती ही नहीं?

दादाश्री : तभी तो यह ज्ञान उद्भव होता है! अत: जितने भी महाराज जो गद्दी पर हैं न, वे जब पूछते हैं तो उन्हें कह देता हूँ कि 'महाराज साहब, विनती करता हूँ कि आप कभी भी व्याख्यान मत देना।' तो वे कहते हैं, 'क्यों, हमें क्या परेशानी होगी?' मैंने कहा, 'नर्क में जाना हो तो करना, यह नर्क में जाने का सब से बड़ा लक्षण है।' अब बोलो, वे इस जोखिमदारी को कैसे समझ सकते हैं? खुद ही ठोकर खाने वाला व्यक्ति इस गलती को कैसे ढूँढ निकालेगा?

प्रश्नकर्ता : 'खुद' की गलती दिखाई ही नहीं देती है न!

दादाश्री : यदि दिखाई नहीं देगी तब तो फिर वह छोड़ेगी ही

नहीं न, नर्क में जाने जैसी गलती दिखती है। कषाय सहित प्ररूपणा वह नर्क में जाने की निशानी है। यानी कषाय सहित व्याख्यान देने नहीं है। अब कौन से कषाय? उसका नियम है कि प्रत्याख्यानावरण कषाय हो उन लोगों को व्याख्यान देने का अधिकार है। लेकिन जिसे अनंतानुबंधी हो, समकित नहीं हुआ यानी अनंतानुबंधी होता ही है। अब उन्हें ऐसे पूछें कि समकित हुआ तो कहते हैं कि, 'नहीं, नहीं हुआ।' वह समकित नहीं है। अनंतानुबंधी होते हुए भी उपदेश देना, वह मिथ्यात्वी कहलाता है।

मिथ्यात्वी यानी 'पॉइज़नस'। इसलिए भगवान ने क्या कहा है कि तीर्थंकरों की वाणी मिथ्यात्वी पढ़े तो 'पॉइज़न' हो जाता है और मिथ्यात्वी की वाणी, मिथ्यात्वी पुस्तकें, धर्म पुस्तकें, उन्हें यदि समकित जीव पढ़े तो वह अमृत हो जाता है। क्योंकि साँप के मुँह में दूध जाए तो वह पॉइज़न हो जाता है। अभी यहाँ सभी जगह नर्क में जाने की निशानी है, कहेंगे तो मारपीट करेंगे, हिंसा बढ़ेगी इसलिए हम कुछ कहते नहीं है। ऐसे शब्द जो सामने वाले को समझ में नहीं आएँ, तो क्या वहाँ बोलने का शौक है? पूछते हैं तो मैं जवाब देता हूँ। एक महिला ने छोड़ भी दिया और फिर ज्ञान लेने आईं। वे महासती कहने लगीं कि, 'हम दो बार व्याख्यान देते हैं और हम ऐसा ही करते हैं। हमने नर्क में जाने की तैयारी की है तभी तो हमें उन्हें उपदेश देने का मन होता है। आपसे ज्ञान लेने के बाद उपदेश दे सकते हैं?' मैंने कहा, 'हाँ, दे सकते हैं'। फिर उन्होंने ज्ञान लिया। ऐसे सब गद्दीधारी लोगों ने ज्ञान लिया है और उसका बहुत अच्छा परिणाम आता है।

समकित दृष्टि से ही भेदे जाते हैं आवरण

प्रश्नकर्ता : जब ज्ञायक स्वभावी के संसारी उदय आएँ तब वह उसमें उदयवश नहीं हो जाता?

दादाश्री : नहीं, उदय का वह ज्ञाता रहता है। जब उदय का ज्ञाता रहे तब ज्ञायक स्वभाव कहलाता है और उदय का ज्ञाता नहीं रहे तब उदयवश कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : दादा, एक बार ज्ञायक स्वभाव में आने के बाद वह फिर से उदयवश हो सकता है क्या?

दादाश्री : वह उदयवश तो हो सकता है न, जब भारी उदय आते हैं तब, उदय भारी *चीकणे* (गाढ़) होते हैं। इसलिए यह प्रत्याख्यानावरण कषाय ऐसा लिखा है। मैं बहुत सोचता था कि, 'ओहोहो! ये प्रत्याख्यानावरण कषाय, वे किस प्रकार के कषाय?' ज्ञान होने से पहले मैं बहुत सोचता था। क्योंकि उन लोगों ने क्या कहा है? अविरत कषाय, यानी कि अनंतानुबंधी, फिर अप्रत्याख्यानी, यदि प्रतिक्रमण व प्रत्याख्यान नहीं किया हो तो ऐसे कषायों को क्या कहते हैं? 'अप्रत्याख्यानी'।

प्रश्नकर्ता : अब अनंतानुबंधी में से अप्रत्याख्यानी में आते हैं, फिर प्रत्याख्यानी में आते हैं, तो वह जो प्रोसीजर (प्रक्रिया) में आने की जो दशा है वह समकित दृष्टि की वजह से है?

दादाश्री : समकित ही। समकित दृष्टि से ही आगे बढ़ता जाता है।

जीवित चला गया और रहा मृत

तो हम सब में इन चार कषायों में से एक भी कषाय नहीं है। कषाय मुक्त हो गए हैं। मनुष्य चिंता रहित हो ही नहीं सकता और क्रमिक मार्ग में कोई भी व्यक्ति चिंता रहित हो ही नहीं सकता। ज्ञानी भी चिंता रहित नहीं होते। उन्हें अंदर आनंद होता है और बाहर चिंता रहती है। व्यवहार में, उन्हें इस बात की अग्रशोच रहती है कि भविष्य में क्या होगा। और 'हमें' अग्रशोच नहीं रहती। हमने 'व्यवस्थित' पर छोड़ दिया है क्योंकि अगशोच कब तक है? सोचने वाला जीवित हो तभी तक। और आपका सोचने वाला जीवित नहीं है न? कौन है सोचने वाला?

प्रश्नकर्ता : 'चंदूभाई।'

दादाश्री : हाँ, यानी अहंकार जीवित है। अहंकार दो प्रकार के - एक, कर्म के कर्ता स्वरूप में और दूसरा, भोक्ता स्वरूप में।

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह कर्ता स्वरूप का अहंकार तो गया।

दादाश्री : कर्ता रूपी अहंकार जीवंत अहंकार है, जीवित और भोक्ता रूपी अहंकार मृत अहंकार है और मृत अहंकार अन्य कुछ नहीं कर सकता। और यदि जीवंत का नाम ले लें तो क्या का क्या कर दे! यानी वह (जीवित) गया और यह (मृत) रह गया।

कर्ता की गैरहाज़िरी में कर्म मिट जाते हैं

यानी गुस्सा आ जाता है। फिर कहता है, 'हे दादा भगवान! आपने तो मना किया है और मुझसे तो यह हो गया, उसके लिए माफी माँगता हूँ।' इसलिए फिर मिट जाता है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा होना उचित नहीं है।

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : ऐसा तुरंत होना चाहिए?

दादाश्री : हाँ, इसलिए मिट जाता है फिर। किससे मिट जाता है? प्रतिक्रमण से। सभी कर्म मिट जाते हैं। कर्ता की गैरहाज़िरी है इसलिए संपूर्ण मिट जाता है। कर्ता की गैरहाज़िरी से हम यह फल भुगत रहे हैं। कर्ता की गैरहाज़िरी से भोक्ता हैं इसलिए यह मिट जाता है और जगत् में लोग कर्ता की हाज़िरी से भोक्ता हैं। यानी प्रतिक्रमण करने पर भी थोड़ा ढीला होता है लेकिन खत्म नहीं हो जाता। फल दिए बगैर नहीं रहता और आपका तो वह कर्म खत्म ही जाता है। 'हे दादा भगवान, ऐसा नहीं होना चाहिए।'

सर्वविरति गुणस्थानक

'शूट ऑन साइट' जिसके हाथ में आ गया उसे बाकी क्या रहा? और द्वेष गया बाद में रहा क्या फिर? द्वेष गया यानी क्या? चार कषायों में से दो निर्मूल हो गए। निर्मूल हो गए, इसका मतलब क्या है? क्रोध। लेकिन क्रोध के परमाणु नहीं है। अत: चंदूभाई को गुस्सा आता है लेकिन उन्हें खुद को अच्छा नहीं लगता। यानी द्वेष तो पूर्णत: चला गया है लेकिन कपट व लोभ थोड़ा-बहुत बचा है। वह जब खत्म

होगा तब वीतराग होंगे। तब यह चारित्रमोहनीय में चला जाएगा। हर एक का विभाजन करने पर सब अलग-अलग हो जाएगा।

सर्व-विरति किसे कहते हैं? किसी भी जीव का दोष नहीं दिखाई दे। कोई गाली दे रहा हो लेकिन उसका दोष नहीं दिखाई दे, उसका नाम सर्व-विरति! इससे ज़्यादा बड़ा सर्व-विरति पद नहीं होता।

किसी के दोष नहीं दिखें तो जानना कि सर्व-विरति पद है, संसार में बैठे रहने पर भी! ऐसा यह 'अक्रम विज्ञान' का सर्व-विरति पद अलग प्रकार का है। संसार में बैठे हुए, धूपेल ऑइल सिर में डालने पर भी, कान में इत्र वाली रूई डालकर घूमता हो लेकिन उसे किसी का भी दोष नहीं दिखता।

'अक्रम' में सर्व-विरति पद उसे कहते हैं कि किसी का किंचित्‌मात्र दोष नहीं दिखाई दे। तब से सर्व-विरति पद है, ऐसा मानकर चलना। भले ही फिर कान में इत्र वाली रूई डाली हो उससे 'मुझे' हर्ज नहीं है, लेकिन किसी जीव का दोष नहीं दिखता, साँप काटे तब भी साँप का दोष नहीं दिखता, ऐसा यह विज्ञान है अपना।

प्रश्नकर्ता : फिर 'अक्रम' के उस पद में 'प्रतिक्रमण' जैसा कुछ भी नहीं रहता न?

दादाश्री : फिर प्रतिक्रमण रहता ही नहीं है लेकिन दोष नहीं दिखता है ऐसा मान मत लेना, इससे अच्छा कि प्रतिक्रमण करना न! आपको क्या नुकसान है? वह वापस नया कुछ ढूँढ निकालने में कहीं उल्टा चला जाएगा।

वीतद्वेष हुआ उसे एकावतारी कहते हैं। वीतद्वेष में जिसका कच्चा रह गया हो, उसे दो-चार जन्म होंगे।

ज्ञाता-द्रष्टा वहाँ कषाय शून्यता

ज्ञानी पुरुष का दिया हुआ प्रतिक्रमण हो तो दोष चले जाते हैं, वर्ना दोष नहीं जाते। अनंत अवतार प्रतिक्रमण करता रहे उससे पुण्याई

बंधती है। यह साधु, आचार्य प्रतिक्रमण बोलते हैं उससे दोष नहीं टूटता, पुण्याई बंधती है जबकि ज्ञानी पुरुष का दिया हुआ प्रतिक्रमण, वह तो शूट ऑन साइट होता है। दोष होते ही प्रतिक्रमण करता है। इन सब को इतनी अधिक जागृति बरतती है कि दोष होते ही दिखाई देना शुरू हो जाता है। हज़ारों दोष दिखाई देते हैं, उत्पन्न हुए कि तुरंत दिखाई देते हैं क्योंकि कषायभाव सब गल गए होते हैं।

कषायभाव के कारण अजागृति है।

प्रश्नकर्ता : दूसरे के प्रति अतिक्रमण नहीं हो और किसी को किसी से कोई कषाय नहीं हो तो इसके बगैर सौ प्रतिशत ज्ञाता-द्रष्टा कैसे रह पाते हैं?

दादाश्री : ऐसे नहीं, किसी के प्रति भले ही विचार में अतिक्रमण न भी हो, लेकिन मन तो किसी न किसी कषाय में होता ही है, राग में नहीं हो तो द्वेष में होता है। जब तक ज्ञाता-द्रष्टा में नहीं रह पाएँगे तब तक कषाय होते ही रहेंगे।

प्रश्नकर्ता : यानी कोई भी विचार चल रहा हो न, उसमें कोई न कोई कषाय होता ही है?

दादाश्री : होगा ही, होगा ही। लेकिन जिन विचारों को हम देख सकते हैं, उन विचार में कषाय नहीं होते।

प्रश्नकर्ता : वह बवंडर सारा आकर चला जाए उसके बाद ही पता चलता है।

दादाश्री : नहीं, उसे देख पाए तो उसके बाद पता चलेगा। फिर भी तब तक कषाय कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : पंद्रह-बीस मिनट चलने के बाद दिखता है।

दादाश्री : कषाय अपनी जागृति बंद कर देता है। यानी ज्ञाता-द्रष्टापना नहीं रहने देता। यदि हमें बुरे में बुरे विचार आते हों और उन्हें देखते रहें तो कषाय का कोई भाग हमें नहीं छूता।

क्रोध का अभाव वहाँ बरतती है क्षमा

लोग कहेंगे कि, 'भगवान महावीर को तो बहुत कष्ट पड़े, कहते हैं। बहुत दुःख सहा व बहुत तप किए व बहुत कष्ट सहन किए।' ये सब कष्ट सहन करने से मोक्ष नहीं होता। वह सब किसके जैसी बात है, लोग क्या कहते हैं कि कोई चाहे जैसा भयंकर दोष करता है लेकिन भगवान क्षमा रखते हैं। भगवान किसी दिन क्षमा रखते ही नहीं हैं। सब लोगों को क्षमा दिखाई देती है। क्योंकि क्षमा का अर्थ क्या है? क्षमा जैसी कोई चीज़ ही नहीं है। क्रोध का अभाव उसी का नाम क्षमा। यानी क्षमा करनी नहीं पड़ती। वह अपने इन साधुओं-वाधुओं को समझ में नहीं आता इसलिए कहते हैं कि भगवान तो कैसी क्षमा रखते हैं। वास्तव में क्षमा जैसा कुछ नहीं होता। अहंकार करके जो कहता है कि जा, तुझे माफ करता हूँ, वह अलग चीज़ है। वह क्षमा समझ में आती है, लेकिन है स्थूल भाग में। 'क्रोध का अभाव वही क्षमा।'

कषाय परवशता से, प्रतिक्रमण स्ववशता से

यह अक्रम विज्ञान इतना स्वीकार करता है कि क्रोध-मान-माया-लोभ बंद हो जाएँ तभी संयम है। वर्ना यदि वे हो जाएँ तो प्रतिक्रमण करना क्योंकि वे अतिक्रमण हैं। विषय, वे अतिक्रमण नहीं हैं और ये कषाय अतिक्रमण कहलाते हैं। उस अतिक्रमण का प्रतिक्रमण सिखा दिया है। अतिक्रमण से जगत् खड़ा हो गया है और प्रतिक्रमण से बंद हो जाएगा। कषायों के व्यवहार से जगत् खड़ा हो गया है, विषयों के व्यवहार से नहीं हुआ है। कषायों के व्यवहार से बना है जगत्, वह अतिक्रमण कहलाता है और प्रतिक्रमण करो तो धुल जाता है। कषाय हो जाना वह परवशता से होता है और उसका प्रतिक्रमण करना वह स्ववशता से होता है। यानी पुरुषार्थ प्रतिक्रमण से है।

आपके अहंकार और मान जा रहे हैं या नहीं, कम हो रहे हैं या नहीं?

प्रश्नकर्ता : कम हो रहे हैं।

दादाश्री : हाँ। तो वह सब जो माल है, वह जाने लगा है। बारह महीने होने पर निकलने लगता है। यह माल कम हो गया है इसलिए आत्मा हो गए।

प्रश्नकर्ता : ये क्रोध-मान-माया-लोभ, ये डिस्चार्ज हैं, यानी कि वे आएँगे तो सही लेकिन अब उन्हें देखने के बाद हम खुद अलग कैसे रहें?

दादाश्री : जागृति कम, डिम हो जाए तो उन्हें क्या करना चाहिए? मेरी आज्ञा में ही रहने का प्रयत्न करते ही रहना है। फिर लापरवाही करे और आज्ञा में नहीं रहे तो फिर वही का वही!

यानी तू आज्ञा में रहने का कितना प्रयत्न करता है?

प्रश्नकर्ता : बहुत।

दादाश्री : आपको भी क्रोध-मान सब दिखता है?

प्रश्नकर्ता : हो जाने के बाद दिखता है।

दादाश्री : उसमें हर्ज नहीं है। हो जाने के बाद ही दिखता है न! होते वक्त भी दिखता है, हो जाने के बाद भी दिखता है।

प्रश्नकर्ता : और कभी कभार ऐसा भी होता है कि दोष होते वक्त दिखाई देता है, फिर भी यह करता रहता है।

दादाश्री : नहीं, वह रुकेगा नहीं। रोकना तो गुनाह है क्योंकि जो फिल्म चल रही है, उसे देखते रहना है। फिर मारपीट करे या अहिंसा करे या हिंसा करे। देखने वाले को परेशानी नहीं है। यदि वे मारपीट करते वक्त रो पड़े कि 'ऐसे मत मारो, मत मारो' तो उसमें परेशानी है। अरे! यह फिल्म तो (पहले से) भरी हुई ही है। यानी देखने वाले को कोई हर्ज नहीं है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जब उस तरह हो रहा हो न, तब पता

चलता है न हमें? अंदर डाँटते भी हैं कि यह आप जो कर रहे हो, वह सही नहीं है, फिर भी वे मानते नहीं और करते ही हैं।

दादाश्री : उससे हर्ज नहीं है क्योंकि 'देखने वाला' शुद्ध है। देखता है वह अच्छा और बुरा है, लेकिन वह सापेक्ष दृष्टि से है। हम देखने वालों के लिए अच्छा-बुरा नहीं है। देखने वाले के लिए तो सब समान ही है। यह तो, लोगों के मन में अच्छा-बुरा है, बाकी, भगवान के घर कुछ भी अच्छा-बुरा है ही नहीं। समाज के लिए अच्छा-बुरा है। भगवान तो क्या कहते हैं, 'यदि देख लिया' तो उससे अलग हो गया! वह अलग और यह अलग!

यानी क्या है कि अज्ञान से, नासमझी से बाँधे हुए हिसाब को 'देखकर' निकालो। यानी आप अलग और वे अलग। 'देखे' बगैर बाँधे हुए हिसाब को 'देखकर' निकालो तो मुक्त!

यह टंकी खत्म होते, होते, होते अंत में जब खत्म होने लगेगी न, तब आपको शरीर हल्के फूल जैसा लगेगा। यहीं पर मुक्त हो गए, ऐसा लगेगा।

अब यह कैसे टंकी खत्म होगी? क्योंकि उसमें से निकलता ज़रूर रहता है, लेकिन नया अंदर नहीं आता। और जिसमें अंदर नहीं आता उस टंकी में फिर क्या बचेगा?

प्रश्नकर्ता : कुछ नहीं बचेगा।

दादाश्री : फिर वह जल्दी खाली हो जाएगी।

❖❖❖❖❖

[15]

भाव अहिंसा के रास्ते पर

अंतिम प्रतिक्रमण पर लेन-देन समाप्त

प्रश्नकर्ता : मोक्ष में जाने से पहले, किसी भी जीव से लेन-देन हो और यदि हम उसके प्रतिक्रमण करते रहें तो वह हमें छोड़ देगा?

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : हम जानते न हों, ऐसे सब जीव?

दादाश्री : इकट्ठा करके, जितना लिखा है उतना ही, बाद में कुछ नहीं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उसके लिए क्या कहना है?

दादाश्री : जिन-जिन जीवों को मुझसे कुछ भी दु:ख हुआ हो, वे सभी मुझे क्षमा करें।

प्रश्नकर्ता : जीवमात्र?

दादाश्री : जीवमात्र को।

प्रश्नकर्ता : उसमें फिर वायुकाय, तेउकाय सभी जीव आ जाते हैं?

दादाश्री : ऐसा सब कहने पर उसमें सब आ जाएँगे।

दु:ख नहीं देने का भाव

प्रश्नकर्ता : अनजाने में किसी जीव की हिंसा हो जाए तो क्या करें?

दादाश्री : अनजाने में हिंसा हो जाए लेकिन पता चलने पर आपको तुरंत ही पश्चाताप होना चाहिए कि ऐसा नहीं हो। फिर से ऐसा नहीं हो, उसके लिए जागृति रखना, ऐसा अपना उदेश्य रखना। भगवान ने कहा था, किसी को मारना नहीं है ऐसा दृढ़ भाव रखना। किसी जीव को ज़रा सा भी दु:ख नहीं देना है, ऐसी हर रोज़ पाँच बार भावना करना। 'मन, वचन, काया से किसी जीव को किंचित्‌मात्र दु:ख न हो' सुबह में ऐसा पाँच बार बोलकर संसारी प्रक्रिया शुरू करना, तो ज़िम्मेदारी कम हो जाएगी। क्योंकि भाव करने का अधिकार है। क्रिया अपनी सत्ता में नहीं है।

अनजाने की भूल, पाप बाँधती है?

अभी भीतर दूसरे आड़े-टेढ़े भाव आते हैं, वे गिर चुके बीज हैं। आपको अब कीड़ा नहीं मारना है, फिर भी कीड़ा आपके पैर के नीचे कुचल जाए तो जानना कि यह गिर चुका बीज है। वहाँ जागृत रहकर प्रतिक्रमण कर लेना है।

आपको कहाँ पता चलेगा कि कीड़ा आपसे कुचला गया, वह कैसा बैर बाँधेगा? भूल से कुचला गया लेकिन वह बैर कितना बाँधता है! क्योंकि उस कीड़े के जो संसारी, उसके बीवी-बच्चे सब होते हैं न, ऋणानुबंधी तो होते हैं न? वे तो ऐसा ही समझते हैं कि इस भाई ने जान-बूझकर मारा है, इस भाई ने खून किया है। आपको लगता है कि अनजाने में हुआ लेकिन उन्हें तो ऐसा ही लगता है न, कि मेरे घर का आदमी मर गया, खून हो गया। उसका भी संसार तो है न? जहाँ जाए वहाँ संसार तो है ही न?

प्रश्नकर्ता : गलती से हो जाए तब भी पाप तो लगता है न?

दादाश्री : यदि गलती से आग में हाथ डाले तो क्या होगा?

प्रश्नकर्ता : जल जाते हैं।

दादाश्री : छोटा बच्चा नहीं जलता?

प्रश्नकर्ता : जलता है।

दादाश्री : वह भी जल जाता है? यानी कुछ छोड़ता नहीं है। अनजाने में करो या जानकर करो, कुछ नहीं छोड़ता।

वह अजागृति कहलाती है

प्रश्नकर्ता : किसी महात्मा को ज्ञान के बाद, रात में यदि मच्छर काट रहे हों, तो वह रात को उठकर मारने लगे तो वह क्या कहलाता है?

दादाश्री : वह भाव बिगड़ा कहलाता है। ज्ञान की जागृति नहीं कहलाती।

प्रश्नकर्ता : उसे हिंसक भाव कहते हैं?

दादाश्री : हिंसक भाव तो क्या, लेकिन जैसा था वापस वैसा ही हो गया लेकिन फिर प्रतिक्रमण करने से धुल जाएगा।

प्रश्नकर्ता : वापस फिर से वैसे का वैसा, दूसरे दिन भी वैसा ही करे तो?

दादाश्री : अरे, सौ बार करे फिर भी प्रतिक्रमण से धुल जाएगा।

'उससे' निकाचित भी हो जाते हैं हल्के

प्रश्नकर्ता : पिछले जन्म का निकाचित कर्म इस जन्म में भुगतना है, लेकिन इस जन्म में निकाचित किया हो वह?

दादाश्री : वह तो अगले जन्म में भुगतना है। वह तुरंत फल नहीं देता। पके बिना फल नहीं देता।

प्रश्नकर्ता : वह नष्ट होता ही नहीं है न, भुगतना ही पड़ता है न?

दादाश्री : फीका हो जाता है, हल्का हो जाता है, यदि उस पर

पछतावा करते रहेंगे तो हल्का हो जाता है। आधा रस निकल जाता है। अभी रस, उसमें जो कड़वे रस, जो घुस गए हैं न, वे वापस निकल जाते हैं। निकाचित यानी भुगतने पर ही छुटकारा होता है। अन्य कोई उपाय ही नहीं है लेकिन उसे फीका कर सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : भुगतने में फर्क पड़ता है?

दादाश्री : हाँ, किसी को यहाँ लगा हो तो रह नहीं पाती और किसी को वैसा लगा हो तो वह तो शांति से घूमना-फिरना सब करता है, पट्टी बाँधकर।

प्रश्नकर्ता : महावीर भगवान को जब कान में *बरु* (जंगली पौधे की नुकीली डंडी) डाली...

दादाश्री : वह निकाचित था।

प्रश्नकर्ता : वे तो भगवान थे, इसलिए उन्हें हल्का हो गया होगा न?

दादाश्री : नहीं, हल्का नहीं हुआ था।

प्रश्नकर्ता : तो फिर अपने जैसे को कैसे हल्का होगा?

दादाश्री : आप करो तो हल्का होगा फिर भी। वे तो बड़े आदमी थे इसलिए हल्का नहीं करते। वे तो राजा थे, तो उसके कान में सीसुं डलवाया, बाद में प्रतिक्रमण भी नहीं किया न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन उन्होंने तो जान-बूझकर सीसुं डलवाया था लेकिन हमने तो खटमल या ऐसे किसी कीड़े को ऐसे सूआ घूसा-घूसाकर मारा हो...

दादाश्री : सूआ मारा जाता होगा क्या? कैसे इंसान हो? उससे इंसान को क्यों नहीं मारते? उसके माँ-बाप नहीं है इसलिए? रक्षण करने वाला कोई बच्चे नहीं है इसलिए?

प्रश्नकर्ता : अब उसका कोई रास्ता दिखाइए। ऐसे तो बहुत पाप कर चुके हैं, उसके लिए क्या करना है?

दादाश्री : प्रतिक्रमण करो, प्रतिक्रमण! (कल्पना से) एक कटोरी में खटमल रखकर फिर उसे देखकर, प्रतिक्रमण सब करके, फिर उसे खाना खिलाकर मुक्त कर देना है।

प्रश्नकर्ता : अंदर बहुत रोना ही आता रहता है कि इतने सारे पाप किए हैं न! यानी वास्तव में ऐसा सब स्मरण में तो आता है, हर रोज़ दिखाई देता है।

दादाश्री : प्रतिक्रमण करके हल्का कर डालो। उस समय किसी को पूछकर करना चाहिए था न।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दूसरा कोई मिला ही नहीं न?

दादाश्री : घर में पूछना था, गाँव वालों से पूछना था।

प्रश्नकर्ता : घर में तो हमारी मारने की विधि ही चलती थी।

दादाश्री : ऐसा? दोनों जन साथ में ही?

प्रश्नकर्ता : वह भी अपनी तरह मारती थी और मैं भी मारता था, मेरी तरह।

दादाश्री : रोज़ दो सौ-पाँच सौ मार डालते होंगे, नहीं?

प्रश्नकर्ता : हाँ, जितने होते उतने मार डालते थे, दादा से मिलने के बाद नहीं मारे।

दादाश्री : मार देने का तो सोचना भी मत। कोई भी जीव ठीक न लगे तो उसे बाहर छोड़ आना। तीर्थंकरों ने 'मार' शब्द ही निकाल देने के लिए कहा था। 'मार' शब्द का उच्चारण तक मत करना, कहते हैं। 'मार' जोखिम वाला शब्द है। इतना अधिक अहिंसा वाला, परमाणु इतनी हद तक अहिंसक होने चाहिए।

प्रश्नकर्ता : नहीं तो भाव में बदलाव आ जाता है?

दादाश्री : हाँ, किंचित्‌मात्र किसी को दुःख नहीं हो क्योंकि इस दुनिया में कोई दोषित है ही नहीं।

हिंसा, द्रव्य व भाव की

प्रश्नकर्ता : भावहिंसा और द्रव्यहिंसा का फल एक ही प्रकार का आता है?

दादाश्री : भावहिंसा की फोटो दूसरा कोई नहीं देख सकता और उस सिनेमा की तरह यह जो सिनेमा चलता है न, उसे हम देखते हैं, वह सब द्रव्यहिंसा है। भावहिंसा सूक्ष्म में रहती है (जो दिखाई नहीं देती) और द्रव्यहिंसा तो प्रत्यक्ष दिखाई देती है। मन-वचन-काया से जो जगत् में दिखाई देता है, वह द्रव्य हिंसा है। आप कहो कि जीवों को बचाना चाहिए। फिर बचे या न बचे, उसके ज़िम्मेदार आप नहीं हो! आप कहो कि इन जीवों को बचाना चाहिए, आपको सिर्फ इतना ही करना है। फिर हिंसा हो गई, उसके ज़िम्मेदार आप नहीं हो! हिंसा हो गई उसका पछतावा, उसका प्रतिक्रमण करना, फिर सारी ज़िम्मेदारी चली गई।

किसानों के लिए स्पेशल प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : आपकी किताब में पढ़ा है कि, 'मन, वचन, काया से किसी जीव को किंचित्मात्र दुःख नहीं हो' लेकिन हम तो किसान हैं, इसलिए जब तंबाकू की फसल उगाते हैं, तब हमें प्रत्येक पौधे की कोंपल, यानी उसकी गरदन तोड़नी ही पड़ती है। तो इससे उसे दुःख तो हुआ न? उसका पाप तो लगेगा ही न? इस तरह लाखों पौधों की गरदनें कुचल देते हैं। तो इस पाप का निवारण किस तरह करें?

दादाश्री : वह तो भीतर मन में ऐसा होना चाहिए कि ऐसा व्यवसाय मेरे हिस्से में कहाँ से आया? बस इतना ही। पौधे की कोंपल निकाल देना लेकिन मन में पश्चाताप होना चाहिए कि 'ऐसा व्यवसाय मेरे हिस्से में कहाँ से आया। ऐसा नहीं करना चाहिए', ऐसा मन में होना चाहिए, बस।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यह पाप तो है ही न?

दादाश्री : वह तो है ही। वह आपको नहीं देखना है। जो हो

रहा है, उस पाप को नहीं देखना। 'यह नहीं होना चाहिए', ऐसा आप तय करना, निश्चय करना चाहिए। यह व्यवसाय क्यों मिला? दूसरा अच्छा काम मिला होता तो आप ऐसा नहीं करते। यह पश्चाताप नहीं होता। जब तक यह नहीं जाना हो, तब तक पश्चाताप नहीं होता है। खुश होकर पौधे को उखाड़कर फेंक देते थे। आपको समझ में आता है? हमारे कहे अनुसार करना न। आपकी सारी ज़िम्मेदारी हमारी। पौधा उखाड़कर फेंक दो, उसमें हर्ज नहीं है, पश्चाताप होना चाहिए कि यह मेरे हिस्से में कहाँ से आया?

प्रश्नकर्ता : समझा। इन किसानों की तुलना में व्यापारी ज़्यादा पाप करते हैं और व्यापारियों की तुलना में ये घर बैठे रहते हैं वे बहुत पाप करते हैं। पाप तो मन से होता है, शरीर से पाप नहीं होता।

दादाश्री : आपको बात समझनी है। इन दूसरे लोगों को समझने की ज़रूरत नहीं है। आपको अपनी ज़रूरत की बात समझनी है। दूसरे लोग जो समझते हैं, वही ठीक है।

प्रश्नकर्ता : कपास में दवाई छिड़कनी पड़ती है तो क्या करना है? उसमें हिंसा तो होती ही है न?

दादाश्री : मज़बूरन जो जो कार्य करना पड़े वह प्रतिक्रमण करने की शर्त पर करना है।

आपको इस संसार व्यवहार में कैसे चलना वह नहीं आता है। वह हम आपको सिखाते हैं। फिर नए पाप बंधेंगे नहीं।

खेत में तो खेतीबाड़ी करें तो पाप बंधता ही है। लेकिन वह बंधे उसके साथ हम आपको दवाई देते हैं कि ऐसा कहना। यानी पाप कम हो जाते हैं। हम पाप धोने की दवाई देते हैं। दवाई नहीं चाहिए? खेत में गए यानी खोदते हो करते हो, यानी पाप तो होंगे ही। भीतर कितने ही जीव मारे जाते हैं। यह गन्ना काटो तो पाप नहीं कहलाता? वे जीव ही है न बेचारे? लेकिन उसका क्या करना है, वह हम आपको समझाते हैं, यानी आपको दोष कम लगेंगे। और भौतिक सुख अच्छी तरह भोगो।

खेतीबाड़ी में जीव-जंतु मरते हैं, उसका दोष तो लगेगा न। इसलिए खेतीबाड़ी वालों को प्रतिदिन पाँच-दस मिनट भगवान से प्रार्थना करनी चाहिए कि 'ये दोष हुए उनके लिए माफी माँगता हूँ।' किसान से कहते हैं कि तू यह व्यवसाय करता है उसमें जीव मरते हैं, उसके लिए इस तरह प्रतिक्रमण करना। तू जो गलत कर रहा है उसमें मुझे हर्ज नहीं है। लेकिन उसके लिए तू इस तरह प्रतिक्रमण कर।

हिंसा के प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : कल मैं कार ड्राइव कर रहा था तब गाड़ी के नीचे कबूतर आ गया तो मुझे बहुत दु:ख हुआ।

दादाश्री : वह तो चंदूभाई को दु:ख हुआ न? तो चंदूभाई से कहना है कि पछतावा करो, प्रतिक्रमण करो।

प्रश्नकर्ता : सबकुछ किया।

दादाश्री : किया न? ठीक है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन मुझे पता ही नहीं चला कि वह किस तरह, कहाँ से रास्ते में आ गया?

दादाश्री : ऐसा है न, कि उसके कोई गुनाह से वह मरने वाला ही था। लेकिन मारने वाले को ढूँढ रहा था वह, कि कोई हिंसक जानवर है? तो, ये चंदूभाई ऐसे भाव वाले हैं, ऐसे मारने वाले को ढूँढ रहा था।

जिसने निश्चय किया है कि 'मुझे किसी भी जीव को नहीं मारना है', उसके वह नज़दीक भी नहीं आता। 'मारना है' ऐसा भाव नहीं होता, लेकिन 'गाड़ी के नीचे आ जाएगा तो मर ही जाएगा, उसमें हम क्या करें?' ऐसा बोलने से, उसे वैसे ही संयोग मिलते हैं। जो बचाना चाहे उन्हें वैसे संयोग मिलते हैं। जैसा भाव वैसा आपका हिसाब! तो अभी आपके भाव से ज़रा ऐसा संयोग मिल गया। जैन होकर जल्दबाज़ी करते हो और बीच में कोई आ जाए तो उसके लिए कहते हो, 'मैं क्या करूँ'।

चाहे जो भी हो, लेकिन स्ट्रोंग पोलिसी रखनी चाहिए कि नहीं, किसी भी संयोगों में मुझे उसे मारना नहीं है।

अब, हम यहाँ प्रतिक्रमण करवाएँगे न, तो आपका सबकुछ साफ हो जाएगा। ये तो बड़े जीव हैं, जो दिखते हैं, दूसरे छोटे जीव तो कितने ही मारे जाते हैं। उन सभी का 'चंदूभाई' से प्रतिक्रमण करवाना है।

प्रश्नकर्ता : मन में ऐसा हुआ था कि व्यवस्थित में उसका भी इस तरह का हिसाब होगा। क्या ऐसा नहीं है?

दादाश्री : हिसाब तो है, उसका हिसाब और निमित्त आप। लेकिन अपने महात्मा ऐसे निमित्त नहीं बनते। वे गाड़ी चला रहे हों न, तो भी निमित्त नहीं बनते या उनके मन में ऐसा भाव भी नहीं होता कि, 'मुझे किसी को मारना है'।

और आप तो ज़रा जल्दबाज़ी करते हो और कहते हो कि 'कोई बीच में आ जाए तो क्या करें'।

प्रश्नकर्ता : इसके लिए अब मन के विचारों को कैसे बदले?

दादाश्री : अब वैसा कुछ भी नहीं करना है। अब तो चंदूभाई से प्रतिक्रमण करवाते रहना है। लेकिन क्लियर हो गया न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, हो गया। आपने वह वाक्य कहा था न, कि 'किसी भी जीव को मन-वचन-काया से दु:ख न हो।' सुबह में इतना बोलें तो चलेगा या नहीं चलेगा?

दादाश्री : वह पाँच बार बोलें, लेकिन वह इस तरह बोलना चाहिए कि पैसे गिनते समय जैसी स्थिति होती है, उस तरह बोलना चाहिए। रुपये गिनते समय जैसा चित्त होता है, जैसा अंत:करण होता है, वैसा ही बोलते समय रखना पड़ता है।

❖❖❖❖❖

[16]

कठिन है बैर वसूलना

बैर के प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : मेरा पहचान वाला है, वह कहता है कि उसका भाई उसे मार डालना चाहता है, इसलिए मुझे तुरंत विचार आया कि इनके साथ मैं कहाँ बैर मोल लूँ?

दादाश्री : हाँ, डिरेक्ट बैर बाँधेगा वह। हम बैर बाँधे और वह जानता हो कि यह मेरे साथ बैर रखता है, इसलिए फिर वह भी बैर बाँधता है। यानी अगले जन्म में डसकर मार देगा।

प्रश्नकर्ता : उसे तो पता नहीं है कि किसने बैर बाँधा है?

दादाश्री : यानी वह बैर नहीं बाँधता है इसमें। आप बैर बाँध रहें हो, एकांतिक। दोनों पक्ष से बैर हो तो बैर कहलाता है और बैर यानी फिर वह बैर वसूलता है। यह तो अपने आप ही उत्पन्न होता है भीतर, खुद ने जो बाँधा है। अब क्या करोगे?

प्रश्नकर्ता : यह विचार आया उस पर से इतनी सारी *पींजण* (बार-बार चर्चा करना) निकली।

दादाश्री : लेकिन विचार ही आया था न, और कोई इच्छा नहीं थी न? बाद में प्रतिक्रमण किया था?

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण मुझसे नहीं हो पाते हैं।

दादाश्री : वह तो करना पड़ता है। ऐसे थोड़े ही चलेगा?

प्रश्नकर्ता : यह प्रतिक्रमण ही हुआ न? इतनी अधिक *पींजण* हुईं न?

दादाश्री : यदि खुद का भाई आए तब क्या उसे मारने का विचार आता है किसी को?

प्रश्नकर्ता : लेकिन इतना अधिक, फिर बाद में उस पर विचार किया कि यह बैर कौन बाँधता है, क्यों बाँधता है, वह सब प्रतिक्रमण में ही जाएगा न?

दादाश्री : *पींजण* की।

कोई बाँधता है ऐसा तो आपको लगा न? कोई कुछ करता है?

प्रश्नकर्ता : खुद अपने आप को ही सबकुछ करता है।

दादाश्री : तो और क्या? जाने-अनजाने किसी के अहंकार को 'वह' (ठेस पहुँचाया) तो वह बाँधता है और फिर उस बैर का जो फल आता है वह ज़िंदगी भूला दे, ऐसा दुःख आता है। किसी जीव को तकलीफ नहीं देनी चाहिए। वह यदि आपको तकलीफ दे रहा है तो वह आपका हिसाब है। अतः जमा कर लो और नया देना बंद कर दो यदि इससे छूटना है तो। आपका क्या निर्णय है?

प्रश्नकर्ता : वह जो भी देता है, वह हिसाब का ही देता है।

दादाश्री : हं। हमारे पास यह सरल मार्ग आ गया, *उपाधि* नहीं है, चिंताएँ कम हो गई और कुछ भी नहीं है। तो अब जो चाहो वह कर सको, ऐसा है। प्रतिक्रमण कर लिए तो चाहे कितना भी बैर हो फिर भी इसी जन्म में छूट सकते हों। प्रतिक्रमण ही एकमात्र उपाय है।

चीकणी फाइलों के सामने प्रतिकारभाव

प्रश्नकर्ता : ऑफिस में मेरी तीन-चार *चीकणी फाइलें* (गाढ़

ऋणानुबंध वाले व्यक्ति अथवा संयोग) हैं। जब भी वे फाइलें उकसाती हैं तो फन मारने के भाव होते हैं।

दादाश्री : ऐसा? अभी भी पहले जैसे भाव हो जाते हैं, फन उठाता है, नहीं?

प्रश्नकर्ता : तो अहंकार से ऐसे भावों को दबा देना है या क्रिया में आने देना है?

दादाश्री : हमें दबाना भी नहीं है और क्रिया में भी नहीं आने देना है। जो भी होता है, वह 'देखना' है। तब चंदूभाई क्या करते हैं, वह आपको देखते रहना है, बस! यही आपका फर्ज़ है, ज्ञाता-द्रष्टा का और चंदूभाई किसके मुताबिक चलेंगे? तो कहते हैं, 'व्यवस्थित' के आधार पर। यह साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स के आधार पर फाइलों का समभाव से *निकाल*। दूसरी कोई तकलीफ नहीं, सब कम्प्लीट (संपूर्ण) है।

ऐसे टूटते हैं बैर के तंत

प्रश्नकर्ता : मुझसे वे बैर नहीं छूटते हैं, बैर के तंत जो खड़े हैं, जो वाणी से बंधे हुए हैं, उन तंतों को तोड़ने जाओ तो उसकी इतनी परतें जमी हुई हैं कि उखड़ती ही नहीं है और उसके सामने जब दादा को याद किया, तो अतिक्रमण का प्रतिक्रमण करते-करते प्रतिक्रमण फिर अटक जाता है और तंत रह जाते हैं। ऊपर से वे तंत ज़ोर करते हैं। अत: ऐसा होता है कि ये अभी भी क्यों नहीं छूटते हैं?

दादाश्री : वह तो बहुत 'कोम्पेक्ट' किया था इसलिए। जैसे कि रूई की पोटली होती है न, यदि उसे खोलकर बिखेर दो तो पूरा रुम भर जाता है। उसी तरह ये, दबाकर 'कोम्पेक्ट' (ठूंस-ठूंसकर) कर-करके माल भरा हुआ है। अत: आपको निरंतर प्रतिक्रमण चालू रखने पड़ेंगे तो अंत आएगा।

प्रश्नकर्ता : किन्तु कितनी भी कोशिश करो फिर भी प्रतिक्रमण करने से अटका देते हैं। ऐसा लगता है कि बैर के तंत उससे ज़्यादा ज़ोर कर रहे हैं। यानी पुरुषार्थ को भी थका देते हैं।

दादाश्री : यह तो ऐसा है न कि कितना भी ज़ोर करो फिर भी रात को सो जाना है। भगवान ने कहा है कि दिन में काम करना लेकिन रात को सो जाना। यानी जब हमारे भीतर बंद हो जाए तब उसे भी बंद कर देना। उस पर इस तरह अधिक ज़ोर नहीं करना।

प्रश्नकर्ता : ज़ोर यानी मेरे कहने का मतलब यह है कि प्रतिक्रमण हमारे हाथ में आने से पहले ही तंत उसे अटका देता है। तो हमारा पुरुषार्थ अटक जाता है।

दादाश्री : वह पुरुषार्थ जो हमारा अटक जाता है उसका कारण है। वहाँ हमें बंद रखना है। थोड़ी देर रिलीफ लेने के बाद पुनः प्रतिक्रमण चालू करने हैं लेकिन रिलीफ लेना है। क्योंकि अनंत जन्मों के ये सब अतिक्रमण हुए हैं। अतिक्रमण के अलावा करता ही क्या है? अतिक्रमण के अलावा और कुछ होता ही नहीं है। या तो प्रेम करता है, राग करता है, वह भी अतिक्रमण ही कहलाता है। या तो द्वेष करता है वह भी अतिक्रमण ही कहलाता है। दोनों ही अतिक्रमण हैं और जहाँ अतिक्रमण है, वहाँ प्रतिक्रमण अवश्य होना चाहिए। जहाँ प्रतिक्रमण नहीं है, वहाँ मोक्षमार्ग नहीं है। प्रतिक्रमण शूट ऑन साइट होना चाहिए, तभी वे अतिक्रमण मिटेंगे।

प्रश्नकर्ता : इसमें बहुत पुरुषार्थ करना पड़ता है।

दादाश्री : पुरुष हुए इसलिए पुरुषार्थ कर सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : उसमें से मुक्त रहने के लिए क्या पुरुषार्थ करना चाहिए?

दादाश्री : मन क्या करता है, चित्त क्या करता है, उन्हें देखते रहना, वही उसका पुरुषार्थ है।

उससे सब पिघलेगा

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण करने से कैसी भी दुश्मनी हो, बैरभाव हो या तेजोद्वेष हो तो वह सब पिघल सकता है क्या?

दादाश्री : अतिक्रमण से यह जगत् खड़ा हुआ है। सर्व दुर्गुण

वगैरह सब अतिक्रमण से हुआ है और प्रतिक्रमण से सब धुल जाता है। दो ही चीज़ें हैं ये।

प्रश्नकर्ता : उसके हृदय का परिवर्तन हो जाता है?

दादाश्री : संपूर्णत: हृदय का परिवर्तन हो जाता है और वे आपको घर बैठे ढूँढने आएँगे, सब हो जाता है।

प्रतिक्रमण का अर्थ क्या है? खुद के दोष देखना। यदि औरों के दोष देखोगे तो फिर सब आगे ही आगे ही चलेगा। अत: औरों के दोष देखने ही नहीं है तभी बैर छूटेगा।

तो बंधन चलता ही रहेगा

प्रश्नकर्ता : तो फिर प्रतिक्रमण करने की ज़रूरत ही क्या रही, यदि वह हमें मिलेगा ही नहीं तो?

दादाश्री : प्रतिक्रमण का अर्थ यही है कि 'यह जो कुछ भी हो गया न' उसी का प्रतिक्रमण करते हैं। 'होने वाला है' उसका प्रतिक्रमण नहीं करते हैं। हम जो हो चुका है, उसका प्रतिक्रमण करते हैं अत: इस भाव से हम छूट गए। हम छोड़ते हैं, वे नहीं छोड़ते हैं।

प्रश्नकर्ता : मान लो कि प्रतिक्रमण नहीं करते हैं तो कभी चुकाने भी जाना पड़ सकता है न?

दादाश्री : नहीं, उसे चुकाना नहीं है। हम बंधे हुए हैं, उससे हमें कोई लेना-देना नहीं है। सामने वाले से हमें कोई लेना-देना नहीं है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन हमें चुकाना तो पड़ेगा न?

दादाश्री : यानी कि हम ही फिर से बंधे हुए हैं इसलिए हमें प्रतिक्रमण करना चाहिए। यानी प्रतिक्रमण से ही मिटेगा। इसलिए तो आपको हथियार दिया है न, प्रतिक्रमण!

आलोचना, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान, उनसे सारे हिसाब चुकता

हो जाते हैं। बाकी बैर से तो बैर ही बढ़ता है। विरोध करेंगे तो बैर बढ़ेगा। दूसरों का विरोध करेंगे तो क्या बैर नहीं बढ़ेगा?

प्रश्नकर्ता : बढ़ेगा ही।

दादाश्री : अनुभव करके देखा है क्या? यानी बैर से बैर बढ़ता है इसलिए हमें कैसे भी करके लेकिन माफी माँगकर मुक्त हो जाना है।

निर्लेप इस तरह से रहा जाता है

प्रश्नकर्ता : हम प्रतिक्रमण करके बैर छोड़ दें किन्तु सामने वाला बैर रखे तो?

दादाश्री : भगवान महावीर पर कई लोग राग करते थे और कई लोग द्वेष भी करते थे, उससे महावीर को क्या? वीतराग को कुछ नहीं चिपकता। वीतराग यानी शरीर पर बिना तेल लगाए बाहर घूमते हैं और वे शरीर पर तेल लगाकर बाहर घूमते हैं तो तेल वाले को सारी धूल चिपकेगी। आज्ञा में रहना है न आपको? तो आपको नहीं चिपकेगी इसलिए आज्ञा में रहना है। तेल लगाओगे तो चिपकेगा न?

देह रूपी जो चिपचिपाहट है, उसे तेल कहते हैं। देह रूपी चिपचिपाहट की वजह से उसे यह धूल चिपकेगी, यदि वह चिपचिपाहट ही नहीं है, तो कैसे चिपकेगी? मुझ पर भी राग-द्वेष करते रहते हैं लोग। तारीफ भी करते हैं और किसी को पसंद न आए तो गाली भी देते हैं, आड़ा भी बोलते हैं क्योंकि स्वतंत्र है। अधोगति में जाने की ज़िम्मेदारी उसकी खुद की है। खुद की ज़िम्मेदारी पर इंसान चाहे जो करे। हम मना कैसे कर सकते हैं? मार भी देता है! क्या नहीं करते? नासमझी से क्या नहीं होगा? और समझदार तो नाम तक नहीं लेता। वकील होता है वह गुनाह करने से डरता है या नहीं डरता?

प्रश्नकर्ता : यानी राग-द्वेष जो होते हैं वह व्यक्तिलक्षी होते हैं?

दादाश्री : खुद के ही होते हैं। खुद ही *चीकणा* (गाढ़) करता है, तेल चुपड़कर करता है, उसमें हमें क्या?

फिर भी इतना है कि हमारे घर की कोई व्यक्ति हो तो उसके लिए चंदूभाई से कहना है कि, 'भाई, प्रतिक्रमण करते रहो।' पहले का आमने-सामने घर्षण है, और वह घर्षण परिणाम है, यह अहंकार परिणाम नहीं है। 'यह' ज्ञान परिणाम है। यानी हमें इतना कहना है कि पहले का है उसका प्रतिक्रमण करो।

प्रश्नकर्ता : अब दो लोगों के बीच जो बैर बंधता है, राग-द्वेष होता है, यदि उसमें मैं प्रतिक्रमण करके छूट जाऊँ लेकिन यदि वह व्यक्ति बैर नहीं छोड़े तो क्या अगले जन्म में वह राग-द्वेष का हिसाब चुकाएगा? क्योंकि उसने तो बैर रखा हुआ ही है न?

दादाश्री : ठीक है। उसे हमसे अधिक मात्रा में दु:ख हुआ हो, अत: हम उसके दु:ख को भूल जाते हैं, लेकिन यदि वह अपना अगले जन्म तक नहीं भूलता है तो हमें ही प्रतिक्रमण करना पड़ता है। जितना अधिक मात्रा में हो, समझ में आया न?

प्रश्नकर्ता : वह बैर छूट जाए तो क्या ऐसा कह सकते हैं कि हमारे प्रतिक्रमण की इफेक्टिवनेस (असर) है?

दादाश्री : हाँ, प्रतिक्रमण से उसका बैर कम हो जाएगा। एक बार में एक प्याज़ की एक परत गई, दूसरी परत, उसकी जितनी परतें होंगी उतनी जाएगी। समझ में आया न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, भगवान महावीर पर बहुत से लोग राग-द्वेष करते थे लेकिन उन्हें नहीं छूता था।

दादाश्री : अरे, बेहिसाब राग-द्वेष करते थे, मारते तक थे। मारते भी थे और राग भी करते थे। उन्हें उठाकर ले जाते थे।

प्रश्नकर्ता : नहीं, लेकिन उन्हें असर नहीं होता था।

दादाश्री : उनका तो इसमें उपयोग ही नहीं था न? इस देह में उपयोग ही नहीं था न! इस देह को जो करना है करो। देह का मालिकपना ही नहीं था, उसमें उपयोग नहीं था। भीतर मालिकपना तो नहीं था लेकिन उपयोग भी नहीं था।

इस टेबल को यदि तू ऐसे तोड़ डाले, मारे तो उसे (टेबल को) कोई लेना-देना नहीं है। 'यू आर रिस्पॉन्सिबल' (तू ज़िम्मेदार है) उसी तरह यह देह उन्हें इसके जैसे अलग दिखा था।

'स्मृति' में नहीं लाना है फिर भी आ जाता है, वह 'प्रतिक्रमण दोष' बाकी है इसलिए।

उसमें नहीं याद आता भूतकाल

प्रश्नकर्ता : कल सत्संग में ऐसी बात निकली थी कि भूतकाल याद मत करो और वर्तमान में रहो। अब मुझे हुआ कि भूतकाल याद नहीं करना है लेकिन भूतकाल का ही मन और चित्र सामने एकदम तादृश्य खड़ा हो जाता है। इसलिए भूतकाल तो ऐसे डंक मारता है कि रोम-रोम में भूतकाल खड़ा हो जाता है। तो ऐसे लगता है कि भूतकाल भूलें कैसे?

दादाश्री : ऐसा है न कि आपकी यह क्रिया बैर के *निकाल* के लिए चलती है। आपको तो भूतकाल दिखेगा तो प्रतिक्रमण चालू हो जाएगा। अत: भूतकाल याद किए बिना तो आपको वह हिसाब नहीं दिखेंगे न! बाकी ऐसा, आपके जैसा किसी किसी को ही होता है न! ऐसा सभी को नहीं होता इसलिए औरों को 'वर्तमान में रहो' ऐसा कहते हैं।

भूतकाल को तो बुद्धिशाली व्यक्ति हो, जो 'ज्ञान' नहीं समझता हो, वह भी भूतकाल को याद नहीं करता। क्यों भूतकाल को याद नहीं करना है? कि जिसका उपाय नहीं है, उसका संकल्प नहीं है। भूतकाल यानी बिना उपाय की बात। इसलिए हम क्या कहते हैं कि ज्ञान मिला है तो भूतकाल को कुरेदना (याद करना) नहीं। भूतकाल को मूर्ख भी याद नहीं करता है तो आपको तो यह 'ज्ञान' मिला है और भविष्यकाल 'व्यवस्थित' को सौंप दिया है। वर्तमान में रहो, व्यवस्थित पर तो आपको विश्वास हो गया है न! तो फिर भविष्य के लिए आपको कुछ भी करना बाकी नहीं रहा। यह भूतकाल जो आप कुरेदते हो, वह

आपकी पिछली फाइलों का *निकाल* करते हो तो उसे भूतकाल कुरेदना नहीं कहा जाएगा।

प्रश्नकर्ता : हाँ, अब यह ठीक है।

दादाश्री : ये दूसरे लोगों के अलग बातों में व्यर्थ में ही भूतकाल खोदते हैं। फाइलों का *निकाल* करने के लिए तो भूतकाल खोदना पड़ता है। क्योंकि यदि हमें दुकान खाली करनी है तो हमें क्या करना चाहिए? भरा हुआ माल बेच देना चाहिए और नया माल नहीं खरीदना चाहिए। फिर भी इतना विवेक रखना है कि कोई माल नहीं बिक रहा हो तो, शक्कर खत्म हो गई हो तो वापस दूसरी नई लानी पड़ेगी। यानी कि यह दुकान विवेकपूर्वक खाली करनी है।

प्रश्नकर्ता : यदि भूतकाल को याद नहीं करना है, कहेंगे तो फिर प्रतिक्रमण करने की क्या ज़रूरत है?

दादाश्री : जो प्रतिक्रमण करता है उसे भूतकाल से कोई परेशानी नहीं है। प्रतिक्रमण यानी हम अतिक्रमण को खत्म करके उसका *निकाल* करते हैं। भूतकाल नहीं खोदना यानी क्या? कि परसों किसी के साथ बखेड़ा हो जाए तो उसे मन में रखे रहे लेकिन यदि प्रतिक्रमण करने के लिए याद आए तो उसमें हर्ज नहीं है। किन्तु मन में नहीं रखना है, उसका हमें बोझा रहना चाहिए। ऐसा हमें नहीं करना चाहिए। भूतकाल खोदना यानी भूतकाल की बात याद करके कोई व्यक्ति आज रोता है वह। परसों इकलौता बेटा मर जाए और यदि आज उसे याद करके रोए तो उसे भूतकाल खोदना नहीं कहेंगे क्या?

प्रतिक्रमण तो करने ही पड़ेंगे न! और प्रतिक्रमण तो भूतकाल में जो हो चुके हैं उसके ही होंगे न? भविष्यकाल के लिए तो प्रत्याख्यान होते हैं। प्रत्याख्यान भले ही हो जाए या करना पड़े लेकिन भविष्यकाल पूरा व्यवस्थित के अधीन सौंप देते हो। फिर आपको वर्तमान में रहना चाहिए। बस, हमारा विज्ञान इतना ही कहता है, 'वर्तमान बर्ते सदा सो ज्ञानी जगमांही'। अत: यह 'ज्ञान' के बाद आपको निरंतर वर्तमान ही

होना चाहिए। जिस समय जो संयोग है वहाँ वर्तमान में ही रहना है, एक क्षण भी वर्तमान न जाए, 'हम' निरंतर वर्तमान में ही रहते हैं। 'हम' हमारे स्वरूप में रहते हैं और यह 'पटेल' वर्तमान में रहते हैं निरंतर!!!

प्रतिक्रमण करने के लिए तो भूतकाल को याद करना पड़ता है, प्रतिक्रमण तो जितना कुछ हम भूल गए हों तो उसे वापस याद करके, यदि फिर से आज उसका अतिक्रमण हो जाए तो उसे याद करके करना पड़ता है। वह तो चलेगा ही नहीं न? यह प्रतिक्रमण का मुख्य मार्ग है अपना! और 'ज्ञान' लेने के बाद, आत्मा प्राप्त होने के बाद प्रतिक्रमण नहीं रहते। लेकिन यह अक्रम मार्ग है यानी कर्म भुगते बिना ही आत्मा प्राप्त किया है।

पटाखे तो फूटते ही रहेंगे

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण कर रहे हों, उसी समय अतिक्रमण हो जाए तो क्या करें?

दादाश्री : फिर थोड़ी देर बाद करना। हम पटाखे शांत करने गए, वहाँ फिर एक और पटाखा फूटा तो हमें वापस आ जाना है। फिर थोड़ी देर बाद बुझाएँगे। वह तो पटाखे फूटते ही रहेंगे, उसका नाम संसार।

प्रतिक्रमण करते-करते अतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : कई बार ऐसा होता है कि प्रतिक्रमण करने बैठे हों तो प्रतिक्रमण करते-करते डबल अतिक्रमण हो जाते हैं, बल्कि उसका दोष और ज़्यादा दिखने लगता है तो प्रतिक्रमण एक तरफ रह जाता है और अतिक्रमण शुरु हो जाते हैं तो वह कर्म का कैसा उदय है?

दादाश्री : ऐसा यदि हो जाए तो हम बंद कर देंगे, और फिर से देखेंगे, बंद करके फिर से अपना (देखना) जारी रखना।

कईयों को तो प्रतिक्रमण करने से बहीखाता साफ हो जाता है।

कईयों को बहुत प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं तब जाकर बहीखाता साफ होता है। क्योंकि बहीखाता बहुत चित्रित किया होता है।

प्रश्नकर्ता : उसका अर्थ यह हुआ कि बार-बार प्रतिक्रमण करें?

दादाश्री : बस, यही पुरुषार्थ है!

प्रश्नकर्ता : यानी इस तरह से प्रतिक्रमण करते-करते जो अतिक्रमण शुरू हो जाता है, और उस चिपचिपाहट को पकड़ लेते हैं तो उसमें गलत तो नहीं हो रहा है न!

दादाश्री : नहीं, तब हमें बंद कर देना है। जैसे खीर को हमें उबालनी तो है ही, अब वह उफन कर नीचे गिर जाए तो लकड़ियाँ ज़रा बाहर खींच लेना, फिर से दूसरी बार लकड़ियाँ डालना और तब भी यदि बंद नहीं हो तो ऐसा कहना कि वह तो महान उपकारी है, ऐसे में फिर से, ऐसे गड़बड़ में कहाँ पड़ता है? वह तो महान उपकारी है।

प्रश्नकर्ता : महान उपकारी बोलने से थोड़ी देर शांत रहता है। लेकिन फिर ज़रा दूर जाते हैं कि चढ़ बैठता है।

दादाश्री : लेकिन फिर भी उतना *चीकणा* नहीं होगा। यह भी आश्चर्य है न! यह इतना ठिकाने पर आया है, वह भी अच्छा है न? ज़बरदस्त कषाय है और हिसाब बहुत है, अपार।

वह क्या प्रतिक्रमण या अतिक्रमण?

प्रश्नकर्ता : मुझे एक व्यक्ति का प्रतिक्रमण दो-दो, तीन-तीन दिनों तक चलता है। मेरा खत्म ही नहीं होता है। तब मैं इतना थक जाता हूँ, बेहद थक जाता हूँ, तब मुझे लगता है कि छोड़ अब, ये प्रतिक्रमण ही नहीं करने हैं मुझे। यह तो प्रतिक्रमण है या अतिक्रमण है, ऐसा लगता है। लेकिन इतना है कि उसके बाद शांति प्राप्त कर सकते हैं।

दादाश्री : प्रतिक्रमण करते ही ज़बरदस्त शांति मिलती है। कभी चखी तक नहीं हो ऐसी शांति प्राप्त होती है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसे तीन दिनों तक किसी एक का ही प्रतिक्रमण चलता रहे तो क्या करें?

दादाश्री : वह अधिक उलझा हुआ है। बहीखाता बड़ा है इसलिए लेकिन इतने बड़े बहीखाते वाले मुकरते नहीं है लेकिन मुकर गए वह भी अजायबी है न!

प्रश्नकर्ता : बस, इतना जानना है कि मैं गलत रास्ते पर तो नहीं हूँ न?

दादाश्री : नहीं, आप तो गलत रास्ते पर कहाँ हों? आप तो सेफसाइड वाले रास्ते पर हो।

प्रश्नकर्ता : बस, हमें उतनी शक्ति दीजिए।

दादाश्री : हाँ, वह शक्ति हम देते ही रहते हैं। लेकिन अब जब यहाँ आओगे तब बढ़ेगी।

मुझे विश्वास हो गया था न, इसलिए उनमें ध्यान नहीं देता हूँ। जब तक सेफसाइड नहीं हुई थी तब तक ध्यान रखा। अब पूरी सेफसाइड है, भविष्य में काम निकल जाएगा।

धोना है, बैर की चिपचिपाहट अनुसार

प्रश्नकर्ता : हमें किसी जीव से बैर हो, उसका प्रतिक्रमण किया लेकिन उसी जीव का क्यों प्रतिक्रमण करना पड़ता है?

दादाश्री : हाँ, लेकिन प्रतिक्रमण करना है। इतना बड़ा जो दोष था, तो प्रतिक्रमण करने से एक परत गई, दूसरी लाखों परतें बची हैं। उनमें से परतें निकलती जाती हैं यानी जब तक खत्म नहीं हो जाती तब तक प्रतिक्रमण करना है। किसी व्यक्ति के महीने, दो महीने तक प्रतिक्रमण करने पर हमारा सारा (हिसाब) खत्म हो जाता है। हिसाब चुकता हो जाता है। किसी व्यक्ति से ज़िंदगीभर हिसाब चलता रहता है। ग्रंथि बहुत बड़ी होती है। यह प्याज़ होती है न, तो हम ऐसा करते हैं तो उसकी परत उड़ जाती है लेकिन पुनः प्याज़ ही प्याज़ दिखती है न!

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : उसी तरह इसकी परतें होती हैं सारी। लेकिन एक बार प्रतिक्रमण किया तो एक परत जाती ही है। यानी आपको दूसरी बार नहीं करना पड़ेगा। दोष की एक परत के लिए एक ही बार होता है।

स्वयं ही छूटना है, स्वबंधन से

इस एक्सिडेन्ट में वे बच जाए ऐसा नहीं था, फिर भी बच गए। उस एक्सिडेन्ट में बच जाते हैं लेकिन कषाय मार्ग में जो ज़बरदस्त एक्सिडेन्ट होता है, उसमें बच गए और कषाय मार्ग से रहित हो गए।

प्रश्नकर्ता : और यदि मैं इस कषाय मार्ग में आगे बढ़ूँगा तो एक्सिडेन्ट अवश्य होगा, ऐसा उसे फिट हो गया है।

दादाश्री : अवश्य होगा, ऐसा फिट हो गया।

प्रश्नकर्ता : यानी खुद प्रतिक्रमण करता रहेगा तो खुद का निबेड़ा आएगा। उन्हें ऐसा लगता है कि इन भाईओं को, दूसरे सभी व्यक्तियों को उन सब को जितना खुद के भीतर उल्टा खड़ा होता है, वैसा ही उन लोगों को भी होता है कि इसे फँसाओ बराबर, तो अब यदि मैं प्रतिक्रमण करता हूँ तो उन लोगों की मेरे लिए जो अंटी है, उसका क्या होगा? तो क्या मुझे फिर से बंधन में डालेंगे?

दादाश्री : नहीं, आप अपने बंधन से छूट जाओ। वह खुद के अपने बंधन से छूटेगा। नहीं तो वह बंधा का बंधा ही रहेगा। यह तो न्याय है। भगवान महावीर का न्याय। वर्ना भगवान महावीर छूटते ही नहीं न! कोई न कोई बंद रह जाता और भगवान महावीर छूट ही नहीं पाते। आप जहाँ-जहाँ बंधे हो, वहाँ से छूट जाओ।

प्रश्नकर्ता : यानी खुद को खुद का छोड़ देना है। खुद को प्रतिक्रमण से खुद के बंधन छोड़ देने हैं?

दादाश्री : छोड़ देने हैं।

बैरी के प्रति नहीं एक भी गलत विचार

वह टेढ़ा चले, अपमान करे फिर भी हम रक्षण करेंगे। एक भाई मेरे विरोधी बन गए थे। मैंने सब से कहा, एक अक्षर भी गलत नहीं सोचना। यदि गलत विचार आ जाए तो प्रतिक्रमण कर लेना। वे अच्छे इंसान हैं, लेकिन वे लोग किसके अधीन हैं? कषाय के अधीन हैं, आत्मा के अधीन नहीं हैं वे। जो आत्मा के अधीन होगा, वह इस तरह पलट के जवाब नहीं देगा। यानी कि कषाय के अधीन इंसान जो भी गुनाह करे, वह क्षमा योग्य है। वह स्वयं के अधीन ही नहीं है बेचारा! जब वह कषाय करे, तब हमें डोरी शांत रख देनी है। वर्ना तब सारा ही उल्टा कर देगा। कषाय के अधीन यानी उदयकर्म के अधीन। जैसा उदय आएगा, वैसा घूमेगा।

समत्वयोग, पार्श्वनाथ का

प्रश्नकर्ता : अब बात क्या थी कि पार्श्वनाथ भगवान को तो पता भी नहीं था और उसने बैर बाँध लिया था। उस बैर की वजह से हमेशा उसका इनसे मिलना होता रहता था, इसलिए वह इनका कुछ न कुछ नुकसान करता रहता था। तो कहते हैं, ऐसा होता है न? खुद को पता भी न चला और वह बैर बाँधता रहा और फिर वह दस जन्मों तक चला।

दादाश्री : वह तो जितना नुकसान किया है उतना करेगा। अत: अब किसी का नुकसान नहीं करना।

प्रश्नकर्ता : उसमें पार्श्वनाथ भगवान को पता भी नहीं था न?

दादाश्री : उन सभी को पता कैसे चलता? वह किसका फल दे रहा है? अत: हमारा दिया हुआ ही वापस दे रहे हैं, यह निश्चित है। पार्श्वनाथ भगवान को इतना तो पता चलता था न कि मेरा दिया हुआ ही वापस दे रहे हैं ये लोग। यदि अंदर बेचैनी बढ़ती है तो टाइम भी बढ़ जाता है, मुद्दत खत्म होने में।

पार्श्वनाथ भगवान को बेचैनी बढ़ी नहीं थी इसलिए दस जन्मों में खत्म हो गया।

प्रश्नकर्ता : फिर भी दस जन्मों तक चला, वह क्या कम कहलाएगा?

दादाश्री : ये दस जन्म हैं, वे कितने जन्मों के आधार पर दस जन्म हैं? वह जानता है तू?

प्रश्नकर्ता : वह कुछ पता नहीं है।

दादाश्री : एक बाल के बराबर। दस जन्म एक बाल जितने भी नहीं थे।

प्रश्नकर्ता : ओहो! अनंत जन्मों के सामने तो कुछ भी नहीं है। इसलिए उन्होंने हर एक जन्म में वह समता बनाए रखी थी।

दादाश्री : तब जाकर खत्म हुआ। पहले दो-तीन जन्मों तक ज़रा कच्चा पड़ जाता है, चिढ़ जाता है, इसलिए बढ़ जाता है। यह जगत् ऐसा नहीं है कि एकदम समता रहे। ज्ञानियों से भी नहीं रहती। यह तो, 'अक्रम विज्ञान' अलग तरह का है, इसलिए रह सकती है।

❖❖❖❖❖

[17]

वारण है 'मुख्य' कारण अभिप्राय का

एक जन्म के ही प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण करने का जो कहा है, वे कदम-कदम पर, रात-दिन, निरंतर प्रतिक्रमण करे, तो एक जन्म के दोषों के ही प्रतिक्रमण करने हैं न?

दादाश्री : प्रतिक्रमण यानी क्या कि हमारा अभिप्राय नहीं होना चाहिए। प्रतिक्रमण यानी कि अपना अभिप्राय 'चेन्ज' (बदला) हो गया है। अब अपना अभिप्राय नहीं रहा। कोई गलत कार्य हो गया, उस कार्य में हमारा जो अभिप्राय था कि यह सही है। वह सहीपना छोड़ने के लिए प्रतिक्रमण करना है कि हम इसकी माफी माँगते हैं, और अब फिर कभी नहीं करेंगे। यानी प्रतिक्रमण, सिर्फ अभिप्राय छोड़ने के लिए ही है!

प्रश्नकर्ता : लेकिन जब से आप मिले तब से अभिप्राय तो छूट ही गए हैं।

दादाश्री : वह ठीक है, लेकिन फिर भी प्रतिक्रमण तो करना ही चाहिए।

प्रश्नकर्ता : कोई पूर्वग्रह या अभिप्राय बहुत पक्का हों, तो क्या उसका बार-बार प्रतिक्रमण करने से धुल जाएगा?

दादाश्री : हाँ, धुल जाएगा।

प्रश्नकर्ता : जितनी बार अभिप्राय या पूर्वग्रह खड़ा होता है तो क्या उतनी बार उसका प्रतिक्रमण करना है?

दादाश्री : प्रतिक्रमण करते रहेंगे न तो धुल जाएगा सब। पूर्वग्रह क्यों होता है? तब कहते हैं, 'उसी की लीपापोती करते रहें'। अतिक्रमण ही करते रहे तो अब प्रतिक्रमण करेंगे तो धुल जाएगा। अतिक्रमण किया, उसी की लीपापोती करते रहे इसलिए पूर्वग्रह हो जाता है। इतने सारे लोग हैं यहाँ, यही क्यों मिला?

चोर को क्षमा कर सकते हैं, लेकिन उसका संग नहीं रख सकते

जब हमारे गुस्से से सामने वाले को दुःख पहुँचे या सामने वाले को कोई नुकसान पहुँचे, तब हमें चंदूभाई से कहना है कि 'हे चंदूभाई प्रतिक्रमण कर लो, माफी माँग लो'। सामने वाला यदि सीधा नहीं है और हम उसके पैर पड़ें तो बल्कि वह हमें थप्पड़ लगाएगा कि 'देखो, अब ठिकाने आया! बड़े आए ये लोग ठिकाने पर लाने वाले!' ऐसे लोगों से माथापच्ची कम कर देना। लेकिन उसका गुनाह तो माफ कर ही देना चाहिए। वह चाहे किसी भी तरह के अच्छे या बुरे भाव से आपके पास आए लेकिन उसके साथ कैसा रखना है, वह आपको देखना है। सामने वाले की प्रकृति टेढ़ी हो तो टेढ़ी प्रकृति वाले से माथापच्ची नहीं करनी चाहिए। प्रकृति का ही जो चोर है, हम दस सालों से उसकी चोरी देख रहे हैं, और वह आकर हमारे पैर छू जाए तो हमें उस पर कितना विश्वास रखना चाहिए? विश्वास नहीं रखना चाहिए। चोरी करे तो हमें माफ कर देना है कि, 'जा, अब तू मुक्त। हमें तेरे लिए मन में कुछ नहीं रहेगा', लेकिन उस पर विश्वास नहीं रख सकते और फिर उसका संग भी नहीं रखना चाहिए। इसके बावजूद यदि संग रखते हो और विश्वास नहीं रखा तो गुनाह है। वास्तव तो संग न रखो और यदि संग रखो तो उसके लिए पूर्वग्रह नहीं रहना चाहिए। जो होगा वही सही, ऐसा रखना।

अमोघ शस्त्र, अभिप्रायों के सामने

प्रश्नकर्ता : फिर भी उल्टा अभिप्राय बन जाए तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : यदि बन जाए तो माफी माँगनी है। जिसके प्रति उल्टा अभिप्राय बन गया है, उसी व्यक्ति से माफी माँगनी है।

प्रश्नकर्ता : अच्छा अभिप्राय देना चाहिए या नहीं?

दादाश्री : कोई भी अभिप्राय नहीं देना है और यदि दे दिया जाए तो फिर हमें वह मिटा देना है। आपके पास मिटाने का साधन है, अमोघ शस्त्र है। आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान का 'अमोघ शस्त्र'।

प्रश्नकर्ता : जहाँ हमें राग-द्वेष नहीं है, कोई स्वार्थ नहीं है, किसी व्यक्ति को टच नहीं होता हो, ऐसे बिनअंगत अभिप्राय दे दिए हों तो उसका प्रतिक्रमण करना चाहिए?

दादाश्री : बिना बात के अभिप्राय देने की आवश्यकता ही नहीं है और देने हों तो प्रतिक्रमण करना पड़ेगा। वह अंगत हो या बिनअंगत हो, आपके हाथ में अभिप्राय देने का कोई राइट (अधिकार) ही नहीं है। वह खुद का स्वच्छंद है इसलिए हमें खुद ही उसे थोड़ा मिटा देना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : जैसे कि हिटलर ने समाज का बहुत अहित किया, ऐसा हम अभिप्राय दें तो उसमें कहाँ कुछ गलत है?

दादाश्री : हमें हाथ ही नहीं डालना चाहिए। बिना प्रयोजन के हाथ नहीं डालना। हिटलर से हमें कोई लेना नहीं-देना नहीं। फिर भी बोल दें, वह व्यवस्थित, तो फिर उसे हमें धो देना है। शब्द तो निकल जाते हैं। वह तो हम भी कह देते हैं कि भाई रोटी अच्छी है, आम अच्छा है। ऐसा बोलते हैं लेकिन फिर धो भी देते हैं। हम किसी संयोगवश किसी की मदद करने हेतु कहते हैं कि अच्छा बनाया है। तब फिर हम धो डालते हैं। जितना अभिप्राय दिया वह तुरंत धो डालते हैं। धोने का साधन आ गया न!

प्रश्नकर्ता : वह कौन सा साधन है धोने का?

दादाश्री : प्रतिक्रमण।

प्रतिक्रमण से बदलता है अभिप्राय

आप सामने वाले के जितने गुण देखते हो और हमारा उस पर अभिप्राय बैठा कि यह गुण तो उत्तम है। यानी खुद में वे गुण उत्पन्न हो जाते हैं। अभिप्राय बदलना चाहिए। सामने वाले का दोष दिखा कि तुरंत खुद में दोष खड़ा हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : किसी में गलती से भी दोष दिख जाए तो तुरंत प्रतिक्रमण कर लेना है। फिर माथापच्ची नहीं।

दादाश्री : हाँ, प्रतिक्रमण कर लेना है। उसके जैसा एक भी उपाय नहीं है।

आपको यदि मगनभाई के लिए खराब विचार आएँ तो आपके चेहरे पर उसका असर रहता है तब मगनभाई उन भावों को पढ़ लेते हैं। तो उसके लिए क्या करना है? कहना कि 'मगनभाई मेरे बहुत उपकारी हैं, उपकारी हैं'।

ऐसे निकालो गाढ़ अभिप्राय

प्रश्नकर्ता : गाढ़ अभिप्राय कैसे निकालें?

दादाश्री : जब से निश्चित किया कि निकालना है, तब से वे निकलने लगेंगे। जो बहुत गहरे हैं उन्हें रोज़ दो-दो घंटे खोदेंगे तो वे खत्म हो जाएँगे। आत्मा प्राप्त होने के बाद, पुरुषार्थ धर्म प्राप्त किया और पुरुषार्थ धर्म पराक्रम तक पहुँच सकता है। जो किसी भी तरह की *अटकण* (जो बंधन रूप हो जाए) को उखाड़कर फेंक सकता है। लेकिन एक बार जानना पड़ेगा कि यह इस वजह से उत्पन्न हुआ है, फिर उसके प्रतिक्रमण करना।

अब आप अभिप्राय देते हो?

प्रश्नकर्ता : नहीं, अब तो बिल्कुल भी नहीं।

दादाश्री : तो बस, निबेड़ा आ गया।

सचेत रहो, अभिप्राय के सामने

अभिप्राय नहीं बने इतना ज़रा देखना। अधिक से अधिक ध्यान रखना है अभिप्राय का। और कोई दिक्कत नहीं है। किसी का देखने से पूर्व ही अभिप्राय बन जाता है, यह संसार जागृति इतनी ज़्यादा है कि अभिप्राय बन जाता है। अत: अभिप्राय बनते ही हमें छोड़ देने हैं। अभिप्राय के प्रति बहुत सचेत रहने की ज़रूरत है। यानी अभिप्राय बनेंगे तो सही, लेकिन बनते ही हमें तुरंत छोड़ देने हैं। प्रकृति अभिप्राय बनाती रहती है और प्रज्ञाशक्ति अभिप्राय से छुड़वाती रहती है। प्रकृति अभिप्राय बनाती रहेगी, कुछ समय तक तो बनाती ही रहेगी, लेकिन हमें उसे छोड़ते जाना है। अभिप्राय से ही यह सारी झंझट हुई है।

यदि हमने ऐसा अभिप्राय बना लिया हो कि ये भाई तो ऐसे हैं तो जब वे भाई यहाँ पर आएँगे तब वे हमारा मन बदला हुआ देखेंगे। हम में उन्हें समता नहीं दिखाई देगी, तो मुझे देखने से पहले ही वह समझ जाते हैं कि दादा में कुछ बदलाव लग रहा है। अभिप्राय से ऐसा सब असर होता है और यदि अभिप्राय छोड़ दिया तो कुछ भी नहीं। हमें किसी के प्रति भी अभिप्राय नहीं है इसलिए हमें निरंतर समता रहती है। प्रकृति है इसलिए अभिप्राय तो बन ही जाएँगे, निरंतर बनेंगे लेकिन बनने के बाद हमें अभिप्राय छोड़ते रहना हैं।

प्रश्नकर्ता : जो अभिप्राय बन जाते हैं, उन्हें छोड़ें कैसे?

दादाश्री : अभिप्राय छोड़ने के लिए हमें क्या करना पड़ेगा कि 'इस भाई के लिए मेरा ऐसा अभिप्राय बन गया। यह गलत है। हम ऐसा कैसे कर सकते हैं?' ऐसा कहने से वह अभिप्राय छूट जाएगा। हम ज़ाहिर करें कि, 'यह अभिप्राय गलत है, इस भाई के लिए ऐसा अभिप्राय कैसे बना सकते हों? यह आप क्या कर रहे हो?' इस तरह उसने उस अभिप्राय को गलत कहा तो वह छूट जाएगा।

गुणा होते ही करो भाग

ऐसा है कि किसी रकम को सात से गुणा किया हो तो सात से

ही भाग करना पड़ता है तो वही की वही रकम आ जाती है। हमें रकम वही की वही रखनी है न? हम जानते हैं कि यह किस रकम से गुणा हो गया है, उतनी ही रकम से हमें भाग करना है। हमें पता चलना चाहिए कि यह तो बहुत बड़ी रकम से गुणा हो गया है तो हमें उसका बड़ी रकम से भाग कर देना है। यानी गुणा तो होते ही रहेंगे लेकिन हमारे पास भाग रूपी हथियार है। हम पुरुष हुए हैं और पुरुषार्थ हमारा धर्म है! सामने वह दिखा कि अभिप्राय दिए बिना नहीं रहेंगे, यानी अभिप्राय बनते ही हमें तुरंत इस तरह भाग लगा देना है 'यह अच्छी बात नहीं है, ऐसा किसलिए?' ताकि छूट जाएँ। बाकी, अभिप्राय तो बन ही जाएँगे। यदि अभिप्राय बन जाएँगे तो वे फल देंगे, उसका फल देकर ही जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : उसका फल देकर जाएगा यानी वेदना देकर जाएगा?

दादाश्री : फल देगा यानी क्या कि आप किसी के लिए अभिप्राय बाँधोगे तो उसके मन पर उसकी असर कुदरती रूप से होता ही रहता है। तो सामने वाला भी समझ जाता है कि उन्हें मेरे लिए ऐसा है। लेकिन हम यदि वे अभिप्राय तोड़ दें तो हमारे मन पर उसका असर नहीं होगा। अभिप्राय दिया कि तुरंत ही सात से भाग कर दें तो असर होने से पहले ही टूट जाएगा। वर्ना कोई भी चीज़ व्यर्थ नहीं जाती है और उसका असर हुए बिना नहीं रहता। सभी का हमारे साथ अलग-अलग वर्तन रहता है लेकिन हमें अभिप्राय नहीं रहता। हम जानते हैं कि यह तो ऐसा ही होगा। कलियुग में सास ऐसी ही होगी, ऐसा बहू जानती होगी न? या नहीं जानती होगी? इसलिए उसमें क्या अभिप्राय बाँधना? कलियुग है तो ऐसा ही होगा।

ऐसा है, मनपसंद चीज़ मिले तो उसका नाम पुण्य और नापसंद चीज़ मिले तो उसका नाम पाप! यानी पाप के उदय में हमें नापसंद चीज़ मिलती हैं, नापसंद संयोग मिलते हैं, उसमें उदय किसका है? पाप का। अब वह कड़वाहट देगा, लेकिन लंबा नहीं चलेगा लेकिन यदि सास के लिए अभिप्राय बन गया तो सास पर उसका असर होगा और वह लंबा चलेगा। इसलिए किसी के प्रति अभिप्राय तो बाँधना ही नहीं है क्योंकि वह आत्मा ही है, तो उसके लिए अभिप्राय बाँधे ही क्यों? वह आत्मा ही है, इसलिए बाहर का कुछ देखना ही नहीं है।

चीज़ों से नहीं छूटना है, छूटना है अभिप्रायों से

प्रश्नकर्ता : समझ में तो बहुत कुछ है लेकिन उस अनुसार होता नहीं है, उसका क्या?

दादाश्री : नहीं हो तो उसमें हर्ज नहीं है। समझ की ही ज़रूरत है। समझ अर्थात् अभिप्राय अलग हुआ और वह उससे छूट गया। चंदूभाई कोई भी गलत कार्य कर रहे हों और वे कहें कि मुझे यह काम पसंद नहीं है, मुझे ऐसा नहीं करना है, वहीं से अभिप्राय अलग हो गया और ऐसा अभिप्राय हमेशा रहे तो वह उससे छूटेगा ही। अभिप्राय से ही मुक्त करना है, चीज़ों से मुक्त नहीं करना है। चीज़ें तो यदि अपने आप ही छूट जाएँ तो ठीक है लेकिन उन्हें निराधार बना देना है यानी कि अभिप्राय से मुक्त होना है। इसलिए हमने प्रतिक्रमण दिया है न! प्रतिक्रमण अर्थात् अभिप्रायों से मुक्त हो जाएगा। उनका यथार्थ प्रतिक्रमण करने से अभिप्रायों से मुक्त हो जाएगा और अब, 'पश्चाताप भी करता हूँ'।

प्रतिक्रमण नहीं किया तो आपका अभिप्राय रह जाता है, तो आप बंधन में आ जाते हो। जो दोष हुआ उसमें आपका अभिप्राय रह जाता है और प्रतिक्रमण किया तो आपका वह अभिप्राय टूट गया। अभिप्रायों से मन खड़ा है। मुझे किसी भी व्यक्ति पर लेशमात्र अभिप्राय नहीं है क्योंकि एक बार देखने के बाद दूसरी बार मैं अभिप्राय बदलता नहीं हूँ। कोई व्यक्ति यदि संयोगवशात् चोरी करे और मैं खुद उसे देख लूँ फिर भी मैं चोर नहीं कहूँगा क्योंकि संयोगवशात् है। जगत् के लोग जो पकड़ा जाता है उसे चोर कहते हैं। संयोगवशात् था या कैसे? या हमेशा से चोर था? ऐसी जगत् के लोगों को कुछ नहीं पड़ी है। मैं तो हमेशा के चोर को चोर कहता हूँ और संयोगवशात् के चोर को मैं चोर नहीं कहता। यानी मैं तो एक अभिप्राय देने के बाद दूसरा अभिप्राय देता ही नहीं। किसी भी व्यक्ति के लिए मैंने आज तक नहीं बदला है।

'उससे' टूटती है सहमति

प्रश्नकर्ता : अब प्रतिक्रमण तो जो अभिप्राय दे देते हैं, उसके ही करने पड़ते हैं न?

दादाश्री : वह जो अभिप्राय दे दिया, वह पहले के हिसाब के कारण दिया है। अब अगर प्रतिक्रमण करते हैं तो हम फिर से अभिप्राय नहीं बनाते। उसी तरह यदि कहे, 'इस बात से हम सहमत नहीं है', तब छूट जाएगा। पहले का बना हुआ अभिप्राय इस समय छूट जाएगा। और ऐसा समझ में आ गया तो कुछ भी दखल नहीं रहता। आपसे भूल का प्रोटेक्शन (रक्षण) हो जाए तो उसे सुधार लेना। हाँ, और कुछ नहीं करना है। यदि भूल हो जाए, किसी को नुकसान पहुँचे ऐसा हो जाए तब प्रतिक्रमण कर लिया तो हो चुका। उसका निबेड़ा आ गया।

प्रतिक्रमण का अर्थ क्या है? यह जो भूल हो रही है उसमें मैं सहमत नहीं हूँ। वह प्रतिक्रमण इट सेल्फ प्रुव (खुद ही साबित) करता है कि इसमें मैं सहमत नहीं हूँ। पहले उस दोष में सहमत था कि ऐसा ही करना चाहिए। अब उसमें सहमत नहीं हूँ। अभिप्राय बदला यानी हो गया। यह जगत् अभिप्राय से ही कायम है।

पता तो चलना ही चाहिए तुरंत

तेरा तो सब सहमत होने से चलता है न? सहमत होने से चलता है?

प्रश्नकर्ता : आज का अभिप्राय अलग हो जाता है।

दादाश्री : आज का तेरा अभिप्राय कहाँ पर अलग आता है? वहाँ उस भाई से तो लड़ रहा था न!

प्रश्नकर्ता : फिर बाद में अभिप्राय अलग हुआ था।

दादाश्री : लेकिन कितने समय बाद? छ:-आठ महीने तक अजागृति? जागृति एक-दो घंटे में आ जानी चाहिए। लेकिन माल ऐसा कचरे जैसा भरा है। मैं क्या कहना चाहता हूँ कि कितना कचरा भरा है। क्या तुझे ऐसा नहीं लगता?

प्रश्नकर्ता : सही है।

दादाश्री : कितने घंटे में पता चलना चाहिए कि यह गलत है?

प्रश्नकर्ता : दो घंटे में!

दादाश्री : दो घंटे-चार घंटे या बारह घंटे में भी पता चलना चाहिए कि यह गलत हो गया जबकि हम तुमसे कहते हैं फिर भी तुम्हें पता नहीं चलता। अभी भी कितनी ही बातों में हो जाता है लेकिन तुम्हें पता नहीं चलता। मुझे पता चल जाता है कि यह टेढ़ा चला। हमें पता चलता है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : चलता है न!

दादाश्री : फिर भी चलने देते हैं और फिर हम जानते हैं कि अभी ठीक हो जाएगा।

ज़रूरत है हिंसकभाव के संपूर्ण अभाव की

इस संसार को तो ज़्यादा समझने जैसा है, हम जब बोलते हैं न तब साथ-साथ यह अभिप्राय, दोनों अलग-अलग रहते हैं। दोनों अभिप्राय साथ ही चलते हैं।

हम सब को हिंसक भाव तो होना ही नहीं चाहिए। यदि कोई व्यक्ति मार डाले तब भी ऐसा नहीं होना चाहिए कि वह गलत है।

प्रश्नकर्ता : ऐसा होना ही नहीं चाहिए कि वह गलत है।

दादाश्री : यदि वह मार दे, तब भी हमें ऐसा नहीं कहना चाहिए कि 'इसने मेरी हिंसा की है'। मेरा उदयकर्म और उसका उदयकर्म, यह तो दोनों का उदयकर्म आमने-सामने लड़ रहा है। मैं जानने वाला हूँ, वह भी जानने वाला है। भले ही वह जानने वाला नहीं रहता है, उसने शराब पी है फिर भी मुझे लेना-देना नहीं है लेकिन मैं तो जानने वाला हूँ।

पुद्‌गल परमाणु क्या कहते हैं?

बहुत जागृत हो, उन्हें प्रतिक्रमण करने की ज़रूरत नहीं हैं लेकिन जिन्हें जागृति ज़रा कम हैं, उन्हें प्रतिक्रमण करने के लिए कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : यदि जागृति कम हो तब क्या प्रतिक्रमण करना ही पड़ेगा?

दादाश्री : हाँ। अभिप्राय बदलने के लिए कि 'यह अभिप्राय मेरा नहीं है'। हम इस अभिप्राय में नहीं हैं। अभिप्राय से बंधे हुए थे लेकिन अब वह अभिप्राय हमने छोड़ दिया। अब हमारा अभिप्राय उससे उल्टा है। किसी को गाली देना, किसी को दु:ख देना, ऐसा अभिप्राय हमारा नहीं है। गुस्सा किया वह हमारा अभिप्राय, अब हमारा नहीं है। यानी हमने उसे शुद्ध करके परमाणु खाली कर दिए। शुद्ध करने से परमाणु विश्रसा हो जाते हैं। *संवर* (कर्म का चार्ज होना बंद हो जाना) रहता है, बंध नहीं होता और विश्रसा होता है। हालांकि विश्रसा तो जीवमात्र में हो ही रहा है लेकिन उनमें बंध डालकर विश्रसा हो रहा है, जबकि यहाँ पर बिना बंध पड़े विश्रसा होता है।

आप शुद्ध हो चुके हैं और चंदूभाई को शुद्ध करना आपका फर्ज़ है। वह *पुद्गल* क्या कहता है कि, 'भाई, हम तो शुद्ध ही थे। आपने भाव करके हमें बिगाड़ा है, और इस स्थिति तक हमें बिगाड़ दिया। नहीं तो हम में खून, मवाद, हड्डी कुछ भी नहीं था। हम तो शुद्ध ही थे। आपने हमें बिगाड़ा है। अत: अगर आपको हम से मुक्त होना हो, मोक्ष में जाना हो, तो सिर्फ आपके शुद्ध होने से ही कुछ नहीं बदलेगा। जब हमें शुद्ध करोगे तभी आपका छुटकारा होगा'। आपको समझ में आया न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, दादा।

दादाश्री : अत: हमने क्या आज्ञा दी हैं? इसका समभाव से *निकाल* करना। हाँ, और शुद्ध ही देखना। और यदि चंदूभाई से अंदर से ऐसा हो जाए कि किसी को अच्छा न लगे, तो उन्होंने अतिक्रमण किया है इसलिए प्रतिक्रमण करो। इससे ऐसा कहना चाहते हैं कि 'हम उसके अभिप्राय के विरुद्ध हैं, हमने अपना अभिप्राय बदल दिया। अब हम पहले वाले अभिप्राय में नहीं हैं।' अभिप्राय बदला कि वे शुद्ध हो गए। यदि अभिप्राय वही का वही रहेगा तो फिर मूल बिगाड़ रह जाएगा। अभिप्राय बदलने के लिए है यह सब!

उस दृष्टि से छूटता है अभिप्राय

प्रश्नकर्ता : तो संपूर्ण अभिप्राय रहित कैसे हो सकते हैं?

दादाश्री : आपको अभिप्राय रहित ज्ञान ही दिया है। बाइ रियल व्यू पोइन्ट, वह 'शुद्धात्मा' है और बाइ रिलेटिव व्यू पोइन्ट, वह 'चंदूभाई' है और रिलेटिव मात्र कर्म के अधीन होने से 'चंदूभाई' भी निर्दोष हैं। यदि खुद स्वाधीन होते तो 'वे' दोषित माने जाते लेकिन 'वह' बेचारा तो लट्टू जैसा है। इसलिए 'वह' निर्दोष है। 'वैसे शुद्धात्मा है और बाहर से निर्दोष है'। बोलो अब, वहाँ पर अभिप्राय रहित ही रहना चाहिए न!

भयंकर कर्म बंधन

प्रश्नकर्ता : मनुष्य को रात-दिन इतने सारे कर्म बंधते हैं कि एक जन्म के कर्मों की *निर्जरा* (आत्मप्रदेश में से कर्मों का अलग होना) होने में अनंतकाल लगता है, तो मनुष्य छूटेगा कब?

दादाश्री : किसने कहा ऐसा? ये तो लोगों को बंधेगा, आपको (आत्मज्ञान प्राप्त महात्माओं) को कहाँ बंधता है?

प्रश्नकर्ता : मैं लोगों की ही बात कर रहा हूँ।

दादाश्री : उन लोगों को तो इतने सारे (कर्म) बंधते हैं कि सुबह के सात बजे से वे साइकल लेकर घूमते हैं, प्लेन में घूमता है रात के ग्यारह बजे तक फिर भी कर्म पूरे नहीं होते हैं।

प्रश्नकर्ता : अब उन लोगों की क्या दशा होती होगी? क्योंकि इतने कर्म बंध जाते हैं एक दिन के एक साल में भी खत्म नहीं हो सकते।

दादाश्री : हाँ, तो वह कर्म बंधते-बंधते क्या होगा? कि इस मनुष्य में से पाँच इन्द्रिय खत्म होगी और वह चार में जाएगा, चार में से तीन में जाएगा, तीन में से दो में जाकर और एक इन्द्रिय जीव हो जाएँगे। इतने सारे भयंकर कर्म बंध रहे हैं।

❖❖❖❖❖

[18]

विषय जीते वह राजाओं का राजा

अटकण से छूटना है अब

अब भीतर से बिल्कुल 'क्लियरन्स' (साफ) हो जाना चाहिए। यह 'अक्रम ज्ञान' मिला है तो अब यदि खुद को निरंतर सुख में रहना हो तो रह सकते हैं। ऐसा 'ज्ञान' है हमारे पास। अब इसलिए इस बात का समाधान लाना चाहिए कि हम उन बंधनों में से कैसे छूटें, कैसे उससे अलग हो जाएँ। उसके लिए आलोचना, प्रतिक्रमण व प्रत्याख्यान करके भी समाधान ला देना है। पहले जब तक सुख नहीं था, तब तक आदमी बंधन में ही रहेगा न? लेकिन हमेशा का सुख मिल जाने के बाद क्यों? सच्चा सुख क्यों उत्पन्न नहीं होता है? वह इस बंधन के कारण नहीं आता!

सचेत रहो मात्र विषय के सामने

प्रश्नकर्ता : दादा अब समझ में आता है कि हम यह गलत कर रहे हैं, फिर भी हो जाता है।

दादाश्री : फिर प्रतिक्रमण नहीं होते हैं?

प्रश्नकर्ता : होते हैं लेकिन जब चंदूभाई गलत करते हैं, तब रुक नहीं पाते हैं। फिर प्रतिक्रमण तुरंत हो जाता है लेकिन एक बार तो एक सेकन्ड के लिए बाजी पलट ही देते हैं।

दादाश्री : यदि सब गलत हो जाए तो उसमें परेशानी नहीं है।

लेकिन सिर्फ यह विषय ही एक ऐसी चीज़ है जो इन सब को खत्म कर सकता है। इसलिए हम सिर्फ विषय से संबंधित बात में ही सचेत रहने को कहते हैं।

भूलें अभी भी दिखाई नहीं देती है। उसका क्या कारण है कि भोजन ज़्यादा से ज़्यादा क्या नुकसान करता है कि दो-तीन घंटे तक प्रमाद बढ़ जाता है, फिर उतर जाता है। लेकिन यह विषय का नशा पूरे दिन चौबीसों घंटे रहता है। यानी उसे भूल दिखाई ही नहीं देती। जब विषय से निवृत्ति होगी तभी भूलें दिखनी शुरू होंगी। वास्तविक भूलें, बड़ी भूलें, जिन्हें सूक्ष्म (भूलें) कहते हैं, यानी सिर्फ यही आधार अड़चन रूपी है। जिसे जितनी जल्दी हो उसी अनुसार वह प्रतिक्रमण करता रहे। उसमें ऐसा कुछ नहीं है कि इसी तरह करना है।

आकर्षण कुछ के प्रति ही क्यों?

प्रश्नकर्ता : मन से तय किया हो कि किसी भी लड़के के लिए खराब विचार नहीं करने हैं और मुझे खराब विचार तो नहीं आते लेकिन उस लड़के का चेहरा दिखता रहता है, प्रतिक्रमण करती हूँ, फिर भी वही दिखता रहता है तो क्या करूँ?

दादाश्री : दिखता रहता है, उसमें क्या? तो हमें देखते रहना है। फिल्म में देखते हों तो क्या उससे हमें दु:ख होता है? यानी दिखेगा तो सही न! भीतर से प्योर होता जाता है तो उल्टा ज़्यादा दिखाई देता है, प्योर दिखाई देता है। वह दिखता है उसे हमें देखते रहना है प्रतिक्रमण करके, बस!

प्रश्नकर्ता : उसके प्रति आकर्षण होता है न तो वह अच्छा नहीं लगता इसलिए उसका प्रतिक्रमण करती हूँ, लेकिन फिर भी वह और भी ज़्यादा दिखता रहता है।

दादाश्री : दिखता रहता है, वह ठीक है और दिखना ही चाहिए न। यदि नहीं दिखे तो व्यर्थ है। नहीं दिखाई दे तो ऐसा नहीं कहा जाएगा कि प्रतिक्रमण हुआ। दिखाई देगा तभी उससे फिर धीरे-धीरे वह कम होता जाएगा। यदि गांठ बड़ी हो तो एकदम से कम नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : हमें उसका चेहरा दिखाई दे और उसके लिए उल्टे विचार आएँ तो क्या वह गलत नहीं कहा जाएगा?

दादाश्री : नहीं, बिल्कुल भी खराब नहीं है। तुम स्ट्रोंग (दृढ़) हो, फिर भी यदि उल्टे विचार आएँ तो उसे देखो कि अभी भी उसके लिए उल्टे विचार आ रहे हैं। यदि तुम स्ट्रोंग रहोगी तो कोई नाम नहीं देगा। यह तो, जो माल भरा हुआ है, वही आ रहा है। वर्ना यदि किसी दूसरे लड़के के लिए नहीं भरा है तो उसके लिए नहीं आते हैं। इतने सारे लड़के हैं, क्या सभी के लिए आते हैं? जो माल भरा है, वही आ रहा है। तू पहचानती है या नहीं, इस भरे हुए माल को? इतने सारे लड़के हैं, क्या सभी के लिए विचार आते हैं? किसी को देखा हो, और उन पर दृष्टि पड़े तभी आते हैं।

ज्ञानी की बताई गई राह

जब मैं पूछता हूँ कि क्या अभी भी तेरा मन बिगड़ता है? तब कहता है, 'हाँ, अभी भी वैसा हो जाता है'। सत्तर साल हुए, अब शांति से बैठ। हाँ, पूरा दिवाला निकल गया, तो अब तो शांति से बैठ! कैसा इंसान है? दुकान का पूरा दिवाला निकल गया फिर भी शांति से नहीं बैठता।

प्रश्नकर्ता : ऐसा गलत विचार आए ऐसे समय में व्यक्ति को क्या करना चाहिए?

दादाश्री : भले ही आए। विचार आए तो फूल-हार लेकर कहिए, बहुत अच्छा हुआ भाई, तू आया। यह हमें अच्छा लगा। इतना भी आनंद तो होगा न! शोकमग्न विचार लाए उससे अच्छा कि ऐसे अच्छे विचार लाते हैं।

देखो, एक आदमी को देखकर और किसी को खराब विचार आया, अब विचार आया तो क्यों आया कि मोह भरा था न, इसलिए संयोग आ मिला। संयोग कब आएगा? नहीं तो कहीं हम बुलाने नहीं गए उन्हें लेकिन मिल ही जाते हैं और मिल आते हैं इसलिए हमारा मन उस समय मोहवश उसके जो परमाणु हैं न, वह अवस्था बताते हैं, पर्याय बताते हैं

तब हमें क्या करना है? किसकी वजह से यह खराब विचार आया? जिसकी वजह से आए उसका प्रतिक्रमण करना है। उस बहन के शुद्धात्मा को, मन-वचन-काया के योग, भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म से भिन्न ऐसे हे प्रकट शुद्धात्मा भगवान, इस बहन के लिए मुझे खराब विचार आया इसलिए मैं दादा भगवान के समक्ष आलोचना करता हूँ कि, 'मुझे ऐसा हुआ', इस तरह ज़ाहिर करने को ही आलोचना कहते हैं। यानी मुझे वहाँ बुलाने की ज़रूरत नहीं है। वहाँ आपको चिंतवन से सम्मुख रख लेना है, फिर प्रतिक्रमण करना है। वही शुद्धात्मा से कहना कि मुझे कोई देहधारी पर ऐसे विचार न आए ऐसी मुझे शक्ति दीजिए और ऐसे जो विचार आ गए उसकी मैं क्षमा माँगता हूँ। फिर कभी भी कोई भी देहधारी पर मुझे विषय का विचार तक नहीं आए, ऐसी मुझे शक्ति दीजिए। दूसरी बार ऐसा विचार कभी भी नहीं करने की मेरी इच्छा है, उसे प्रत्याख्यान कहते हैं।

पुन: दोष करने की इच्छा नहीं है लेकिन फिर भी दोष हो जाएगा। यदि अंदर भरा होगा तो वापस आएगा तो सही लेकिन प्रत्याख्यान हर बार करना पड़ेगा। जितने प्रत्याख्यान किए उतनी प्याज़ की परतें निकली। फिर वापस दूसरी परत आएगी। इतनी छोटी प्याज़ हो उसकी परतें ज़्यादा होती हैं या बड़ी की?

प्रश्नकर्ता : बड़ी की ज़्यादा होती है।

दादाश्री : हाँ, जिसका प्याज़ बड़ा है, उसमें से ज़्यादा छिलके निकलेंगे। लेकिन निकलने तो लगे हैं। यानी कि आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान से मोक्ष है। इस जगत् में यदि मोक्ष का कोई एक साधन है तो वह यही है। आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान ज्ञानी पुरुष द्वारा सिखाया हुआ होना चाहिए। किसी और का सिखाया हुआ तो काम ही नहीं आएगा।

यानी हमें किसी का भी विचार आए तो उसका आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान करना है। वह तो अवश्य ही करना पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : दादा, यदि बार-बार दृष्टि खिंचती है, एक ही जगह पर दृष्टि खिंचती है। ऐसा तो तभी होगा न यदि इन्टरेस्ट (रुचि) होगा! क्या ऐसा नहीं कह सकते?

दादाश्री : इन्टरेस्ट ही है न? बिना इन्टरेस्ट के तो दृष्टि खिंचेगी ही नहीं न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन इन्टरेस्ट आने से बीज डलेगा या नहीं?

दादाश्री : यह फिर पागलपन वाली बात कर दी, बिना इन्टरेस्ट के तो खिंचेगा ही नहीं न?

प्रश्नकर्ता : अंदर रुचि तो है ही। दृष्टि खिंचने पर उसका प्रतिक्रमण होता है, फिर रात होने पर वापस दृष्टि वहीं पर चली जाती है, रुचि होती है। उसका प्रतिक्रमण हो जाता है और वह चेप्टर (प्रकरण) खत्म हो जाता है। फिर से पाँच-दस मिनट तक असर रहता है। तब लगता है कि यह क्या गड़बड़ है?

दादाश्री : उसे फिर से धो देना। बस, इतना ही।

प्रश्नकर्ता : बस इतना ही? बाकी, मन में कुछ नहीं रखना है?

दादाश्री : यह माल आपने भरा है और ज़िम्मेदारी आपकी है इसलिए आपको देखते रहना है, धोने में कमी नहीं रहनी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : कपड़ा धुल चुका है, ऐसा किसे कहेंगे?

दादाश्री : हमें खुद को ही पता चल जाएगा कि मैंने धो दिया। प्रतिक्रमण करते हैं, उस पर से।

प्रश्नकर्ता : क्या अंदर खेद रहना चाहिए?

दादाश्री : खेद तो रहना ही चाहिए न! खेद तो, जब तक इसका निबेड़ा नहीं आ जाए, तब तक खेद तो रहना ही चाहिए। आपको तो सिर्फ यही देखते रहना है कि खेद करता है या नहीं। आपको अपना काम करना है, वह अपना काम करेगा।

प्रश्नकर्ता : बहुत *चीकणा* है, दादा। उसमें कुछ-कुछ फर्क पड़ता जा रहा है।

दादाश्री : जैसा दोष भरा है, वैसा निकलेगा। लेकिन बारह साल

में या दस साल में, पाँच साल में वह सब खाली हो जाएगा। सभी टंकियाँ साफ कर देगा। उसके बाद फिर साफ! फिर मज़े करना!

प्रश्नकर्ता : एक बार बीज डल जाए हो तो वह रूपक में तो आएगा ही न?

दादाश्री : बीज तो डल ही जाएगा न! वह रूपक में आएगा लेकिन जब तक वह जम नहीं जाता, तब तक कम-ज़्यादा हो सकता है। यानी मरने से पहले वह साफ हो सकता है।

इसलिए हम विषय के दोष वाले से कहते हैं न, कि विषय के दोष हुए हों, अन्य दोष हुए हों, तो उससे कहते हैं कि 'रविवार को तुम उपवास करना और पूरे दिन सोच-सोच कर उसे धोते रहना। इस तरह आज्ञापूर्वक करेगा न, तो कम हो जाएगा!

प्रत्यक्ष आलोचना से तुरंत छूट सकते हैं

प्रश्नकर्ता : कभी कभार जब मेरी दृष्टि चली जाती है न, तब मुझे लगता है कि अरेरे! दृष्टि कहाँ पड़ी?! प्रतिक्रमण करना पड़ेगा। बोरियत होती है।

दादाश्री : बोरियत तो होगी ही न! दृष्टि तो चली जाती है। हमें नहीं डालनी है फिर भी चली जाती है। अतः पुरुषार्थ करना और प्रतिक्रमण भी करने की ज़रूरत है।

प्रश्नकर्ता : कुछ चीज़ों का इतना गुस्सा आता है कि ऐसा होता है कि यह क्यों हो रहा है? समझ में नहीं आता?

दादाश्री : पिछली बार प्रतिक्रमण नहीं किए इसलिए इस बार वापस दृष्टि जाती है। अब प्रतिक्रमण करेंगे तो वापस नहीं जाएगी, अगले जन्म में।

प्रश्नकर्ता : कभी-कभी तो प्रतिक्रमण करने में बोरियत होती है। एक साथ इतने सारे करने पड़ते हैं।

दादाश्री : हाँ, यह अप्रतिक्रमण का दोष है। उस समय प्रतिक्रमण

नहीं किए इसलिए आज ऐसा हुआ। अब प्रतिक्रमण करने से वापस दोष खड़ा नहीं होगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन कई बार तो बहुत सारे प्रतिक्रमण करने के बाद जब वापस प्रतिक्रमण करना पड़े तो बहुत गुस्सा आता है? ऐसा क्यों हो जाता है?

दादाश्री : अंदर से नहीं बिगड़ना चाहिए। यदि अंदर ही अंदर बिगड़ जाए तो उस समय प्रतिक्रमण करके धो देना। वर्ना दादा से रूबरू आकर कह देना कि, 'इस तरह हमारा मन बहुत बिगड़ गया था। दादा, आपसे कुछ छिपाकर नहीं रखना है'। ताकि सब खत्म हो जाए। यहीं पर दवाई दे देंगे। अन्य किसी के प्रति दोष हुआ होगा न, तो हम धो देंगे। लेकिन यदि यहाँ ज्ञानी पुरुष आए हुए हों और तब यदि हो जाए तो फिर कौन धोएगा? इसलिए हम कहते हैं कि 'देखना, हं! कोई भी मन बिगाड़ना मत'।

संसार परिभ्रमण का मूल कारण

यह विषय ही एक ऐसी चीज़ है दुनिया में, जो बंधनकारक होने का कारण है। उससे जगत् खड़ा हुआ है। पूरा जगत् इसी से उत्पन्न हुआ है और उसमें सब खड़ा हुआ है। इसलिए इसका पहले से ही अभिप्राय ऐसा बदल देना चाहिए कि अन्य कोई अभिप्राय रहे ही नहीं। रोज़ सामायिक करके, प्रतिक्रमण करके अभिप्राय पक्का करते रहना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : क्या इंसान को प्रतिक्रमण करके भी अभिप्राय बदल देना चाहिए?

दादाश्री : हाँ।

आठ सौ पन्ने की ब्रह्मचर्य की पुस्तक लिखी है, क्या आपने वह पढ़ी है? 'वन्डर ऑफ द वर्ल्ड' (दुनिया का आश्चर्य) कहते हैं उसे। ब्रह्मचर्य पालन करना हो तो यह साधन दिया है।

प्रतिक्रमण का सब्स्टिट्यूट (एवज़)

प्रश्नकर्ता : आपने जो कहा है न कि सुबह के समय इतना

बोलना कि, 'ये मन-वचन-काया से किसी भी जीव को किंचित्मात्र दु:ख न हो' तो इतना चलेगा क्या? उसमें?

दादाश्री : ऐसा पाँच बार बोलना है लेकिन इस तरह से बोलना, पैसे गिनते समय जैसी स्थिति होती है, उस तरह से बोलना।

प्रश्नकर्ता : उसी तरह यदि विषय के प्रतिक्रमण के लिए रोज़ सुबह पाँच बार ऐसा बोलेंगे तो चलेगा? क्योंकि ऐसे तो कितने प्रतिक्रमण करते रहेंगे? कितनी ही बार आँखें खिंच जाती हैं?

दादाश्री : हाँ, चलेगा, चलेगा। लेकिन कैसे बोलना है? रुपये गिनते समय जैसा चित्त होता है, वैसा रखना पड़ेगा। रुपये गिनते समय अंत:करण जैसा होता है, बोलते समय वैसा रखना पड़ेगा।

उसके तो रोज़ के हज़ार-हज़ार प्रतिक्रमण

अभी सिर्फ आँखों को संभाल लेना है। पहले तो लोग बहुत सख्त, आँखें फोड़ देते थे। हमें आँखें नहीं फोड़नी है, वह मूर्खता है, हमें आँखें फेर लेनी है।

फिर भी यदि देख लिया जाए तो प्रतिक्रमण करना है। एक मिनट भी प्रतिक्रमण चूकना नहीं है। खाने-पीने में गलत हुआ होगा तो चलेगा। संसार का सब से बड़ा रोग ही यही है। इसी से ही संसार खड़ा है। इसी की जड़ पर संसार खड़ा है। यही जड़ है।

समझदारी से काम निकाल लेना है। अभी कहीं से काला बाज़ार का माल लाए तो फिर काले बाज़ार में बेचना तो पड़ेगा, लेकिन हमें कहना है कि प्रतिक्रमण करो। पहले प्रतिक्रमण नहीं किए थे इसलिए तालाब भर गए हैं कर्म के, प्रतिक्रमण किया तो शुद्ध कर दिया। जब ये प्रतिक्रमण पाँच-सौ, पाँच-सौ हज़ार-हज़ार होंगे तब काम होगा।

कभी भी अणहक्क का नहीं भोगना चाहिए

हक़ का खाते हैं तो मनुष्य में आते हैं, *अणहक्क* (बिना हक़ का, अवैध) का खाते हैं तो जानवर में जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : हमने *अणहक्क* का भी खाया है।

दादाश्री : खाया है तो अब प्रतिक्रमण करो न, अभी भी भगवान बचा लेंगे। अभी भी मंदिर में जाकर पश्चाताप करो। *अणहक्क* का खा लिया हो तो पश्चाताप करो, अभी भी जीवित हो। जब तक इस देह में हो तब तक पश्चाताप कर लो।

प्रश्नकर्ता : सिर्फ पश्चाताप करने से क्या होगा?

दादाश्री : आप उसे समझ सकते हो तो करो। ज्ञानी पुरुष का मानना हो तो मानो, नहीं मानना हो तो आपकी मर्ज़ी। यदि आपको नहीं मानना है तो उसका कोई उपाय नहीं है। अभी भी पश्चाताप करोगे तो गांठें ढीली हो जाएँगी और ऊपर से आपने तो राज़ी खुशी से किया है। आपने नर्कगति बाँध दी है। *अणहक्क* का खा तो लिया, लेकिन राज़ी खुशी से करता है तो नर्कगति में जाएगा और यदि पश्चाताप करता है तो जानवर गति में आ जाएगा। भयंकर नर्कगति भुगतनी होगी। अभी भी अणहक्क का जितना खाना हो उतना खाना लोगों का।

प्रश्नकर्ता : इन सब से छूटने का श्रेष्ठ उपाय क्या है?

दादाश्री : *अणहक्क* का जो खाया है, उसका पश्चाताप करो। यदि *अणहक्क* का खाने का विचार भी आए तो पश्चाताप करो। पूरे दिन पश्चाताप में ही रहो कि ऐसा नहीं खाना चाहिए। मेरे लिए तो यदि मेरे हक़ का होगा तभी मेरे काम का है। खुद के हक़ की स्त्री हो, खुद के हक़ के बच्चे हों, घर, मकान सब खुद का हो, लेकिन दूसरों के हक़ का कैसे ले सकते हैं? फिर तो जानवर होने पर भी पूरा नहीं होगा, नर्कगति के अधिकारी हो गए हैं। भयंकर दु:खों में फँस चुके हैं। यदि अभी भी सचेत होना हो तो हो जाओ। ये ज्ञानी पुरुष क्या कह रहे हैं कि आपको पश्चाताप रूपी हथियार दिया है। प्रतिक्रमण करते रहो।

हे भगवान, नासमझी से, खराब बुद्धि से, कषायों से प्रेरित होकर मैंने जो ये दोष किए हैं, भयंकर दोष किए हैं, उनके लिए क्षमा माँगता

हूँ। कषायों की प्रेरणा से किए हैं। आपने खुद से नहीं किए। अभी भी करना हो तो करना, नहीं करना हो तो आपकी मर्ज़ी।

लालच से आता है भयंकर आवरण

जितनी चीज़ें ललचाने वाली हैं, उन सब को एक तरफ रख दे, उन्हें याद नहीं करे। याद आने पर प्रतिक्रमण करे तो वे छूट जाएँगी। बाकी, शास्त्रकारों ने उसका कोई उपाय नहीं बताया है। सभी का उपाय होता है, लालच का उपाय नहीं है। लोभ का उपाय है। लोभी व्यक्ति को तो जब बड़ी नुकसानी आए न, तब लोभ भाग जाता है हड़बड़ाकर!

प्रश्नकर्ता : पुनः 'ज्ञान' में बैठने से क्या लालच चला जाएगा?

दादाश्री : नहीं जाएगा। 'ज्ञान' में बैठने से थोड़े ही चला जाएगा? वह तो, जब खुद आज्ञा में रहने का प्रयत्न करे और ऐसा निश्चय करे कि, 'निरंतर आज्ञा में रहना है' और यदि आज्ञा भंग हो जाए तो प्रतिक्रमण कर ले, तब कुछ बदलेगा।

अभी भी सावधान हो जाओ! सावधान!! सावधान!!!

प्रश्नकर्ता : एक डर लग रहा है, अभी आपने कहा कि सत्तर प्रतिशत लोगों को पुनः चार पैर में जाना है तो अभी हमारे पास अवकाश (गुंजाइश) है या नहीं?

दादाश्री : नहीं-नहीं, अवकाश नहीं है अब। इसलिए अब तो सावधान हो जाओ यदि कुछ...

प्रश्नकर्ता : महात्माओं की बात कर रहे हैं।

दादाश्री : महात्मा यदि मेरी आज्ञा में रहें न, तो इस दुनिया में कोई उनका नाम भी नहीं ले सकता।

प्रश्नकर्ता : अब चुस्त रहेंगे, लेकिन अब हमारा ध्यान रखिएगा।

दादाश्री : हाँ, यह निश्चित हो गया न। हम अच्छी तरह से ध्यान रखेंगे।

अभी इस विचित्र काल में सत्तर प्रतिशत तो बहुत डरते-डरते मैं यह कह रहा हूँ। लोगों को खराब न लगे इसलिए। लोगों के मन में बहुत डर बैठ जाए। यह गलत है समझे, इसलिए। अभी प्रतिशत तो बहुत ज़्यादा है क्योंकि अधिक बुद्धि से कम बुद्धि वालों को मार मारा है। उसका फल नर्कगति है। जानवर नहीं पर नर्कगति। बोलो अब, यहाँ क्या करने में बाकी रखा होगा? इन लोगों ने कुछ बाकी नहीं रखा है। इसलिए मैं लोगों से कहता हूँ कि अभी भी सचेत होना हो तो हो जाओ। अभी भी माफी माँग लोगे न, तो माफी माँगने का रास्ता है।

इतना बड़ा कागज़ हमने किसी रिश्तेदार को लिखा हो, और उसमें गालियाँ लिखी हों, हमने खूब गालियाँ दी हों, पूरा कागज़ गालियों से ही भरा हो, और फिर नीचे लिखें कि आज वाइफ से झगड़ा हो गया है इसलिए आपके लिए बोल रहा हूँ, लेकिन मुझे माफ कर देना तो सब गालियाँ मिटा देगा या नहीं मिटा देगा? इसलिए अब गालियाँ पढ़ेगा, स्वीकार भी करेगा और फिर माफ भी करेगा! यानी ऐसी यह दुनिया है। इसलिए हम तो कहते हैं न कि माफी माँग लेना, आपके इष्टदेव से माँग लेना और यदि नहीं माँगते हो तो मुझसे माँग लेना। मैं आपको माफ कर दूँगा। लेकिन बहुत विचित्र काल आ रहा है और उसमें चंदूभाई भी जैसा चाहे वैसा कर रहे हैं, उसका कोई अर्थ ही नहीं है न! ज़िम्मेदारी से भरा हुआ जीवन! अभी भी सचेत होना हो तो हो जाना। यह अंतिम बार जमानत दे रहे हैं। भयंकर दुःख! अभी भी प्रतिक्रमण रूपी हथियार दे रहे हैं। यदि प्रतिक्रमण करोगे तो भी बचने का कुछ उपाय है। हमारी आज्ञानुसार अगर करोगे तो शीघ्र आपका ही कल्याण होगा। पाप भुगतने पड़ेंगे लेकिन इतने अधिक नहीं।

कभी न कभी तो समझना पड़ेगा न? यों पूरी तरह से समझना पड़ेगा न? मोक्ष की ओर आना पड़ेगा न?

हज़ारों लोगों की मौजूदगी में यदि कोई कहे कि 'चंदूभाई में अक्ल नहीं है' तो हमें आशीर्वाद देने का मन होना चाहिए कि 'ओहोहो! हम जानते थे कि चंदूभाई में अक्ल नहीं है लेकिन यह तो वह भी जानता है तब अलगपन रहेगा!

इन चंदूभाई को हम रोज़ बुलाते हैं कि आओ, चंदूभाई आओ और फिर उस दिन नहीं बुलाए, उसका क्या कारण? उन्हें विचार आएगा कि आज मुझे आगे नहीं बुलाया। हम उन्हें चढ़ाते हैं, गिराते हैं, चढ़ाते हैं, गिराते हैं, ऐसा करते-करते ज्ञान को पाते हैं। हमारी ये सारी क्रियाएँ ज्ञान पाने के लिए हैं। हमारी हर एक क्रिया ज्ञान प्राप्ति के लिए है। सब के साथ अलग-अलग क्रिया होती है, सब उसकी प्रकृति देखकर होता है, ऐसा होना चाहिए। वह प्रकृति निकल ही जानी चाहिए न। प्रकृति तो निकालनी ही पड़ेगी। पराई चीज़ को कब तक अपने पास रखोगे?

प्रश्नकर्ता : सही बात है, प्रकृति निकले बिना चारा ही नहीं है।

दादाश्री : हं। हमारी तो कुदरत ने निकाल दी, हमारी तो ज्ञान ने निकाल दी और आपकी तो हम निकालेंगे तभी न, निमित्त है न!

आपकी प्रकृति काफी निकल गई है। अब जो रात को प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं न, इतनी भूल है अभी। वह तो, सभी भूलें निकालनी है। पता चलता है न फिर?

प्रश्नकर्ता : हाँ, तुरंत पता चल जाता है।

दादाश्री : बाद में तो पता चलता है। प्रतिक्रमण करते रहते हैं। पूरी रात उसी में जाती है।

'वह' है प्रगति की राह

प्रश्नकर्ता : पिछले बारह महीने-दो साल से खुद को कुछ कम लगता है पहले से, पहले जितने प्रतिक्रमण करने पड़ते थे, उससे काफी कम करने पड़ते हैं।

दादाश्री : पहले तो पता ही नहीं चलता था।

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : वे तो प्रतिक्रमण करते ही नहीं थे न, और आप ऐसा ही मानते थे कि यह उसी की भूल है।

प्रश्नकर्ता : फिर दो-तीन साल प्रतिक्रमण चला, अंतिम बारह

महीने, डेढ़ साल से इसकी प्रबलता कम हो गई है। प्रबलता कम हो गई है, फिर भी यदि भूल हो जाए तो क्या प्रतिक्रमण करना पड़ेगा?

दादाश्री : हाँ, वह तो होगी ही, अंत तक। यह शरीर ही भूलों से भरा है।

प्रश्नकर्ता : अब लेवल कम होता जा रहा है।

दादाश्री : हमें देखना है और जानना है। जैसे-जैसे भूल कम होती जाती है वैसे-वैसे हमें जागृति आने लगती है कि यह भूल हो गई तो पूरी रात प्रतिक्रमण करेंगे। फिर उस पर दोष नहीं डालते। वापस मुड़ जाते हैं। पहले वापस नहीं मुड़ते थे। अब तो आपको इस ज्ञान से देखना है कि उनकी ये सारी चिट्ठियाँ आप पर आती हैं, लेकिन फिर वे भी अपनी भूल देख सकते हैं। अत: वे भी प्रतिक्रमण करते होंगे। आपको तो समझ जाना है कि 'मेरे लिए तो यही ठीक है, भले ही मुझे चिट्ठियाँ आए'। चिट्ठी लिखना, उनकी प्रकृति है और वे जो प्रतिक्रमण करते हैं, वह आत्मा है। देखो! अभी भी चिट्ठी लिखते ही जा रहे हैं। वही प्रकृति है और फिर खुद ही प्रतिक्रमण करते हैं, वहाँ आत्मा का भाग है!

अतिक्रमण की अंतिम पराकाष्ठा

प्रश्नकर्ता : अतिक्रमण की अंतिम पराकाष्ठा क्या है?

दादाश्री : अतिक्रमण की पराकाष्ठा तो वासुदेवों को, प्रतिवासुदेवों में होती है। उनसे ज़्यादा और कोई भी नहीं कर सकता और ऐसा नर्क भी कोई नहीं भुगतता, सातवीं नर्क! सब से अंतिम प्रकार का अतिक्रमण। यों जला देते हैं, मार देते हैं, सर्वस्व नाश कर देते हैं। अन्य लोग तो ऐसा करते ही नहीं न!

छोटी बात से ही समझ लेना है कि किसी दुश्मन की तरफ भी भाव न बिगड़े। और यदि बिगड़ा हो तो प्रतिक्रमण करके सुधार लो। बिगड़ जाना, वह कमज़ोरी से बिगड़ जाता है। यानी उसे प्रतिक्रमण से सुधार लो। ऐसे करते-करते वह चीज़ सिद्ध हो जाएगी।

❖❖❖❖❖

[19]

झूठ बोलने की लत वाले को

कर्म और कर्मफल

अब आप दिन भर में क्या एक भी कर्म बाँधते हो? आज कौन-कौन सा कर्म बाँधा? जो बाँधोगे वह आपको भुगतना पड़ेगा। खुद की ज़िम्मेदारी है। उसमें भगवान की किसी प्रकार की ज़िम्मेदारी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : यदि हम झूठ बोले हों तो वह भी कर्म बाँधा ही कहलाएगा न?

दादाश्री : अवश्य ही! लेकिन झूठ बोलने के बजाय तो झूठ बोलने के जो भाव करते हो न, वह ज़्यादा (भारी) कर्म कहलाएँगे। झूठ बोलना वह तो कर्मफल है। झूठ बोलने के भाव ही, झूठ बोलने का निश्चय, वह कर्म बंधन करवाता है। समझ में आया आपको? क्या यह वाक्य आपको कुछ हेल्प करेगा? क्या हेल्प करेगा?

प्रश्नकर्ता : झूठ बोलना बंद हो जाना चाहिए।

दादाश्री : नहीं। झूठ बोलने का अभिप्राय ही छोड़ देना चाहिए। यदि झूठ बोल दिया जाए तो पश्चाताप करना चाहिए कि 'क्या करूँ? ऐसा झूठ नहीं बोलना चाहिए।' लेकिन झूठ बोलना बंद नहीं होगा, वह अभिप्राय बंद हो जाएगा कि 'अब, आज से झूठ नहीं बोलूँगा, झूठ बोलना वह

महापाप है, महा दुःखदायी है और झूठ बोलना वही बंधन है'। यदि ऐसा अभिप्राय आपसे हो गया तो आपके झूठ बोलने के पाप बंद हो जाएँगे और पूर्व में जहाँ तक ये भाव बंद नहीं किए थे, वहाँ तक का उसका जो 'रिएक्शन' (प्रतिक्रिया) है, उतना बाकी रहेगा। उतना हिसाब आपको आएगा। उतना फिर आपको अनिवार्य रूप से झूठ बोलना पड़ेगा तो उसका पश्चाताप कर लेना। अब पश्चाताप करोगे फिर भी वापस जो झूठ बोले उस कर्मफल का फल तो आएगा और वह तो भुगतना ही पड़ेगा। वे लोग आपके घर से बाहर निकलकर आपकी बुराई करेंगे कि, 'ये चंदूभाई, पढ़े-लिखें होकर ऐसा झूठ बोलते हैं? क्या यह उनकी लियाकत (शिष्टता) है?' यानी पश्चाताप करोगे फिर भी बदनामी का फल भुगतना ही पड़ेगा और यदि पहले से वह पानी बंद कर दिया हो, 'कॉज़ेज़' ही बंद कर दें, तो फिर 'कॉज़ेज़' का फल और उसका (फल का) भी फल नहीं आएगा।

यानी हम क्या कहते हैं? झूठ बोल दिया लेकिन आप इस तरह से उसके विरोधी हैं न, 'ऐसा नहीं बोलना चाहिए'? हाँ, तो ऐसा निश्चित हो गया कि यह झूठ आपको अच्छा नहीं लगता। झूठ बोलने का आपका अभिप्राय नहीं है न, तो आपकी ज़िम्मेदारी का 'एन्ड' (अंत) आ जाता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जिसे झूठ बोलने की आदत पड़ गई हो, वह क्या करे?

दादाश्री : उसे तो फिर साथ-साथ प्रतिक्रमण करने की आदत डालनी होगी और यदि प्रतिक्रमण करता है तो फिर जोखिमदारी हमारी है।

यानी अभिप्राय बदलो! झूठ बोलना, वह जीवन का अंत होने के बराबर है। जीवन का अंत लाना और झूठ बोलना, वे दोनों समान हैं, ऐसा 'डिसाइड' (निश्चित) करना पड़ता है और फिर सत्य का आग्रह मत रखना।

रिलेटिव धर्म में

'रिलेटिव धर्म' कैसा होना चाहिए? कि झूठ निकल गया तो निकल गया लेकिन उसका प्रतिक्रमण करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : हम रोज़ बातें करते हैं कि यह गलत है, नहीं बोलना था फिर भी ऐसा क्यों हो जाता है? नहीं करना है फिर भी ऐसा क्यों हो जाता है?

दादाश्री : वे तो अंदर ज़रूरत से ज़्यादा अक्ल भरकर लाए हैं। इसीलिए हमने एक भी दिन ऐसा कुछ भी नहीं कहा कि ऐसा नहीं करना चाहिए। यदि कहा होता तब भी सचेत हो जाते उस समय। कहा है किसी दिन कि ऐसा नहीं करना चाहिए?

प्रश्नकर्ता : और फिर जब तक नींद नहीं आती, तब तक प्रतिक्रमण करते रहते हैं। यानी अब मुझे ऐसा होता है कि मैं गलत कर रहा हूँ, इसलिए फिर प्रतिक्रमण करने ही पड़ते हैं।

दादाश्री : गलत किया इसलिए प्रतिक्रमण करने ही पड़ेंगे न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन अगर गलत नहीं किया होता तो, इसमें टाइम...

दादाश्री : लेकिन ऐसा नहीं चलेगा। वह तो, आपको उस पर से, भीतर से रुचि निकाल लेनी है कि 'यह गलत हो रहा है, ऐसा नहीं होना चाहिए'। जब पसंद होता है तब आपको टेस्ट (रस) आता है। यदि वह नापसंद हो जाए तो परेशानी नहीं होगी। आपको वह खाना पड़े, अच्छा नहीं लगता है और फिर यदि आप खाते हो तो हर्ज नहीं है।

'रियल' धर्म में आने के बाद

प्रश्नकर्ता : जब गलत कर रहे हों, उस वक्त भाव तो ऐसा होना चाहिए न, कि मुझसे ऐसा न हो या फिर ज्ञाता-द्रष्टा ही रहना है?

दादाश्री : ज्ञाता-द्रष्टा रहना है और प्रतिक्रमण करने को कहा है न?

प्रश्नकर्ता : लेकिन भाव तो होना ही नहीं चाहिए न?

दादाश्री : भाव नहीं होगा। आप चंदूभाई को जागृत करना कि

प्रतिक्रमण करो, अतिक्रमण क्यों किया? पूरे दिन क्रमण होता है। अतिक्रमण पूरे दिन नहीं होता। घंटे में एकाध-दो बार होता है, उसका प्रतिक्रमण करना पड़ता है।

आपकी सारी निर्बलताओं को पहचानना चाहिए। अब आप खुद निर्बल नहीं हैं। आप तो आत्मा हो गए। लेकिन अज्ञान दशा में इसके मूल उत्पादक तो आप ही थे न? इसलिए आपको पड़ोसी के तौर पर कहना है कि 'चंदूभाई, प्रतिक्रमण कर लो'।

प्रतिक्रमण तो आप बहुत ही करना। आपके सर्कल में लगभग पचास-सौ व्यक्ति हो, जिस-जिसको आपने परेशान किया हो, उन सभी के, जब भी फुरसत मिले तब एकाध घंटा बैठकर, एक-एक को ढूँढ-ढूँढकर प्रतिक्रमण करना। जितनों को परेशान किया है, उन सब का वापस धोना पड़ेगा न? फिर ज्ञान प्रकट होगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, जिसने मुझे परेशान किया है, मैंने भी उसी को परेशान किया है।

दादाश्री : आपको जिसने परेशान किया होगा, उसका तो वह भुगत लेगा। वह आपकी ज़िम्मेदारी नहीं है। जो परेशान करता है, उसे ज़िम्मेदारी का भान नहीं है। वह इस जन्म में तो रोटी खा रहा है लेकिन उसे अगले जन्म में घास खाने में कोई आपत्ति नहीं है!

वह आधारित है, पुण्य और पाप पर

प्रश्नकर्ता : कई लोग जब झूठ बोलते हैं, तब भी सत्य माना जाता है और कई लोग जब सच बोलते हैं, तब भी झूठ माना जाता है। वह क्या पज़ल है?

दादाश्री : ऐसा उसके पाप और पुण्य के आधार पर हो जाता है। यदि उसके पाप का उदय होगा तो वह सच बोलेगा तो भी झूठ माना जाएगा। यदि पुण्य का उदय होगा तो झूठ बोलेगा तो भी लोग उसे सच मानेंगे, चाहे कैसा भी झूठ बोला होगा तो भी चल जाता है।

प्रश्नकर्ता : तो क्या उसे कोई नुकसान नहीं है?

दादाश्री : नुकसान तो है ही लेकिन अगले जन्म का। इस जन्म में तो उसे पिछले जन्म का फल मिलता है और अभी जो झूठ बोला न, उसका फल उसे अगले जन्म में मिलेगा। यह तो अभी उसने बीज बोया। बाकी, यह कोई चौपट राजा की अंधेर नगरी नहीं है कि चाहे जैसा चले!

प्रश्नकर्ता : जान-बूझकर गलत करें और कहें कि बाद में प्रतिक्रमण कर लेंगे तो वह चलेगा?

दादाश्री : नहीं। जान-बूझकर नहीं करना है लेकिन गलत हो जाए तो प्रतिक्रमण कर लेना है।

एक व्यक्ति से आप कहो कि, 'आप झूठे हो'। अब झूठा बोलते ही तो इतना सारा 'साइन्स' दिखाई देता है भीतर, उसके इतने सारे पर्याय खड़े हो जाते हैं कि आपको दो घंटे तक उस पर प्रेम ही उत्पन्न नहीं होगा। इतने सारे पर्याय उत्पन्न हो जाते हैं इसलिए शब्द बोलने से पहले... अगर नहीं बोलो तो उत्तम है और यदि बोल दिया जाए तो प्रतिक्रमण करो। बोलो मत, ऐसा तो हम नहीं कह सकते क्योंकि व्यवस्थित है न, लेकिन बोल दिया जाए तो प्रतिक्रमण करो। हमारे पास वह साधन है। प्रतिक्रमण करते हो या नहीं?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

खाली करनी है यह 'दुकान'

प्रश्नकर्ता : तो फिर यह ज़िंदगी जीए किस तरह से?

दादाश्री : किस तरह से जी रहे हो, वह देखना है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर सही-गलत का डिसिज़न (निर्णय) कैसे लेना है?

दादाश्री : 'चंदूभाई' करते हैं, उसे देखते रहना है।

प्रश्नकर्ता : यदि 'चंदूभाई' गलत कर रहे हैं तो क्या हर्ज नहीं है?

दादाश्री : 'चंदूभाई' जो करते हैं, वह 'डिस्चार्ज' स्वरूप है। उसमें बदलाव नहीं हो सकता। 'डिस्चार्ज' कभी भी नहीं बदलता। क्या आपने ऐसा सुना है कि इफेक्ट में बदलाव नहीं हो सकता? परीक्षा देने में बदलाव ला सकते हैं, लेकिन क्या उसके परिणाम में बदलाव ला सकते हैं?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : यानी यह परिणाम है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यदि गलत करेगा तो दूसरे जन्म में फिर से तकलीफ होगी न?

दादाश्री : नहीं होगी। आपको तो सिर्फ 'चंदूभाई' से ऐसा कहना है कि 'प्रतिक्रमण करो'। यदि अच्छा किया होगा तो वह भी वापस दूसरे जन्म में आ मिलेगा। अच्छा-बुरा, हमें किसी से भी कुछ लेना-देना नहीं है। हमें *निकाल* कर देना है। यह दुकान खाली कर देनी है। अच्छा माल हो या बुरा, सब दुकान में से निकाल देना है। यह परिणाम है अब।

सिर्फ आज्ञा में रहने का निश्चय

प्रश्नकर्ता : क्या ऐसा नहीं है कि आपने जो पाँच आज्ञाएँ दी हैं, उन्हीं के आधार पर जीना है?

दादाश्री : पाँच आज्ञा का पालन करना है। उससे आत्मा का रक्षण होगा, इस ज्ञान का रक्षण होगा। उसमें कोई कठिनाई नहीं है न?

प्रश्नकर्ता : नहीं, कठिन तो है ही। आपने जो समभाव रखने को कहा है कि किसी पर गुस्सा नहीं होना है, कुछ कहना नहीं है।

दादाश्री : नहीं, वह तो आपको मन में निश्चय करना है कि

'मुझे समभाव से *निकाल* करना है' इतना ही। दूसरा आपको कुछ नहीं देखना है। हुआ या नहीं, वह नहीं देखना है।

प्रश्नकर्ता : जैसा भी हो वैसा?

दादाश्री : आपको उस झंझट में नहीं पड़ना है। सही-गलत होता ही नहीं है। भगवान के वहाँ पर सत्य, असत्य दोनों ही नहीं होते हैं। यह सब समाज व्यवस्था तो यहाँ पर है। हिन्दुओं का सत्य, मुस्लिमों का असत्य होता है और मुस्लिमों का सत्य, वह हिन्दुओं का असत्य होता है। भगवान के वहाँ पर सही-गलत कुछ होता ही नहीं है। भगवान तो इतना ही कहते हैं कि किसी को भी दुःख हो जाए तो आपको प्रतिक्रमण करना है। आपसे दुःख नहीं पहुँचना चाहिए। आप 'चंदूभाई' हैं, वह दुनिया का सच है। बाकी, भगवान के वहाँ पर तो वह 'चंदूभाई' भी नहीं है। यह सत्य भगवान के वहाँ पर असत्य है।

संसार चलता रहे, संसार छूए नहीं, बाधक ना बने और काम हो जाए, ऐसा है। सिर्फ हमारी आज्ञा का आराधन करना है। 'चंदूभाई' झूठ बोले तो भी अपने यहाँ (अक्रम में) हर्ज नहीं है। झूठ बोलने से सामने वाले को नुकसान हुआ। इसलिए आपको 'चंदूभाई' से कहना है, 'प्रतिक्रमण कर लो'। झूठ बोलना प्राकृतिक गुण है इसलिए बोले बगैर नहीं रहोगे। झूठ बोलने पर मैं आपत्ति नहीं उठाता। झूठ बोलने के बाद, प्रतिक्रमण नहीं करने पर मैं आपत्ति उठाता हूँ। झूठ बोलने के बाद जब प्रतिक्रमण के भाव होते हैं तब जो ध्यान बर्तता है, वह धर्मध्यान है। लोग खोजते हैं कि धर्मध्यान क्या है। यदि झूठ बोल दे तो 'दादा' से माफी माँगनी है और फिर कभी झूठ बोलूँ ही नहीं, ऐसी शक्तियाँ माँगनी हैं।

❖❖❖❖❖

[20]

जागृति, वाणी बहे तब

वाणी से कर्म बंधन ज़्यादा

मन से इतनी परेशानी नहीं है, वाणी से परेशानी है। क्योंकि मन तो गुप्त तरीके से चलता है, लेकिन वाणी से तो सामने वाले के हृदय को आघात पहुँचता है। यानी इस वाणी से जिन-जिन व्यक्तियों को दु:ख पहुँचा है, उन सब से क्षमा माँगता हूँ, इस तरह प्रतिक्रमण कर सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण से वाणी के ऐसे सारे दोष माफ हो जाएँगे न?

दादाश्री : दोष रह जाएँगे, लेकिन जली हुई रस्सी जैसे। इसलिए अगले जन्म में आपके 'ऐसा' करते ही प्रतिक्रमण से सब खत्म हो जाएँगे। उनमें से रुचि खत्म हो जाएगी सारी।

कर्ता का आधार हो तो कर्म बंधता है। अब आप कर्ता नहीं हो। यानी पिछले कर्म हैं, वे फल देकर चले जाएँगे। नए कर्म नहीं बंधेंगे।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, सामने वाले व्यक्ति पर फिर क्या 'इफेक्ट' होता है?

दादाश्री : वह हमें नहीं देखना है। प्रतिक्रमण करने के बाद हमें नहीं देखना है। ज़्यादा प्रतिक्रमण करना।

प्रश्नकर्ता : मान लो, यदि उसे कुछ कह दूँ तो ऐसा कहा जाएगा न कि मैंने दु:ख दिया?

दादाश्री : हाँ, वह दु:ख तो आपकी इच्छा विरुद्ध हुआ है न, इसलिए आपको प्रतिक्रमण करना है। यही उसका हिसाब होगा इसलिए चुक गया।

प्रश्नकर्ता : लेकिन हम कुछ कहते हैं तो उसे मन में बुरा भी बहुत लगता है न?

दादाश्री : हाँ। वह सब तो बुरा लगेगा। गलत हुआ हो तो गलत लगेगा न! जो हिसाब चुकाना है तो वह चुकाना ही पड़ेगा न! उसमें कोई चारा ही नहीं है।

प्रश्नकर्ता : अंकुश नहीं रहता है इसलिए वाणी से निकल जाता है।

दादाश्री : हाँ, वह तो निकल जाता है। लेकिन जो निकल जाता है, उस पर आपको प्रतिक्रमण करना है। बस, दूसरा कुछ नहीं। पश्चाताप करके और ऐसा फिर कभी नहीं करूँगा, ऐसा निश्चय करना है।

फिर फुरसत में उनके प्रतिक्रमण करते ही रहना है। उससे सब नरम हो जाएँगे। जितनी भी कठिन फाइलें हैं, उतनी ही नरम करनी है। इतनी कठिन दो-चार फाइलें ही होती हैं। ज़्यादा नहीं होतीं न?

रखो व्यवहार, व्यवहार के रूप से

प्रश्नकर्ता : यदि कोई व्यक्ति अकुलाकर बोले तो वह अतिक्रमण नहीं है?

दादाश्री : अतिक्रमण ही कहलाएगा न!

प्रश्नकर्ता : किसी को दु:ख पहुँचे, ऐसी वाणी निकल गई और उसका प्रतिक्रमण नहीं किया तो क्या होगा?

दादाश्री : ऐसी वाणी निकल गई कि उससे तो सामने वाले को

ठेस पहुँचती है, उसे दु:ख हो जाता है। सामने वाले को दु:ख हो, वह क्या आपको अच्छा लगेगा?

प्रश्नकर्ता : उससे बंधन होता है?

दादाश्री : यह नियम के विरुद्ध कहा जाएगा न? नियम से विरुद्ध है न? नियम के विरुद्ध तो होना ही नहीं चाहिए न? हमारी आज्ञा पालो न, तो वह धर्म कहलाता है और प्रतिक्रमण करने में क्या नुकसान है? माफी माँग लो और, 'फिर कभी ऐसा नहीं करूँगा', ऐसा भाव भी रखना है, बस इतना ही। शॉर्ट में कर देना है। इसमें भगवान क्या करें? क्या उसमें कहीं भी न्याय खोजना चाहिए? यदि व्यवहार को व्यवहार समझा तो न्याय समझ गया! पड़ोसी उल्टा क्यों बोल गया? क्योंकि आपका व्यवहार ऐसा था इसलिए। और आपसे उल्टी वाणी निकल गई, वह सामने वाले के व्यवहार के अधीन है लेकिन आपको तो मोक्ष में जाना है, इसलिए उसका प्रतिक्रमण कर लेना है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन तीर निकल गया उसका क्या?

दादाश्री : वह व्यवहाराधीन है।

प्रश्नकर्ता : यदि ऐसी परंपरा रहे तो बैर बढ़ेगा न?

दादाश्री : नहीं, इसीलिए तो प्रतिक्रमण करते हैं। प्रतिक्रमण सिर्फ मोक्ष में जाने के लिए ही नहीं है, बल्कि वह तो बैर न बंधे उसके लिए भगवान के वहाँ लगाया फोन है। प्रतिक्रमण में कच्चे पड़ोगे तो बैर बंधेगा। जैसे ही भूल समझ में आ जाए कि तुरंत ही प्रतिक्रमण कर लो। उससे बैर बंधेगा ही नहीं। सामने वाले को बैर बाँधना हो तो भी नहीं बंधेगा क्योंकि आप सामने वाले के आत्मा को सीधा ही फोन पहुँचाते हो। व्यवहार निरुपाय है। यदि आपको मोक्ष में जाना हो तो प्रतिक्रमण करो। जिसे स्वरूपज्ञान ना हो, उसे व्यवहार, व्यवहार स्वरूप ही रखना है तो सामने वाला उल्टा बोला, वही करेक्ट है, ऐसा ही रखो। लेकिन यदि मोक्ष में जाना है तो साथ ही साथ उसके प्रतिक्रमण करो, नहीं तो बैर बंधेगा।

लो प्रतिक्रमण का आधार

प्रश्नकर्ता : जब सामने वाला उल्टा बोले तब आपके ज्ञान से समाधान रहता है, लेकिन मुख्य सवाल यह है कि मुझसे कड़वा निकल जाता है तो उस वक्त मैं इस वाक्य का आधार लूँ तो मुझे उल्टा लाइसेन्स मिलता है?

दादाश्री : इस वाक्य का आधार लेना ही नहीं चाहिए न! उस वक्त के लिए तो आपको प्रतिक्रमण का आधार दिया है। सामने वाले को दुःख पहुँचे, ऐसा बोल दिया हो तो प्रतिक्रमण कर लेना है।

सामने वाला कुछ भी बोले, लेकिन तब यदि वाणी, 'पर और पराधीन' है, इस बात को स्वीकार कर लिया तो आपको सामने वाले से दुःख ही नहीं रहेगा न!

अब आप खुद उल्टा बोल लेते हो और फिर उसका प्रतिक्रमण कर लेते हो तो उसका दुःख नहीं रहेगा। इस तरह से सारा हल आ जाता है। वाणी से जो कुछ बोल लेते हो, उसके आप 'ज्ञाता-द्रष्टा' हो लेकिन जिसे वाणी से दुःख पहुँचा है, उसका प्रतिक्रमण आपको बोलने वाले से करवाना पड़ेगा।

इच्छा नहीं है फिर भी हो जाता है

प्रश्नकर्ता : हम मन से ऐसी इच्छा करें कि इसके साथ नहीं बोलना है, न ही कोई कलह करनी है, न ही झगड़ा करना है और फिर भी ऐसा कुछ हो जाता है कि वापस झगड़ा हो ही जाता है, बोल ही देते हैं, क्लेश हो जाता है, सबकुछ हो जाता है। तब क्या करूँ कि यह सब रूक जाए?

दादाश्री : वह अंतिम स्टेप्स पर है। जब वह रास्ता खत्म होने लगे न, तब आपके भाव नहीं होने के बावजूद भी यदि गलत हो जाए तो वहाँ पर फिर आपको क्या करना है? पश्चाताप करने से धुल जाएगा, बस। गलत हो जाए तो इतना ही उपाय है, अन्य कोई उपाय नहीं है। वह जब खत्म होने लगे तब भीतर बुरा करने का भाव नहीं हो फिर

भी बुरा हो जाता है। वह कार्य जब खत्म होने वाला हो तब। नहीं तो अधूरा हो तो भीतर भाव भी होता है और वह कार्य भी हो जाता है, दोनों होते हैं। यदि वह कार्य अभी अधूरा हो, काम बाकी हो, तो करने का भाव भी हो जाता है, आपको उल्टा करने का भाव भी हो जाता है और उल्टा हो भी जाता है। यह उल्टा करने का भाव न हो और उल्टा हो जाए, तो आपको जानना है कि अब इसका अंत निश्चित ही है। उस पर से अंत का पता चलता है। अर्थात् 'कमिंग इवेन्ट्स कास्ट देर शेडोज़ बिफॉर' (कुछ होने वाला हो उसकी गूँज पहले से सुनाई देती है।)

टोक दिया जाए, उसका क्या?

प्रश्नकर्ता : आपने वाणी को पर-सत्ता कहा, वाणी पराधीन है कहा। तो हम निश्चय करें कि इसके साथ बुरा बोलना ही नहीं है। चाहे कितनी भी *चीकणी फाइल* (गाढ़ ऋणानुबंध वाले व्यक्ति अथवा संयोग) हो, तो क्या वास्तव में वह कोड छोटा हो जाता है?

दादाश्री : वह तो जब बुरा बोला जाए तब हमें उन्हें ऐसा कहना है कि 'चंदूभाई, प्रतिक्रमण करो' और बाद में 'चंदूभाई' से क्या कहना है कि 'अब फिर कभी ऐसा बुरा नहीं बोलना।' यानी ऐसा करते-करते तालमेल बैठ जाएगा लेकिन कहना तो पड़ेगा ही। टोकते नहीं हो यानी अभिप्राय एक हो गया! अभिप्राय अलग ही रहना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : कई बार ऐसा होता है कि हम (खुद को) टोकते हैं तो फिर सुधर जाता है। फिर वापस ऐसी भूल नहीं होती है और कई बार चाहे कितने भी स्ट्रोंग निश्चय से खुद को टोकें, प्रत्याख्यान करें तो भी वापस ऐसी भूल हो ही जाती है।

दादाश्री : हो जाती है, उसमें पूर्वकर्म का दोष है। आपकी ही कमज़ोरी है न पहले की! इसमें बाहर वाले किसी का हाथ नहीं है न! आपको ही निवारण लाना पड़ेगा न?

आत्मार्थ के लिए झूठ वही महासत्य

प्रश्नकर्ता : परमार्थ के काम के लिए थोड़ा झूठ बोले तो क्या उससे दोष लगता है?

दादाश्री : परमार्थ यानी आत्मा के लिए जो कुछ भी करना पड़ता है उसमें दोष नहीं लगता है। देह के लिए जो कुछ भी करते हो, बुरा करते हो तो दोष लगता है और अच्छा करते हो तो गुण लगता है। आत्मा के लिए जो कुछ भी करते हो उसमें हर्ज नहीं है। आत्मा को परमार्थ कहते हो न? हाँ, आत्म हेतु हो न, उसके जो भी कार्य हो, उसमें कोई दोष नहीं है, सामने वाले को अपने निमित्त से दुःख पहुँचे तो उसका दोष लगता है!

व्यवहार है अनिवार्य

प्रश्नकर्ता : हम सामने वाले से कुछ कहें, हमारे मन में ऐसा कुछ नहीं होता है, फिर भी हम उसे कहते हैं तो उसे ऐसा लगता है कि 'ये सही नहीं कह रहे हैं, गलत है', तो उसे अतिक्रमण कहेंगे?

दादाश्री : लेकिन यदि उसे दुःख हुआ तो आपको प्रतिक्रमण कर लेना है। आपको उसमें क्या मेहनत करनी है? किसी को दुःखी करके सुखी नहीं हो सकते।

प्रश्नकर्ता : व्यवहार में कई बार ऐसा कहना पड़ता है, करना पड़ता है। वर्ना लेथर्जीपना (आलस) आ जाता है और सामने वाले में भी लेथर्जीपना आ जाता है।

दादाश्री : व्यवहार में भले ही ऐसा करो लेकिन आपको प्रतिक्रमण कर लेना है। व्यवहार तो करना ही पड़ेगा, चारा ही नहीं है न, अनिवार्य है, अनिवार्य व्यवहार है। सारे जगत् ने ऐच्छिक व्यवहार माना है। यह अक्रम विज्ञान ने खुला किया कि 'दिस इज़ (यह है) अनिवार्य व्यवहार' और 'हमने' ही ऐसा कहा कि 'इट हैपन्स' (हो रहा है)!

प्रश्नकर्ता : यदि प्रतिक्रमण का असर नहीं हो रहा है तो उसका मतलब हमने पूरे भाव से नहीं किया है या सामने वाली व्यक्ति के आवरण है?

दादाश्री : सामने वाली व्यक्ति का आपको नहीं देखना है। वह तो पागल भी हो सकता है। हमारे निमित्त से उसे दुःख नहीं होना चाहिए, बस!

प्रश्नकर्ता : यानी किसी भी कारण से उसे दु:ख हो जाए तो उसका समाधान करने का प्रयत्न करना चाहिए।

दादाश्री : उसे दु:ख हो जाए तो समाधान तो अवश्य करना चाहिए। वह अपनी 'रिस्पॉन्सिबिलिटी' (ज़िम्मेदारी) है। हाँ, दु:ख नहीं हो उसके लिए तो अपनी लाइफ (ज़िंदगी) है।

अब भविष्य में नहीं करेंगे। लेकिन पुराने जो हो चुके हैं, उनका उपाय तो करना ही पड़ेगा न?

प्रश्नकर्ता : मान लो कि उसके बावजूद भी सामने वाले को समाधान नहीं हुआ तो फिर अपनी ज़िम्मेदारी कितनी?

दादाश्री : रूबरू जाकर यदि आँखों से हो पाएँ तो आँखें नर्म दिखानी है। माफी माँगने पर भी यदि हल्की चपत लगाए तो समझ जाना कि माफी माँगने लायक नहीं है। फिर भी *निकाल* करना है। माफी माँगने पर यदि हल्की चपत लगाए तो समझ जाना कि इसके प्रति भूल तो हुई है लेकिन व्यक्ति माफी माँगने लायक नहीं है इसलिए झुकना बंद कर दो।

हेतु सोने का है लेकिन दिखावे में भूल

आपसे लोग दु:खी होते हैं क्या?

प्रश्नकर्ता : होते हैं।

दादाश्री : बाद में तुरंत पता चल जाता है?

प्रश्नकर्ता : तुरंत पता चलता है।

दादाश्री : ऐसा? तब फिर आप क्या करते हो?

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण करता हूँ।

दादाश्री : डाँटने के बाद यदि प्रतिक्रमण करें तो क्या हर्ज है? हेतु अच्छा है न, बस इतना ही तो चाहिए।

प्रश्नकर्ता : हेतु अच्छा है तो फिर प्रतिक्रमण क्यों करना है?

दादाश्री : प्रतिक्रमण तो करना पड़ता है, उसे दुःख होता है न और व्यवहार में लोग कहेंगे न, देखो! यह औरत कैसे अपने पति को डाँटती है! बाद में प्रतिक्रमण करना पड़ता है। जो आँखों से दिखे उसका प्रतिक्रमण करना है। अंदर हेतु आपका सोने का हो लेकिन किस काम का? ऐसा हेतु नहीं चलता। हेतु बिल्कुल सोने का हो फिर भी हमें भी प्रतिक्रमण करना पड़ता है। भूल हुई कि प्रतिक्रमण करना है। सभी महात्माओं की भी ऐसी इच्छा है, अब जगत् कल्याण करने की भावना है। हेतु अच्छा है लेकिन फिर भी नहीं चलता। प्रतिक्रमण तो पहले करना पड़ता है। कपड़े पर दाग़ लगता है तो धो देते हैं न? इसी प्रकार ये कपड़े पर के दाग़ हैं।

ये कोई जीवित नहीं बोल रहे हैं, यह सब टेपरिकॉर्ड बोल रही है। बाद में वह पछताता भी है। यानी उसने नहीं बोला, ऐसा विश्वास हो गया न आपको? अब ऐसा कहने की ज़रूरत है कि उसे पछतावा हो। उसके बजाय यदि ऐसा कहो कि, 'ऐसा क्यों बोला' तो बल्कि पछताना छोड़कर वह वापस हमारे सामने बोलेगा। भूल कहाँ हो जाती है? उसे पछतावा हो, ऐसा करना है।

जब 'हमारी' टेपरिकॉर्ड बजती है और उसमें कुछ भूलचूक हो जाए तो हम तुरंत ही उसके लिए पछतावा कर लेते हैं। वर्ना नहीं चलेगा।

टोकना है लेकिन ऐसे कि दुःख नहीं हो

प्रश्नकर्ता : व्यवहार में कोई गलत कर रहा हो, उसे टोकना पड़ता है। उससे उसे दुःख होता है तो उसका *निकाल* कैसे करें?

दादाश्री : व्यवहार में टोकना पड़ता है लेकिन वह अहंकार सहित होता है, इसलिए उसका प्रतिक्रमण करना।

प्रश्नकर्ता : टोकेंगे नहीं तो वे सिर पर चढ़ जाएँगे?

दादाश्री : टोकना तो पड़ता है लेकिन कहना आना चाहिए। कहना नहीं आता, व्यवहार नहीं आता इसलिए अहंकार सहित टोक

दिया जाता है। अत: बाद में उसका प्रतिक्रमण करना। आप सामने वाले को टोको तो उसे बुरा तो लगेगा, लेकिन उसके प्रतिक्रमण करते रहोगे तो छ: महीने बाद, बारह महीने बाद वाणी ऐसी निकलेगी कि सामने वाले को मीठी लगेगी। अभी तो 'टेस्टेड' (परीक्षण की हुई) वाणी चाहिए। अन्टेस्टेड वाणी बोलने का अधिकार नहीं है। इस तरह प्रतिक्रमण करोगे तो चाहे कैसा भी होगा फिर भी सीधा हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : हमें कई बार सामने वाले के हित के लिए उसे टोकना पड़ता है, रोकना पड़ता है, तो उस वक्त उसे दु:ख पहुँचता हो तो?

दादाश्री : हाँ। सामने वाले को दु:ख हो जाए ऐसा हो तो आपको कहना है, 'हे चंदूभाई, प्रतिक्रमण करो। अतिक्रमण क्यों किया? फिर कभी ऐसा नहीं बोलूँगा और यह जो बोला, उसका पश्चाताप करता हूँ'। इस प्रकार प्रतिक्रमण करना है।

कहने का अधिकार है लेकिन कहना आना चाहिए। यह तो, कोई आए तो उसे देखते ही कहते हैं कि 'आप ऐसे हैं और आप वैसे हैं' अब यह अतिक्रमण हुआ कहलाएगा और उसका प्रतिक्रमण करना है।

विनयपूर्वक उल्टे बोल

प्रश्नकर्ता : दूसरे को बुरा लगे वह हमें नहीं देखना है, हमें कह देना है।

दादाश्री : ऐसा नहीं कहना चाहिए। दु:ख हो जाए ऐसी बात क्यों कहनी चाहिए?

प्रश्नकर्ता : लेकिन यदि वे गलत बोल रहे हों या गलत कर रहे हों तो भी हमें नहीं कहना है?

दादाश्री : कहना है। इस तरह कह सकते हो कि 'ऐसा नहीं हो तो अच्छा, ऐसा नहीं हो तो अच्छा'। आपको ऐसा कहना चाहिए। लेकिन आप उनके बॉस (*ऊपरी*) हो, इस तरह बात करते हो न, इसलिए बुरा लगता है। बुरे शब्द तो विनय से कहने चाहिए।

प्रश्नकर्ता : बुरे शब्द बोलते समय क्या विनय रहेगा?

दादाश्री : वह रहेगा, उसे ही विज्ञान कहते हैं। क्योंकि 'ड्रामेटिक' (नाटकीय) है न! है लक्ष्मीचंद लेकिन कहता है 'मैं भर्तुहरि राजा हूँ, इस रानी का पति हूँ'। फिर 'भिक्षा दे न मैया पिंगला' कहकर आँखों से पानी बहाता है। तब 'अरे, तू तो लक्ष्मीचंद है, क्यों? तू सचमुच रो रहा है?' तब कहेगा, 'मैं क्यों सचमुच रोऊँ? यह तो मुझे अभिनय करना ही पड़ता है। नहीं तो मेरा वेतन काट लेंगे'। इस तरह अभिनय करना है ज्ञान मिलने के बाद, यह तो नाटक है।

प्रश्नकर्ता : यदि सामने वाले व्यक्ति को दु:ख हो जाए तब भी हमें कोई कर्म नहीं बंधता?

दादाश्री : दु:ख हो जाए, ऐसा अपने निमित्त से नहीं होना चाहिए। फिर भी यदि हो जाए तो वह उसका अपना है। हमें, अपने निमित्त से नहीं हो, इस तरह सावधानी रखनी है।

प्रश्नकर्ता : फिर भी आवेश में कुछ बोल दिया जाए तो?

दादाश्री : अगर बोल दिया जाए तो बाद में प्रतिक्रमण करना है।

'जोक' का भी करना पड़ता है प्रतिक्रमण

किसी से ऊँची आवाज़ में बात की, अरे! किसी का ज़रा 'जोक' (मज़ाक) करें और सामने वाला ज़रा संवेदनशील हो तो ज़रा चला (सहन कर) लेता है लेकिन भीतर उसे दु:ख हो जाता है, उसे अतिक्रमण कहेंगे? हम 'जोक' करते हैं लेकिन निर्दोष 'जोक' करते हैं। हम तो उसका रोग निकालकर, उसे शक्तिशाली बनाने के लिए 'जोक' करते हैं। मज़ा आए, आनंद आए और साथ ही वह आगे बढ़ता जाए। बाकी, वह 'जोक' किसी को दु:ख नहीं देता। ऐसा मज़ाक करना चाहिए या नहीं? वह भी समझता है कि ये मज़ाक कर रहे हैं। मसखरी नहीं कर रहे, मज़ाक कर रहे हैं।

यदि हम किसी से मज़ाक करते हैं तो हमें भी उसके प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं। हमारा यों ही ऐसा नहीं चलता।

प्रश्नकर्ता : वह तो मज़ाक कहलाता है। ऐसा तो हो सकता है न!

दादाश्री : नहीं, लेकिन उसके भी हमें प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं। आप नहीं करो तो चलेगा लेकिन हमें तो करने पड़ते हैं। नहीं तो हमारा यह ज्ञान, यह 'टेपरिकॉर्ड' निकलती है न, वह फिर मंद निकलेगी।

प्रश्नकर्ता : आपके प्रतिक्रमण तो 'ऑन द स्पॉट' हो जाते होंगे न?

दादाश्री : हाँ, उसमें मेरा भाव बुरा नहीं होता लेकिन फिर भी वह हास्य नामक कषाय है। मसखरी नहीं करते हैं फिर भी हास्य नामक कषाय कहलाता है। वह बेचारा भोला है इसलिए उसे बार-बार *गोदे* (कोहनी से, मुक्का) मार रहे हो? लेकिन हम प्रतिक्रमण करते हैं।

हमें भी ज़रा मज़ा आता है। *गोदे* मारते हैं तो मज़ा आता है। लेकिन ये लोग मज़बूत तो हो जाएँगे, ऐसा हम जानते हैं इसलिए 'हो जाएँगे' करके हम मज़ाक करते हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन इन भाई का जो मज़ाक उड़ाया, तो उसके प्रतिक्रमण, वह क्यों?

दादाश्री : हाँ, वे करुणा के प्रतिक्रमण कहलाते हैं, उसे आगे बढ़ाने के लिए। सब लोग हमें रोज़ कहते हैं कि 'हमें क्यों कुछ नहीं कहते?' मैंने कहा, 'आपको नहीं कह सकते'। उन्हें बढ़ाने की ज़रूरत नहीं है। वे ऐसे हैं कि अपने आप ही बढ़ें। वे ऐसे हैं कि समझदारी से 'ग्रास्पिंग' (ग्रहण) कर सकें। फिर भी हमें प्रतिक्रमण करना पड़ता है! वह आश्चर्य ही है न!

मज़ाक उड़ाना, वह है बड़ा जोखिम

बाकी, मैंने सभी तरह से मज़ाक उड़ाई है। सब तरह से मज़ाक कौन उड़ाता है? जिसका ब्रेन बहुत टाइट (तेज़ दिमाग़) हो, वह उड़ाता है। मैं तो खुशी से सब का मज़ाक उड़ाता था। अच्छे-अच्छे

लोगों का, बड़े-बड़े वकीलों का, डॉक्टरों का मज़ाक उड़ाता था। अब वह सब अहंकार तो गलत ही है न! वह अपनी बुद्धि का दुरुपयोग ही किया न! मज़ाक उड़ाना तो बुद्धि की निशानी है।

प्रश्नकर्ता : मुझे तो अभी भी मज़ाक उड़ाने का मन होता रहता है।

दादाश्री : मज़ाक उड़ाने में बहुत जोखिम है। बुद्धि से मज़ाक उड़ाने की शक्ति है ही, और फिर उसका जोखिम भी उतना ही है। हमने सारी ज़िंदगी जोखिम मोल लिया था, जोखिम ही मोल लेते रहे थे।

प्रश्नकर्ता : मज़ाक उड़ाने के क्या-क्या जोखिम हैं? किस प्रकार के जोखिम हैं?

दादाश्री : ऐसा है कि किसी को धौल लगाने में जो जोखिम है, उसकी तुलना में मज़ाक उड़ाने में अनंत गुना जोखिम है। उसकी बुद्धि बराबरी नहीं कर पाई इसलिए आपने उसे अपनी लाइट से अपने कब्ज़े में ले लिया। इसलिए फिर वहाँ पर भगवान कहेंगे, 'इसमें बुद्धि नहीं है, उसका यह लाभ उठा रहा है?' वहाँ पर खुद भगवान को हमने प्रतिद्वंद्वी बनाया। उसे धौल मारी होती तो वह समझ जाता इसलिए खुद मालिक बन जाता लेकिन इसमें तो बुद्धि उसे समझ में नहीं आता, इसलिए आप जब उसकी मज़ाक उड़ाते हो तो वह खुद मालिक नहीं बनता। तब भगवान समझते हैं कि, 'ओहोहो, इसकी बुद्धि कम है तो तू उसे फँसा रहा है? आ जा।' फिर तो वह आपकी हड्डियाँ तोड़ देगा।

प्रश्नकर्ता : हमने तो यही काम ज़्यादा किया था।

दादाश्री : लेकिन अभी भी उसके प्रतिक्रमण कर सकते हो न! हमने भी वही किया था न! और वह तो बहुत गलत था। मेरी तो यही परेशानी थी। अंतराय वाली बुद्धि थी तो वह क्या करती! विरोध तो करेगी ही न! यानी ज़्यादा बुद्धि बढ़ गई, उसका इतना लाभ न! इसलिए मज़ाक उड़ाने वाले को बिना बात का दुःख भुगतना पड़ता है।

कोई ऐसे-ऐसे चल रहा हो और यदि उस पर हँसे, मज़ाक उड़ाए न, तो भगवान कहेंगे, 'लो यह फल।' इस दुनिया में किसी भी प्रकार का मज़ाक मत उड़ाना। मज़ाक उड़ाने की वजह से ही ये सब अस्पताल बने हैं। यह पैर-वैर वगैरह टूटा-फूटा जो माल है न, वह मज़ाक उड़ाने का फल है। यानी कि हमें भी यह मज़ाक उड़ाने का फल आया है।

इसलिए हम कहते हैं न, 'मज़ाक उड़ाना तो बहुत गलत बात है क्योंकि उसे तो 'भगवान' का मज़ाक उड़ाना कहा जाएगा। भले ही गधा है लेकिन आफ्टर ऑल (आखिरकार) क्या है? भगवान है।' हाँ, आखिर में तो भगवान ही है न! जीवमात्र में भगवान ही रहे हुए हैं न! किसी का मज़ाक नहीं उड़ाना चाहिए न! आप हँसोगे न, तो भगवान समझेंगे कि 'हाँ, अब आ जा, इस बार तेरा हिसाब कर देता हूँ।'

प्रश्नकर्ता : अब उसके उपाय में प्रतिक्रमण तो करने ही पड़ेंगे न?

दादाश्री : हाँ, करने ही पड़ेंगे न! चारा ही नहीं है।

प्रश्नकर्ता : दादा, आपकी साक्षी में ज़ाहिर करके, माफी माँगकर प्रतिक्रमण करता हूँ, कहें तो?

दादाश्री : यदि बोलोगे, 'दादा! आपकी साक्षी में', तब भी चलेगा। 'वाणी के दोष से जिन-जिन लोगों को दुःख पहुँचा है, उन सब से क्षमा माँगता हूँ' तो पहुँच जाता है।

नहीं रहता प्रतिपक्षी भाव तब

इस दुषमकाल में वाणी से ही बंधन है। सुषमकाल में मन से बंधन था। ये शब्द नहीं होते न, तो मोक्ष तो सहज ही है। इसलिए किसी के लिए एक अक्षर भी नहीं बोलना चाहिए। किसी को गलत कहना, वह खुद के आत्मा पर धूल उड़ाने बराबर है। कुछ भी कहना बहुत बड़ी जोखिमदारी है। कुछ उल्टा बोलने पर भी खुद के भीतर आवरण आता है, उल्टा सोचने पर भी खुद के भीतर आवरण आता

है। इसलिए उस उल्टे का आपको प्रतिक्रमण करना है। फिर उससे छूट जाओगे। सामान्य रूप से व्यवहार में बोलने में हर्ज नहीं है लेकिन यदि देहधारी के लिए कुछ उल्टा-सीधा बोलोगे तो भीतर रिकॉर्ड हो जाएगा! संसार के लोगों की टेप बनानी हो तो देर कितनी? ज़रा सा उकसाओ कि प्रतिपक्षी भाव टेप होते ही रहेंगे। 'तेरे में इतनी निर्बलता है कि उकसाने से पहले ही तू बोलने लगेगा।'

प्रश्नकर्ता : गलत तो बोलना ही नहीं है लेकिन गलत भाव भी नहीं होना चाहिए न?

दादाश्री : भाव नहीं होना चाहिए, वह बात सही है। जो भाव में होता है, वह वाणी में आए बगैर नहीं रहता। अत: यदि बोलना बंद हो जाए न, तो भाव बंद हो जाएँगे। यह भाव वह तो वाणी के पीछे की गूँज है। प्रतिपक्षी भाव तो उत्पन्न हुए बगैर रहेंगे ही नहीं न! हमें प्रतिपक्षी भाव नहीं होते। आपको भी वहाँ तक पहुँचना है। आपकी इतनी कमज़ोरी तो निकल ही जानी चाहिए कि प्रतिपक्षी भाव उत्पन्न न हो। यदि कभी हो जाए तो हमारे पास प्रतिक्रमण का हथियार है, उससे मिटा देने हैं। कारखाने में पानी चला गया, लेकिन जब तक बर्फ नहीं बना है, तब तक हर्ज नहीं है। बर्फ बन जाने के बाद हाथ में नहीं रहता।

घर में बहू को डाँटा तो वह क्या समझती है कि 'किसी ने सुना ही नहीं है न! यह तो ऐसा ही है न!' छोटे बच्चों के सामने पति-पत्नी कुछ भी बोल देते हैं। वे समझते हैं कि यह छोटा बच्चा क्या समझेगा? अरे! भीतर टेप हो रहा है उसका क्या? जब वह बड़ा होगा तब वह बाहर निकलेगा।

धोने हैं वाणी के दोष इस तरह

प्रश्नकर्ता : जिसे टेप नहीं करना है उसके लिए कौन सा रास्ता है?

दादाश्री : कोई भी स्पंदन नहीं फेंकना है। सब देखते ही रहना

है लेकिन ऐसा होता नहीं है न! यह भी मशीन है और फिर पराधीन है। इसलिए हम दूसरा रास्ता बताते हैं कि टेप होते ही तुरंत मिटा दो तो चलेगा। यह प्रतिक्रमण, मिटाने का साधन है। इससे एकाध जन्म में बदलाव आकर सब बोलना बंद हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : शुद्धात्मा का *लक्ष* बैठने के बाद निरंतर प्रतिक्रमण चलते ही रहते हैं।

दादाश्री : उससे आपकी ज़िम्मेदारी नहीं रहती। कुछ कहने के बाद यदि उसका प्रतिक्रमण कर लिया तो ज़िम्मेदारी नहीं रहेगी न! सख्ती से बोलना है लेकिन राग-द्वेष रहित बोलना है। अगर सख्ती से बोल दो तो तुरंत प्रतिक्रमण विधि कर लेना।

मन-वचन-काया के योग, भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म, चंदूभाई तथा चंदूभाई के नाम की सर्व माया से भिन्न ऐसे 'शुद्धात्मा' का स्मरण करके कहना है कि, 'हे शुद्धात्मा भगवान, मैंने ऊँची आवाज़ में बोला, वह भूल हो गई, उसके लिए माफी माँगता हूँ और ऐसी भूल अब फिर कभी नहीं करूँगा, ऐसा निश्चय करता हूँ। वह भूल फिर कभी नहीं करूँ, ऐसी शक्ति दीजिए।' 'शुद्धात्मा' को याद किया अथवा 'दादा' को याद किया और कहा कि, 'यह भूल हो गई है' यानी वह है आलोचना और उस भूल को धो देना, वह है प्रतिक्रमण और वह भूल फिर कभी नहीं करूँगा, ऐसा निश्चय करना, वह प्रत्याख्यान है।

प्रश्नकर्ता : अपनी इच्छा नहीं हो फिर भी क्लेश हो जाए, वाणी बुरी निकले तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : जो कार्य पूरा होना होता है, वह कार्य इच्छा नहीं होने पर भी हो जाता है। तब हो जाने के बाद पश्चाताप-प्रतिक्रमण करना है।

प्रश्नकर्ता : मक्खन लगाना, क्या उसे सत्य कहेंगे? झूठ-मूठ का 'हाँ' कहलवाना?

दादाश्री : वह सत्य नहीं कहलाएगा। मक्खन लगाने जैसी चीज़ ही नहीं है। यह तो उसकी खुद की खोज है, खुद की भूल को लेकर दूसरे को मक्खन लगाता है यह।

सामने वाले को फिट हो जाए, ऐसी वाणी हमसे निकलनी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : सामने वाले का क्या होगा, ऐसा सोचने बैठें तो कब बेड़ा पार होगा?

दादाश्री : उसका विचार हमें नहीं करना है। आपको चंदूभाई से कहना है कि 'प्रतिक्रमण करो'। बस, इतना ही कहना है।

यह 'अक्रम विज्ञान' है। इसलिए प्रतिक्रमण रखना पड़ा है।

इस जन्म में ही वाणी सुधरती है

प्रश्नकर्ता : क्या प्रतिक्रमण करने के बाद हमारी वाणी बहुत ही अच्छी हो जाएगी? इसी जन्म में?

दादाश्री : उसके बाद तो कुछ और ही प्रकार का होगा! हमारी वाणी उच्चतम प्रकार की निकलती है। उसका कारण प्रतिक्रमण ही है। और यह वाणी निर्विवाद है, उसका कारण भी प्रतिक्रमण ही है। वर्ना विवाद ही होते। सभी जगह विवाद वाली वाणी होती है। व्यवहार शुद्धि के बिना स्याद्‌वाद वाणी नहीं निकलती। पहले व्यवहार शुद्धि होनी चाहिए।

❖❖❖❖❖

[21]

छूटे प्रकृति दोष ऐसे

अंतराय, पूर्व की भूल के परिणाम स्वरूप

प्रश्नकर्ता : जब लक्ष्य जब चूक जाते हैं तब अपनी भूल समझनी है या अंतराय समझना है?

दादाश्री : भूल तो क्या है कि जो अंतराय आए हैं वे खुद ने खड़े किए हैं। यानी सारी भूलें खुद की ही हैं। अंतराय क्यों आए? अब सारे अंतराय धीरे-धीरे कम हो जाएँगे। अत: भूल का खेद करने जैसा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : अंतराय अपनी भूल के परिणाम हैं?

दादाश्री : पहले जो भूलें की हैं उसके ये सब परिणाम हैं। वे तो अंतराय द्वारा ही भुगतने पड़ते हैं न?

प्रश्नकर्ता : फिर उसका खेद नहीं करना है न?

दादाश्री : नहीं, नहीं। अफसोस कौन करेगा? आत्मा में अफसोस का गुण ही नहीं है न! जागृति थोड़ी ज़्यादा रखनी है, उस समय शुद्धात्मा, शुद्धात्मा बोलें तो जागृति आ जाती है।

प्रश्नकर्ता : खेद की बजाय प्रतिक्रमण कर सकते हैं?

दादाश्री : इतने सारे प्रतिक्रमण नहीं हो पाते इंसान से। सब का

सामर्थ्य नहीं होता न! सब तो व्यवहार से करें इतना ही बहुत हो गया। ज़्यादा प्रतिक्रमण नहीं कर सकते। पूरे दिन में तरह-तरह के कामकाज होते हैं।

यहाँ का पॉइज़न भी प्रतिक्रमण वाला

प्रश्नकर्ता : यह जो हमेशा का दु:ख है, उसका फायदा कैसे उठाए?

दादाश्री : इस दु:ख के बारे में सोचने लगेंगे तो दु:ख जैसा नहीं लगेगा। यदि दु:ख का यथार्थ प्रतिक्रमण करोगे तो दु:ख जैसा नहीं लगेगा। यह बिना सोचे थोप दिया है कि यह दु:ख है, यह दु:ख है! यानी इसका प्रतिकार नहीं करना चाहिए। यदि भूल से प्रतिकार हो जाए तो प्रतिक्रमण करना पड़ता है। प्रतिकार का विचार आने पर भी प्रतिक्रमण करना पड़ता है।

इस सत्संग का पॉइज़न पीना अच्छा है लेकिन बाहर का अमृत पीना बुरा है क्योंकि यह पॉइज़न प्रतिक्रमण वाला है। हम सब ज़हर के प्याले पीकर महादेव जी हुए हैं।

दूसरों को अड़चन हो उन सब का प्रतिक्रमण कर लेना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : क्या नि:स्वार्थ कपट वाले को वास्तव में कर्म बंधता है ज्ञान लेने के बाद?

दादाश्री : हाँ, लेकिन प्रतिक्रमण करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : धोखा खाने के बाद प्रतिक्रमण करना है?

दादाश्री : हाँ, हमें तो प्रतिक्रमण करना ही चाहिए। महाराज का दोष नहीं है। वे तो अपनी जगह पर हैं। आपकी गलती है कि उस दुकान पर गए। यानी हमने उन्हें छेड़ा इसलिए प्रतिक्रमण करना चाहिए। हमें प्रतिक्रमण करना चाहिए। गुनाह नहीं होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : हम प्रतिक्रमण करते हैं लेकिन सामने वाला तो कर्म बाँधता है न?

दादाश्री : हमें मन में प्रतिक्रमण कर देना है। फिर सामने वाले का नहीं देखना है।

सूक्ष्मता, ज्ञानी के प्रतिक्रमणों की

प्रश्नकर्ता : आपके पास आने का बहुत सोचते हैं लेकिन आ नहीं पाते।

दादाश्री : आपके हाथ में क्या सत्ता है? फिर भी आने का सोचते हैं लेकिन आ नहीं पाते, उसका मन में खेद रहना चाहिए। हम उन्हें कहें कि, 'चंदूभाई, प्रतिक्रमण करो न, जल्दी हल आ जाए। नहीं जा पाते उसका प्रतिक्रमण करो, प्रत्याख्यान करो।' ऐसी भूलचूक हुई लेकिन अब फिर कभी भूलचूक नहीं करूँगा।

अभी जो भाव हो रहे हैं, तो वे क्यों ज़्यादा हो रहे हैं और कार्य नहीं होता है? भाव किसलिए आ रहे हैं कि कमिंग इवेन्ट्स कास्ट देयर शेड़ोज़ बिफॉर! (जो होना है उसके स्पंदन पहले से आते हैं।)

प्रश्नकर्ता : यह जो चिंता हो जाती है, उसका प्रतिक्रमण कैसे करना है?

दादाश्री : यह मेरे अहंकार की वजह से चिंता होती है। मैं कोई इसका कर्ता थोड़े ही हूँ? इसलिए दादा भगवान क्षमा करो। उसका कुछ तो करना पड़ेगा न? चलता है कुछ अपना?

प्रश्नकर्ता : यदि बहुत ठंड है, बहुत ठंड है, ऐसा हम कहें तो वह कुदरत के विरुद्ध बोले, तो क्या उसका प्रतिक्रमण करना पड़ता है?

दादाश्री : नहीं, प्रतिक्रमण तो जहाँ राग-द्वेष होता हो, 'फाइल' हो वहाँ करना है। कढ़ी में नमक ज़्यादा हो तो उसका प्रतिक्रमण नहीं करना है लेकिन जिसने नमक ज़्यादा डाला हो उसका प्रतिक्रमण करना है। प्रतिक्रमण से सामने वाले की परिणति बदलती है।

पेशाब करने गए, वहाँ एक चींटी बह गई तो हम प्रतिक्रमण करते हैं, उपयोग नहीं चूकते। बह गई, वह 'डिस्चार्ज' है लेकिन उस

वक्त अप्रतिक्रमण दोष क्यों हुआ? जागृति क्यों मंद हो गई? उसका दोष लगता है।

पढ़ते वक्त पुस्तक को नमस्कार करके कहना है कि 'दादा, मुझे पढ़ने की शक्तियाँ दीजिए।' और यदि कभी भूल भी गए तो उपाय करना है। दो बार नमस्कार करना है और कहना है कि 'दादा भगवान, मेरी इच्छा नहीं थी फिर भी भूल गया तो उसके लिए माफी माँगता हूँ और अब फिर कभी ऐसा नहीं करूँगा'।

टाइम पर विधि करना भूल गए और फिर बाद में याद आया तो प्रतिक्रमण करके फिर बाद में करना।

हम दो जनों को अलग करते हैं तो उसका दोष लगता है, इसलिए प्रतिक्रमण करते हैं।

प्रश्नकर्ता : आप कर्ताभाव से नहीं करते हैं फिर भी?

दादाश्री : चाहे किसी भी भाव से करे लेकिन सामने वाले को दु:ख हो जाए ऐसा किया इसलिए प्रतिक्रमण करना पड़ता है।

'डिस्चार्ज' में जो अतिक्रमण हुए हैं उनके हम प्रतिक्रमण करते हैं। सामने वाले को दु:ख पहुँचा हो ऐसे डिस्चार्ज के प्रतिक्रमण करने हैं। यहाँ महात्माओं का या दादा का कुछ अच्छा किया हो उसके प्रतिक्रमण नहीं होते लेकिन बाहर किसी का अच्छा किया हो तो उसका प्रतिक्रमण करना पड़ता है, क्योंकि उपयोग चूके उसका प्रतिक्रमण करना पड़ता है।

पहुँचते हैं, यथार्थ प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण करते हैं तो सामने वाले को पहुँचता है?

दादाश्री : सामने वाली व्यक्ति को पहुँचता है। वह नर्म होता जाता है। उसे पता चले या ना चले, उसका हमारे प्रति जो भाव है, वह नर्म होता जाता है। अपने प्रतिक्रमण का तो बहुत असर होता है। एक घंटा यदि करो तो सामने वाले में बदलाव आ जाता है, यदि साफ

हुए होंगे तो। जहाँ भी हम जिनके प्रतिक्रमण करते हैं तो वे हमारे दोष तो नहीं देखते लेकिन हमारे लिए उन्हें मान होता है।

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण करेंगे तो नया 'चार्ज' नहीं होगा?

दादाश्री : यदि आत्मा कर्ता बनता है तो कर्म बंधता है। प्रतिक्रमण आत्मा नहीं करता है। चंदूभाई करेंगे और आपको उसके ज्ञाता-द्रष्टा रहना है।

निज स्वरूप की प्राप्ति के बाद यथार्थ प्रतिक्रमण होते हैं। प्रतिक्रमण करने वाला चाहिए, प्रतिक्रमण करवाने वाला चाहिए।

हमारा प्रतिक्रमण अर्थात् क्या? कि चरखी खोलते समय जितने टुकड़े हों उन्हें जोड़कर साफ कर दें, वह हमारा प्रतिक्रमण।

प्रश्नकर्ता : चारित्रमोह देखने में भूल हो जाती है क्या? रोज़ प्रतिक्रमण करते हैं और फिर वही की वही भूल करते हैं या नहीं करते?

दादाश्री : जो भूलें हर रोज़ होती हैं, उन्हें पहचान लेना है। वही सही। प्रतिक्रमण करने पर भी नहीं मिटे। एक-एक परत टूटती जाती है।

एक घंटा प्रतिक्रमण करोगे तो भी स्व-सत्ता का अनुभव होगा। प्रतिक्रमण यदि तुरंत ही नकद हो जाए तो भगवान पद में आ जाए, ऐसा है। एक-एक प्रतिक्रमण में रूप भरा होता है और अप्रतिक्रमण, वह कदरूपा निशान है। (अप्रतिक्रमण, वह दुःख बढ़ाता है और प्रतिक्रमण करने से आनंद का अनुभव होता है)

सजीवन प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : समूह में बैठकर प्रतिक्रमण करना चाहिए?

दादाश्री : ऐसा तो कुछ नहीं है। अकेले करेंगे तो भी चलेगा। सोते-सोते करेंगे तो भी चलेगा, मन में करेंगे तो भी चलेगा।

प्रतिक्रमण कैसा होता है? सजीवन होता है।

यह तो मृत प्रतिक्रमण। कोई दोष कम नहीं हुआ, उल्टे दोष बढ़ाए न! प्रतिक्रमण चलते रहेंगे। लोग आठ-आठ सालों से प्रतिक्रमण करते हैं और एक भी दोष कम नहीं होता।

प्रतिष्ठित आत्मा हुआ प्रतिक्रमण आत्मा

प्रश्नकर्ता : नींद में से जगते ही प्रतिक्रमण शुरू हो जाते हैं।

दादाश्री : यह प्रतिक्रमण आत्मा हुआ। शुद्धात्मा तो है लेकिन यह प्रतिष्ठित आत्मा वह प्रतिक्रमण आत्मा बन गया है। लोगों का कषायी आत्मा है। वर्ल्ड में ऐसा कोई नहीं है जो एक भी प्रतिक्रमण कर सके।

जैसे-जैसे नकद प्रतिक्रमण होता जाता है, वैसे-वैसे साफ होता जाता है। अतिक्रमण के सामने हम नकद प्रतिक्रमण करते हैं तो मन-वाणी साफ होते जाते हैं।

प्रतिक्रमण यानी बीज को सेककर बोना है।

आलोचना-प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान यानी रोज़ का बहीखाता निकालना है। जितने दोष दिखे उतना कमाए। उतने प्रतिक्रमण करने हैं।

नहीं है ज़िम्मेदारी 'इस तरह की' प्राकृतिक दोषों से

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण नहीं हो पाए तो वह प्राकृतिक दोष है या अंतराय कर्म है?

दादाश्री : वह प्राकृतिक दोष है और यह प्राकृतिक दोष सब जगह नहीं होता। कुछ जगह दोष हो जाता है और कुछ जगह नहीं होता। प्राकृतिक दोष में प्रतिक्रमण नहीं हो पाए तो उसमें कोई हर्ज नहीं है। हमें तो इतना ही देखना है कि अपना क्या भाव है? दूसरा कुछ हमें नहीं देखना है। आपकी इच्छा प्रतिक्रमण करने की है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, पूरी ही।

दादाश्री : उसके बावजूद भी प्रतिक्रमण नहीं हो पाए तो वह

प्राकृतिक दोष है। प्राकृतिक दोष में आप ज़िम्मेदार नहीं हो। कई बार प्रकृति बोलती भी है और नहीं भी बोलती, यह तो बाजा कहलाता है। बजे तो बजे, नहीं तो नहीं भी बजता, इसे अंतराय नहीं कहते हैं।

निकाचित कर्म में गहरे प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : 'समभाव से *निकाल*' करने का दृढ़ निश्चय होने के बावजूद झगड़ा खड़ा रहता है, वह किसलिए?

दादाश्री : कितनी जगह पर ऐसा होता है? सौ-एक जगह पर?

प्रश्नकर्ता : एक ही जगह पर होता है।

दादाश्री : तो वह निकाचित कर्म है। वह निकाचित कर्म धुलता है किससे? आलोचना-प्रतिक्रमण व प्रत्याख्यान से। उससे कर्म हल्का हो जाता है। उसके बाद ज्ञाता-द्रष्टा रह पाते हैं। उसके लिए तो निरंतर प्रतिक्रमण करना पड़ता है। जितने फोर्स से निकाचित हुआ हो उतने ही 'फोर्स' वाले प्रतिक्रमण से वह धुलता है।

बोझ, पुरानी भूलों का

प्रश्नकर्ता : पुराना जो सब हो चुका हो न, उसका बोझ रहता है।

दादाश्री : पुराने का बोझ तो हमें यों एक तरफ रख देना है। हम बोझ क्यों रखें? हमें यदि अब भी टच हो जाता है तो बोझ रहता है।

प्रश्नकर्ता : वे जो पुरानी भूलें होती हैं न, उसका बोझ रहता है।

दादाश्री : कितने साल पहले की?

प्रश्नकर्ता : महीने, दो महीने पहले की।

दादाश्री : उसमें ऐसी कौन सी बड़ी भूलें हैं? प्रतिक्रमण कर डालना है, दूसरा क्या करना है?

प्रश्नकर्ता : यों प्रतिक्रमण करते हैं लेकिन भूल एक्ज़ेक्ट दिखाई देती है।

दादाश्री : वह तो प्रकृति दिखाई देती है। प्रकृति नहीं जाती। प्रकृति यानी क्या कि प्याज़ की तरह होती है। एक भूल निकली वापस दूसरी निकलती है, तीसरी निकलती है, वही की वही भूल निकलती रहती है लेकिन प्रतिक्रमण तो करना ही होगा।

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण तो करता है लेकिन जब तक खुद इससे अलग नहीं हो जाता, तब तक बोझ रहता है।

दादाश्री : उसके सिवा कोई चारा ही नहीं है! आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान के सिवा दूसरा कोई रास्ता नहीं है। अतिक्रमण से यह खड़ा हुआ है और प्रतिक्रमण से यह नाश होता है, बस!

प्रश्नकर्ता : हम तय करें कि भविष्य में ऐसा करना ही नहीं है, ऐसी भूल फिर से करनी ही नहीं है, हंड्रेड परसेन्ट ऐसे भाव से तय करें, फिर भी ऐसी भूल हो सकती है या नहीं? क्या वाकई में वह अपने हाथ में है?

दादाश्री : वह तो हो जाती है फिर से। ऐसा है न, आप यहाँ पर एक गेंद लाए और मुझे दी, मैं यहाँ से फेंकता हूँ। मैंने तो एक ही कार्य किया। मैंने तो एक ही बार गेंद फेंकी। इसलिए मैं कहूँ कि अब मेरी इच्छा नहीं है। तू बंद हो जा तो वह बंद हो जाएगी?

प्रश्नकर्ता : नहीं होगी।

दादाश्री : तो क्या होगा?

प्रश्नकर्ता : वह तो तीन-चार-पाँच बार कूदेगी।

दादाश्री : यानी अपने हाथ में से फिर नेचर के हाथ में गया। फिर नेचर जब स्थिर करे तब, यानी ऐसा है यह सब। अपनी जो भूलें हैं, वे नेचर के हाथ में जाती हैं।

प्रश्नकर्ता : नेचर के हाथ में गया तो भी प्रतिक्रमण करने से क्या फायदा होता है?

दादाश्री : बहुत असर होता है। प्रतिक्रमण से तो सामने वाले व्यक्ति को इतना ज़्यादा असर हो जाता है कि यदि कभी एक घंटा एक व्यक्ति का प्रतिक्रमण करे तो उस व्यक्ति में कुछ नए प्रकार का बदलाव आ जाता है, बहुत ज़बरदस्त बदलाव आता है। प्रतिक्रमण करने वाला तो यह ज्ञान लिया हुआ होना चाहिए। शुद्ध हो चुका, 'मैं शुद्धात्मा हूँ' ऐसे भान वाले के प्रतिक्रमण का तो बहुत असर होगा। प्रतिक्रमण तो हमारा सब से बड़ा हथियार है!

प्रकृति सुधरती है?

'ज्ञान' नहीं लिया हो तो प्रकृति का सारे दिन उल्टा ही चलता रहता है और अब तो सुल्टा ही चलता रहता है। तू सामने वाले को सुना देता है लेकिन भीतर कहेगा कि, 'नहीं-नहीं, ऐसा नहीं करना चाहिए'। सुना देने का विचार आया उसका प्रतिक्रमण करो। ज्ञान लेने से पहले तो सुना देता था और ऊपर से कहता था कि और भी देने जैसा है।

मनुष्यों का स्वभाव कैसा होता है कि जैसी प्रकृति वैसा खुद बन जाता है। जब प्रकृति नहीं सुधरती, तब कहेगा 'छोड़ झंझट, अरे! नहीं सुधरती तो कोई हर्ज नहीं। तू अपना अंदर सुधार न!' फिर अपनी 'रिस्पॉन्सिबिलिटी' (ज़िम्मेदारी) नहीं है! इतना सारा यह 'साइन्स' है! बाहर चाहे कुछ भी हो उसकी 'रिस्पॉन्सिबिलिटी' ही नहीं है। इतना समझे तो हल आ जाता है। आपको समझ में आया मैं क्या कहना चाहता हूँ?

प्रश्नकर्ता : हाँ, समझ में आया।

दादाश्री : क्या समझ में आया?

प्रश्नकर्ता : सिर्फ देखना है, उसके साथ तादात्म्य नहीं होना है।

दादाश्री : ऐसा नहीं। तादात्म्य हो जाए फिर भी हमें तुरंत कहना है, 'ऐसा नहीं होना चाहिए'। यह सब तो गलत है। प्रकृति तो कुछ

भी कर सकती है, क्योंकि वह गैरज़िम्मेदार है। लेकिन इतना बोलने से आप जोखिमदारी में से छूट जाओगे। अब इसमें कोई हर्ज है?

प्रश्नकर्ता : कोई हर्ज नहीं है, लेकिन जब क्रोध होता है तब उस वक्त भान नहीं रहता।

दादाश्री : अपना ज्ञान ऐसा है कि भान में रखता है। प्रतिक्रमण करता है, सबकुछ करता है। आपको भान रहता है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : रहता है, दादा।

वह कहलाता है प्रत्याख्यान

प्रश्नकर्ता : यदि भूल का प्रतिक्रमण हृदय से करे, बहुत अच्छा करे लेकिन यदि फिर निश्चय बहुत अच्छा नहीं करे तो?

दादाश्री : निश्चय, प्रत्याख्यान जैसा ही है। निश्चय करता है तो उत्तम चीज़ है। निश्चय नहीं करता और सिर्फ प्रतिक्रमण करता है यानी वह भूल तो मिट गई, फिर बाद में आएगी तो फिर से मिटा देंगे। आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान। प्रत्याख्यान यानी नहीं करूँगा ऐसा। प्रत्याख्यान का अर्थ है कि ऐसा फिर कभी नहीं करूँगा यानी निश्चय करता है न, वह उत्तम चीज़ है।

❖❖❖❖❖

[22]

निकाल, चीकणी फाइलों का

हिसाबानुसार चुकाया जाता है

प्रश्नकर्ता : उनकी फाइल नं-1 को अब भी राग बर्तता है न? उस राग को लेकर सब हो जाता है।

दादाश्री : क्या राग बर्तता है?

प्रश्नकर्ता : यह मेरा भाई है तो यदि कोई भाई के विरुद्ध बोले तो उसके सामने ज़रा सा...

दादाश्री : वह सब तो भरा हुआ माल है, ऐसा हो जाता है। लेकिन फिर प्रतिक्रमण करता है तो शुद्ध उपयोग कहलाता है। शुद्ध उपयोग किसे कहते हैं? प्रतिक्रमण करता है तो वह शुद्ध उपयोग कहलाता है। शुद्ध उपयोग के हेतु से प्रतिक्रमण करता है? इसमें उसका क्या हेतु है? शुद्ध उपयोग का। आपकी भी 2-नंबर की फाइल ज़ोरदार ही है न?

प्रश्नकर्ता : हम ज़ोरदार मानते ही नहीं है। हमारी ज़ोरदार है ही नहीं। और फाइल के बारे में बोलते रहेंगे तो हम दोष में गिरेंगे या नहीं?

दादाश्री : गिरेंगे! फाइल के बारे में क्यों बोलें? हमें क्या लेना-देना? यह फाइल है। यह तो कर्म के उदयानुसार हिसाब चुक रहा है। जितना ऋणानुबंध है उतना चुक रहा है।

चीकणे कर्मों के प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : समभाव से *निकाल* करते-करते भी अतिक्रमण हो जाता है।

दादाश्री : तो प्रतिक्रमण की दवाई दी है। अरे! कुछ नहीं हो पाए तो कोई हर्ज नहीं है। आलोचना नहीं करता है तो वह भी मैंने माफ कर दिया है। यह मैं जानता हूँ कि आजकल लोगों को चैन ही नहीं पड़ता है। ये क्या आलोचना कर पाएँगे? इसके बजाय प्रतिक्रमण करने दो न!

प्रश्नकर्ता : उसमें भी प्रत्याख्यान करना है न?

दादाश्री : अरे, प्रत्याख्यान भी नहीं करेंगे तो चलेगा। आज के चैन बिना के लोग! अतिक्रमण किया तो प्रतिक्रमण करेंगे।

आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान, पूरे नहीं हो पाएँ तो सिर्फ प्रतिक्रमण कर लेंगे तब भी बहुत हो गया। *चीकणी फाइलों* के प्रतिक्रमण बार-बार करते रहें, दोषों के प्रतिक्रमण करते रहें तो यों उसकी डिज़ाइन रहेगी लेकिन यों हाथ लगाते ही उड़ जाएँगे, गिर जाएँगे। जो चिकनाहट थी, फिर प्रतिक्रमण करने से उसमें वह चिकनाहट नहीं रहेगी। चिकनाहट 'पूरी तरह' उड़ जाएगी। नहीं तो ऐसे हाथ से घिसने पर भी वह नहीं हटेगी।

प्रश्नकर्ता : यानी *चीकणे* कर्मों को क्षय करने के लिए प्रतिक्रमण करने हैं?

दादाश्री : अन्य उपाय ही नहीं है, आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान के अलावा। आलोचना अर्थात् दादा को याद करके कहना है कि, 'मेरी यह भूल हो गई है और ऐसी भूल फिर कभी नहीं करूँगा।' इतना प्रत्याख्यान कर लेना है एक बार, बस। इतना ही उपाय, और कोई उपाय नहीं है।

भाव ही करने हैं समभाव से निकाल के

कई लोग मुझसे कहते हैं कि, 'दादा, समभाव से *निकाल* करने

जाता हूँ लेकिन नहीं हो पाता।' तब मैं कहता हूँ, ''अरे भाई, *निकाल* नहीं करना है! तुझे समभाव से *निकाल* करने का भाव ही रखना है। समभाव से *निकाल* हो या नहीं हो, तेरे अधीन नहीं है। तू मेरी आज्ञा में रह न! उससे तेरा काफी कुछ काम हो जाएगा और नहीं हो पाए तो वह 'नेचर' के अधीन है।''

हम तो इतना ही चाहते हैं कि 'मुझे समभाव से *निकाल* करना है'। इतना तू निश्चय कर। फिर वैसा हुआ या नहीं हुआ, वह हमें नहीं देखना है। यह नाटक देखने कब तक बैठे रहें? उसका पार ही कब आए? हमें तो आगे चलने लगना है। शायद समभाव से *निकाल* नहीं भी हो पाए। होली जलाई, नहीं तो आगे जाकर जलाएँगे। इस तरह झगड़ने से थोड़े ही जलेगी? इसका कब अंत आएगा? हमने दियासलाई जलाई, दूसरा कुछ जलाया, फिर हमें क्या काम? छोड़ अब और चल आगे।

संसारियों को ज्ञान दिया है। कहीं बाबा बनने को मैंने नहीं कहा है, लेकिन जो फाइलें हैं उनका समभाव से *निकाल* करो कहा है और प्रतिक्रमण करो। ये दो उपाय बताए हैं। ये दो करेंगे तो आपकी दशा को कोई उलझा नहीं सकेगा। उपाय नहीं बताए होते तो किनारे पर खड़े ही नहीं रह पाते न! किनारे पर जोखिम है।

उसके प्रतिक्रमणों की ज़रूरत ही नहीं

प्रश्नकर्ता : बाकी सब फाइलें हैं, उनका तो हम समभाव से *निकाल* कर सकते हैं, लेकिन इस फाइल नं-1 का समभाव से *निकाल* कैसे करें, वह विस्तार से समझाइए न? क्योंकि सारी दखल फाइल नं-1 की ही है।

दादाश्री : उन दखल देखने से ही वे चली जाएँगी, फाइल के रूप में देखने से ही। टेढ़ा हो या मेढ़ा, उसे फाइल से ज़्यादा झंझट नहीं होगी। वह तो देखते ही चला जाएगा। सामने वाली फाइल हो तो क्लेम करेगी तब उसका प्रतिक्रमण करना पड़ेगा। इसमें तो दावा करने वाला कोई है ही नहीं न! कोई भी दावा करने वाला नहीं है

इसलिए यह देखने से ही चला जाएगा। मन में बुरे विचार आएँ, थोड़े टेढ़े आएँ, बुद्धि बिगड़ जाए, उन सब को देखते ही रहना है। जो भी कार्य करें उसमें हर्ज नहीं है, हमें तो वह देखते रहना है।

यह तो सब से सरल मोक्षमार्ग है, सब से आसान मोक्ष!

प्रश्नकर्ता : उसे देखते रहना है यानी कि उसमें सहमत नहीं होना है?

दादाश्री : सहमत तो होता ही नहीं है। देखने वाला सहमत तो होता ही नहीं है। होली देखने से क्या कोई जलता है?

प्रश्नकर्ता : नहीं जलता।

दादाश्री : बड़ी ज़बरदस्त होली जलाई हो, लेकिन उसे आँखों से देखे तो उसमें आँखों को क्या?

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, मुझसे दखल हो गई हो और मैंने उसे देखा-जाना, लेकिन मेरी इस दखल से सामने वाले को दुःख पहुँचा तो मुझे उसका प्रतिक्रमण करना पड़ेगा न?

दादाश्री : उसका प्रतिक्रमण तो करना पड़ेगा। अतिक्रमण क्यों किया? सामने वाले को दुःख हो, ऐसा नहीं करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : मेरी बेटी रोज़ प्रतिक्रमण करती है फिर भी उसका सुधरता नहीं है।

दादाश्री : वह तो बहुत माल भरा है, ज़बरदस्त माल भरा है। प्रतिक्रमण करती है, वही पुरुषार्थ।

प्रश्नकर्ता : बहुत माल भरा है, ऐसा कहने पर वह बचाव नहीं हो जाएगा?

दादाश्री : नहीं, नहीं, इसमें बचाव होता ही नहीं न! बचाव नहीं होता। सारा जगत् प्रतिक्रमण नहीं करता। एक तो मुक्का मारता है और फिर कहता है कि 'मैंने सही किया है।'

सामने वाले की ही भूल दिखती है

प्रश्नकर्ता : दादा, कई बार ऐसा होता है कि मेरी भूल ही नहीं है। कई बार मेरी भूल का मुझे पता चलता है और कई बार मेरी कोई भूल नहीं है, 'उनकी' ही गलती है, ऐसा लगता है।

दादाश्री : तुझे ऐसा लगता है? प्रतिक्रमण करते वक्त?

प्रश्नकर्ता : लेकिन फिर 'उन्हें' जब *कढ़ापा-अजंपा* (कुढ़न-आक्रोश) ज़्यादा हो जाता है, तब होता है कि फिर कभी हमारे निमित्त से ऐसा नहीं होना चाहिए।

दादाश्री : लेकिन 'मेरी भूल हुई' ऐसे करके प्रतिक्रमण करना पड़ता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन मुझे मेरी खुद की भूल लगती ही नहीं। मुझे तो उनकी ही भूल लगती है।

दादाश्री : बिना भूल के तो किसी को दु:ख होता ही नहीं न! यदि अपनी भूल होगी तो किसी को दु:ख होगा।

प्रश्नकर्ता : मुझे तो ऐसा लगता है कि उनकी प्रकृति ही ऐसी है इसलिए उन्हें ऐसा लगता है।

दादाश्री : ऐसी प्रकृति नहीं गिनी जाती। ये सब लोग कहते हैं, अच्छी प्रकृति है और सिर्फ तू ही कहती है कि बुरी है। वह भी ऋणानुबंध है, हिसाब है।

प्रश्नकर्ता : मुझे ऐसा लगता है कि उन्हें किच-किच करने की आदत सी हो गई है।

दादाश्री : लेकिन वे ऐसा कर रहे हैं उसमें तेरी ही गलती है। गलती तेरी है। इस तरह मेरे माँ-बाप को मुझसे दु:ख क्यों पहुँचा? उसका प्रतिक्रमण करना चाहिए। दु:ख नहीं होना चाहिए। अब सुख दूँगी, ऐसा मन में होना चाहिए। मुझसे ऐसी कौन सी गलती हो गई कि माँ-बाप को दु:ख हुआ?

तब संसार छूटता है

जब दोष दिखना बंद हो जाता है तब संसार छूटता है। हमें गालियाँ दें, नुकसान पहुँचाए, मारे तो भी दोष नहीं दिखे तब जाकर संसार छूटता है। नहीं तो संसार नहीं छूटता।

अब सब लोगों के दोष दिखने बंद हो गए?

प्रश्नकर्ता : हाँ, दादा। कभी कभार दोष दिखते हैं तो प्रतिक्रमण कर लेता हूँ।

सत्संग से टूटती हैं भूलें

यदि अपनी भूलें नहीं टूटे तो वह सत्संग किया हुआ काम का ही नहीं है। सत्संग का अर्थ ही भूल टूटना। हमारे निमित्त से किसी को दुःख नहीं पहुँचना चाहिए। यदि दुःख हो जाए तो हमारी ही भूल है और भूल को खत्म करनी है। और यदि भूल दिखती ही नहीं हो तो अपने कर्म का उदय है इसलिए माफी माँगनी है। अगर सामने वाला समझदार हो तो प्रत्यक्ष माफी माँग लेना और यदि वह ऐसा है कि उल्टा चढ़ बैठे तो अकेले में माफी माँगना।

प्रश्नकर्ता : संसार में फाइलों का *निकाल* करने में कभी कभार इतने अस्तव्यस्त हो जाते हैं कि प्रतिक्रमण-सामायिक का विचार तक नहीं आता है। वह पोल (लापरवाही) है क्या?

दादाश्री : उसे पोल नहीं कहते। पोल उसे कहते हैं कि अपनी इच्छा हो और नहीं करें।

प्रश्नकर्ता : जो भूलें हुई हैं उनके कभी न कभी प्रतिक्रमण करने पड़ेंगे न?

दादाश्री : कोई हर्ज नहीं है। भूलों को पहचाना तो बहुत हो गया। प्रतिक्रमण तो किसी को बहुत दुःख हो जाए तभी करना।

अपना यह अक्रम मार्ग, वह कर्म खपाए बगैर का मार्ग, इसलिए

यह निर्बलता आए बगैर नहीं रहती। अब जिस किसी को भी सिर्फ मानसिक निर्बलता आए न, तो सिर्फ मन का प्रतिक्रमण करना है। अब लंबा प्रतिक्रमण करने को नहीं रहा और प्रतिक्रमण करने से वह शुद्ध हो जाएगा। लेकिन जो माल भरा हुआ है, वह निकले बगैर नहीं रहेगा न! नर्बलता आ जाती है फिर भी मन-वचन-काया से प्रतिक्रमण करता है, वह गुनहगार नहीं है। लेकिन प्रतिक्रमण करने से वह दादा की आज्ञा में ही है। यह तो तुरंत शक्ति कहाँ से लाए? यानी अतिक्रमण तो हो जाएगा लेकिन प्रतिक्रमण कर लेना है। फिर भी अपना ज्ञान कैसा है कि कैसे भी संयोगों में से बच सकता है। तभी वह ज्ञान कहलाता है। ऐसा है कि अपना यह वीतराग मार्ग है, जब तक उसमें 'पसंद' है तब तक क्रमण होता है। लेकिन 'नापसंद' हुआ तो प्रतिक्रमण करके धो डालना है।

आज्ञा चूके? करो प्रतिक्रमण

रास्ता यह है कि 'दादा की आज्ञा में रहना है', ऐसा निश्चय करके दूसरे दिन से शुरू कर दें। और जितना आज्ञा में नहीं रह पाए, उनका प्रतिक्रमण करना है। घर के हर एक सदस्य को संतुष्ट करना, समभाव से *निकाल* करके। फिर भी घर के सभी लोग उछलकूद करें तो आप देखते रहना। आपका पिछला हिसाब है इसलिए उछलकूद करते हैं। यह तो आज ही तय किया है। अत: घर के सभी लोगों को प्रेम से जीतो। वह तो फिर खुद आपको ही पता चलेगा कि अब सब ठिकाने पर आ रहा है। फिर भी, जब घर के लोग अभिप्राय दें, तभी मानने योग्य है। आखिर में तो घर के लोग उसी के पक्ष में होंगे।

'खुद' जज और 'चंदू' आरोपी

पुद्गल जैसा भी निकल रहा हो, किसी से कहा-सुनी कर रहा हो, मारपीट कर रहा हो फिर भी आप उसे देखते रहेंगे तो आप उसके ज़िम्मेदार नहीं हो। कोई कहे कि यह ज्ञान लेने के बाद अब क्यों मारा-मारी करता है? तो आपको क्या कहना है? पूर्व में जैसे भाव

से बंध पड़ा था वैसे भाव से *निर्जरा* (आत्मप्रदेश में से कर्मों का अलग होना) हो रही है। यानी *निर्जरा* को देखते रहना है। फिर भी *निर्जरा* होते समय एक बात ऐसी होनी चाहिए कि किसी पर अतिक्रमण नहीं होना चाहिए। अतिक्रमण किया इसलिए प्रतिक्रमण करो। अत: प्रतिक्रमण चंदूभाई को करना है। आपको कुछ नहीं करना है। जज को तो कुछ करना है नहीं। जो आरोपी है, उसी से करवाना है। जो खाता है, वही आरोपी। जो खाता है वह संडास जाता है। जज को तो खाना नहीं होता, संडास जाना नहीं होता, जज तो जजमेन्ट ही देता रहता है। जज ऐसा कभी नहीं बोलता कि आरोपी का गुनाह मेरा ही गुनाह है। लेकिन अपने महात्मा यदि किसी दिन बोल दें तो यह कैसी भूल हुई, कहेंगे? बहुत सूक्ष्म बात है। सूक्ष्म रूप से है।

कचरा माल भरा हुआ है, उसकी *निर्जरा* होती रहती है। लेकिन अब नई आमदनी नहीं होती है, इसलिए हल्का होता जाता है। वापस शाम को भारी लगता है, वापस दूसरे दिन हल्का हो जाता है, वापस शाम को भारी लगता है, वापस हल्का हो जाता है। ऐसा करते-करते निर्जरा होते-होते-होते माल खाली हो जाता है।

टंकी खाली कब होगी?

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण से मोक्ष है? अभी मोक्ष के लिए प्रतिक्रमण करने की ज़रूरत है?

दादाश्री : अतिक्रमण किया तभी प्रतिक्रमण करने की ज़रूरत है वर्ना प्रतिक्रमण की ज़रूरत नहीं है। अतिक्रमण करने का स्वभाव हो तभी प्रतिक्रमण करना है। और ऐसा स्वभाव भी कब तक रहता है? चाहे कितना भी उपद्रवी व्यक्ति हो, फिर भी ग्यारह या चौदह साल तक ही उसकी टंकी भरी रहती है। बाद में तो वह सारा खत्म हो जाता है। भरी हुई टंकी कितने दिन चलेगी? टंकी भरी हुई है, लेकिन यदि उसमें नया कुछ नहीं डालेंगे तो वह कितने दिन चलेगी? लेकिन यदि अतिक्रमण हो जाए तो प्रतिक्रमण करना अच्छा है!

दखल 'व्यवस्थित' है?

तुझे बहुत दखल हो जाता है न?

प्रश्नकर्ता : किसी-किसी दिन हो जाता है।

दादाश्री : यदि कभी किसी दिन कोई इंसान मर गया तो?

प्रश्नकर्ता : दखल हो जाता है तो वह व्यवस्थित के अधीन है न?

दादाश्री : 'हो चुका' वह व्यवस्थित के अधीन है लेकिन जो होना बाकी है, वह व्यवस्थित के अधीन नहीं है। जो हो चुका, उसकी चिंता मत करो। उसका प्रतिक्रमण करो। गलत हो जाए तो जिसने वह किया है उससे कहो कि, 'प्रतिक्रमण कर'। चंदूभाई ने किया है तो चंदूभाई से कहो कि 'तू प्रतिक्रमण कर'।

प्रश्नकर्ता : हम व्यवस्थित के ताबे छोड़ देते हैं तो हमें क्या पुरुषार्थ करना है?

दादाश्री : पुरुषार्थ तो हमें यह 'चंदूभाई' क्या करते हैं वह देखते रहना है, वही अपना पुरुषार्थ। पूरे दिन चंदूभाई का पुतला क्या करता रहता है उसे देखते रहना, वही पुरुषार्थ!

उसे देखते वक्त बीच में ऐसा भी कर सकते हैं कि, 'क्यों चंदूभाई, आप बेटे के प्रति इतना कठोर हो गए?' इसलिए आप प्रतिक्रमण करो। आपने अतिक्रमण किया है इसलिए प्रतिक्रमण करो। ऐसा बीच-बीच में कर सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण तो फिर हो जाता है।

दादाश्री : प्रतिक्रमण हो जाता है, वही कहता हूँ न! प्रतिक्रमण साथ में ही हो जाते हैं, अपने आप हो जाते हैं। अत: देखते ही रहना है। प्रतिक्रमण हो रहा है उसे हमें देखते रहना है।

'क्या हुआ', वह देखते रहो

अपने इसमें (अक्रम में) यह भावकर्म है ही नहीं। आप तो

भावकर्म से मुक्त हो चुके हैं। भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म से मुक्त शुद्धात्मा हो चुके हैं। अतः आप शुद्धात्मा और यह 'चंदूभाई', दोनों अलग हैं। प्रकृति को देखते रहना, उसे कहते हैं पुरुष। पुरुष होकर जो पुरुषार्थ करता है, वह मोक्ष का पुरुषार्थ कहलाता है।

चाहे कैसा भी कार्य करे और उसका फल भयंकर आए लेकिन यदि व्यवस्थित के ज्ञान में रहते हो तो प्रतिक्रमण नहीं करना है।

व्यवस्थित का अर्थ क्या है? 'चंदूभाई क्या करते हैं, उसे देखते ही रहना है।' वही व्यवस्थित का अर्थ। दूसरा 'चंदूभाई' ने किसी का दो लाख का नुकसान किया तो वह भी देखते रहना है। हमें उसमें तन्मयाकार नहीं होना है कि ऐसा क्यों किया? बल्कि उसका प्रतिक्रमण करना है। एक्च्युअली (वास्तव में) यह सब को समझ में नहीं आता। व्यवस्थित यानी जो है वही करेक्ट, लेकिन देखते रहो यानी आप मुक्त!

प्रतिक्रमण करते ही सामने वाले पर असर

प्रश्नकर्ता : जहाँ संयोगों में तन्मयाकार हो जाते हैं, वहाँ प्रतिक्रमण का अवकाश नहीं रहता।

दादाश्री : प्रतिक्रमण का अवकाश कब रहता है कि यदि सामने वाले संयोग को दुःख हो जाए तब हमें कहना पड़ेगा कि, 'हे चंदूभाई, प्रतिक्रमण कर लो। वर्ना भाई बैर बाँधेगा। लगता है, भाई के प्रति अतिक्रमण हो गया है। भाई का चेहरा अपने प्रति सख्त लग रहा है, इसलिए प्रतिक्रमण कर लो।' तब वे कहेंगे, 'एक प्रतिक्रमण करूँ?' तो कहो, 'नहीं, पाँच-पच्चीस-पचास करो, ताकि कल चेहरा अच्छा दिखे'। प्रतिक्रमण हम करते हैं और दूसरे दिन चेहरा उसका अच्छा दिखता है। एक बार करके देखो। आपको कभी ऐसा अनुभव हुआ है?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : ऐसा? तो क्या ऐसा अनुभव चखने के बाद तू ऐसा रहा है?

प्रश्नकर्ता : हम ये जो प्रतिक्रमण करते हैं, वे सामने वाली व्यक्ति तक पहुँचते हैं?

दादाश्री : यों उसे पता नहीं चलता। उसे पता चले या ना भी चले लेकिन उसे असर करता है। उसका अपनी तरफ का बुरा भाव नर्म पड़ता जाता है।

और हम यदि मन से उस पर बहुत चिढ़ते रहते हों तो उस तरफ उसका बढ़ता जाएगा। वह भी सोचता है कि इनके प्रति मेरे भाव इतने बुरे क्यों होते जा रहे हैं?

प्रश्नकर्ता : वे फाइलें वापस दूसरे जन्म में चिपकेंगी तो नहीं न?

दादाश्री : किसलिए? हमें दूसरे जन्म से क्या लेना? यहीं के यहीं इतने सारे प्रतिक्रमण कर देने हैं। फुरसत मिलते ही उसका प्रतिक्रमण करते रहना है।

घर की फाइलों के प्रतिक्रमण

अब तुझसे ये प्रतिक्रमण हो पाते हैं क्या?

प्रश्नकर्ता : हाँ, हो पाते हैं।

दादाश्री : ऐसा?

प्रश्नकर्ता : यह घर की ही फाइलें मुख्य हैं न, दादा?

दादाश्री : तुझे घर में फाइलें कितनी हैं?

प्रश्नकर्ता : ये दो ही फाइलें हैं। सब से ज़्यादा प्रतिक्रमण इनके ही करने हैं।

दादाश्री : तुझे एक ही बेटा है न?

प्रश्नकर्ता : बेटे के ही मुख्य करता हूँ, और फाइल नंबर दो, उनके सब से ज़्यादा प्रतिक्रमण।

दादाश्री : ऐसा?

प्रश्नकर्ता : हाँ, प्रतिक्रमण बहुत किए। इसलिए बेटा तो बहुत शांत हो गया है। बिल्कुल शांत हो गया है और पूरा सहकार देता है।

मैंने अपने भाई के भी प्रतिक्रमण किए इसलिए सब का परिवर्तन हुआ है। रोज़ प्रतिक्रमण करता हूँ।

दादाश्री : लोगों को ऐसा अनुभव हुआ है कि प्रतिक्रमण से सामने वाले की परिणति बदलती है। इसलिए फिर छोड़ेंगे नहीं न! 'दिस इज़ द कैश (नकद) बैंक।' प्रतिक्रमण वह तो 'कैश बैंक' कहलाती है, तुरंत फल देने वाला। आपको ज़्यादा प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं न?

प्रश्नकर्ता : खास तो घर के लोगों के ही करने पड़ते हैं।

दादाश्री : कितने प्रतिक्रमण हो पाते हैं?

प्रश्नकर्ता : पाँच सौ हो पाते हैं। हमारे घर की एक-दो *चीकणी फाइलें* हैं, उनके करता हूँ।

प्रतिक्रमण 'ऐसा' करो

प्रश्नकर्ता : मन से, वाणी से, वर्तन से, झूठ बोलने से जो सारा दुःख पहुँचा है, उसके लिए यदि आपकी साक्षी में सारे प्रतिक्रमण करेंगे तो वे धुल जाएँगे न?

दादाश्री : प्रतिक्रमण किया, ऐसा कब कहा जाएगा? कि आप खुलेआम करो, उनके समक्ष करो या अकेले में करो लेकिन जब प्रतिक्रमण बोले (सामने वाले पर असर होता है) तब समझना कि हमने प्रतिक्रमण किया है। हाँ, हम भी अकेले में प्रतिक्रमण करते हैं, लेकिन वह प्रतिक्रमण तीसरे दिन बोलता है तो मुझे मालूम पड़ता है (कि सामने वाले को असर पहुँचा)। आप मन में ऐसे प्रतिक्रमण करते हो कि उन्हें पता नहीं चलता फिर भी उन्हें आपके प्रति आकर्षण पैदा होता है।

शुद्धात्मा को पहुँचता है उसका असर?

प्रश्नकर्ता : हम जो प्रतिक्रमण करते हैं, उस प्रतिक्रमण का परिणाम, इस मूल सिद्धांत पर है कि हम सामने वाले के शुद्धात्मा को देखते हैं तो उसके प्रति जो बुरा भाव है, वह कम हो जाता है न?

दादाश्री : अपने बुरे भाव टूट जाते हैं। अपने खुद के लिए ही है यह सब। सामने वाले को लेना-देना नहीं है। सामने वाले को शुद्धात्मा देखने का इतना ही हेतु है कि हम शुद्ध दशा में, जागृत दशा में हैं।

प्रश्नकर्ता : तो उसे हमारे प्रति जो बुरा भाव है, वह कम होता है न?

दादाश्री : नहीं, कम नहीं होता। आप प्रतिक्रमण करते हो तो होता है। शुद्धात्मा देखने से नहीं होता लेकिन प्रतिक्रमण करोगे तो होगा।

प्रश्नकर्ता : हम प्रतिक्रमण करते हैं तो सामने वाले के आत्मा को असर होता है या नहीं?

दादाश्री : होता है न, असर होता है।

देखने पर भी फायदा होता है, लेकिन तुरंत फायदा नहीं होता। फिर धीरे-धीरे-धीरे होता है! क्योंकि शुद्धात्मा की तरह किसी ने देखा ही नहीं है। अच्छे व्यक्ति और बुरे व्यक्ति, उसी तरह देखा है।

बाघ भी भूलें हिंसक भाव

प्रश्नकर्ता : आप्तसूत्र में है न कि 'यदि आप बाघ का प्रतिक्रमण करते हो तो बाघ भी उसका हिंसक भाव भूल जाता है', तो वह क्या है?

दादाश्री : हाँ, बाघ अपना हिंसक भाव भूल जाता है यानी यहाँ पर अपना भय छूट जाता है।

प्रश्नकर्ता : अपना भय छूट जाता है वह ठीक है, लेकिन उसके आत्मा को कुछ होता है या नहीं?

दादाश्री : कुछ भी नहीं होता। अपना भय छूटा कि वह छूट गया।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उसका हिंसक भाव चला जाता है, ऐसा आपने कहा न?

दादाश्री : हिंसक भाव चला जाता है।

प्रश्नकर्ता : वह कैसे जाता है?

दादाश्री : अपना भय छूट गया कि हिंसक भाव चला जाता है।

प्रश्नकर्ता : तो उसका अर्थ यह हुआ न, कि उसके आत्मा को असर पहुँचा?

दादाश्री : आत्मा को सीधा असर होता है। आत्मा को तो असर होता ही है। असर पहुँचता है सारा।

यदि बाघ के प्रतिक्रमण करेंगे तो बाघ भी अपने कहे अनुसार काम करेगा। बाघ में और मनुष्य में कुछ फर्क नहीं है। फर्क आपके स्पंदनों का है। जिसका उसे असर होता है। जब तक ऐसा आपके मन में ध्यान रहे बाघ हिंसक है तब तक वह हिंसक ही रहेगा और यदि ऐसा ध्यान रहे कि बाघ शुद्धात्मा है तो वह शुद्धात्मा ही है और अहिंसक हो जाएगा। सब हो सकता है।

पहुँचता है मूल शुद्धात्मा को

एक बार आम के पेड़ पर बंदर आ जाए और आम तोड़ दें, तो परिणाम कहाँ तक बिगड़ते हैं? कि इससे तो आम का पेड़ काट दिया होता तो अच्छा था। ऐसा कर डालता है। अब भगवान की साक्षी में निकली हुई वाणी कहीं व्यर्थ जाती होगी? ऐसा है। यदि परिणाम नहीं बिगड़े तो कुछ भी नहीं है। सब शांत हो जाता है, बंद हो जाता है।

ये सारे अपने ही परिणाम हैं। आप आज से किसी के लिए स्पंदन करना, किसी के बारे में किंचित्‌मात्र सोचना बंद कर दो।

विचार आएँ तो प्रतिक्रमण करके धो देना। यदि पूरा दिन किसी स्पंदन बगैर बीता, इस तरह दिन बीता तो बहुत हो गया, वही पुरुषार्थ है।

हम सामने वाले के किस आत्मा की बात करते हैं? प्रतिक्रमण करते हैं, वह जानते हैं? प्रतिष्ठित (आत्मा) की नहीं करते हैं, आप उसके मूल शुद्धात्मा का (प्रतिक्रमण) करते हैं। यह तो उसके शुद्धात्मा की हाज़िरी में उसके साथ जो हुआ उसका हम प्रतिक्रमण करते हैं। यानी उस शुद्धात्मा के प्रति हम क्षमा माँगते हैं। फिर उसके प्रतिष्ठित आत्मा से हमें लेना-देना नहीं है।

अशुद्ध पर्यायों का शुद्धिकरण

यह ज्ञान मिलने के बाद नए पर्याय अशुद्ध नहीं होंगे, पुराने पर्यायों को शुद्ध करना है और समता रखनी है। समता यानी वीतरागता। नए पर्याय नहीं बिगड़ेंगे, नए पर्याय शुद्ध ही रहेंगे। पुराने पर्याय अशुद्ध हो जाते हैं, उनका शुद्धिकरण करना है। यानी हमारी आज्ञा में रहने से उनका शुद्धिकरण होता है और समता में रहना है।

प्रश्नकर्ता : दादा, ज्ञान लेने से पहले के इस जन्म के जो पर्याय बंध चुके हैं, उनका निराकरण कैसे करें?

दादाश्री : अभी तो जब तक हम ज़िंदा हैं तब तक पश्चाताप करके उन्हें धो देना है लेकिन वे कुछ ही। पूर्णत: निराकरण नहीं हो पाएगा। लेकिन ढीला तो हो ही जाता है। ढीला हो गया यानी अगले जन्म में हाथ लगाया कि तुरंत गांठ छूट जाएगी!

प्रश्नकर्ता : आपका ज्ञान मिलने से पहले यदि नर्क के बंध पड़ चुके हों तो नर्क जाना पड़ेगा न?

दादाश्री : यह ज्ञान ही ऐसा है कि सारे पाप भस्मीभूत हो जाते हैं, बंध खत्म हो जाता है। नर्क जाने वाले हों लेकिन यदि वे ज़िंदा हैं तब तक में सारे प्रतिक्रमण कर दें तो उनका धुल जाता है। पोस्ट

में चिट्ठी डालने से पहले यदि आप लिखो कि ऊपर का वाक्य लिखते समय मन का ठिकाना नहीं था तो वह उड़ जाता है।

प्रश्नकर्ता : क्या प्रायश्चित से बंध छूट जाता है?

दादाश्री : हाँ, छूट जाता है। कुछ ही प्रकार के बंध ऐसे हैं, जिन कर्मों का प्रायश्चित करने से पक्की गांठें ढीली हो जाती हैं। अपने प्रतिक्रमण में बहुत शक्ति है। दादा को हाज़िर रखकर करोगे तो काम हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : जन्म से मृत्यु तक मन-वचन-काया सब *निर्जरा* के रूप में हैं लेकिन यह *निर्जरा* होते वक्त नया भाव डाल दे तो क्या वह अतिक्रमण है?

दादाश्री : हाँ, उस भाव का शुद्धिकरण करो।

यह न्याय यानी ज़बरदस्त

कर्म के धक्के से जितने जन्म होने होंगे वे होंगे, शायद एक-दो जन्म, लेकिन उसके बाद सीमंधर स्वामी के पास ही जाना होगा। यहाँ पर पहले का जो हिसाब बाँध दिया है, कोई *चीकणी फाइल* बन गई है तो वह खत्म हो जाएगी। उसमें कोई चारा ही नहीं है न! यह तो रघा सुनार की तराज़ू है। न्याय, ज़बरदस्त न्याय! शुद्ध न्याय, प्योर न्याय! उसमें पोलंपोल नहीं चलती।

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण करने से क्या कर्म के धक्के कम हो जाते हैं?

दादाश्री : कम होते हैं न! जल्दी निबेड़ा आ जाता है।

मृतात्मा के प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : जिससे क्षमा माँगनी है, यदि उस व्यक्ति का देहांत हो जाए तो कैसे करना चाहिए?

दादाश्री : देहांत हो चुका हो, फिर भी यदि उसकी फोटो आपके

पास हो, उसका चेहरा याद हो तो कर सकते हो। चेहरा बिल्कुल भी याद नहीं हो और नाम मालूम हो तो नाम लेकर भी कर सकते हैं। तब भी उसे पहुँच जाएगा सब।

जिस व्यक्ति के साथ आपको गुत्थियाँ पड़ गई हों और उनकी मृत्यु हो जाए तो उन्हें याद करके गुत्थियाँ धो देनी है ताकि साफ होकर *निकाल* हो जाए और गुत्थियाँ सुलझ जाएँ। आलोचना, प्रतिक्रमण व प्रत्याख्यान करके गुत्थियाँ खोल देनी हैं। क्योंकि मर चुका हो उसकी भी स्मृति आती है और ज़िंदा हो उसकी भी आती है। जो स्मृति में आता है, उसका प्रतिक्रमण करना पड़ता है। क्योंकि आप जानते हैं कि वास्तव में 'वह' ज़िंदा ही है, मरता नहीं है। इसमें उसके आत्मा का भी हित है और आप प्रतिक्रमण करते हैं तो उसकी गुत्थी में से छूट सकते हैं।

ऐसा है न, ये सौ रुपयों के कप-प्लेट हैं, वे जब तक अपना हिसाब है, ऋणानुबंध है तब तक वे ज़िंदा रहेंगे। लेकिन हिसाब पूरा होते ही प्लेट टूट जाएगी। वह टूट जाए तो व्यवस्थित, उसके बाद याद नहीं करना है। ये इंसान भी कप-प्लेट ही हैं न? ऐसा तो सिर्फ दिखाई देता है कि मर गए लेकिन मरते नहीं हैं, वापस यहीं पर आते हैं। इसीलिए तो जब आप मृतकों के प्रतिक्रमण करते तो उन्हें पहुँचता है। वे जहाँ हो वहाँ उन्हें पहुँच जाता है।

प्रश्नकर्ता : वह कैसे करना है?

दादाश्री : मन-वचन-काया, भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म, मृत व्यक्ति का नाम तथा उसके नाम की सर्व माया से भिन्न उसके शुद्धात्मा को याद करना है और फिर याद करना है, 'ऐसी भूलें की थीं' (आलोचना)। उन भूलों के लिए मुझे पश्चाताप हो रहा है और उसके लिए मुझे क्षमा कीजिए (प्रतिक्रमण)। 'ऐसी भूलें फिर कभी नहीं करूँगा, ऐसा दृढ़ निश्चय करता हूँ', ऐसा तय करना है (प्रत्याख्यान)। 'आपको' खुद चंदूभाई का ज्ञाता-द्रष्टा रहना है और जानना कि चंदूभाई

ने कितने प्रतिक्रमण किए, कितनी अच्छी तरह से किए और कितनी बार किए।

महात्मा को वे सब निकाली कर्म

प्रश्नकर्ता : दादा ज्ञान मिलने के बाद भी कभी कभार बुरे भाव हो जाए तो क्या? ऐसा क्यों होता है, दादा?

दादाश्री : वह भी कर्म से हो रहा है। उसमें आप कर्ता नहीं हो। बेकार ही आप कर्ता मानकर अंदर से परेशान रहते हो।

प्रश्नकर्ता : यानी ऐसा बुरा भाव उत्पन्न हो तो सिर्फ देखते ही रहना है?

दादाश्री : बुरा कहते हो, वही जोखिम है। बुरा कुछ होता ही नहीं है। सामने वाले को दु:ख हो जाए तो कहना है कि 'अरे! चंदूभाई, क्यों आपने दु:ख दिया? इसलिए प्रतिक्रमण करो।' भगवान के वहाँ अच्छा-बुरा है नहीं। वह सब समाज को है।

महात्माओं को भाव-अभाव होता है लेकिन वे *निकाली* कर्म हैं, भाव कर्म नहीं हैं। क्रोध-मान-माया-लोभ-राग-द्वेष और भाव अभाव, वे सब *निकाली* कर्म हैं। उनका समभाव से *निकाल* करना है। इन कर्मों का *निकाल* प्रतिक्रमण से होगा, यों ही *निकाल* नहीं होगा।

❖❖❖❖❖

[23]

मन मनाए मातम तब

मानसिक प्रतिकार का क्या?

प्रश्नकर्ता : यदि कोई हमारा अपमान कर दे तो तब मन से प्रतिकार चलता रहता है, वाणी से शायद प्रतिकार न भी हो।

दादाश्री : आपको तो उस वक्त क्या हुआ उससे हर्ज नहीं है। अरे! देह का भी प्रतिकार हो जाए तब भी उस अनुसार व्यवहार हो पाता है जिसमें संपूर्ण शक्ति उत्पन्न हो चुकी है उसमें मन का प्रतिकार बंद हो जाता है। फिर भी हम क्या कहते हैं? यदि मन से प्रतिकार चलता रहे, वाणी से प्रतिकार हो जाए, अरे! देह से भी प्रतिकार हो जाए तो तीनों ही प्रकार की निर्बलता उत्पन्न हो जाएगी। तब वहाँ पर तीनों ही प्रकार का प्रतिक्रमण करना पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : विचारों के प्रतिक्रमण करने पड़ेंगे?

दादाश्री : विचारों को देखना है। उसका प्रतिक्रमण नहीं होते। अगर किसी के लिए बहुत बुरे विचार आएँ तो उसका प्रतिक्रमण करने पड़ेंगे। लेकिन तभी जब किसी को नुकसान पहुँचाने वाली चीज़ हो। यों ही आ जाए, चाहे कैसे भी आ जाएँ, गाय के, भैंस के या कैसे विचार आएँ तो वे तो अपने ज्ञान से खत्म हो जाएँगे। ज्ञान से देखने पर खत्म हो जाएँगे। उन्हें सिर्फ देखना है, उनके लिए

प्रतिक्रमण नहीं होते। प्रतिक्रमण तो, यदि आपसे किसी को तीर लग जाए, तभी करने हैं।

आप यहाँ सत्संग में आते हो और यहाँ कुछ लोग खड़े हों तब यदि आपके मन में ऐसा हो कि ये सब क्यों खड़े हैं? तो इस तरह मन में भाव बिगड़ जाए तो उस भूल के लिए तुरंत ही प्रतिक्रमण करना पड़ेगा।

प्रश्नकर्ता : ऐसा भाव बिगड़ा हो तो भी करना है?

दादाश्री : हाँ। अभाव हुआ हो, ऐसा-वैसा हुआ हो, मन में ज़रा सा ही तिरस्कार हुआ हो लेकिन फिर भी प्रतिक्रमण करना है। मन बिगड़ा किसे कहेंगे? सिर्फ मन ही नहीं बिगड़ता है, सारा अंतःकरण बिगड़ता है। सारी पार्लियामेन्ट का प्रस्ताव स्वीकृत हो जाए तब प्रतिपक्षी भाव उत्पन्न होता है। 'सामने वाले को ऐसा कर डालूँ, वैसा कर डालूँ', ऐसा होता है। सिर्फ मन के कारण नहीं है। मन तो ज्ञेय है, वीतरागी स्वभाव का है। यदि मन बिगड़ जाए तो प्रतिक्रमण कर देना। अंतःकरण की पार्लियामेन्ट का प्रस्ताव स्वीकृत हो जाना और मन बिगड़ना, वे दोनों अलग चीज़ें हैं। यदि प्रतिक्रमण करते हैं न, तो मन शांत हो जाता है। अब उसके प्रतिक्रमण करेंगे तो मन भी शांत हो जाएगा। सभी के प्रतिक्रमण करवाते रहना है!

प्रश्नकर्ता : दोपहर में प्रतिक्रमण करवाए थे।

दादाश्री : फिर भी बार-बार करवाते रहना है। जितने प्रतिक्रमण करोगे उतना ही यह भीतर से मज़बूत होगा। यदि विचार बिगड़ा तो दाग़ पड़ेगा, इसलिए विचार मत बिगाड़ना। इतना समझना है। अपने सत्संग में तो खास ध्यान रखना है कि विचार ना बिगड़े। विचार बिगड़ा तो सब बिगड़ेगा। विचार आया कि मैं गिर जाऊँगा यानी गिरा। इसीलिए विचार आए कि तुरंत ही प्रतिक्रमण कर लो, आत्म स्वरूप हो जाओ। यदि आपके मन में चुभे ऐसा कुछ हो तो उसका प्रतिक्रमण होता है। मुझे हार पहनाया, उसका प्रतिक्रमण करने की ज़रूरत नहीं है। यह भी 'क्रेडिट' है, बहुत बड़ी 'क्रेडिट' है।

भाव बिगड़े तब

आप अभी यहाँ आए और यहाँ पर बहुत भीड़ होने की वजह से किसी को ऐसा विचार आए कि अभी यह कहाँ से आया? तो अंदर ऐसे विचार आ जाते हैं और फिर बाहर वाणी कैसी निकलती है कि 'आइए, आइए, पधारिए'। अब (उल्टा) विचार आया वह अतिक्रमण कहलाता है। उसका प्रतिक्रमण करना चाहिए।

अंदर के भाव नहीं बिगाड़ने चाहिए, बाहर के चाहे कैसे भी हों।

प्रश्नकर्ता : अंदर और बाहर दोनों उत्तम हों तो?

दादाश्री : उसके जैसा तो एक भी नहीं! कभी कभार अंदर बिगड़ भी जाए तो प्रतिक्रमण कर देना है।

सामूहिक प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण, कर्मफल के करने हैं या सूक्ष्म के करने हैं?

दादाश्री : सूक्ष्म के होते हैं।

प्रश्नकर्ता : विचार के या भाव के?

दादाश्री : भाव के। विचार के पीछे भाव ही होता है। अतिक्रमण हुआ तो प्रतिक्रमण करना ही चाहिए। अतिक्रमण तो, मन में बुरा विचार आए, इस बहन के लिए बुरा विचार आया, तो 'विचार अच्छा होना चाहिए' ऐसा कहकर उसे बदल देना चाहिए। मन में ऐसा लगे कि यह नालायक है, तो ऐसा विचार क्यों आया? आपको उसकी लायकी-नालायकी देखने का राइट (अधिकार) नहीं है। और अस्पष्ट रूप से कहना हो तो कहना कि 'सभी अच्छे हैं'। 'अच्छे हैं' कहोगे तो आपको कर्म का दोष नहीं लगेगा, लेकिन यदि निकम्मा कहोगे तो वह अतिक्रमण कहलाएगा, उसके लिए अवश्य ही प्रतिक्रमण करना पड़ेगा।

अत: फिर कभी ऐसा वापस विचार आए तो वह भरा हुआ माल

है, उसके विचार तो आएँगे। स्टॉक तो जैसा होगा, वैसा निकलता रहेगा। और एक व्यक्ति में बिल्कुल भी समझ नहीं है, फिर भी मन से ऐसा मानता है कि मैं बहुत समझदार हूँ। वैसा स्टॉक था। वह कहीं उसे नुकसान नहीं करता है इसलिए उसे प्रतिक्रमण करने की ज़रूरत नहीं है।

विचार तो आएँगे लेकिन उन्हें निर्माल्य कर देने हैं। प्रतिक्रमण कर देना है। विचार निर्जीव है।

उसके शुद्धात्मा को कैसे पहुँचता है? 'देहधारी नगीन भाई, नगीन भाई की माया, नगीन भाई के मन-वचन-काया के योग, भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म से भिन्न ऐसे हे प्रकट शुद्धात्मा! यह तार आप तक पहुँचे। आपके लिए मैंने ऐसा सोचा उसके लिए मैं आपसे माँगता हूँ और प्रतिक्रमण करता हूँ। अब फिर कभी ऐसा नहीं करूँगा।'

बिना मनमुटाव के विचार ही नहीं आता। जैसे ही विचार आया कि अवश्य प्रतिक्रमण करना चाहिए। इसलिए जत्थे में प्रतिक्रमण करने हैं। इस दस मिनट में मुझे जितने भी विचार आए, उन सब का एक साथ प्रतिक्रमण करता हूँ।

उसे कहते हैं समभाव से *निकाल*

प्रश्नकर्ता : कई दोष ऐसे हो जाते हैं जैसे कि कोई व्यक्ति हमारे सामने आकर खड़ा रहता है तो उसे देखते ही हमारे मन में ऐसे भाव हो जाते हैं कि यह व्यक्ति बेकार है। तो प्रतिक्रमण वहीं कर लेना चाहिए? यदि प्रतिक्रमण करना रह गया तो?

दादाश्री : रह गया तो कोई हर्ज नहीं है। जो रह गया है उसका बारह महीने बाद एक साथ करेंगे तो भी चलेगा। तीन महीने में, छः महीने में कर देना तो भी चलेगा लेकिन उसका दुरुपयोग मत करना कि बारह महीने बाद करने ही है तो बाद में एक साथ सब करेंगे। यदि प्रतिक्रमण करना भूल गए हों तो बाद में एक साथ कर सकते हैं।

कोई ऐसा बेवकूफ इंसान सामने मिले, तो दूर से देखते ही ऐसा

लगता है कि यह फाइल आई है, तो समभाव से *निकाल* करने जैसा है। भीतर सावधान करता है या भूल जाता है? पहले से सावधान करता है न? तुझे भी सावधान करता है? यानी सब से बड़ा धर्म है समभाव से *निकाल* करना और आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान। फिर भी अंदर से किसी के लिए खराब पौद्‌गलिक भाव निकले तो 'उसे' प्रतिक्रमण करने को कहना है। जहाँ पर दाग़ गिरा हो उसे धो देना है, स्वच्छ कर देना है। नए दाग़ नहीं गिराने हैं, उसका नाम 'समभाव से *निकाल*'।

सामने वाले के भाव बिगड़े वहाँ

प्रश्नकर्ता : मान लो अपना कोई भाव नहीं बिगड़ा लेकिन सामने वाले से बातचीत करते वक्त उसके चेहरे की रेखाएँ बदल गईं, हमारे लिए उसका भाव बिगड़ा तो उसके लिए हमें किस प्रकार का प्रतिक्रमण करना है?

दादाश्री : आपको प्रतिक्रमण करना है। क्योंकि आपमें कौन से दोष हैं जो इसका भाव बिगड़ जाता है। भाव नहीं बिगड़ना चाहिए। भावशुद्धि ही रहनी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : कोई दो जन बात कर रहे हों और उसमें तीसरा कोई व्यक्ति अचानक आ जाए, अब वह तो कुछ बोलता नहीं है, यों ही खड़ा है, लेकिन उसमें सामने वाले में से किसी एक का भाव बिगड़ा, उसके चेहरे की रेखाएँ बदल गईं, वह देखकर मुझे ऐसा होता है कि यह ऐसे क्यों भाव बिगाड़ता है? तो उसका प्रतिक्रमण किस प्रकार करना है?

दादाश्री : सामने वाले के भाव क्यों बिगड़े, ऐसा जो हम देखते हैं न, वह गुनाह है। उस गुनाह का हमें प्रतिक्रमण करना है। सामने वाले का यदि चेहरा चढ़ा हुआ दिखा तो वह आपकी भूल है। तब उसके 'शुद्धात्मा' को याद करके उसका नाम लेकर माफी माँगते रहे तो ऋणानुबंध में से छूट सकते हैं।

तब हो पाएँगे वीतराग

जब नापसंद को भी साफ मन से सह पाएँगे तब वीतराग हो जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : साफ मन यानी क्या?

दादाश्री : साफ मन यानी सामने वाले के लिए बुरा विचार नहीं आना, वह। यानी क्या, कि निमित्त को काटने नहीं दौड़ता और शायद सामने वाले के लिए बुरा विचार आ जाए तो तुरंत ही प्रतिक्रमण करता है और धो देता है।

प्रश्नकर्ता : साफ मन हो जाए, वह तो अंतिम स्टेज की बात है न? और जब तक पूर्णतया साफ नहीं हुआ, तब तक प्रतिक्रमण करने पड़ेंगे न?

दादाश्री : हाँ। वह सही है, लेकिन कुछ चीज़ों में साफ हो गया होता है और कुछ चीज़ों में नहीं हुआ होता, वे सारे स्टेपिंग हैं। जहाँ साफ नहीं हुआ हो वहाँ प्रतिक्रमण करना पड़ता है।

बाहर के संयोग हों तभी फूटता है

भीतर पड़ी हुई गांठों में से विचार फूटते हैं। 'एविडेन्स' (प्रमाण) मिलते ही विचार फूटते हैं। वर्ना यों तो ब्रह्मचारी जैसा दिखाई देता है लेकिन रास्ते में संयोग मिलते ही विषय के विचार आ जाते हैं!

प्रश्नकर्ता : ऐसे जो विचार आते हैं, वे वातावरण की वजह से हैं न! संयोगिक प्रमाण के आधार पर ही उसके संस्कार, उसके साथ के भाई-बंधु, वे सब मिलते हैं न?

दादाश्री : हाँ, बाहर से 'एविडेन्स' मिलना चाहिए। उसके आधार पर ही मन की गाँठे फूटती हैं, नहीं तो नहीं फूटतीं।

प्रश्नकर्ता : उन विचारों को पकड़ने के लिए कौन प्रेरित करता है?

दादाश्री : वह सब कुदरती ही है। लेकिन आपको साथ ही साथ समझना चाहिए कि यह गलत बुद्धि है, तभी से उन गांठों का छेदन शुरू हो जाता है। इस जगत् में सिर्फ ज्ञान ही प्रकाश है। यह मेरे लिए अहितकारी है, ऐसा उसे समझ में आए, ऐसा ज्ञान उसे प्राप्त हो जाए, तो वह गांठों को छेद देगा।

आपको शुद्धात्मा का बहीखाता साफ रखना है। अत: चंदूभाई से रात को कहना है कि जिन-जिन के दोष दिखे हों, उनके साथ का बहीखाता साफ कर देना है। मन में भाव बिगड़ जाएँ तो प्रतिक्रमण से सारा शुद्धिकरण हो जाएगा। अन्य कोई उपाय नहीं है। रात को ऐसा (प्रतिक्रमण) करके सो जाना कि इन्कम टैक्स वाला भी दोषित नहीं दिखाई दे। पूरे जगत् को निर्दोष देखकर फिर चंदूभाई से सो जाने के लिए कहना है।

पहुँचता है, मन से करो फिर भी

आपने किसी से झगड़ा किया वह अतिक्रमण कहलाता है। उस अतिक्रमण का प्रतिक्रमण करोगे तो उसका पश्चाताप होकर *निकाल* हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण प्रत्यक्ष में होना चाहिए न?

दादाश्री : यदि बाद में प्रतिक्रमण हो तब भी हर्ज नहीं है।

प्रश्नकर्ता : मैंने आपकी अवहेलना की हो, अशातना की हो तो मुझे आपके सम्मुख आकर प्रतिक्रमण करना चाहिए न?

दादाश्री : यदि सम्मुख आकर करो तो अच्छी बात है। यदि नहीं हो पाए और बाद में करोगे तब भी वैसा ही फल मिलेगा।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उसे कैसे पहुँचेगा?

दादाश्री : वह सब हम जानते हैं कि कैसे पहुँचता है! वह बुद्धि से समझ में आए ऐसा नहीं है। वह तो हम 'ज्ञानी पुरुष' जानते

हैं। यानी हम आपको कहते हैं उतना आपको करना है। अन्य बखेड़े में, बुद्धि में आप मत गिरना। शायद वे नहीं मिल पाएँ तो आप क्या करेंगे? यों ही बैठे रहें? मिले ही नहीं तो क्या करें? यह जो हम कहते हैं, वह प्रोसेस (प्रक्रिया) है।

इस काल में विराधक ज़्यादा है

हम क्या कहते हैं, 'आपको दादा के लिए ऐसे उल्टे विचार आते हैं इसलिए आप उसके प्रतिक्रमण करते रहो।' क्योंकि उस बेचारे का क्या दोष? विराधक स्वभाव है। आज के सभी लोगों का स्वभाव ही विराधक है। दूषमकाल में विराधक जीव ही होते हैं। आराधक जीव सभी चले गए। ये जो बचे हैं, उनमें से सुधार हो सकें, ऐसे भी कई जीव हैं, बहुत ऊँची आत्माएँ हैं, अभी भी इनमें!

तीर्थंकर व ज्ञानियों के प्रति

हमारे लिए उल्टा विचार आए तो प्रतिक्रमण कर लेना। मन तो 'ज्ञानी पुरुष' की भी जड़ खोद सकता है। मन क्या नहीं कर सकता? जला हुआ मन सामने वाले को जलाता है। जला हुआ मन तो महावीर को भी जला दे।

प्रश्नकर्ता : 'जो चले गए, वे किसी का कुछ भला नहीं कर सकते।' तो फिर महावीर का अवर्णवाद उन तक पहुँचता है?

दादाश्री : नहीं, वे स्वीकार नहीं कर सकते। इसलिए रिटर्न विथ थैन्क्स डबल होकर जाएगा। इसलिए खुद, अपने लिए बार-बार माफी माँगते रहना। जब तक आपको वह शब्द याद आता है तब तक माफी माँगते रहना है। महावीर का अवर्णवाद किया हो तो बार-बार माफी माँगते रहना, तो तुरंत मिट जाएगा, बस। छोड़ा हुआ तीर उन तक पहुँचता ज़रूर है लेकिन वे स्वीकार नहीं करते।

वह है परिणाम, अशातनाओं का

प्रश्नकर्ता : हमारे गाँव में चालीस जैन मंदिर होने के बावजूद

भी ऐसी कौन सी अशातना हो गई है, या ऐसे कौन से कारण हैं कि इस गाँव का अभ्युदय नहीं हो रहा है।

दादाश्री : होगा, अभ्युदय होगा। अब अभ्युदय होने की तैयारी में ही है।

प्रश्नकर्ता : कोई अशातना हुई है?

दादाश्री : बिना अशातना के तो ऐसा सब नहीं होता न, अशातनाएँ ही हुई हैं न, और क्या है?

प्रश्नकर्ता : उसके निवारण के लिए कोई रास्ता?

दादाश्री : निवारण तो, आप पश्चाताप, प्रतिक्रमण करो लेकिन यथार्थ प्रतिक्रमण हं, तो उसका निवारण होगा। नहीं तो किसी भी तरह से निवारण नहीं हो पाएगा। यह तो, पश्चाताप करते हैं कि अशातना हो गई है। ऐसा पश्चाताप करने से कुछ बदलाव होगा। लेकिन जब सब मिलकर करेंगे तब जाकर बदलाव होगा। अकेले करने से तो कितना हो पाएगा?

❖❖❖❖❖

[24]

जीवन भर के बहाव में, डूबते को तारे ज्ञान

जो याद आता है, वह स्वच्छ होने के लिए

प्रश्नकर्ता : क्या याद करने से पिछले दोष देखे जा सकते हैं?

दादाश्री : वास्तव में पिछले दोष उपयोग से ही देखे जा सकते हैं, याद करने से नहीं दिखाई देंगे। याद करने में तो सिर खुजलाना पड़ता है। आवरण आ जाता है इसलिए याद करना पड़ता है न! इन चंदूभाई से झंझट हो जाए तो चंदूभाई का प्रतिक्रमण करने से चंदूभाई हाज़िर हो ही जाएँगे। सिर्फ वैसा 'उपयोग' ही रखना है। अपने मार्ग में याद करना तो है ही नहीं। याद करना, वह तो मेमोरी (स्मृति) के अधीन है। जो याद आता है वह प्रतिक्रमण करवाने के लिए आता है, साफ करवाने के लिए।

यह स्मृति इटसेल्फ कहती है कि, 'हमें निकाल दे, धो दे'। यदि स्मृति नहीं आती तो सब गड़बड़ी हो जाती। वह यदि न आए तो आप किसे धोएँगे? आपको पता कैसे चलेगा कि कहाँ पर राग-द्वेष हैं? यह जो स्मृति आती है, वह तो अपने आप *निकाल* होने के लिए आती है, *चोंट* (चिपका हुआ है, मान्यता) को धोने के लिए आती है। यदि स्मृति आए न, तो उसे धो दो, स्वच्छ कर दो तो वह धुलकर विस्मृत हो जाएगी। याद इसीलिए आती है कि आपकी यहाँ पर *चोंट* है, उसे खत्म कर दो, उसके लिए पश्चाताप करो और फिर से ऐसा न हो, ऐसा दृढ़ निश्चय करो।

इतना करने से वह खत्म हो जाएगी यानी वह विस्मृत हो जाएगी। कोई एक बार याद आए तो उसका एक बार प्रतिक्रमण करना पड़ेगा, लेकिन जत्थे में तो जितनी बार याद आए, उतनी बार प्रतिक्रमण करना पड़ेगा।

'इस संसार की कोई भी विनाशी चीज़ मुझे नहीं चाहिए', ऐसा आपने तय किया है न? फिर भी याद क्यों आता है? इसलिए प्रतिक्रमण करो। प्रतिक्रमण करने पर भी यदि फिर से याद आए तब हमें जानना हैं कि अभी भी यह शिकायत है! इसलिए फिर से यह प्रतिक्रमण ही करना है।

प्रश्नकर्ता : वह तो दादा, जब तक उसका बाकी है तब तक प्रतिक्रमण होता ही रहता है। उसे बुलाना नहीं पड़ता।

दादाश्री : हाँ, बुलाना नहीं पड़ता। हमने निश्चित किया हो तो अपने आप होता ही रहता है।

प्रत्याख्यान करना रह गया, उसकी इच्छा है

याद, वह राग-द्वेष की वजह से है। यदि याद नहीं आता तो उलझी हुई गुत्थी भूल गए होते। आपको क्यों कोई फॉरेनर्स (विदेशी) याद नहीं आते और मरे हुए क्यों याद आते हैं? यह हिसाब है और वह राग-द्वेष की वजह से है, उसका प्रतिक्रमण करने से आसक्ति खत्म हो जाएगी। इच्छाएँ इसलिए होती हैं क्योंकि उनके प्रत्याख्यान नहीं हुए। याद इसलिए आता है क्योंकि प्रतिक्रमण नहीं किए।

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण मालिकी भाव का होता है न?

दादाश्री : मालिकी भाव का प्रत्याख्यान होता है और दोषों का प्रतिक्रमण होता है।

फिर भी अतिक्रमण जारी ही है

प्रश्नकर्ता : पहले जो दोष किए थे अभी उनकी तीव्रता कम हो गई है, कई वस्तुएँ याद भी कम रहती है। तो प्रतिक्रमण करते वक्त वह सब भूल गए हों तो वह कितनी बार याद आएगी? एक बार कहा था

कि रोज़ के सौ-सौ प्रतिक्रमण और उससे भी ज़्यादा करने पड़ेंगे। अब वह सब भूल गए हैं और वे दोष तो बाँध दिए हैं, वे कैसे याद आएँगे?

दादाश्री : ऐसा सब करने की ज़रूरत नहीं है। काफी कुछ तो जब हम ज्ञान देते हैं तब तुरंत जल जाते हैं। तब जाकर आपको यह ज्ञान हाज़िर होता है। यानी काफी कुछ जल चुका होता है। कोई बड़ा गुनाह हो जाए और याद आए तो उसका प्रतिक्रमण करना। बाकी, कुछ भी नहीं करना है। जो याद न आए, उसका कुछ भी नहीं करना है।

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण करने के बावजूद भी अगर बार-बार वह गुनाह याद आए तो क्या उसका अर्थ ऐसा है कि उसमें से अभी भी मुक्त नहीं हुए हैं?

दादाश्री : प्याज़ की एक परत निकल जाए तो दूसरी परत अपने आप आकर खड़ी रहेगी। इसी तरह ये गुनाह कई परतों वाले हैं। यानी एक प्रतिक्रमण करने पर एक परत हटेगी। ऐसा करते-करते सौ प्रतिक्रमण करने पर वह खत्म होगा। कुछ दोषों के तो जब पाँच प्रतिक्रमण करोगे, तब वे खत्म होंगे, कुछ के दस और कुछ के सौ होंगे। उसकी जितनी परतें होगी उतने प्रतिक्रमण होंगे। लंबा चले तो इसका मतलब यह कि गुनाह उतना ही लंबा है।

प्रश्नकर्ता : कई बार ऐसा होता है कि भूल होने पर पता चलता है। उसका प्रतिक्रमण भी होता है, करते जाते हैं फिर भी बार-बार वापस वही की वही भूलें जारी ही रहती है।

दादाश्री : जो हो वो, लेकिन बार-बार प्रतिक्रमण करते ही रहना है। क्योंकि वह जो परतें हैं न, वह परत गई, दूसरी परत गई, यानी उस भूल का दोष नहीं है, करने वाले का दोष नहीं है। क्योंकि परतें ज़्यादा हैं, इसलिए।

प्रश्नकर्ता : वह स्वभाव के कारण है या जागृति उतनी कम है इसलिए?

दादाश्री : नहीं, नहीं, नहीं। हज़ार जन्मों तक यही का यही किया हो तो परतें उतनी ही ज़्यादा होंगी। यदि पाँच जन्म तक किया

होगा तो उतनी। फिर भी वापस होगा क्योंकि प्याज़ की एक परत जाने से क्या प्याज़ खत्म हो जाती है? वापस उसकी दूसरी परत आती है, तीसरी आती है, ऐसा करते-करते कितने ही परतों वाले दोष हैं। तो दस परतों वाले दोषों का *निकाल* दस प्रतिक्रमण से हो जाएगा। पचास परतों वाले दोषों का पचास प्रतिक्रमण से *निकाल* हो जाएगा। प्रतिक्रमण करोगे तो उसका फल तो अवश्य मिलेगा ही। अवश्य साफ हो जाएगा।

अतिक्रमण का प्रतिक्रमण होना चाहिए। यहाँ आकर कोई भी अतिक्रमण नहीं किया है तो आपको उसका प्रतिक्रमण नहीं करना है। यदि अतिक्रमण करते हो तभी प्रतिक्रमण करना है।

याद का प्रतिक्रमण : इच्छा का प्रत्याख्यान

प्रश्नकर्ता : जो याद आए, उसका प्रतिक्रमण करना चाहिए और जिसकी इच्छा हो उसके लिए प्रत्याख्यान करना चाहिए। यह ज़रा समझाइए।

दादाश्री : जब याद आता है तो समझना कि यहाँ पर ज़्यादा गाढ़ है, तो वहाँ प्रतिक्रमण करते रहने से सब छूट जाएगा।

प्रश्नकर्ता : वह जितनी बार याद आए उतनी बार करना है?

दादाश्री : हाँ, उतनी बार करना है। आप करने का भाव रखना। ऐसा है न, याद आने के लिए समय तो चाहिए न! तो इसका समय मिलने पर, रात को क्या याद नहीं आते होंगे?

प्रश्नकर्ता : वह तो यदि कोई संयोग हो तो।

दादाश्री : हाँ, संयोगों की वजह से।

प्रश्नकर्ता : और इच्छाएँ हों तो?

दादाश्री : इच्छा होना यानी स्थूल वृत्तियाँ होना। पहले हमने जो भाव किए हैं, वे भाव अब अगर फिर से खड़े हों, तो वहाँ पर प्रत्याख्यान करना है।

प्रश्नकर्ता : उस समय आपने कहा था, हर बार ऐसा कहना कि 'अब यह चीज़ नहीं चाहिए'।

दादाश्री : यह चीज़ मेरी नहीं है, समर्पित करता हूँ। अज्ञानतावश मैंने इन सभी को बुलाया था लेकिन आज यह मेरी नहीं है। यानी मन-वचन-काया से समर्पित करता हूँ। अब मुझे कुछ नहीं चाहिए। इस सुख को मैंने अज्ञान दशा में बुलाया था, लेकिन आज यह सुख मेरा नहीं है। अतः मन-वचन-काया से समर्पित करता हूँ। अब मुझे कुछ नहीं चाहिए। जिनमें सुख माना था उन सब को हमने बुलाया, लेकिन अब तो हमारी दृष्टि बदल गई है यानी हमें वे सुख मिथ्याभास लगने लगे हैं। सच्चा सुख तो है ही नहीं लेकिन मिथ्या सुख भी नहीं है, लेकिन मिथ्या का भी आभास हुआ!

शॉर्ट प्रतिक्रमण

इस अक्रम विज्ञान का पूरा हेतु ही शूट ऑन साइट प्रतिक्रमण करने का है (देखते ही ठाँय)। उसके बेसमेन्ट (नींव) पर खड़ा है। गलती किसी की नहीं है। सामने वाले को आपके निमित्त से यदि कोई नुकसान हो, तो द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म से मुक्त ऐसे उनके शुद्धात्मा को याद करके प्रतिक्रमण करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : लेकिन क्या हर बार पूरा लंबा बोलना है?

दादाश्री : नहीं, ऐसा कुछ नहीं। शॉर्ट में कर लेना। सामने वाले के शुद्धात्मा को हाज़िर करके उन्हें फोन लगाना कि 'यह भूल हो गई, क्षमा करें।'

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण तो कहीं भी शूट ऑन साइट कर दिया लेकिन क्या स्थिरता से बैठकर करने की ज़रूरत नहीं है?

दादाश्री : यदि स्थिरता से नहीं बैठे हों लेकिन प्रतिक्रमण किया तो चलता है लेकिन शूट ऑन साइट। दोष हुआ कि तुरंत। बाद में तो शायद छूटा भी जा सकता है यदि भूल गए तो! (इसलिए शूट ऑन साइट प्रतिक्रमण करना है।)

फिर नहीं चिपकते परभव में

प्रश्नकर्ता : दिन में कितने प्रतिक्रमण करने हैं?

दादाश्री : जितने दोष करते हो उतने ही प्रतिक्रमण, ज़्यादा नहीं। शूट ऑन साइट। जैसे ही दोष हुआ कि तुरंत शूट कर दो। दादा भगवान का नाम लेकर तुरंत ही शूट कर दो। शूट हो जाएगा। प्रतिक्रमण तो चाय पीते हुए भी कर सकते हैं, नहाते हुए भी कर सकते हैं। जहाँ देहधर्म है, मनोधर्म है, बुद्धिधर्म है, वहाँ स्थान को देखना पड़ता है। लेकिन हमें आत्मधर्म है यानी देहधर्म वगैरह सब देखने की ज़रूरत नहीं है, हम कहीं भी प्रतिक्रमण कर सकते हैं।

प्रतिक्रमण कर-करके जितनी भूलें खत्म कीं, उतना मोक्ष नज़दीक आया।

प्रश्नकर्ता : वे फाइलें फिर चिपकती नहीं है न, दूसरे जन्म में?

दादाश्री : किसलिए? हम दूसरे जन्म तक क्यों रखें? यहीं पर सारे प्रतिक्रमण कर देने हैं। फुरसत मिलते ही उसका प्रतिक्रमण करते रहना है।

यानी बार-बार प्रतिक्रमण करवाना है। चलो, प्रतिक्रमण करो इसके, कहना है। व्यवहार में जब अपने से हो पाए ऐसा हो, तब कहना है कि 'प्रतिक्रमण करो'।

घर के, कुटुंबी जनों के प्रतिक्रमण

दूसरा, घर के लोगों के भी रोज़ाना प्रतिक्रमण करने चाहिए। आपके मदर, फादर, भाई, बहन, कुटुंबी जनों का, सभी का रोज़ाना प्रतिक्रमण करना पड़ेगा क्योंकि वे आपकी बहुत *चीकणी फाइलें* हैं।

यदि एक घंटे कुटुंबी जनों के प्रतिक्रमण करोगे न, अपने परिवार वालों को याद करके, नज़दीक से लेकर दूर के सभी, भाईयों, उनकी पत्नियाँ, चाचा, चाचा के बेटे, वे सभी, एक फैमिली (परिवार) हों न, तो दो-तीन-चार पीढ़ियों तक के, उन सभी को याद करके, प्रत्येक के लिए यदि एक-एक घंटा प्रतिक्रमण होगा न, तो भीतर भयंकर पाप

भस्मीभूत हो जाएँगे और आपकी ओर से उन लोगों के मन साफ हो जाएँगे। इसलिए आपके सभी नज़दीकी लोगों को याद कर-करके प्रतिक्रमण करने चाहिए और यदि रात को नींद नहीं आ रही हो तो उस समय यह सेट किया कि चला। ऐसी सेटिंग नहीं करते? ऐसी यह व्यवस्था, वह फिल्म शुरू हो गई तो उस समय बहुत आनंद आएगा। वह आनंद समाएगा नहीं!

प्रश्नकर्ता : हाँ, सही बात है।

दादाश्री : क्योंकि जब प्रतिक्रमण करते हैं न, तब आत्मा का संपूर्ण शुद्ध उपयोग रहता है। बीच में किसी की दखल नहीं होती।

प्रतिक्रमण कौन करता है? चंदूभाई करते हैं। किसके करते हैं? तो कहते हैं, कुटुंबी जनों को याद कर-करके करते हैं। आत्मा देखने वाला है, वह देखता ही रहता है। और कोई दखलंदाज़ी है ही नहीं इसलिए बहुत शुद्ध उपयोग रहता है।

आज रात को आपके सभी कुटुंबी जनों के प्रतिक्रमण करना न, यदि टाइम कम पड़ जाए तो कल रात को करना। फिर कम पड़ जाए तो परसों रात को, और यहीं तक नहीं, आपके गाँव में जान-पहचान वालों को, सभी को याद करके प्रतिक्रमण करने चाहिए। गाँव में किसी को ज़रा यों धक्का लग जाए या किसी से आपका मनमुटाव हो जाए तो वह सारा साफ तो करना पड़ेगा न? सभी हिसाब साफ करने पड़ेंगे।

प्रश्नकर्ता : कई सालों पहले जो हो चुका हो न, वह हमें याद भी नहीं आ रहा हो तो?

दादाश्री : जो याद नहीं आ रहा हो उसका? वह तो रह गया ऐसे का ऐसा ही! वह तो फिर सामायिक करना, उसमें याद आएगा।

प्रश्नकर्ता : सामायकि में याद आएगा?

दादाश्री : हाँ, कई लोगों को तो पाँच साल तक का सब याद आता है।

निर्ग्रंथ दशा, ग्रंथियाँ छेदकर

प्रश्नकर्ता : हमने बचपन में, जवानी में जो भूलें की हैं या फिर बाद में जो भूलें की हैं, वे सब एक के बाद एक दिखाई देतीहैं।

दादाश्री : अब वह हर रोज़ जब एक घंटा टाइम मिले तब करना। प्रतिदिन तो टाइम नहीं मिलता इसलिए दो दिन में एक सामायिक तो करना। उसमें विषय के दोष देखने हैं। एक दिन सामायिक में हिंसा के दोष देखने हैं। हमें (बारी-बारी से) उन सभी दोषों को देखने की सामायिक करते जाना है। उसमें 'दादा' की कृपा है कि सामायिक में सारे ही दोष दिखाई देते हैं। छोटी उम्र तक के सब आपको दिखाई देंगे और दोष दिखें यानी धुल जाएँगे। धुल जाने के बाद भी वापस सब से बड़ी गांठ तो पकड़कर रखनी है। उसे तो खुद को रोज़ सामायिक में देखना है। यानी ऐसे करते-करते सामायिक करते जाओ।

प्रश्नकर्ता : यह बड़ी गांठ है ऐसा कैसे पता चलेगा?

दादाश्री : बड़ी गांठ तो, बार-बार जिसके विचार आते हैं वह बड़ी गांठ। इस तरफ नींबू रखे हों और इस तरफ संतरे रखे हों, और इस तरफ प्याज़ रखी हों, उन सब की गंध आएगी लेकिन जिसकी गंध ज़्यादा आ रही हो तो समझना कि यहाँ यह माल ज़्यादा है। यानी भीतर हमें पता चलता है। बहुत विचार आते हों, विचार पर विचार, विचार पर विचार आते हों तो हमें जानना है कि 'ओहो, यह माल ज़्यादा है'। यानी फिर इसे नोट करना कि यह फर्स्ट, यह सेकन्ड, ऐसी कितनी गाँठे हैं, वह देख लेना है। फिर रोज़ाना उसे उपयोग में लेना है। एक बार देखा-जाना और प्रतिक्रमण किया यानी एक परत जाती है। ऐसे किसी को पाँच सौ-पाँच सौ परतें होती हैं, किसी को सौ परतें होती हैं, किसी को दो सौ परतें होती हैं लेकिन सब खत्म हो जाता है। अब तो मोक्ष जाना है तो निर्ग्रंथ होकर जाना पड़ता है। निर्ग्रंथ अर्थात् अंदर की सभी ग्रंथियाँ खत्म हो गई। अब बाहर की ग्रंथियाँ रह गई है, बाह्य ग्रंथियाँ और वह भी वापस इन 'चंदूभाई' को रही।

प्रश्नकर्ता : दादा, आपके अमरीका जाने से पहले आपकी हाज़िरी में एक बार प्रतिक्रमण करेंगे?

दादाश्री : हाँ, आज शाम को ही करवा देते हैं। मेरी हाज़िरी में ही करेंगे। मैं वहाँ बैठूँगा न! सब को मेरी हाज़िरी में करना है। ऐसा प्रतिक्रमण तो एक बार करवाया था, मेरी हाज़िरी में करवाया था, मैंने खुद ही करवाया था, बहुत साल पहले की बात कर रहा हूँ और वह भी विषय से संबंधित ही करवाया था। वह करते-करते सब इतनी गहराई में उतर गए कि, बाद में घर जाने पर भी बंद नहीं हो रहा था। सोते समय भी बंद नहीं हो रहा था, खाते समय भी बंद नहीं हो रहा था। फिर मुझे बंद करवाना पड़ा!! उन सभी को तो खाते समय भी बंद नहीं हो रहा था और सोते समय भी बंद नहीं हो रहा था। फँस गए थे सभी, नहीं? अपने आप निरंतर प्रतिक्रमण, रात-दिन चलता ही रहता था। अब प्रतिक्रमण करने के बाद, 'बंद करो, अब दो घंटे हो गए' ऐसा कहने पर भी अपने आप प्रतिक्रमण चलता ही रहता था। बंद करने के लिए कहने पर भी बंद नहीं हो रहा था क्योंकि मशीनरी सब शुरू हो गई थी। भीतर चलता ही रहता था।

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण में 'दादा' ऐसा कहते हैं न, कि पिछले दोषों का जो उफान आता है, वह चाहे कितना कुछ करे फिर भी वह नहीं समाता, सब उफनता ही रहता है।

दादाश्री : हाँ, वह सब उफनता रहता है।

पूर्व जन्म के दोषों का प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण विधि में पूर्व जन्म के दोषों की आलोचना कैसे कर सकते हैं?

दादाश्री : प्रतिक्रमण विधि अर्थात् पूर्व जन्म के जो दोष हैं न, वे ही जब इस जन्म में प्रकट होते हैं, तब आलोचना करनी होती है। इस जन्म में जो प्रकट होते हैं, वे पूर्व जन्म के दोष हैं। पूर्व जन्म में जो दोष हो जाते हैं, वे आयोजन के रूप में होते हैं और बाद में जब

प्रकट होते हैं, तब हमें दिखाई देता है कि पूर्व जन्म में यह दोष किया था। ऐसा यहाँ हमें दिखता है, अनुभव में आता है।

प्रश्नकर्ता : कई दोष ऐसे नहीं होते कि जो इस जन्म को 'बाइ पास' करके अगले जन्म में आए या तो जल्दी आ जाए?

दादाश्री : नहीं, नहीं, ऐसे तो नहीं होते। क्या कोई आम का पेड़ ऐसा होता है जो कि बौर आए बिना तुरंत पका हुआ आम दे दे?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : उसी तरह पहले इसमें बौर आते हैं। यह सब विधिवत् है, अविधिवत् नहीं है, गप्प नहीं है यह। यानी कि गत जन्म में बौर लगते हैं और इस जन्म में हाफूस आम तैयार होते हैं। उसके बाद कड़वा-मीठा फल देते हैं।

प्रश्नकर्ता : फल देर से नहीं आएगा एक जन्म के बाद?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : इसी जन्म में फल आ जाते हैं सारे?

दादाश्री : इसी जन्म में आ जाना चाहिए क्योंकि अगले जन्म का क्या भरोसा? अगले जन्म में तो शायद गधे में चला जाए और कर्म मनुष्य के हों! यानी कि मनुष्य में ही फल आ जाते हैं सारे।

निकालो हर रोज़ एक घंटा

दादाश्री : आपने अपने बड़े भाई के प्रतिक्रमण किए थे?

प्रश्नकर्ता : ऐसा कुछ प्रतिक्रमण नहीं किया है।

दादाश्री : उन सब के प्रतिक्रमण करने पड़ेंगे। तब जाकर इकट्ठे हुए दोषों से छूट सकते हैं। अब यह प्रतिक्रमण करते वक्त जो आनंद होता है, वह असली होता है। पहले आपके घर के सदस्यों के, फिर परिजनों के, फिर हर रोज़ आप दोनों की तुलना करते जाओ। दोपहर में

जब आराम करते हो न, उस वक्त करते जाओ। एक-एक व्यक्ति का। पहले घर के बेटे-वेटे सभी। बेटे, बेटे की बहू, फिर देखो आनंद! इस तरह से घरवालों के प्रतिक्रमण करो। एक घंटे का प्रयोग रखना है। उस समय का आनंद तो देखो, याद कर-करके! छोटा बच्चा भी दिखाई देगा!

अपना यह ज्ञान तो देखो, अपना ज्ञान कितना अधिक क्रियाकारी है?! यों ही याद नहीं आते लेकिन इस तरह प्रतिक्रमण करने बैठेंगे तो घर के बेटे-वेटे सब दिखाई देते हैं।

प्रश्नकर्ता : दादा, आपने यदि किसी बात पर टोका हो कि रोज़ प्रतिक्रमण करने हैं, फिर किसी दिन नहीं हो पाए, कम हो, यानी हम जो टाइम निकालते हैं, उसमें यदि कम (प्रतिक्रमण) हुए तो अब चुभता है। पहले तो कैसा था कि हो गए अब प्रतिक्रमण, ऐसा होता था।

दादाश्री : चुभा यानी समझो कि आप इस तरफ मुड़े। अब इस तरफ अपना वोटिंग किया।

प्रश्नकर्ता : यह प्रतिक्रमण से अच्छा हो गया है, दादा।

दादाश्री : प्रतिक्रमण तो काम निकाल देता है।

आज रात को पहले नज़दीकी जो लोग हैं न, फादर-मदर से लेकर शुरुआत करनी है। यानी भाई, बहन, चाचा, चाची, मामा, मामी, सब को लेकर आखिर में छोटे से छोटे बच्चे तक सब का प्रतिक्रमण तू कर लेना। घर के सभी सदस्यों का कर लेना। फिर कल वापस विस्तार बढ़ाना है। फिर तो रोज़ विस्तार बढ़ाते जाना है। जान-पहचान वाले, मास्टर सब आ जाएँगे। फिर तेरे साथ के कॉलेज वालों के प्रतिक्रमण करने हैं। सब के साथ का साफ कर देना है। मानसिक संबंध साफ कर देना है। जो कर्म बंध चुके होंगे उन्हें फिर बाद में देख लेंगे।

कभी किसी के प्रतिक्रमण करते हो? अभी तक में ये सब सेठ-वेठ, सब से पहचान है न, तो आपके निमित्त से किसी को दुःख पहुँचा हो उसका प्रतिक्रमण करना पड़ता है।

पहले जहाँ पर राग-द्वेष किए हैं, वहाँ प्रतिक्रमण करने पड़ेंगे न? और उसे साफ करने में जो आनंद आता है, वैसा कोई आनंद है ही नहीं। जो हो चुके हैं, वे तो अज्ञानता में हो गए लेकिन अब ज्ञान मिलने के बाद भी हम उन्हें न धोएँ और उन कपड़ों को पेटी में ही रखे रखें तो? आपने तो बहुत से पेटी में रख छोड़े हैं, नहीं? देखना, भीतर दाग़ लगे होंगे।

फिर फ्रेन्ड सर्कल (मित्र वर्ग) लेना है। फिर दूसरा सर्कल लेना है। काम तो बहुत सारा होता है। ऐसा सेट कर देना है कि किसी जगह पर इतना यह रह गया है। किसी जगह इतना बाकी रह गया है। उनके प्रतिक्रमण करते रहना है। हाँ, नहीं तो मन को क्या काम देंगे? यह जो प्रतिक्रमण करते हैं वह संसार से संबंधित हेतु के लिए नहीं है। संसार से संबंधित हेतु के लिए तो व्यापारी हैं, वे फिर मन को चलाते हैं कि अगले साल ऐसा करेंगे, फिर वहाँ गोडाउन बनाएँगे, फिर वह करेंगे, उसमें दो-चार घंटे निकाल देते हैं।

'हमने' ऐसे किया निवारण विश्व से

चंदूभाई में जो-जो दोष हैं वे सब दिखाई देते हैं। यदि दोष नहीं दिखाई देंगे तो यह ज्ञान किस काम का? इसलिए कृपालुदेव ने क्या कहा था?

"हुँ तो दोष अनंतनुं, भाजन छुं करुणाळ,
दीठा नहीं निज दोष, तो तरीये कोण उपाय?"

यानी खुद के दोष दिखाई देते हैं। दोष हैं उसमें हर्ज नहीं है। किसी में पच्चीस होते हैं या किसी में सौ होते हैं, हममें दो होते हैं। उसकी कोई कीमत नहीं है। उपयोग ही रखना है। उपयोग रखा यानी दोष दिखता ही रहेगा। दूसरा कुछ करना नहीं है।

'चंदूभाई' से 'आपको' इतना कहना पड़ेगा कि प्रतिक्रमण करते रहो। आपके घर के सभी लोगों से आपको कुछ न कुछ पहले दुःख हुआ होगा, उसके आपको प्रतिक्रमण करने हैं। 'संख्यात या असंख्यात

जन्मों में जो राग-द्वेष, विषय, कषाय से दोष हुए हों, उसके लिए क्षमा माँगता हूँ।' इस तरह घर के एक-एक व्यक्ति का रोज़ाना प्रतिक्रमण करना है। फिर उपयोगपूर्वक आसपास के, अड़ोस-पड़ोस के सभी लोगों के लिए यह करते रहना चाहिए। आप करोगे उसके बाद यह बोझ हल्का हो जाएगा। यों ही हल्का नहीं होगा। हमने इस तरह पूरे जगत् के साथ निवारण किया था। पहले इस तरह निवारण किया था, तभी तो यह छुटकारा हुआ। जब तक आपके मन में हमारे लिए दोष है, तब तक हमें चैन नहीं पड़ने देगा! अत: जब हम इस तरह प्रतिक्रमण करते हैं, तब आपमें भी (दोष) मिट जाता है। यानी आलोचना मेरे रूबरू नहीं करनी है, लेकिन आप शुद्धात्मा हो उस वक्त आपके शुद्धात्मा के रूबरू चंदूभाई को आलोचना करनी है। चंदूभाई से कहना है, आलोचना कर लो। फिर प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान करवाओ। वह एक-एक घंटा करवाओ। घर के हर एक व्यक्ति का करवाओ। जिनके साथ आपसी संबंध हो, उनके भी करने पड़ते हैं।

ऋणानुबंधी हो वहीं गाढ़

निरंतर प्रतिक्रमण करके गाढ़ राग-द्वेष की चिपचिपाहट को धोकर पतली कर देनी चाहिए। अगर सामने वाला टेढ़ा है तो वह आपकी भूल है, आपने वह धोया नहीं है और अगर धोया भी है तो ठीक से पुरुषार्थ नहीं हुआ है। जब भी समय मिले, तब जो गाढ़ ऋणानुबंधी हों, उनके (प्रति राग-द्वेष को) धोते रहना चाहिए। ऐसे बहुत नहीं होते, पाँच या दस के साथ ही गाढ़ ऋणानुबंध होते हैं। उनका ही प्रतिक्रमण करना पड़ता है, उस गाढ़ेपन को ही धोते रहना है। कौन-कौन लेने-देने वाले हैं, उन्हें ढूँढ निकालना है। अगर नया खड़ा होगा तो तुरंत ही पता चल जाएगा लेकिन जो पुराने हैं उन्हें ढूँढ निकालना है। जो-जो नज़दीक के ऋणानुबंधी होते हैं, वहीं पर अधिक गाढ़ापन होता है। विकसित कहाँ हो जाता है? जहाँ गाढ़ापन हो वहीं विकसित होता है।

जब सब साफ हो जाएगा तब जाकर वाणी साफ (अच्छी) निकलेगी। नहीं तो वाणी अच्छी नहीं निकलती है। यह सब साफ ही...

हर बात में, जहाँ-जहाँ पहचान वाले हैं उन सब का जिलानुसार करना चाहिए। इलाके के अनुसार प्रतिक्रमण करना चाहिए, जैसे कि वकील है तो सारे वकीलों का, फिर जज यानी सभी जज आ जाते हैं।

अन्य बहुत सारे प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं। रास्ते में आते-जाते कुछ बातचीत करते वक्त कुछ हुआ हो तो उनका भी प्रतिक्रमण करना है। यह रास्ते चलते ठोकर लगी तो किसलिए ठोकर लगी? इन सब का सार (हिसाब) निकालो कि इस रास्ते चले इसलिए ठोकर लगी। यानी दोबारा नहीं लगे, लेकिन हमें फिर से उसे दोहराना नहीं है।

प्रतिक्रमण तो आप बहुत ही करना। जितने आपके सर्कल में यदि पचास-सौ व्यक्ति हों, जिन-जिनको आपने परेशान किया हो, तो जब खाली समय हो तब बैठकर उन सब के एक-एक घंटा, एक-एक को याद करके प्रतिक्रमण करना। जितनों को परेशान किया है, वह फिर धोना तो पड़ेगा न? फिर ज्ञान प्रकट होगा।

उसमें दोनों हैं

प्रश्नकर्ता : बचपन में एक लड़की के दस रुपये चुरा लिए और जिस लड़की को ज़रूरत थी उसके कंपास में चुपके से रख दिए थे, उसका भी प्रतिक्रमण हुआ।

दादाश्री : यह कैसा है? दिया वहाँ दान हुआ। उससे पुण्य बंधा और चोरी की उससे पाप बंधा। अब पुण्य किया तो सौ मिले और पाप किया उसके तीन सौ खोए। ऐसा है जगत्। हेरा-फेरी करने में भी नुकसान है।

जितने भी पहचान वाले हैं, उन सब का प्रतिक्रमण करना। फिर सब मुवक्किल, वकील और जज सभी का प्रतिक्रमण करना। फिर जिनके भी परिचय में आए, उन सब का प्रतिक्रमण करना। दोपहर को आराम करते वक्त प्रतिक्रमण करना शुरू करोगे तो नींद भी नहीं आएगी और ये प्रतिक्रमण भी होंगे और आराम भी हो जाएगा। मैं इस तरह कर लेता था लेकिन अब 'हमारा' सब पूरा हो चुका है।

साधु-साध्वियों का प्रतिक्रमण

फिर, 'इस जन्म, पिछले जन्म, पिछले संख्यात जन्म, पिछले असंख्यात जन्मों में, गत अनंत जन्मों में दादा भगवान की साक्षी में, दिगंबर धर्म की, साधु, आचार्य की जो-जो अशातना, विराधना की या करवाई हो तो उसके लिए क्षमा माँगता हूँ। किंचित्मात्र अपराध नहीं हो ऐसी शक्ति देना। इस तरह सब धर्म का प्रतिक्रमण लेना है।

इस तरह करना प्रतिक्रमण

अरे, उस वक्त अज्ञान दशा में हमारा अहंकार भारी था। 'फलाने ऐसे, फलाने वैसे' यानी तिरस्कार, तिरस्कार, तिरस्कार, तिरस्कार... और किसी की तारीफ भी करते थे। एक की तारीफ करते और एक का तिरस्कार करते थे। फिर जब 1958 में ज्ञान हुआ तब से 'ए.एम.पटेल' से कह दिया कि ये सब जो तिरस्कार किए हैं, धो डालो अब, साबुन लगाकर, इन सब को खोज-खोजकर हर एक का धो दिया है। इस तरफ के पड़ोसी, उस तरफ के पड़ोसी, इस तरफ के परिजन, मामा, चाचा, अरे! सभी के तिरस्कार हुए होते हैं! इन सब के (तिरस्कार) धो डाले।

प्रश्नकर्ता : वे मन से प्रतिक्रमण किए थे? सामने जाकर नहीं?

दादाश्री : मैंने अंबालाल पटेल से कहा कि यह आपने उल्टा किया है, वह सब मुझे दिखता है। अब तो जो भी सारा उल्टा किया है उसे धो डालो! इसलिए उन्होंने क्या करना शुरू कर दिया? कैसे धोने हैं? तब मैंने समझाया कि उसे याद करो। चंदूभाई को गालियाँ दी हैं और सारी ज़िंदगी डाँटा है, तिरस्कार किया है, उन सब का वर्णन करके और 'हे चंदूभाई के मन-वचन-काया के योग, भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म से भिन्न ऐसे प्रकट शुद्धात्मा भगवान! इन चंदूभाई की माफी माँग-माँग करता हूँ। यानी दादा भगवान की साक्षी में माफी माँगता हूँ। फिर कभी ऐसे दोष नहीं करूँगा।' इसलिए फिर आप ऐसा करोगे। फिर आपको सामने वाले के चेहरे पर बदलाव दिखेगा। उसका चेहरा बदला हुआ लगता है। आप यहाँ प्रतिक्रमण करते हो और वहाँ बदलाव होता है।

प्रश्नकर्ता : रूबरू में प्रतिक्रमण कर सकते हैं?

दादाश्री : रूबरू में कर सकते हैं। यदि रूबरू में करना है तो बहुत खानदानी व्यक्ति हो तभी करना है। नहीं तो उल्टा कहेगा, 'अब समझदार हुई न! मैं कहता था लेकिन नहीं माना, अब समझदार हुई!' छोड़ घन चक्कर, उल्टा अर्थ किया उसने? फिर डाँटता है बेचारी को। इसके बजाय मत करना। ये तो सब नासमझदार लोग। वह तो कोई ही खानदानी व्यक्ति होता है जो नर्म हो जाता है और यह तो कहेगा, 'अब होश आया? मैं कब से कह रहा था, मान नहीं रही थी।' वह क्या कहेगा वह भी मुझे पता होता है और आपको क्या हुआ है वह भी मुझे पता होता है। नाटक, ड्रामा! अतः ऐसा प्रतिक्रमण हम कर देते हैं।

बुद्धि वाले जगत् में

हमने कितना धोया तब जाकर बहीखाता खाली हुआ था। हम कितने ही काल से धोते हुए आ रहे हैं तब जाकर बहीखाता खाली हुआ। आपको तो मैंने रास्ता दिखाया है इसलिए जल्दी छूट जाओगे। हम तो कितने काल से खुद ही धोते आए थे।

आपको तो प्रतिक्रमण कर लेना है। यानी आप ज़िम्मेदारी में से छूट गए। मुझे शुरू-शुरू में सब लोग 'अटैक' करते थे न? लेकिन बाद में सब थक गए। यदि अपना विरोध होगा तो सामने वाले नहीं थकेंगे। यह जगत् किसी को भी मोक्ष जाने दे ऐसा नहीं है। ऐसी बुद्धि वाला जगत् है। इसमें सचेत होकर चले, समेटकर चले तो मोक्ष जाएगा।

यह प्रतिक्रमण करके तो देखो! फिर आपके घर के व्यक्तियों में सब में चेन्ज हो जाएगा, जादुई चेन्ज हो जाएगा। जादुई असर!

यहाँ मार खाकर पड़े रहना अच्छा और वहाँ मार खाकर भी पड़े रहना गलत है। जगह अच्छी-बुरी है, वह देख लेना चाहिए न?

प्रश्नकर्ता : आपने मुझे प्रतिक्रमण दिया था, जब यह पैर वैसा हो गया था न तब, लेकिन दो दिन तक उसका जादुई असर था, वह प्रतिक्रमण का।

दादाश्री : हमने आशीर्वाद भेजे थे।

प्रश्नकर्ता : उसका बहुत जादुई असर हुआ था, दो दिन में।

दादाश्री : जादुई असर है यह हमारा, यदि आज्ञानुसार प्रतिक्रमण करता है तो। भगवान नहीं कर सकते उतना काम यह कर सकता है।

अब नहीं पुसाती खुशामद

प्रश्नकर्ता : उसमें अच्छा अनुभव हुआ।

दादाश्री : हाँ, यानी वस्तुस्थिति में इतना आसान मार्ग है यह। सरल है। समभावी है। कोई परेशानी नहीं है। फिर मार्ग बताने वाले और कृपा उतारने वाले तो खुद क्या कहते हैं, 'मैं निमित्त हूँ'। सिर पर पगड़ी भी नहीं पहनते हैं। नहीं तो यों आखिर में सफेद पगड़ी डालकर घूमते रहते हैं, तब फिर हमें पगड़ी का बोझ। इसलिए ऐसा कहना चाहता हूँ कि अभी सब सरल है तो अब अपना काम पूरा कर लो। इतना सरल नहीं आएगा, इतना ज़्यादा सरल नहीं आएगा फिर कभी। ऐसा चान्स नहीं मिलेगा। अत: यह बहुत बड़ा चान्स मिला है तो इन खुशामदों को कम होने दो न! इन खुशामदों में मज़ा नहीं है। खुशामद करने वाले लोग तो मिल जाएँगे लेकिन उसमें आपका हित नहीं है। इसलिए खुशामद का शौक जाने दो अब। इस जन्म का अब आधा बचा है। यह पूरा भी कहाँ बचा है?

उनके शुद्धात्मा को नमस्कार करके

प्रश्नकर्ता : आपने जो सगे-संबंधियों का प्रतिक्रमण करने को कहा है तो उन लोगों के साथ..., यानी कि देखते ही रहना है या बोलना है कुछ?

दादाश्री : मन में बोलना है।

प्रश्नकर्ता : उनके प्रति राग किया हो तो वह भी दोष है, द्वेष किया हो वह भी दोष है, तो उसका प्रतिक्रमण करना है?

दादाश्री : सिर्फ राग-द्वेष नहीं, और भी बहुत सी चीज़ें बोलनी पड़ती है। इस जन्म में, संख्यात-असंख्यात जन्म में राग-द्वेष, अज्ञानता से जो दोष हुए हो 'उनका' आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान करता हूँ, ऐसा बोलना पड़ता है।

प्रश्नकर्ता : इस जन्म में, असंख्यात जन्मों में जो कुछ राग-द्वेष हुए हैं उन सब का?

दादाश्री : राग-द्वेष, अज्ञानता से जो-जो दोष हुए हों, अगर आक्षेप दिए हों, अहंकार भग्न किए हों, वह सब बोलना पड़ता है। यह सब बोल दिया यानी एक फाइल खत्म हुई, फिर दूसरी फाइल, जैसे डॉक्टर पेशन्ट (मरीज़) को निपटाते हैं न?

हमने तो गाँव वालों के साथ का भी साफ कर दिया। हमारे गाँव में मोहल्ले के हर एक को ढूँढकर साफ कर दिया। नासमझी से ही दोष बाँधे होते हैं। आपने बाँधे थे या नहीं बाँधे थे किसी दिन?

प्रश्नकर्ता : कई सारे।

खुद की पुड़िया घुसानी नहीं है

प्रश्नकर्ता : मैंने पुस्तक में पढ़ा है कि संख्यात-असंख्यात जन्मों के प्रतिक्रमण करते हैं तो साफ हो ही जाता है। पिछले जन्म में जो दोष हुए हैं उनका?

दादाश्री : कुछ पिछले हुए हों तो अंदाजा नहीं रहता। वह तो भीतर क्लेम (दावा) करता है। कुछ क्लेम लेकर आता है, कागज़ लेकर आता है तो समझ जाना है कि वह पहले का हिसाब है। अभी का इस जन्म का नहीं लग रहा है लेकिन पहले का लग रहा है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन क्लेम लेकर आए ही नहीं इसलिए हमें पहले से ही प्रतिक्रमण कर देना है ताकि तुरंत शुद्ध हो जाए और जल्दी ही अपने सारे प्रतिक्रमण हो जाए, तो ऐसे दोष कि जिसका क्लेम नहीं है उसका भी प्रतिक्रमण करना हो तो इस तरह बोलेंगे तो प्रतिक्रमण हो जाएगा?

दादाश्री : क्लेम हो तभी होते हैं। क्लेम नहीं हो उससे कुछ लेना-देना नहीं है। जिसका क्लेम हो उसका प्रतिक्रमण होता है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर जब तक एक-एक, एक-एक दोष क्लेम नहीं करता है तब तक छूट ही नहीं सकते हैं न? संख्यात-असंख्यात जन्मों से जो-जो दोष किए हैं उन सब के लिए सामूहिक प्रतिक्रमण करना है न?

दादाश्री : हाँ।

प्रश्नकर्ता : उसके लिए माफी माँगता हूँ, प्रतिक्रमण करता हूँ तो उसका प्रतिक्रमण कैसे करना है?

दादाश्री : वह तो उतना ही बोलने की ज़रूरत है। और कुछ बोलना नहीं है। दूसरा प्रतिक्रमण करने में खुद का हिसाब नहीं लगाना है। जैसा लिखा है वैसा ही करना है। बाकी तो कोई अटैक कर रहा हो तो उनका ही करना है। दूसरा कुछ नहीं। ज्ञान में कहा उतना एक साथ कर देना है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, अटैक जैसा बार-बार लगता हो तो प्रतिक्रमण शूट ऑन साइट तो करते हैं लेकिन...

दादाश्री : हम कहते हैं उतना ही करना है, ज़्यादा कुछ नहीं करना है।

प्रश्नकर्ता : नहीं, लेकिन बाकी जो खाली समय हो उसमें घंटों तक वही बोलते रहे तो चलेगा?

दादाश्री : हमने कहा है, उसी अनुसार करना है। जब खाली समय हो तब भी या इसी जन्म में किया हो उसका, संख्यात-असंख्यात जन्म में, सभी..., बाकी खुद का नया कुछ नहीं डालना है। घर की पुड़िया नहीं डाली जाती उसमें। आधा पॉइज़न हो जाएगा। और क्लेम लेकर आया उसके लिए ही। नया नहीं, नया नहीं बोलना है। जो है उस अनुसार करते रहना है। बुद्धि उल्टा चित्रित कर देती है। मार डालती है वह। ऐसा करेंगे तो क्या हर्ज है? ऐसा दिखाती है।

हमेशा राग कब उत्पन्न होता है? द्वेष में से उत्पन्न हुआ होता है

और फिर राग में से वापस द्वेष उत्पन्न होता है। इसलिए सब दोष ही हैं। जहाँ दोष होता है, वहाँ राग-द्वेष होते हैं, वह *चीकणी फाइल* कहलाती है!

इस पर कायम है सिद्धांत महावीर का

हम जिनके प्रतिक्रमण करते हैं, उन्हें हमारे लिए कुछ बुरा तो नहीं रहता, लेकिन फिर मान उत्पन्न होता है और प्रतिक्रमण किए इसलिए इस जन्म में ही चाहे कितना भी बैर हो तो भी छूट जाता है! यही एक उपाय है। प्रतिक्रमण पर ही भगवान महावीर का सारा सिद्धांत कायम है। आलोचना-प्रतिक्रमण व प्रत्याख्यान! जहाँ आलोचना-प्रतिक्रमण व प्रत्याख्यान नहीं है, वहाँ धर्म ही नहीं है। अब आलोचना-प्रतिक्रमण व प्रत्याख्यान जगत् के लोगों को याद नहीं रहते। आप शुद्धात्मा बन गए हो इसलिए आपको तुरंत याद आता है!

चुभे उसका प्रतिक्रमण

ऐसा है, जब तक सामने वाले का दोष खुद के मन में है तब तक चैन नहीं लेने देता। जब प्रतिक्रमण करते हैं तब वह मिट जाता है। राग-द्वेष वाली हर एक *चीकणी* 'फाइल' को उपयोग रखकर, प्रतिक्रमण करके साफ करना है। राग की फाइल के तो अचूक प्रतिक्रमण करने चाहिए।

आप गद्दे पर सोए हों और आपको कंकर चुभें तो वहाँ से आप निकालेंगे या नहीं निकालेंगे? ये प्रतिक्रमण तो जहाँ-जहाँ चुभता है वहीं पर करने हैं। आपको जहाँ चुभता है वहाँ से आप निकाल दो और उन्हें जहाँ चुभता है, वहाँ से वे निकाल दें! हर एक व्यक्ति के प्रतिक्रमण अलग-अलग होते हैं।

मान लो अभी कोई व्यक्ति किसी पर उपकार करता है फिर भी उसके साथ ऐसा हो जाता है कि उसी के घर पर अनाचार होता है तो वहाँ पर प्रतिक्रमण करने ही पड़ते हैं। प्रतिक्रमण तो जहाँ चुभे वहाँ सभी जगह करने पड़ते हैं, लेकिन हर एक के प्रतिक्रमण अलग-अलग होते हैं। क्योंकि वह खुद समझ गया है कि मेरे से गुनाह हुआ है

इसलिए चुभता है। जब तक उसका प्रतिक्रमण नहीं हो जाता तब तक चुभता रहता है, नहीं?

प्रश्नकर्ता : बहुत चुभ रहा था।

दादाश्री : यह तो हमने पहले भूल की है इसलिए चुभता है। भूल से ही बंधे हैं। बंधन राग का होता है, द्वेष का होता है, जिसका हो उसका प्रतिक्रमण करना है। सामने वाला नम्र और सरल हो तो मुँह पर माफी माँग लेनी है। नहीं तो अंदर ही माफी माँग सकते हैं तो भी हिसाब खत्म हो जाएगा।

दोनों प्रतिक्रमण करते हैं तब

किसी के भी लिए अतिक्रमण हुए हों तो सारे दिन उनके प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं, तभी खुद छूट पाता है। यदि दोनों ही आमने-सामने प्रतिक्रमण करते हैं तो जल्दी छूट पाते हैं। पाँच हज़ार बार आप प्रतिक्रमण करो और पाँच हज़ार बार सामने वाला प्रतिक्रमण करता है तो जल्दी बेड़ा पार हो जाता है। यदि सामने वाला नहीं करता है लेकिन आपको छूटना है तो दस हज़ार बार प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं।

प्रश्नकर्ता : जब ऐसा कुछ रह जाता है तो मन में बहुत होता रहता है कि यह रह गया।

दादाश्री : बाद में वह कलह नहीं रखना है। फिर किसी दिन एक साथ बैठकर प्रतिक्रमण कर देने हैं। जिन-जिन के करने हो, पहचान वालों के, जिसके साथ ज़्यादा अतिक्रमण होता है उसका नाम लेकर एक घंटा भी कर दिया तो सब खत्म हो जाएगा फिर। लेकिन ऐसा हमें बोझा नहीं रखना है।

प्रश्नकर्ता : सुबह में सामायकि में बैठते हैं तो उसका आधा-पोना घंटा तो प्रतिक्रमण करने में ही चला जाता है।

दादाश्री : उसका इतना बोझा नहीं रखना है। पंद्रह दिन बाद, महीने बाद करते हो या फिर बारह महीने बाद जब करो तब सब का एक साथ कर देना।

अतिक्रमण के अतिक्रमण

अतिक्रमण को बचाने के लिए बड़ा अतिक्रमण करता है, उसे बचाने के लिए उससे भी बड़ा अतिक्रमण करता है।

प्रश्नकर्ता : इसलिए गांठें बढ़ती ही जाती है।

दादाश्री : अरे, गांठें इतनी बढ़ जाती हैं कि वापस ठिकाना ही नहीं पड़ता। रात-दिन शोर-शराबा करवाती हैं। इसलिए फिर मनुष्य जन्म में गांठें नहीं सुलझ पातीं। अतः उनसे छूटने के लिए चार पैर में जाना पड़ता है।

प्रश्नकर्ता : यानी पहले अतिक्रमण बंद हो जाता है। अतिक्रमण थोड़े टाइम के लिए बंद हो जाता है, इतने में वहाँ जाकर भुगतकर वापस आ जाता है।

दादाश्री : नहीं। भुगतता है यानी वह सब धुल जाता है फिर। अतिक्रमण किए थे उसका वह प्रतिक्रमण करता है।

प्रश्नकर्ता : यानी चार पैर में दूसरे अतिक्रमण तो नहीं करता हैं लेकिन भुगतने जाता है।

दादाश्री : और कोई झंझट नहीं। बस, भुगतने के लिए ही भुगतता है। वह भुगतने के बाद वापस आता है। ऐसा कुछ नहीं है कि वहीं पर चिपका रहता है। यदि वह कहे कि मुझे अब यहीं पर डटे रहना है, तब भी चिपकने नहीं देंगे। हिसाब चूकता हो गया कि 'जाओ यहाँ से। चले जाओ'।

प्रश्नकर्ता : यदि अतिक्रमण बहुत किए हों तो पशुयोनि में ही जाता है?

दादाश्री : ज़्यादा अतिक्रमण का फल ही पशुयोनि और बहुत बड़े अतिक्रमण हो जाए, उससे भी बड़े तो फिर नर्कयोनि।

प्रश्नकर्ता : कई पशुओं को तो मनुष्यों से भी ज़्यादा अच्छी तरह रखते हैं।

दादाश्री : वह तो कोई पुण्यशाली होता है न, और फिर अतिक्रमण वाले भी पुण्यशाली होते हैं न।

प्रश्नकर्ता : यानी दोनों कर्म साथ में किए होते हैं, अतिक्रमण किया होता है और पुण्य भी किया होता है।

दादाश्री : अरे! अतिक्रमण तो किसी के हित के लिए करता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन आप कहते हैं न कि सामने वाले के हित के लिए किया हुए अतिक्रमण को गुनाह नहीं माना जाता।

दादाश्री : वह पुण्य बाँधता है, गायकवाड सरकार के घर बैल बनकर आता है।

ऋण के अनुपात में भुगतना

यह भ्रष्टाचार करते हैं वह सब पाशवता कहलाती है। वह सब भुगतने जानवर में जाना तो पड़ता है न?

प्रश्नकर्ता : अच्छा-बुरा चाहे जो भी है सब ऋण चुकाकर जाना है न?

दादाश्री : हाँ, ऋण तो सब चुकाना ही पड़ेगा न? आपको यह ज्ञान लेने के बाद ऋण नहीं बंधे ऐसा रास्ता आपके पास है ही। आप जितना शुद्धात्मा में रहोगे, उतना बिल्कुल ऋण नहीं बंधेगा। शुद्धात्मा में नहीं रहें और अतिक्रमण हो गया तो उसका प्रतिक्रमण करने से सब घुल जाता है। यानी हम जागृत रहेंगे तो! बाकी, यह ज्ञान लेने से पहले जो कर्म बंध चुके हैं उनमें से कुछ कर्म विलय हो गए हैं, खत्म हो गए हैं और जिन कर्मों का गट्ठा बन चुका है, जो जम चुके हैं, उन कर्मों को तो भुगतने जाना ही पड़ेगा लेकिन वह बहुत लंबा नहीं होगा।

प्रश्नकर्ता : आपके मिलने से पहले तो तरह-तरह के दोष किए थे, उनका क्या करना है?

दादाश्री : उन सब के लिए सामूहिक प्रतिक्रमण करना है। सामूहिक यानी इकट्ठा। रोज़ाना आधे घंटा करना है। यदि बचपन में किसी

लड़के को पत्थर मारा था तो उसका भी प्रतिक्रमण कर लेना। प्रतिक्रमण करने से *पुद्गल* शुद्ध हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : चाहे कितना भी बड़ा पाप हो जाए तो भी क्या वह प्रतिक्रमण से नष्ट हो जाता है?

दादाश्री : भयंकर पाप किया हो लेकिन यदि प्रतिक्रमण कर दिया तो पाप नष्ट हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : यदि किसी के हाथ से खून हो जाए तब भी दादा?

दादाश्री : हाँ, खून नहीं, दो खून करे, सारा गाँव जला दे तो भी।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह प्रतिक्रमण होना चाहिए?

दादाश्री : वह उत्तम (हृदय से पछतावे सहित) होना चाहिए। जैसा अतिक्रमण है, वैसा ही प्रतिक्रमण होना चाहिए।

अलग-अलग होता है वही सही

जब सारे दोष दिखाई देंगे तब प्रतिक्रमण होंगे और तब छूटेंगे। आपके जितने प्रतिक्रमण हो चुके उतना छुटकारा हो गया। जो बाकी रहें उनका प्रतिक्रमण करते ही रहना है।

प्रश्नकर्ता : हम सारे जगत् के जीवों की क्षमा माँग लें तो प्रतिक्रमण हो गया, कहा जाएगा न?

दादाश्री : प्रतिक्रमण तो कब हुआ कहा जाएगा? कि अलग-अलग करेंगे तब।

प्रश्नकर्ता : हमने ज्ञान लेने से पहले जो कर्म किए हैं, अब उनका बहीखाता निकालने बैठे हैं कि 'ऐसा किया है'। वे कब दिखेंगे?

दादाश्री : वे याद आए तो प्रतिक्रमण करना है। जितने याद आए उतने के प्रतिक्रमण करने हैं। नहीं तो फिर यहाँ पर हम सामायिक करवाते हैं। उस दिन बैठना है। तब पूरा एक्ज़ेक्ट करना है। उस दिन थोड़ा धुल जाएगा। ऐसा करते-करते सब धुल जाएगा।

'सॉफ्टवेर' प्रतिक्रमण का

यह अपूर्व बात है, पूर्व में सुनी ना हो, पढ़ी ना हो, जानी ना हो, वैसी बातें जानने के लिए यह मेहनत है।

हम यहाँ प्रतिक्रमण करवाने के लिए बैठाते हैं, उसके बाद क्या होता है? अंदर दो घंटे प्रतिक्रमण करवाते हैं न, कि बचपन से लेकर अभी तक में जो-जो दोष हुए हैं, उन सब का याद कर-करके प्रतिक्रमण कर डालो, सामने वाले के शुद्धात्मा को देखकर करना है। अब छोटी उम्र से जब से समझ शक्ति की शुरुआत होती है, तब से प्रतिक्रमण करने लगता है, तो अभी तक का प्रतिक्रमण करता है। ऐसा प्रतिक्रमण करता है उसके बड़े-बड़े दोष भी समा जाते हैं। बाद में फिर से प्रतिक्रमण करता है। तब फिर उससे भी छोटे-छोटे दोष भी आ जाते हैं। वापस फिर से प्रतिक्रमण करता है तो उससे भी छोटे-छोटे दोष आ जाते हैं, इस तरह उन दोषों को पूरी तरह खत्म कर देता है।

दो घंटे में ही ज़िंदगी के पिछले सारे दोषों को धो देना है। और फिर कभी भी ऐसे दोष नहीं करूँगा ऐसा निश्चय करना है। यानी प्रत्याख्यान हो गया।

यह आप प्रतिक्रमण करने बैठो न, तो एक तरफ अमृत की बूंदें गिरती रहती है और आप हल्के होते जाते हैं। भाई! तुझसे होते हैं, प्रतिक्रमण? (दोष) हल्के हुए ऐसा लगता है? आपके प्रतिक्रमण शुरू हो गए है न बहुत? बड़ी तेज़ी से चल रहे हैं? सब खोज-खोजकर प्रतिक्रमण करना है। जाँच करने लगना है। वह सब याद भी आता जाएगा। रास्ता भी दिखेगा। आठ साल की उम्र में किसी को लात मारी हो वह भी दिखेगा। वह रास्ता दिखेगा, लात भी दिखेगी। याद कैसे आया यह सब? यों याद करते हैं तो कुछ याद नहीं आता और प्रतिक्रमण करने बैठे कि तुरंत लिंकबद्ध (क्रमबद्ध) याद आ जाता है। एकाध बार भी सारी ज़िंदगी का किया था आपने?

प्रश्नकर्ता : किया था।

दादाश्री : फिर से करने को किसी ने मना किया है क्या?

प्रश्नकर्ता : नहीं, अभी फिर से करने लगे थे। एक दिन सब बैठे थे।

दादाश्री : यह तो घर पर भी करना हो तो भी आप कर सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : दादा! आज पहली बार सामायिक में बैठ पाया, बहुत आनंद आया।

दादाश्री : यानी सब के प्रतिक्रमण करना, घर वालों के तो रोज़ ही, फिर अपने नज़दीकी रिश्तेदारों के, जिन-जिन में रुकावट डाली हों पहले उन सब के प्रतिक्रमण करने हैं, याद आते हैं या नहीं आते?

प्रश्नकर्ता : आते हैं न! रोज़ सामायिक में बैठकर करते रहना है।

दादाश्री : प्रतिक्रमण करने से तुझे ऐसा भीतर विश्वास बैठ गया कि अब यह अनुभव अच्छा हुआ है?

प्रश्नकर्ता : दादा, पहले कैसा था कि प्रतिक्रमण करता था न, तो मुझे ऐसा ही लगता था कि मेरा दोष नहीं है और झूठ-मूठ का क्या प्रतिक्रमण करना है?

दादाश्री : नहीं, लेकिन अब?

प्रश्नकर्ता : अब समझ में आता है।

दादाश्री : आज आनंद हुआ?

प्रश्नकर्ता : हाँ, कहाँ भूल हो गई वह समझ में आता है, पहले तो वह समझ में ही नहीं आता था। अब थोड़े समय से समझ में आने लगा है।

दादाश्री : प्रतिक्रमण करने पर जब कभी मूल भूल समझ में आएगी न, तब बहुत आनंद होगा। यदि आनंद नहीं हुआ तो प्रतिक्रमण करना नहीं आया। अतिक्रमण करने पर यदि किसी को दुःख नहीं होता है तो वह इंसान, इंसान नहीं रहा।

प्रश्नकर्ता : मूल भूल कौन सी, दादा?

दादाश्री : पहले भूल ही नहीं दिखती थी न! अब दिखती है, वह स्थूल दिखती है। अभी तो आगे दिखेगी।

प्रश्नकर्ता : सूक्ष्म, सूक्ष्मतर...

दादाश्री : भूलें दिखती जाएँगी।

यह तो अजागृतता। ऊपर का देह दिखा। भीतर कैसे हैं वह कैसे मालूम पड़ेगा? वे दोनों बहनें बाहर से गोरी-चिट्टी हैं, भीतर कैसी हैं, वह कैसे मालूम हो? अतः भीतर का देखने पर मूल भूल समझ में आती है, समझ में आता है तुझे?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : यह गुड़िया जितना शरीर, चने जितनी नाक लेकिन यह देखो न कितनी समझ भरी हुई है!

प्रमाण, जीवंत प्रतिक्रमण का

अपने यहाँ दो-तीन घंटे प्रतिक्रमण करता है, तो दो-तीन घंटे तक तो दोष ही दिखाई देते हैं। इसे जीवंत प्रतिक्रमण कहते हैं। जब यह प्रतिक्रमण करने बैठे न, तब तो शुद्धात्मा ही हो जाता है। एक बार प्रतिक्रमण करने बैठे कि फिर तो प्रतिक्रमण होते ही रहते हैं न? आपको नहीं करने हों तो भी होते रहते हैं?

प्रश्नकर्ता : हाँ, फिर होते रहते हैं।

दादाश्री : मैंने कहा, 'बंद कर दो अब तो?'

प्रश्नकर्ता : तो चरखी चालू ही रहती है।

दादाश्री : कौन चलाता है वह? तब कहे, 'शुद्धात्मा' प्राप्त हुआ है, यह सब क्रिया प्रज्ञा की है। पहले 'अज्ञा' की क्रिया थी। यह तो, वे सब लोग शुद्धात्मा बोलते हैं वह 'अज्ञा' की क्रिया चालू है, प्रज्ञा की क्रिया उत्पन्न नहीं हुई है। क्या हुआ है? आपको 'अज्ञा' की क्रिया बंद हो गई है और प्रज्ञा की क्रिया चालू हो गई है। 'अज्ञा' की क्रिया

क्या करती है? अज्ञा वह निरंतर संसार बढ़ाती ही रहती है, रोज़-रोज़ नया-नया (संसार) खड़ा ही कर देती है।

'हार्डवेर' प्रतिक्रमण का

जब आप पूरी ज़िंदगी के प्रतिक्रमण करते हो, तब आप न मोक्ष में हो और न ही संसार में। ऐसे तो आप प्रतिक्रमण के समय पिछले दोषों का पूरा विवरण करते हो। मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार सब के फोन-वोन बंद होते हैं। अंतःकरण बंद होता है। उस समय सिर्फ प्रज्ञा ही काम करती है। आत्मा भी इसमें कुछ नहीं करता। दोष हुआ फिर ढक जाता है। फिर दूसरी लेयर (परत) आती है। इस तरह लेयर पर लेयर आती जाती है। फिर मृत्यु के समय अंतिम एक घंटे में इन सभी पक्का का सारांश (बहीखाता) आता है।

भूतकाल के सभी दोष वर्तमान में दिखाई दें, वह 'ज्ञानप्रकाश' है। वह मेमोरी (स्मृति) नहीं है।

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण से आत्मा पर इफेक्ट (असर) होता है क्या?

दादाश्री : आत्मा को तो कोई भी इफेक्ट स्पर्श ही करता। यदि इफेक्ट हो तो संज्ञी कहलाएगा। आत्मा है, वह हंड्रेड परसेन्ट डिसाइडेड है। जहाँ मेमोरी नहीं पहुँचती वहाँ आत्मा के प्रभाव से होता है। आत्मा अनंत शक्ति वाला है, उसकी प्रज्ञाशक्ति पाताल फोड़कर दिखाती है। इस प्रतिक्रमण से तो खुद को पता चलता है कि अब हल्का हो गया और बैर छूट जाते हैं, नियम से छूट ही जाते हैं। और प्रतिक्रमण करने के लिए वह व्यक्ति सामने न मिले तो भी हर्ज नहीं है। इसमें रूबरू हस्ताक्षर की ज़रूरत नहीं है। जैसे इस कोर्ट में रूबरू हस्ताक्षर की ज़रूरत है, ऐसी यहाँ ज़रूरत नहीं है क्योंकि ये गुनाह रूबरू नहीं हुए हैं। यह गुनाह तो लोगों की गैरहाज़िरी में हुए हैं। यों लोगों की हाज़िरी में हुए हैं, लेकिन रूबरू में हस्ताक्षर नहीं किए हैं। हस्ताक्षर अंदर के हैं, राग-द्वेष के हस्ताक्षर हैं।

किसी दिन अकेले बैठे हों और प्रतिक्रमण या ऐसा कुछ करते-

करते-करते भीतर थोड़ा आत्मा का अनुभव हो जाए। उसका स्वाद आ जाए, वह अनुभव कहलाता है।

दोष स्वीकार किया कि वह गया

आखिरकार किसी की भी भूल नहीं दिखती। पहले दिखाई देती है फिर प्रतिक्रमण करते हैं। फिर किसी की भी भूल नहीं दिखे, ऐसा यदि रात भर रहे और बहीखाते बंद हो जाएँ तो काम हो गया। आपको फिर उस दिन के लिए अगले जन्म की ज़िम्मेदारी का भय नहीं रहा। दूसरे दिन इस तरह बरताव करना चाहिए। और यह तो, ऐसा सर्व समाधानी ज्ञान है। इसमें कुछ बाकी नहीं रहता। दोष हो जाए और उसके प्रतिक्रमण करता है तो वह सब साफ कर देता है। प्रतिक्रमण यानी लिया हुआ वापस कर देना। प्रतिक्रमण किया यानी बहीखाते खत्म! यानी आपने दोष का स्वीकार किया। स्वीकार किया यानी यू आर नॉट रिस्पोन्सिबल। (आप ज़िम्मेदार नहीं हो।) यह तो विज्ञान कहलाता है। तुरंत ही फल देता है, कैश इन हैन्ड (नक़द)। धीरे-धीरे हो जाता है, वह तो। हमने जैसा कहा, वैसा तुरंत नहीं हो जाता लेकिन दोष का स्वीकार किया कि धुल जाता है। प्रतिक्रमण करते हैं इसलिए धुल जाता है।

तब होगा यथार्थ प्रतिक्रमण

जब घर के लोग निर्दोष दिखाई दें, तब समझना कि आपका प्रतिक्रमण सही है। वास्तव में निर्दोष ही हैं, पूरा जगत् निर्दोष ही है। आप अपने दोष से बंधे हो, उनके दोष से नहीं। आपके खुद के दोष से ही बंधे हो। अब, जब ऐसा समझ में आएगा तब कुछ हल आएगा!

दृष्टि निजदोष की ओर

किसी की भूल दिखने से संसार खड़ा होता है और खुद की भूल दिखने से मोक्ष होता है।

प्रश्नकर्ता : 'रिलेटिव' तो स्वाभाविक रूप से दोषित दिखाई देता है न?

दादाश्री : दोषित कब कहा जाएगा? जब उसका शुद्धात्मा ऐसा करता है तब। लेकिन शुद्धात्मा तो अकर्ता है। वह कुछ भी कर सके ऐसा नहीं है। यह तो 'डिस्चार्ज' हो रहा है, उसमें तू उसे दोषित मानता है। यदि दोष दिखाई दे तो उसका प्रतिक्रमण करना है। जब तक जगत् में कोई भी जीव दोषित दिखाई देता है, तब तक समझना कि अंदर शुद्धिकरण नहीं हुआ है, तब तक इन्द्रिय ज्ञान है।

प्रतीति में निर्दोष और वर्तन में?

'डिस्चार्ज' माल के आधार पर सामने वाला दोषित दिखता है लेकिन खुद के मन में नहीं रहना चाहिए, निर्दोष दिखना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : निश्चय में तो विश्वास है कि सारा जगत् निर्दोष है।

दादाश्री : वह तो प्रतीति में आया कहलाएगा। अनुभव में कितना आया? यह बात इतनी आसान नहीं है। वह तो, जब खटमल घेर लें, मच्छर घेर लें, साँप घेर लें, उस समय वे निर्दोष लगे, तब सही है। लेकिन आपको प्रतीति में रहना चाहिए कि निर्दोष है। आपको दोषित दिखते हैं, वह आपकी गलती है। उसका प्रतिक्रमण करना चाहिए। हमारी प्रतीति में भी निर्दोष हैं और हमारे वर्तन में भी निर्दोष हैं। तुझे तो अभी प्रतीति में भी नहीं आया कि निर्दोष है, तुझे तो दोषित लगते हैं। कोई कुछ करे तो बाद में उसका प्रतिक्रमण करते हो, यानी शुरुआत में तो दोषित लगता है। नहीं लगता?

प्रश्नकर्ता : बाद में प्रतिक्रमण करता है, उसे प्रतीति में रहा नहीं कहा जाएगा?

दादाश्री : लेकिन ऐसे तो शुरुआत में दोषित ही लगता है इसलिए प्रतिक्रमण करना पड़ता है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, बाद में प्रतिक्रमण करना पड़ता है।

दादाश्री : लेकिन जब दोषित लगता है तभी न? यानी कि निर्दोष तुझे अभी भी सेट नहीं हुआ है न?

प्रश्नकर्ता : जब निर्दोष की प्रतीति बैठी हो तब प्रतिक्रमण कर सकते हैं न?

दादाश्री : लेकिन दोषित लगता है, उसे देखते रहना है।

जागृति बढ़ने से अतिक्रमण घटता जाता है

प्रश्नकर्ता : जैसे-जैसे जागृति की अखंडता बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे प्रतिक्रमण कम होते जाते हैं।

दादाश्री : प्रतिक्रमण तो यदि भीतर दोष हुआ हो तभी करने हैं, अतिक्रमण हुआ हो तभी। जागृति बढ़ी हो उस दिन अतिक्रमण भारी हुआ होता है, ऐसा कोई नियम नहीं है।

प्रश्नकर्ता : शुद्ध उपयोग रहे, तो अतिक्रमण हो सकता है?

दादाश्री : हो सकता है। अतिक्रमण भी हो सकता है और प्रतिक्रमण भी हो सकता है।

उपयोग चूकने पर भी प्रतिक्रमण

हाथ में आने के बाद ऐसा उत्तम विज्ञान कौन छोड़ेगा? पहले तो पाँच मिनट भी उपयोग में नहीं रहा जाता था। एक गुणस्थानक सामायिक करनी हो तो बहुत कष्ट के बाद रह पाते थे और यह तो सहज ही, आप जहाँ जाओ वहाँ उपयोगपूर्वक रह सकते हो, ऐसा हो गया है!

प्रश्नकर्ता : वह समझ में आता है, दादा।

दादाश्री : अब ज़रा भूलों को रोको, यानी कि प्रतिक्रमण करो। आपको निश्चित करके निकलना है कि आज इतना करना है। शुद्ध उपयोग में रहना है। ऐसा निश्चित नहीं करेंगे तो फिर उपयोग चूक जाएँगे और अपना विज्ञान तो बहुत उत्तम है। और कोई झंझट ही नहीं।

आपको ऐसा लगेगा कि यह तो हम उपयोग चूककर उल्टे रास्ते चले हैं। यानी उपयोग चूके, उसका प्रतिक्रमण करना पड़ेगा। उल्टा रास्ता यानी वेस्ट ऑफ टाइम एन्ड एनर्जी (समय और शक्ति का

बिगाड़) होता है, फिर भी उसके प्रतिक्रमण नहीं करोगे तो चलेगा। उसमें इतना ज़्यादा नुकसान नहीं है। एक जन्म अभी बाकी है इसलिए लेट गो किया है (जाने दिया है) लेकिन जिसे उपयोग में अधिक रहना हो, उसे उपयोग चूके उसका प्रतिक्रमण करना होगा। प्रतिक्रमण यानी वापस लौटना। कभी वापस लौटा ही नहीं है न!

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण करने से आगे जाकर अच्छा प्रतिबिंब पड़ता है?

दादाश्री : वाकई में, सब क्लियर हो जाता है। दर्शन साफ हो जाता है व दर्शन बढ़ता है। बिना प्रतिक्रमण के कोई मोक्ष नहीं गया। प्रतिक्रमण करने से खुद के दोष कम हो जाते हैं और धीरे-धीरे खत्म हो जाते हैं।

औरंगाबाद का अनोखा वार्षिक प्रतिक्रमण

हम कहीं और ऐसी विधि नहीं करते। औरंगाबाद में हम ऐसी विधि करते हैं कि अनंत जन्मों के दोष धुल जाते हैं। एक घंटे की प्रतिक्रमण विधि में तो सभी का अहंकार भस्मीभूत हो जाता है! हम वहाँ औरंगाबाद में तो बारह महीनों में एक बार प्रतिक्रमण करवाते थे। तब दो सौ-तीन सौ लोगों का रोना-धोना चलता था लेकिन सभी रोग निकल जाते थे। क्योंकि पति अपनी पत्नी के पैर छूकर वहाँ पर माफी माँगता था, कितने ही जन्मों का बंधन है। जब उसके लिए माफी माँगता है, तब कितना कुछ साफ हो जाता है!

वहाँ हर साल, हमें बहुत बड़ी विधि करनी पड़ती है, सभी के मन शुद्ध करने के लिए, आत्मा (व्यवहार आत्मा) शुद्ध करने के लिए। बड़ी विधि करके और फिर रख देते हैं ताकि सब के मन साफ हो जाए उस घड़ी। कम्प्लीट क्लियर, खुद को भी पता नहीं रहता है कि मैं क्या लिख रहा हूँ, लेकिन सब स्पष्ट लिखकर लाते हैं। फिर 'क्लियर' हो जाता है। अभेदभाव उत्पन्न हुआ न, एक मिनट भी मुझे सौंपा दिया कि 'मैं ऐसा हूँ साहब', वह अभेदभाव हो गया। उतनी उसकी शक्ति बढ़ गई।

और फिर मैं तेरे दोषों को जानता हूँ और दोषों पर विधि करता रहता हूँ। यह कलियुग है। कलियुग में क्या-क्या दोष नहीं होते होंगे? किसी का दोष देखना, वही भूल है। कलियुग में किसी का दोष देखना, वही खुद की भूल है। किसी का दोष नहीं देखना है। कौन से गुण हैं, वह देखने की ज़रूरत है। क्या बचा है उसके पास? कितनी पूँजी बची है, वह देखने की ज़रूरत है। इस काल में पूँजी ही नहीं रहती न! जिनकी पूँजी बची है, वही महात्मा आगे हैं न!

धर्मबंधुओं के प्रति ही बैर

ज्ञानी पुरुष की आज्ञा से यह प्रतिक्रमण होता है तो अनंत जन्मों के पापों को जला देता है। यह प्रतिक्रमण तो कैसा प्रतिक्रमण है? सारे बैर छूट जाते हैं। क्योंकि सहाध्यायियों से ही ज़्यादा बैर बंधे हुए होते हैं। किसी भी दिन, वर्ल्ड (दुनिया) में औरों के प्रति बैर नहीं होता और सहाध्यायी तो हर वक्त याद रहा करते हैं।

प्रश्नकर्ता : सत्युग में भी सहाध्यायी के प्रति बैर बंधता था?

दादाश्री : नहीं, तब बैर नहीं बंधता था। वह समझ ही ऊँची थी सब की और वह सब *चीकणा* (गाढ़) प्रेम!

प्रश्नकर्ता : सहाध्यायी से बैर बाँधने का कारण क्या?

दादाश्री : नासमझी। सत्युग में ऐसा-वैसा नहीं होता। चोर वह चोर, जो लुच्चा वह लुच्चा और साहूकार वह साहूकार। यह दुनिया कभी चोर रहित रही ही नहीं है। लेकिन सत्युग में उनकी बस्ती कम रहती थी।

जो अपने साथ हो, पहले भी थे और आज भी हैं, वे अपने धर्मबंधु कहलाते हैं और खुद के धर्मबंधुओं से ही जन्मों जन्म के बैर बंधे होते हैं। यदि उनके साथ कुछ बैर बंधा हुआ होगा तो, उसके लिए आप आमने-सामने प्रतिक्रमण कर लो तो हिसाब सब खत्म हो जाएगा। एक भी व्यक्ति का आमने-सामने प्रतिक्रमण करना चूकना मत। सहाध्यायियों से ही ज़्यादा बैर बंधता है और उनके प्रत्यक्ष

प्रतिक्रमण करने से वह धुल जाएगा। औरंगाबाद में जो प्रतिक्रमण करवाते हैं, ऐसे प्रतिक्रमण तो वर्ल्ड में कहीं भी नहीं होते।

अश्रुधारा सहित पैरों पड़ते

प्रश्नकर्ता : वहाँ सब रो रहे थे न! बड़े-बड़े सेठ भी रो रहे थे।

दादाश्री : हाँ, औरंगाबाद का देखो न! सब कितना रो रहे थे! अब ऐसा प्रतिक्रमण पूरी ज़िंदगी में एक बार भी किया हो तो बहुत हो गया।

प्रश्नकर्ता : बड़े लोगों को रोने की जगह है ही कहाँ? ऐसे कहीं पर ही होती है!

दादाश्री : हाँ, सच है। वहाँ तो सभी बहुत रोए थे।

प्रश्नकर्ता : मैंने तो पहली ही बार ऐसा देखा कि ऐसे सब लोग, समाज में जो प्रतिष्ठित कहे जाते हैं ऐसे व्यक्ति वहाँ खुले आम रो रहे थे!

दादाश्री : खुले आम रो रहे थे और पत्नी के पैरों में पड़कर माफी माँग रहे थे। औरंगाबाद में आप आए होंगे न, वहाँ ऐसा नहीं देखा था?

प्रश्नकर्ता : हाँ, और कहीं भी ऐसा दृश्य देखा नहीं था!

दादाश्री : हो ही नहीं सकता न! और ऐसा अक्रम विज्ञान नहीं हो सकता, ऐसा प्रतिक्रमण नहीं हो सकता, ऐसा कुछ भी है ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : ऐसे 'दादाजी' भी नहीं हो सकते!

दादाश्री : हाँ, ऐसे 'दादाजी' भी नहीं हो सकते।

दुनिया का सब से बड़ा आश्चर्य औरंगाबाद में

औरंगाबाद में हम साल में एक बार समुह में ऐसा प्रतिक्रमण करवाते हैं, वह तो आश्चर्य ही कहलाएगा न! यह अपना प्रतिक्रमण हुआ, वह तो दुनिया का सब से बड़ा आश्चर्य है!

इससे तो बहुत शक्ति बढ़ती है। यह तो निरा शक्ति का ही कारखाना है। उस समय हम इतनी बड़ी विधि करके रखते हैं कि व्यक्ति में निरी शक्तियाँ ही उत्पन्न होती हैं। वर्ना ये वकील क्या ऐसे-वैसे इंसान हैं? कहेंगे, 'मर जाऊँगा लेकिन किसी के पैर नहीं छूऊँगा'। वह शूरवीर (!) इंसान है। लेकिन एक बार उनमें वह शक्ति उत्पन्न हुई थी। जब औरंगाबाद में प्रतिक्रमण करवाया था तब अच्छी शक्ति उत्पन्न हुई थी और वे समझ गए कि इससे मुझे लाभ है। शक्ति उत्पन्न होती है, ज़बरदस्त! सारी निर्बलता चली जाती है।

आलोचना, आप्तपुरुष के समक्ष ही

प्रश्नकर्ता : आपके पास ऐसे लोग आते हैं कि जो खुद के पिछले दोष हुए हों उनकी आपके समक्ष आलोचना करते हैं, तो आप उन्हें छुड़वाते हैं?

दादाश्री : यदि मेरे पास आलोचना करता है तो मेरे साथ अभेद हो गया, ऐसा कहा जाएगा। हमें तो छुड़वाना ही पड़ेगा। आलोचना करने का अन्य कोई स्थान ही नहीं है। यदि औरत को यह सब बताने जाए तो औरत चढ़ बैठती है, मित्रों को बताने जाए तो मित्र चढ़ बैठते हैं। खुद अपनी जात (अपने आपसे) को बताने जाए तो बल्कि जात चढ़ बैठती है। यानी कि किसी को भी नहीं बता सकता और हल्का हो नहीं पाता।

इसलिए हमने आलोचना का सिस्टम (पद्धति) रखा है।

प्रश्नकर्ता : इस जन्म में हमने जो दोष किए हों, क्या उनके लिए ज्ञानी पुरुष के समक्ष माफी माँग सकते हैं?

दादाश्री : हाँ, बाद में वे दोष हल्के हो जाते हैं। ज्ञानी पुरुष के समक्ष (आलोचना) की जाए और वह भी आप अपने मुँह से बताओ तो उत्तम। यदि बोलकर नहीं बता सकते तो कागज़ पर लिखकर दो, वह सेकन्डरी। और मन ही मन करता रहे, वह थर्ड स्टेज का। यानी जिस 'स्टैन्डर्ड' में बैठना हो, उस 'स्टैन्डर्ड' में बैठना। सेकन्ड में बैठना हो या फर्स्ट में बैठना हो, वह आपकी मर्ज़ी है।

प्रश्नकर्ता : क्या यह पॉसिबल (संभव) है?

दादाश्री : हाँ, 'पॉसिबल', यह तो बहुत, सब से बड़ा पॉसिबल। इन सब प्रश्नों में सब से बड़ा प्रश्न यह है।

'हमें रूबरू में कहे, सब की हाज़िरी में कहे', वह ऑर्केस्ट्रा क्लास। फिर यदि आप कहो कि 'नहीं, मैं अकेला होऊँगा तब कहूँगा', वह फर्स्ट क्लास और अगर आप कहो कि 'बोलूँगा नहीं, कागज़ पर लिखकर दूँगा', तो सेकन्ड क्लास और आप कहो 'कागज़ में भी नहीं दूँगा, मैं मन में वहीं के वहीं घर पर कर लूँगा', वह थर्ड क्लास। जिस क्लास में बैठना हो उसकी छूट है। यहाँ पर पैसे-वैसे नहीं है।

प्रश्नकर्ता : यह तो, वह संभव है या नहीं, इतना ही पूछना था।

दादाश्री : हंड्रेड परसेन्ट (शत प्रतिशत) संभव है।

प्रत्यक्ष ज्ञानी के पास प्रत्यक्ष आलोचना

खुद की कोई निजी बात कहनी हो तो लोग क्यों नहीं कहते? क्योंकि वह बार-बार धमकाता ही रहता है। लगाम हाथ में आ गई न, तो धमकाएगा या नहीं? जबकि हम यह धमकाने के लिए नहीं करते हैं। हम उसे छुड़वाना चाहते हैं कि मैं तेरा हर एक गुनाह माफ कर दूँगा। ये 'दादा भगवान' प्रकट हुए हैं!!! जगत् में सब से बड़ा वाक्य ही इतना है। वास्तव में इतना ही समझना है कि मेरे पास आलोचना करेंगे तो कर्म भस्मीभूत हो जाएँगे। क्रमिक मार्ग वह अलग चीज़ है और यह अभेदधर्म है, भेद ही नहीं, जुदापन ही नहीं।

एक दिन मैंने इन सब से प्रतिक्रमण करने को कहा। सभी को आलोचना के लिए, जो-जो दोष हुए हैं वे सब लिखकर लाने को कहा। ऐसे तो रोज़ सब प्रतिक्रमण करते ही रहते हैं। लेकिन आलोचना यानी मेरे पास खुला करो, ऐसा कहा एक दिन। आपके जो-जो दोष हैं वे सब मेरे पास खुले करो। तो वे हमारे पास कैसी आलोचना करते हैं? कभी भी न हुई हो, ऐसी आलोचना करते हैं। यानी उनकी गलत

में गलत चीज़ें सब खुला कर देते हैं लेकिन ऑन पेपर, दूसरे दर्जे की। मुँह पर नहीं कहते हैं। यानी ऑन पेपर कहते हैं तो भी बहुत हो गया। पेपर में लिखकर देते हैं, वह भी नीचे हस्ताक्षर करके और औरतें भी हस्ताक्षर करके पढ़ने के लिए देती हैं। सारे दोष दिखाई देते हैं उन्हें। अतः सभी खुद के जितने दोष हुए थे, वे सारे दोष लिखकर लाए थे। एक भी दोष बाकी नहीं रखा था।

ऐसा कब होता है जानते हैं? जब अभेदता होगी तब। ऐसी हिम्मत कब आएगी? जब अभेदता होगी तब। स्त्रियों ने भी कहा कि कहीं पर मुझसे ऐसा हुआ था और कहीं पर ऐसा हुआ था। नाम सहित लिखकर दिया था। चाहे जो दोष हो जाए उसमें हर्ज नहीं है। सारे दोष मैं खत्म करने को तैयार हूँ। आपके लाखों दोषों को एक घंटे में खत्म करने को तैयार हूँ लेकिन आपकी तैयारी चाहिए। निर्दोष को दोष छूएगा कैसे?

मेरे पास दस हज़ार व्यक्तियों ने कमज़ोरी खुली की होंगी। और कमज़ोरी निकालने के लिए तो आप मेरे पास आए हो। मैं वह कमज़ोरी किसी और को कह ही नहीं सकता। आपकी कमज़ोरी आपके भाई को भी मैं नहीं कह सकता। आपकी वाइफ को भी नहीं कह सकता। आप किसी को भी नहीं कह सकते, ऐसी आपकी कमज़ोरी हमें कहते हो और इतने प्रकार की कमज़ोरियाँ कहते हो कि सारे जीवन की छोटी सी छोटी कमज़ोरी से लेकर बड़ी, सभी कमज़ोरियाँ हमें कहते हो। उसे आलोचना कहते हैं। लोग सब धो डालते हैं। लेकिन हम जानते हैं न कि जगत् ऐसा ही है। कलियुग में कैसा होगा?

प्रश्नकर्ता : ऐसा ही होता है।

दादाश्री : ऐसा होता है, वह तो हम जानते हैं और उसकी तो हमें करुणा होती है कि अरेरे! यह क्या दशा है! हम धो देते हैं और हम में कोई दोष नहीं थे ऐसा हम थोड़े ही कहते हैं? हम भी कलियुग में ही जन्मे हैं न! कुछ न कुछ दोष तो होते ही हैं! किसी के ज़्यादा होते हैं तो किसी के कम होते हैं।

आलोचना, संपूर्ण गुप्त

यदि किसी की आलोचना किसी दूसरे को पढ़ने दें तो वह व्यक्ति आत्महत्या कर देगा। अतः वही कागज़ हम उसे विधि करके दे देते हैं। उसके दोष खत्म करके फिर उसे ही वापस दे देते हैं। क्योंकि आपके दोष मैं किसी और को कहूँ तो आप आत्महत्या कर दोगे। किसी को कह नहीं सकते ऐसे सारे दोष होते हैं। ये पेपर में आते हैं ऐसे नहीं! कभी सुने नहीं हो, कभी विचार तक नहीं आया हो, ऐसे दोष होते हैं। प्राइवेट (निजी) दोष कहे जाते हैं न, ऐसे प्राइवेट दोष!

प्रश्नकर्ता : लेकिन ज्ञानी के चरण में आने के बाद आत्महत्या क्यों करेगा?

दादाश्री : जब तक हमारे दोष ज्ञानी जानते हैं, तब तक सब ठीक है, लेकिन दूसरा कोई उन दोष के बारे में जान जाएगा तो व्यवहार में परेशानी हो जाएगी इसलिए हम ऐसा नहीं करते। ऐसा किसी को जानने नहीं देते हैं। कितना खुले हृदय से वह अपना ओपन करता है! बाद में उसी का कागज़ उसे वापस क्यों दे देता हूँ? क्योंकि तब मैं उसे ऐसा कहता हूँ कि, 'इसे गुप्त रखना और महीने भर इसे पढ़ते रहना और पछतावा करते रहना। फिर उस पर आँसू बहाना, रोना और बाद में कागज़ जला देना। महीने तक उसे पढ़कर पश्चाताप करना। जड़ मैंने उड़ा (नष्ट कर) दिया है। अब तुझे ऊपर का भाग साफ करना बाकी रहा। उतना तू करना'।

जहाँ प्योर हार्ट, वहीं पर एकता

एकता आ गई वह 'हार्ट की प्योरिटी' (हृदय की शुद्धता) कहलाती है। मेरी सब से एकता हो जाती है क्योंकि हार्ट 'प्योर' ही है न! मुझे तो अभेद ही लगते हैं सब। खुद का जो ऐफिडेविट (गुनाह की कबूलात) लिखते हैं, उसमें एक भी दोष लिखना बाकी नहीं रखते हैं। पंद्रह साल की उम्र से लेकर चालीस साल की उम्र तक के सारे दोष, एक भी बाकी नहीं रखते, मुझे सब बता देते हैं। ये लड़के-लड़कियाँ सभी बता देते हैं, उसका क्या कारण?

प्रश्नकर्ता : वह प्योरिटी है।

दादाश्री : वह प्योरिटी है। वह ज़ाहिर कर देता है, उसके बाद मैं उसे देखकर विधि कर देता हूँ और कागज़ उसे वापस देता हूँ।

तीर्थंकरों ने क्या कहा है? आलोचना-प्रतिक्रमण व प्रत्याख्यान। हमारे यहाँ आलोचना हो गई यानी हो गया। बाद में आगे कोई *ऊपरी* (बॉस) है ही नहीं कि जो मंजूर कर सके। यहाँ आखिरी ही मंजूरी है। वह मंजूर हो जाने बाद तू अपने आप प्रतिक्रमण कर और प्रत्याख्यान भाव रख कि फिर से ऐसा नहीं करना है।

विविध आलोचनाएँ

अतः सभी लड़कियाँ भी माफी माँग लेती हैं। सबकुछ याद करके कि पंद्रह साल की उम्र में ऐसा गुनाह किया था, बीस साल की उम्र में ऐसा किया था, ऐसे गुनाह किए थे, उन सारे गुनाहों को यहाँ पर याद करके माफी माँग लेती हैं और मुझसे कहती हैं कि, 'आज माफी माँग रही हूँ इसलिए माफ कर देना'।

फिर बाद में रहा ही क्या, वह आप जानते हैं? हमने यह पेचीली गांठ बाँधी हो न, और यदि वह अगले जन्म में खोलेंगे न, तो बहुत परेशानी होगी लेकिन यदि उसे अभी यहीं जला देंगे तो फिर जली हुई पेचीली गांठ रहेगी, उसे तो सिर्फ छूने से झड़ जाएगी। फिर अगले जन्म में इतना ही करना रहा, बस!

यह आसान मार्ग है या गलत है? सबकुछ धो देते हैं। एक बहन आकर मुझसे कहने लगी, 'दादाजी, मैंने तो एक बहन से बैर बाँधा है!' मैंने कहा, 'बैर क्यों बाँधा? कैसा बैर बाँधा?' तो वह कहने लगी, 'अगले जन्म में साँपिन बनकर उसे डसूँगी! ऐसा बैर बाँधा है!' मैंने कहा, 'बैर मत बाँधना।' तब उसने कहा कि, 'मैंने तो ऐसा बैर बाँध लिया है तो अब मुझे क्या करना चाहिए?' तब फिर मैंने उसे (दोष से) छुड़वाया। लेकिन उसने अगले जन्म के लिए कैसा बैर बाँधा?

प्रश्नकर्ता : साँपिन होकर डसूँगी!

दादाश्री : मैंने कहा, 'बहन, इतना बड़ा जोखिम क्यों मोल लिया?' तब उसने कहा, 'जब मेरी शादी हुई तब मेरे पति से उसकी दोस्ती थी। वह मेरे पति को छोड़ती ही नहीं थी इसलिए मैंने उसी दिन तय कर लिया कि अब अगले जन्म मैं तुझे नहीं छोड़ूँगी। अगले जन्म में साँपिन होकर भी तुझे डसूँगी।' फिर मैंने पूछा, 'अब तुझे बैर है?' तब उसने कहा, 'नहीं, दादा अब मुझे इस बैर में से छूटना है।' तब मैंने कहा कि 'मैं तुझे इसमें से छुड़वा दूँगा।' उसके पति को नहीं बुलाया, उनकी गैरहाज़िरी में उस बहन को समझाया। यदि पति को बुलाते तब तो फिर परेशानियाँ बढ़ जातीं।

यहाँ सिर पर लगा हो न, तो भी बेहोश हो जाता है। अरे! इतनी शीशी पी जाए तो भी बेहोश हो जाता है। यानी बेहोश हो जाते हो उसमें कोई गुनाह नहीं है। इसलिए ऐसी बेहोशी आ जाए तो घबराना नहीं। लेकिन जो दोष हो जाए न, उसकी दादा के समक्ष आलोचना कर देनी है कि 'दादा, मुझे माफ करो।' तब हम उसे विधि कर देते हैं। 'जो दोष थे उन्हें सेंक दिया और सेंक दिया इसलिए वे उगने (अंकुरित होने) लायक नहीं रहे। अब, फिर से फल नहीं देंगे। वे सब निष्फल हो गए।'

आलोचना पात्र कृत्य

हमने यह जो जागृति दी हुई है, वही जागृति है, अन्य कोई जागृति है ही नहीं। यदि उस जागृति पर आवरण नहीं आए होते तो आज बहुत **ऊँची** दशा होती। हम ज्ञान देते हैं, उस दिन बहुत ऊँची जागृति होती है। वह वास्तविक जागृति है।

प्रश्नकर्ता : हम सब दादा के समक्ष 'कन्फेशन' (कबूलात) नहीं करते, दादा को कुछ नहीं कहते, आकर चुपचाप बैठे रहते हैं। खुद के दोषों का कुछ वर्णन नहीं करते हैं...

दादाश्री : यहाँ पर दोषों का वर्णन नहीं करते, उसमें कोई हर्ज़ नहीं है लेकिन भीतर जो दादा बैठे हैं उनसे तो वर्णन करते हो न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह तो करता हूँ लेकिन जागृति तो बढ़नी चाहिए न? नहीं तो जागृति बढ़ाने के लिए हम सारे दोष दादा को बताते रहें?

दादाश्री : सारे दोष मुझसे नहीं कहने हैं। सारे दोष मुझसे कहोगे तो कब अंत आएगा?

जिन्हें दोषों में से निकलना हैं, उन्हें मेरे पास आकर आलोचना करनी चाहिए। जिससे बहुत बड़ा दोष हुआ हो और उस दोष में से निकालना हो, तो मेरे पास आकर आलोचना करेगा तो आलोचना करते ही वह दोष बंद हो जाएगा। उसका मन मेरे पास बंध जाता है। फिर उसे वह कैसे छुड़वा पाएगा? फिर हम भगवान की कृपा उतारते हैं लेकिन उसका मन हमारे पास बंध जाना चाहिए। मैं कहाँ यह सब माथापच्ची करने जाऊँ? इसलिए यदि अपने आप आएगा और कहेगा तो मैं इलाज करूँगा। मैं कहाँ घर-घर सब को पूछने जाऊँ?

जितना फायदा हुआ, उतना तो लाभ मिला। बाकी, उसका अंत नहीं आ सकता। जिसे बहुत जागृति होगी और साफ करने की इच्छा होगी तो वह मेरे पास आएगा और मुझे अकेले में आकर बताएगा कि, 'मुझसे ऐसा दोष हो गया है', तो वह दोष बंद हो जाएगा। आलोचना करने से दोष हमेशा के लिए बंद हो जाता है। दोष बंद हो जाता है इसका मतलब वह दोष आपको बहुत नहीं चिपकता है।

जगत् स्वीकार करे उतने ही दोष सब के बीच में मुझे बताना, बाकी के सभी दोष अकेले में ही कहना। हमारे पास व्यक्तिगत कई लोगों ने दोष खुले किए होते हैं, लेकिन वे सब प्राइवेट होते हैं। दोष को ओपन करने से तो लोग दुरुपयोग करते हैं। सिर्फ ज्ञानी पुरुष ही उसका दुरुपयोग नहीं करते। बाकी, अन्य सभी लोग तो जान जाते हैं, तभी से दुरुपयोग करने लगते हैं। यह लाइन में बैठकर खाता है, वहाँ ज़्यादा सब्ज़ी खा जाता है, ज़्यादा लड्डू खा जाता है लेकिन लाइन में बैठकर खाता है न! तो उसमें ऐसा नहीं कहा जाएगा कि दोष को छिपाया। छिपे हुए दोष तो वे हैं जो लोग अकेले में करते हैं, दरवाज़े

बंद करके करते हैं। अंधेरा ढूँढते हैं, वे सब छिपे हुए दोष कहलाते हैं! आप ऐसा अंधेरा नहीं ढूँढते हो न? उसे छिपा हुआ काम कहते हैं। अब छिपाकर करने वाले काम यदि खुले आम करोगे तो लोग बहुत तिरस्कार करेंगे। लोगों तिरस्कार करे, ऐसी बात यहाँ नहीं करनी है। यदि ज़ाहिर में करने जैसी बातें हों, वे सब यहाँ कर सकते हैं, जैसे कि 'मुझसे परसों चोरी हो गई और ऐसा हो गया, मुझसे झूठ बोल ही दिया गया, मैंने किसी को धोखा दे दिया', ऐसा सब कह सकते हैं लेकिन कुछ तो मुझे अकेले में ही कहना है। छिपा हुआ (काम) तुझे समझ में नहीं आया? ज्ञान मिलने से पहले जो छिपा रहता था, उसे तो तू पहचानता है न? उसी तरह जो ज्ञान मिलने के बाद छिपा रहता है क्या उसे तू नहीं पहचानता? कुछ छिपाने लायक न हो तो हर्ज नहीं है।

प्रश्नकर्ता : दादा, वे मेरी दृष्टि में आ गए हैं।

दादाश्री : दृष्टि में आ गए हैं यानी तू दोषों को जान गया है लेकिन वे छिपे हुए ही कहलाएँगे न! उन्हें आपने जमा तो किया न?

किसी व्यक्ति को यदि सब्ज़ी ज़्यादा अच्छी लगती है और वह ज़्यादा सब्ज़ी खा ले तो लोग चिल्लाते हैं कि बहुत सब्ज़ी खाता है। तब वह कहता है कि, 'मुझे खाना है। तू कहने वाला कौन?' यानी जगत् में छिपाकर रखने जैसा क्या है? कि जब वह बताता है तब जगत् के लोग चिल्लाते हैं कि, 'ऐसा किया? ऐसे काम करता है?' यह तो निंदनीय काम है, लोकनिंद्य है। दिन दहाड़े यदि आप यहाँ रास्ते पर दाढ़ी बनवाने जाओगे तब क्या कोई डाँटेगा? यदि आप कहोगे कि मुझे यहाँ उजाले में रास्ते पर दाढ़ी बनानी है। तो क्या हम मना करेंगे? कोई कहे कि मुझे संडास में बैठे-बैठे दाढ़ी बनानी है। तब हम कहेंगे कि, 'करो भाई। वह सारी छूट है'। वे सब छिपाए रखने योग्य काम नहीं हैं।

यथार्थ आलोचना

मनुष्य ने यथार्थ आलोचना की ही नहीं है। वही मोक्ष जाने में रोकती है। गुनाह हो जाए तो हर्ज नहीं है। यथार्थ आलोचना हो जाए

तो कोई हर्ज नहीं है। आलोचना ग़ज़ब के विचक्षण पुरुष के समक्ष ही करनी चाहिए। क्या खुद के दोषों की किसी जगह पर आलोचना की है ज़िंदगी में? किसके समक्ष आलोचना करे? और आलोचना किए बगैर चारा नहीं है। जब तक आलोचना नहीं करोगे तब तक इसे माफ कौन करवाएगा? ज्ञानी पुरुष चाहे सो कर सकते हैं, इसलिए क्योंकि वे कर्ता नहीं हैं। यदि कर्ता होते तो उन्हें भी कर्म बंधता, लेकिन कर्ता नहीं हैं इसलिए चाहे सो कर सकते हैं।

अंतिम गुरु, 'दादा भगवान'

वहाँ आपको गुरु के समक्ष आलोचना करनी चाहिए। लेकिन अंतिम गुरु यह 'दादा भगवान' हैं। हमने तो आपको रास्ता बता दिया है। अब अंतिम गुरु बता दिए हैं। वे आपको जवाब देते रहेंगे इसीलिए तो वे 'दादा भगवान' हैं। तो जब तक वे आपमें प्रकट नहीं हो जाते, तब तक 'इन' दादा भगवान को भजना पड़ेगा। उनके प्रकट होने के बाद में आते-अंति फिर अपने आप ही वह मशीन शुरू हो जाएगी। फिर वह खुद 'दादा भगवान' बन जाएगा।

जो हमारे पास ढकता है, वह खत्म

ज्ञानी पुरुष के समक्ष ढका यानी खत्म हो गया। लोग खोल कर बताने के लिए तो प्रतिक्रमण करते हैं। वह भाई सब लेकर आया था न? ज्ञानी के समक्ष तो बल्कि खोल कर बता देना चाहिए, अब यदि वहीं पर कोई ढकेगा तो क्या होगा? ढकने से दोष डबल हो जाता है।

ऐफिडेविट की तरह ही

मेरे पास स्त्री और पुरुष ऐफिडेविट करवाते हैं न, जैसे वहाँ पोप (पादरी) के समक्ष खुद के गुनाह... कि भाई, आपके गुनाह हमें कहो। लेकिन वहाँ अंधेरा करते हैं, ताकि चेहरा दिखाई न दे। क्योंकि वह गुनहगार सहन नहीं कर सकेगा। यदि सामने कोई दिखाई दे तो खुद का गुनाह कबूल करने की शक्ति नहीं है लोगों में।

जबकि मेरे पास तो कईं स्त्री व पुरुष, सोलह साल की उम्र से

लेकर अब तक के सारे दोष बता देते हैं। इतना बड़ा ऐफिडेविट कभी नहीं हुआ था। उसे आलोचना कहते हैं। सारा तख्ता दिखा देते हैं तो मैं देख लेता हूँ और फिर आशीर्वाद देता हूँ। तो उसका सब खत्म हो जाता है। उसके अंदर से रस-कस खत्म हो जाता है। जैसे रस्सी हो और उसमें बार-बार गांठें डाली हो और यदि उस रस्सी को जला दें और गांठें रहेंगी, वे गांठें कुछ नुकसान करेंगी क्या? नहीं। इस तरह मैं रस्सी जला देता हूँ। बाद में गांठें तो रहती ही है लेकिन उन्हें ऐसे-ऐसे आपको करना पड़ेगा। फिर झड़ जाएगा सब!

आलोचना पत्र

हमारे पास आलोचना लिखकर लाता है। जितने-जितने दोष वह खुद जानता है, वे सभी दोष इसमें लिखता है। ऐसा कोई एकाध नहीं, हज़ारों लोग! अब उन दोषों का हम क्या करते हैं? उसका कागज़ पढ़कर, उस पर विधि करके वापस उसके हाथ में दे देते हैं। यदि हम किसी से कहें कि इसके ऐसे-ऐसे दोष हैं और ज़रा सी भी बात खुल जाए और उसके ऐसे दोष बाहर खुले पड़ जाएँ तो... खुद के दोष वह बाहर खुले नहीं होने देता, इसलिए तो वह बार-बार संभालता है बेचारा। खुद का दोष संभालेगा या नहीं संभालेगा? बाहर किसलिए नहीं प्रकट होने देता है? आबरू चली जाएगी, ऐसा कहेगा। उसने मुझे लिखकर दिया है, तो कहीं आबरू बिगाड़ने के लिए दिया है? वह तो कहेगा, 'साहब मुझे धोकर दो, मेरे ऐसे दोष हुए हैं, मुझे माफ कर दो।' यानी उसे कितना विश्वास! वर्ल्ड में नहीं कहे जा सके, ऐसे दोष लिखकर देता है। दोषों को पढ़कर ही आपको ऐसा हो जाता है कि अरेरे! ये कैसे दोष?

ऐसे हज़ारों लोगों ने खुद के दोष लिखकर दिए हैं। स्त्रियों ने भी सारे दोष ज़ाहिर दिए हैं, संपूर्ण दोष। सात पति बनाए हों तो सातों के नाम लिखे होते हैं! बोलो अब, यहाँ हम क्या करें? ज़रा सी भी बात बाहर जाएगी तो वह आत्महत्या कर लेगी। हमारी बहुत जोखिमदारी बनती है। इसलिए हम क्या करते हैं? जोखिम हमारे पास रखते हैं, क्योंकि यदि उससे सात भूलें हुई हों और हम वे किसी को बता दें, तो

क्या उसने यह बताने के लिए दिया है? यानी इसमें तो हमने बहुत जोखिमदारी ली है! एक दस-ग्यारह साल की लड़की के बाप ने मुझसे कहा कि, 'दादा, मार डालने जैसा हूँ।' मैंने कहा, अरे! क्यों? तो कहने लगा कि, 'बेटी को खुद गोदी में उठाकर फिर अंदर हाथ फेर लेता हूँ।'

प्रश्नकर्ता : ऐसा कैसा बाँधा है उसने?

दादाश्री : ऐसा एक नहीं, कितने ही आए थे। उसने अपनी पत्नी से कहा कि, 'अपनी बेटी दस-ग्यारह साल की है न, वह मुझे भोगने दे!' बाप हाथ फिराए, बाद में उस बेटी की दृष्टि बदल जाती है और फिर वह अन्य लोगों को देखा करती है। लड़की विकारी हो जाती है बाद में। बाप को तो बहुत स्थिरता से रहना चाहिए। यानी उसे अन्य किसी स्त्री को नहीं देखना चाहिए। ऐसा कुछ भान होता नहीं है न! उसे तो मारा भी था। उसकी पत्नी और सब ने मिलकर कि क्यों ऐसी माँग की? दूषमकाल के वर्तन देखे सब?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : वे लड़के सत्संग में आए थे न, वहाँ यात्रा में, उसने सत्संग के व्यक्ति से ही शादी कर ली (भाव से) वह खुद पच्चीस साल का था और वह शादीशुदा पैंतीस साल की तो फिर मुझे लिखकर दिया कि उनके प्रति मुझे भाव हुआ था, उसका प्रतिक्रमण करता हूँ। इनका प्रतिक्रमण करता हूँ।

अरे! बाप रे, ऐसा सब कर रहा था? अरे, सत्संग में पंद्रह लोगों का लिहाज़ नहीं किया? ऐसा सारा प्रायश्चित! क्षमा करने जैसा है। काल का प्रभाव है न! अभी तो बहन के साथ, भाई के साथ, यह सब किस तरह का? यह तो जो कभी सुना नहीं, आँखों के लिए, कानों के लिए पीड़ादायक बन जाए, ऐसा है। भटक गए हैं! बहुत हो गया, सावधान, अब भी सावधान हो जाओ!

एक-एक दोष असंख्य परतों वाले

ऐसा है न, इस दुनिया में माफी वह सब से बड़ा शस्त्र है।

पश्चाताप और माफी। भगवान माफ नहीं करते हैं। भगवान को माफ करने का राइट ही नहीं है। यह ज्ञानी पुरुष सब दोष माफ कर देते हैं। वे एजन्ट हैं। मूल भगवान देहधारी है ही नहीं। देहधारी हों, वही कर सकते हैं। इसलिए अब भी कोई कुछ दोष हो जाए, उसकी मेरे पास माफी माँग लेनी है। रोज़ के तुझे तेरे कितने दोष दिखाई देते हैं?

प्रश्नकर्ता : दो सौ-तीन सौ दिखते हैं।

दादाश्री : सात साल से, दो सौ-तीन सौ दिखते हैं और दो सौ तीन सौ निकलते रहते हैं। वापस दूसरे नए दोष दिखते रहते हैं।

या तो उस दोष की पंखुड़ियाँ बहुत होती हैं और नए दोष भी होते हैं लेकिन ये सभी दोष हैं न, वे अनंत परतों वाले!

प्रश्नकर्ता : इसमें रोज़ दोष होता ही रहता है और उसका पश्चाताप इस तरह करते हैं तो वह लिंक टूटेगी कब?

दादाश्री : वह खत्म होती ही है, इस तरह करता है तो सारे दोष खत्म होते ही है। जिस रास्ते पर मैं गया हूँ, वह रास्ता आपको दिखाता हूँ।

प्रतिक्रमण से प्रीति पत्नी जैसी

स्त्री से जितनी पहचान है, उतनी पहचान प्रतिक्रमण से हो जानी चाहिए। जैसे स्त्री को भूल नहीं पाते हैं, वैसे ही प्रतिक्रमण नहीं भूलाना चाहिए। सारे दिन माफी माँग-माँग करनी है। माफी माँगने की आदत ही डाल देनी है। यह तो परायों के दोष देखने की दृष्टि ही हो गई है।

प्रश्नकर्ता : ऐसे कितने प्रतिक्रमण करने हैं?

दादाश्री : जिस तरह खाते हो, पीते हो, पूरे दिन हवा लेते हो, उसी तरह पूरे दिन प्रतिक्रमण करते रहना है।

प्रतिक्रमणों का कारवाँ

जैसे-जैसे दोषों का प्रतिक्रमण करते जाते हैं, वैसे-वैसे दोष

ज़्यादा दिखते जाते हैं। बाद में तो कितनों को दो सौ-दो सौ दिखते जाते हैं। एक भाई कहते हैं, किस तरह दादा पहुँच पाऊँगा? मेरा दिमाग़ थक जाता है, पाँच सौ-पाँच सौ, हज़ार प्रतिक्रमण करता हूँ फिर भी कम नहीं होता। क्योंकि माल भी ऐसा ही भरा हुआ है न! इन बेचारों के पास माल ही कहाँ है, छोटी-छोटी दुकानें खोली थीं जबकि उनके बड़े गोडाउन भरे थे, बहुत खाली कर दिया है।

प्रश्नकर्ता : इन महात्माओं को तो कुछ भी हुआ कि तुरंत ही प्रतिक्रमण के भाव आते हैं।

दादाश्री : तुरंत ही, अपने आप ही आते हैं। सहज रूप से हो जाता है।

आपके कितने प्रतिक्रमण होते हैं?

नीरू बहन : रोज़ के पाँच सौ हो जाते हैं।

दादाश्री : 'यह' बहन रोज़ पाँच सौ-पाँच सौ प्रतिक्रमण करती है! कोई पचास करता है, कोई सौ करता है, जितनी-जितनी जागृति बढ़ती है, उतने प्रतिक्रमण करता है। लेकिन निरंतर प्रतिक्रमण करने का मार्ग है यह।

यह प्रतिक्रमण यानी 'शूट ऑन साइट'। 'शूट ऑन साइट' यानी दोष होते ही उसका निवारण कर देना है, तुरंत ही 'ऑन द मोमेन्ट!' जागृति इतनी अधिक रहती है कि 'शूट ऑन साइट' किए बगैर नहीं रहता। एक भी दोष दिखे बगैर नहीं रहता है। तब जाकर व्यक्ति के दोष खाली हो जाते हैं और निरंतर संयम रहता है! निरंतर संयम! सभी से कह दिया है कि रस-रोटी खाना, घी लेना, सब लेना, सब खाना और निरंतर संयम में रहे ऐसा वीतराग का मार्ग है।

प्रश्नकर्ता : आपने जो कहा कि रोज़ पाँच सौ प्रतिक्रमण होते हैं। तो जितने ज़्यादा प्रतिक्रमण हों, वह अच्छा या जितने कम प्रतिक्रमण हों, वह अच्छा?

दादाश्री : जितने ज़्यादा हों वह अच्छा। निरे दोष के ही भंडार हैं। कृपालुदेव ने कहा है कि, *'हुं तो दोष अनंतनुं भाजन छुं करुणाळ'* फिर *'दीठा नहीं निज दोष तो तरीये कोण उपाय?'* यह तो, पाँच दोष तो दिखते नहीं हैं, तो कैसे तैर पाएँगे? पूर्णत: दोष का भाजन है। अत: पाँच सौ-पाँच सौ दोष जिनके निकलते हैं उनका जल्दी साफ हो जाता है। किसी के पचास-पचास निकलते हैं, किसी के सौ-सौ निकलते हैं, लेकिन दोष निकलने लगे हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जैसे उर्ध्वीकरण शुरू होता है कि दोष कम होते जाते हैं न, बाद में?

दादाश्री : नहीं, उर्ध्वीकरण की कोई ज़रूरत नहीं है। दोष तो जितनी अधिक जागृति कि तुरंत ही पकड़ में आ जाते हैं और दोष पकड़ में आए कि तुरंत ही उसका वहाँ पर प्रतिक्रमण कर देना है। आलोचना-प्रतिक्रमण व प्रत्याख्यान, तुरंत ही 'ऑन द मोमन्ट' कर देना है! 'शूट ऑन साइट'!

प्रश्नकर्ता : यह जितने-जितने प्रतिक्रमण होते जाते हैं, फिर कुछ अवस्था पर तो प्रतिक्रमण कम होते जाते होंगे न? बढ़ कैसे जाते हैं बाद में?

दादाश्री : वह तो कम होते-होते काफी टाइम लग जाएगा। क्योंकि यह सारा अनंत अवतार का माल भरा हुआ है।

वह बनकर रहे भगवान

कई सालों से यह नीरू बहन प्रतिदिन पाँच सौ-पाँच सौ प्रतिक्रमण करती हैं इसलिए अब उनका परिणाम आने लगा है। और कुछ करना नहीं है, यह आज्ञा ही लेना है और 'शूट ऑन साइट' प्रतिक्रमण करते रहना है। कोई आए और अपने मन में ऐसा हो कि, 'इतनी भीड़ में यह कहाँ आ टपके?' ऐसा कहकर हमने उनके प्रति विराधना की, इसलिए उसके आत्मा ने यह सब जान लिया। यानी हमें तुरंत ही कहना है कि, 'चंदूभाई, ऐसी भावना क्यों की? अतिक्रमण किया, इसलिए प्रतिक्रमण करो'।

यह आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान का मार्ग है, 'शूट ऑन साइट'! रोज़ाना तीन सौ-तीन सौ भूलें, चार सौ-चार सौ भूलें दिखाई देंगी। खुद की एक भी भूल जिसे दिखाई दे, वह भगवान बनता है। यदि इंसानों में दोष नहीं होते तो आज सब जगह भगवान ही होते! जो दोष रहित हुआ, वह भगवान कहलाता है!

आपका काम हो गया! अभी तो जैसे-जैसे शक्ति बढ़ेगी, वैसे-वैसे दोष दिखते जाएँगे। अभी तो स्थूल दोष दिखेंगे, फिर सूक्ष्म दिखेंगे। जितने दिखे उतने गए। नियम ऐसा है कि अपने अंदर जो दोष हैं, वे जितने दिखाई देंगे, उतने चले जाएँगे। जैसे कि यदि हम सोए हुए हों और चोर घुस आए और जग जाएँ तो? चोर भागने की तैयारी करता है, हमारे जागने के कारण। उसी तरह हमारे जागते ही ये दोष भी तुरंत ही भागने की तैयारी करते हैं!

सब से शॉर्ट और पद्धति अनुसार प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण की क्रिया समझाइए न! कई लोग ऐसा कहते हैं कि, 'मैंने दो सौ प्रतिक्रमण किए', तो वे कैसे करते हैं?

दादाश्री : ऐसा है न, जैसे-जैसे गहराई में उतरते जाते हैं न, वैसे-वैसे खुद के और भी अधिक दोष दिखाई देते हैं।

प्रश्नकर्ता : मुझे तो मेरे ही दोष दिखाई देते हैं।

दादाश्री : वह तो अब ज्ञान दिया है इसलिए, वर्ना पहले कहाँ दिखते थे? अब दिखाई देते हैं न? अब ये जो दिखाई देते हैं, उनके लिए माफी माँगनी पड़ेगी। प्रतिक्रमण करने पर दोष दिखाई देने लगते हैं। किसी को रोज़ाना पच्चीस दोष दिखाई देते हैं, किसी को पचास दिखाई देते हैं, किसी को सौ दिखाई देते हैं। पाँच सौ-पाँच सौ दोष दिखाई दें, ऐसी दृष्टि खिल जाती है, दर्शन खुलता जाता है।

आपके साथ बातचीत करते समय सख्ती से बात कर लेते हैं लेकिन साथ-साथ इन्हें दोष भी दिखाई देता है कि यह गलत हो गया। तुम्हें दोष दिखाई देते हैं या नहीं?

प्रश्नकर्ता : हाँ, मुझे मेरे दोष दिखाई देते हैं।

दादाश्री : फिर तो कल्याण ही हो गया न!

प्रतिक्रमण तो अपने महात्मा कैसा करते हैं? पट, पट, पट हुआ कि तुरंत ही! 'शूट ऑन साइट' प्रतिक्रमण करते हैं। इसलिए फिर दोष ही खड़ा नहीं होता न!

प्रश्नकर्ता : हम प्रतिक्रमण करते समय प्रतिक्रमण की जो लंबी विधि है, वह पूरी बोलें या फिर संक्षेप में भाव से करनी है?

दादाश्री : भाव से संक्षेप में ही करना है। द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्म तो हम लिखते हैं, उतना ही है। बाकी, उसे संक्षेप में करें तो भी चलेगा।

प्रश्नकर्ता : तो दादा, संक्षेप में प्रतिक्रमण कैसा करना है?

दादाश्री : यह जो हुआ, वह ठीक नहीं है, ऐसा हमें लगना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन प्रतिक्रमण अति संक्षिप्त रूप से कैसे करना है?

दादाश्री : दादा भगवान की साक्षी में, 'यह जो दोष हो गया, उसकी मैं क्षमा माँगता हूँ, अब फिर से ऐसा नहीं करूँगा', बस इतना ही। यही है, अति संक्षिप्त प्रतिक्रमण। उसके मन-वचन-काया और भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म ऐसा सब बोलने की कोई ज़रूरत नहीं है। वह सब तो नए लोगों को सिखाने के लिए है।

अब यदि किसी व्यक्ति को किसी से बैर हो न, तब यह पद्धति अनुसार बोलकर (प्रतिक्रमण) करना पड़ता है। जिससे बैर हो उस तक पहुँचाने के लिए, ताकि बैर छूट जाए। ऐसे पद्धति अनुसार, पूरा ब्योरेवार बोलते रहने पर सभी से बैर छूटता जाता है और साथ-साथ सामने वाले को भी पता चलता है कि अब मेरा मन उसके प्रति अच्छा होता जा रहा है। प्रतिक्रमण में तो इतनी ज़बरदस्त शक्ति है!

प्रश्नकर्ता : दोषों के लिए हम बोलें कि यह भव, संख्यात भव,

असंख्यात भव में वाणी से जो भी दोष हुए हों, राग-द्वेष व कषाय संबंधी दोष हुए हों, ऐसा सब बोलना है क्या?

दादाश्री : हाँ, ऐसा सब बोलना चाहिए। दूसरे लोगों के साथ हो तो यों ही कर सकते हो, क्षमा माँग लोगे, पछतावा कर लोगे तो चलेगा।

यह है हमारी सूक्ष्मातिसूक्ष्म खोज

जिसके साथ विशेष रूप से अतिक्रमण हो गया हो, उसके साथ प्रतिक्रमण का यज्ञ शुरू कर देना है। अतिक्रमण बहुत किए हैं लेकिन प्रतिक्रमण नहीं किए हैं, इसलिए यह सब है।

यह प्रतिक्रमण तो हमारी सूक्ष्मातिसूक्ष्म खोज है। यदि इस खोज को समझ जाए तो किसी से कोई झगड़ा ही नहीं रहेगा।

गहन प्रतिक्रमण में पूर्व जन्म भी दिखता है

प्रतिक्रमण में जो बहुत गहरा उतरता है, उसे पूर्व जन्म भी आर-पार दिख जाता है! किसी को पूर्व जन्म भी दिख जाता है। सभी को नहीं दिखता। किसी को सरल परिणाम हो, उसे आर-पार दिख जाता है। अब पूर्व जन्म देखकर हमें क्या करना है? हमें तो मोक्ष चाहिए न?

सामूहिक प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : हम जो प्रतिक्रमण करते हैं, उसमें जो-जो दोष हुए हों, उन्हें याद करके हम क्षमा माँगते हैं। दोष तो अनेकों होते हैं और उनमें से बहुत सारे हम भूल चुके होते हैं, तो फिर से उन्हें याद करके दु:खी क्यों होना चाहिए?

दादाश्री : वह दु:खी होने के लिए नहीं है। जितना बहीखाता शुद्ध हुआ, उतनी शुद्धि हुई। आखिर आपको वह बहीखाता तो शुद्ध करना ही पड़ेगा। फुरसत के समय में घंटाभर उसके लिए निकालने में आपका क्या बिगड़ जाएगा?

प्रश्नकर्ता : दोषों की लिस्ट तो बहुत लंबी बनती है।

दादाश्री : वह लंबी बने तो ऐसा मान लो कि एक व्यक्ति के प्रति सौ तरह के दोष हो गए हैं तो उनका सामूहिक प्रतिक्रमण करना है कि इन सभी दोषों के लिए मैं आपसे माफी माँगता हूँ।

प्रश्नकर्ता : हम जो इकट्ठा प्रतिक्रमण कहते हैं, वही सामूहिक प्रतिक्रमण है न?

दादाश्री : हाँ, वही सामूहिक।

व्यक्तिगत प्रतिक्रमण

व्यक्तिगत प्रतिक्रमण किसका करना पड़ता है? हमें जिसके साथ कोई अतिक्रमण हो जाता हो, उसका। अपने पूर्व जन्म के कर्म हों, अन्य जो सब किए हों उसका, अपने पहचान वाले ना हों, आपको मुझसे कुछ लगा हो, ऐसा जो खुद नहीं जानता हो, उन सब का सामूहिक प्रतिक्रमण करना है और मैं जानता हूँ कि मुझसे आपको पैर लग गया है तो फिर मुझे उसका व्यक्तिगत प्रतिक्रमण करना पड़ता है। वह तुरंत ही करना चाहिए।

ज़ोरदार अवस्थाएँ अवरोधित करती हैं प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : दादा, कई बार भूल हो जाए तो मैं आपको याद करके, 'हे दादा भगवान, मुझसे भूल हो गई, उसकी मैं माफी माँगती हूँ', फिर लंबा प्रतिक्रमण नहीं करती हूँ।

दादाश्री : माफी माँगे उससे कोई हर्ज नहीं है लेकिन प्रतिक्रमण तो करना ही है। नहीं हो पाए ऐसा हो तो माफी माँगनी है।

प्रश्नकर्ता : कई बार अवस्थाएँ इतनी ज़ोरदार होती है न, वे प्रतिक्रमण नहीं होने देती।

दादाश्री : उसके लिए माफी माँग लेना।

बॉम्बार्डिंग, अतिक्रमणों की

प्रश्नकर्ता : एक घंटे में पाँच-पच्चीस अतिक्रमण हो जाते हैं।

दादाश्री : तो उसके इकट्ठे प्रतिक्रमण हो सकते हैं। इकट्ठे (प्रतिक्रमण) करने हैं और कहना है कि इकट्ठे प्रतिक्रमण करता हूँ।

प्रश्नकर्ता : इकट्ठे प्रतिक्रमण कैसे करने हैं?

दादाश्री : ये बहुत सारे अतिक्रमण हो गए हैं इसलिए इन सभी का इकट्ठा प्रतिक्रमण करता हूँ। जिस विषय पर अतिक्रमण हुए हों, उस विषय पर बोलना है कि इस विषय पर, इस विषय पर इकट्ठे प्रतिक्रमण करता हूँ यानी निराकरण हो गया और फिर भी बाकी रह जाए, वह हम धो देंगे। लेकिन उसके लिए बैठे नहीं रहना है। बैठे रहेंगे तो सारा का सारा भीतर ही रह जाएगा। उलझन में पड़ने की ज़रूरत नहीं है।

एक भाई मुझसे कहते हैं, 'दादा, एक दिन में मुझे दो-दो हज़ार प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं। तो मैं क्या करूँ? मैं थक जाता हूँ', इसलिए हमने उन्हें सामूहिक प्रतिक्रमण करने के लिए कहा। इंसान दो-दो हज़ार प्रतिक्रमण कैसे कर पाएगा? दो-दो हज़ार बार बोलना और करना, कैसे कर पाएगा? अब जितने दोष दिखाई देते हैं, वे चले जाते हैं और फिर वापस दूसरे आ जाते हैं। जितने दोष दिखे, वे मुक्त होकर गए। तब यदि कोई कहे कि 'वैसे का वैसा दोष फिर से दिखाई दिया', तब कहते हैं कि 'वही का वही दोष फिर से नहीं आता। लेकिन जैसे प्याज़ की परतें होती हैं न, एक निकालें तो वापस दूसरी दिखती है, उसी तरह ये दोष भी प्याज़ की परतों की तरह होते हैं। यदि हम एक ही चीज़ की एक परत निकाल दें तो दूसरी परत दिखाई देती है यानी वही की वही परत नहीं आती, वह तो चली ही गई। तीस परतें थीं, अब उनतीस रहीं। फिर उनतीस में से एक परत जाएगी तो अठाईस बचेंगी।

अनंत दोष का भाजन है इसलिए तीन-तीन हज़ार दोष भीतर रोज़ दिखेंगे। वह भाई तो थक गया इसलिए हमने उसका लेवल उतार दिया। इंसान से इतना सारा नहीं हो पाता। जागृति बहुत बढ़ गई इसलिए दोष बहुत दिखते हैं। अब वह व्यक्ति बड़ा व्यापारी है इसलिए उसे

परेशानी होती होगी न! इसलिए फिर उसकी जागृति हमने मंद कर दी और उसे सामूहिक प्रतिक्रमण' करने को कहा। सामूहिक यानी सब का इकट्ठा। जितने दोष हुए हों उनका। बाकी, अपना प्रतिक्रमण कैसा होना चाहिए? 'शूट ऑन साइट' होना चाहिए। यह तो सब कैश ही होना चाहिए।

दोष होते ही प्रतिक्रमण! कितने लोग तो ऐसा भी कहते हैं कि 'दादा, सहन नहीं होता। मुझसे यह प्रतिक्रमण हो ही नहीं पाता। इतने सारे प्रतिक्रमण करने हैं कि एक के बाद एक, पूरे ही नहीं होते। इतने सारे दोष दिखाई देते हैं'। इसलिए फिर उन्हें सामूहिक प्रतिक्रमण करने के लिए कहते हैं। बहुत दोष हो जाएँ उसका क्या हो फिर? निरे दोष का ही भंडार है और मन में पता नहीं क्या मान बैठे हैं कि, 'मैं कुछ हूँ, मैं कुछ हूँ'। क्या है तू? यदि कोई ज़रा सा भी अपमान कर ले तब पता चलेगा कि तू क्या है?

उपाय, बाकी रहे दोषों का

प्रश्नकर्ता : भूलचूक से प्रतिक्रमण करने रह जाएँ तो सामूहिक प्रतिक्रमण से निकल जाते हैं?

दादाश्री : हाँ, उससे तो बहुत कुछ निकल जाता है। यह तो एक सब से बड़ा रास्ता है कि बहुत दिनों की *सिलक* (पूँजी) इकट्ठी हो गई हो, उसे एकदम से उड़ा देता है! उल्टा वह रास्ता अच्छा है!

सामायिक में दोष चकनाचूर

प्रश्नकर्ता : ज्ञान लेने से पहले जितने भी दोष हुए हों, उन सभी दोषों का शूट ऑन साइट (प्रतिक्रमण) कैसे हो सकता है?

दादाश्री : वे दोष कुछ गाढ़ हैं न, इसलिए उसकी प्रकृति में आते रहते हैं। उससे पता चल जाता है कि यह पहले से ही हैं। अर्थात् उस दोष के ज़्यादा प्रतिक्रमण करने हैं।

प्रश्नकर्ता : सामायिक से वे ज़्यादा पहचाने जा सकते हैं न?

दादाश्री : हाँ, सामायिक से तो सभी (दोष) पहचाने जा सकते हैं। लेकिन अगर भीतर से ये दोष आएँ न, तो इसका मतलब पहले से ही वह प्रकृति का गुण है, यानी पहले भी ये दोष थे, अतः उनके ज़्यादा प्रतिक्रमण करना है और कितने ही दोष जो नहीं हैं, उनके लिए कुछ नहीं करना है।

छूटा जाए कर्मों से ज्ञान में रहकर

प्रश्नकर्ता : क्या ज्ञान लेने के बाद कर्म बंधन होता है?

दादाश्री : टेढ़ा बोले तो बंधते नहीं हैं लेकिन छूटते भी नहीं हैं। कर्म कब छूटते हैं? कि वे ज्ञानपूर्वक हों, अर्थात् समझ-पूर्वक, ज्ञानपूर्वक उसका निबेड़ा लाया जाए। अज्ञान द्वारा बंधे हुए कर्मों का ज्ञान द्वारा निबेड़ा लाएँगे तब छूट पाएँगे। आज भले ही रास नहीं आता हो लेकिन फिर भी उसका ज्ञान में रहकर निबेड़ा लाना पड़ेगा। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' होकर वह सब देखते रहें, इस तरह निबेड़ा लाना पड़ेगा।

प्रतिक्रमण तो (दोषमुक्त होने के लिए) सब से बड़ा हथियार है।

चरणविधि में प्रतिक्रमण या शक्तियों की माँग?

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण करें तो जल्दी से हल नहीं आ जाता?

दादाश्री : कब?

प्रश्नकर्ता : चरणविधि करते हैं, तब?

दादाश्री : नहीं, उस वक्त तो शक्ति भरनी है। फिर प्रतिक्रमण तो अपने आप ही करते रहना है।

विवाह बेला के भी प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : कितना धोते जा रहे हैं लेकिन अभी भी कितने *चीकणे* (गाढ़) कर्म बाकी हैं?

दादाश्री : संसार यानी अतिक्रमण, और प्रतिक्रमण से उसे धो

देना है। नियमित खाते हो, पीते हो, पूरे दिन हवा लेते हो न? ऐसे ही यह प्रतिक्रमण भी पूरे दिन करते रहना है।

कलगी पहनकर शादी की थी, उस वक्त शर्म नहीं आ रही थी? सभी ने ऐसे कलगी पहनकर शादी की थी न? अब उस वक्त सोचा ही नहीं था कि इन सब का प्रतिक्रमण करना पड़ेगा और अब जब इकट्ठे प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं तो कठिन लगता है!

दोष है तो देखने वाला भी है

प्रश्नकर्ता : दादा, दोष दिखाई देने बंद हो जाएँ ऐसा कीजिए न!

दादाश्री : नहीं, दोष तो दिखेंगे ही! दोष दिखाई देते हैं इसीलिए तो यह आत्मा है और वह ज्ञेय है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन क्या ऐसा नहीं हो सकता कि दिखाई ही नहीं दें?

दादाश्री : नहीं, (दोष) यदि दिखाई ही नहीं देंगे तब तो आत्मा चला जाएगा। आत्मा है तो दोष दिखाई देता है। लेकिन अब वे दोष नहीं हैं, वे ज्ञेय हैं और आप ज्ञाता हो।

अतिक्रमणों से बोरियत अब

प्रश्नकर्ता : ये सभी जो फाइलें हैं न, तो पूरे दिन खुद के इतने सारे दोष दिखाई देते हैं कि अब मैं खुद से बहुत उकता गई हूँ।

दादाश्री : वैसा तो होगा ही।

प्रश्नकर्ता : पूरे दिन इतने सारे दोष दिखाई देते हैं, क्षण-क्षण।

दादाश्री : दोष दिखाई देते हैं, यानी वे दोष चले जाएँगे। दोष तो दिखेंगे ही न! दोष दिखाई देते हैं अतः आत्मा हो गया। शुद्ध हो जाए तभी दोष दिखाई देंगे न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन पूरे दिन? प्रति क्षण?

दादाश्री : हाँ, बल्कि (खुद के) दोष दिखाई दें वह तो अच्छा है। इसीलिए तप करने के लिए कहा है ताकि खुद के दोष दिखाई दें और जागृति आए, जागृति से ही दोष दिखाई देते हैं।

पछतावा करता है चंदू

प्रश्नकर्ता : हम कोई भूल करते हैं तो उसका प्रतिक्रमण करते हैं, फिर भी प्रतिक्रमण करके शुद्ध क्यों नहीं हो पाते? मन का भाव आनंदित या नॉर्मल क्यों नहीं होता? वह एकाध दिन तक क्यों चिपका रहता है?

दादाश्री : उसमें क्या हर्ज है? यदि पछतावा बढ़ाते हो तो फिर से भूल नहीं होगी। जागृति रहती है तो नुकसानकारक नहीं है। भले ही चिपकता हो, फिर से भूल नहीं होगी।

प्रश्नकर्ता : पछतावा होता है इसलिए फिर हम दूसरे ध्यान में से छूटकर उसमें रहने लगते हैं?

दादाश्री : जितना पछतावा होगा, उतना अच्छा है। आपको पछतावा करने की ज़रूरत नहीं है। आपको तो, यह चंदूभाई को पछतावा करना है, मैंने नहीं किया है।

बीच में फिल्म बंद करनी चाहिए?

प्रश्नकर्ता : अब ये ज़िंदगी का ड्रामा जल्दी खत्म हो जाए तो अच्छा!

दादाश्री : ऐसा क्यों बोलीं? फिर ये चूड़ियाँ कौन पहनेगा?

प्रश्नकर्ता : नहीं पहननी है अब।

दादाश्री : नहीं, पहनो, घूमो-फिरो, सबकुछ करो। जल्दी पूरा करना है, ऐसा नहीं कहना चाहिए। अभी तो हमें बहुत सारा काम है। इस देह को संभालना है। ऐसा क्यों बोलती हो?

प्रश्नकर्ता : आप बीस दिन यहाँ थे, लेकिन मैं एक भी जगह आ नहीं पाई।

दादाश्री : इसलिए देह खत्म कर देनी चाहिए क्या?

प्रश्नकर्ता : लेकिन कच्चा कितना पड़ता है?

दादाश्री : इस देह का तो इतना उपकार है कि 'इसके लिए तो जो भी इलाज करना पड़े, वह करना'। इस देह से तो 'दादा भगवान' को पहचाना। अनंत देह खो दीं, सब व्यर्थ गईं। इस देह के माध्यम से (ज्ञानी को) पहचाना इसलिए यह देह मित्र समान बन गया। और अब यह सेकन्ड (दूसरा) मित्र यानी अब इस देह को संभालते रहना है। इसलिए आज प्रतिक्रमण करना कि, 'देह जल्दी खत्म हो जाए तो अच्छा, ऐसा कहा उसके लिए माफी माँगती हूँ'।

प्रश्नकर्ता : हाँ, दादा।

दादाश्री : हम सिनेमा में बैठे हों और बीच में फिल्म बंद हो गई तो क्या करेंगे?

❖❖❖❖❖

[25]

प्रतिक्रमण की सैद्धांतिक समझ

परभाव में तन्मयाकार

प्रश्नकर्ता : व्यवहार में यदि अतिक्रमण हो जाता है तो तुरंत प्रतिक्रमण कर लेना है, ऐसा आपने कहा है लेकिन यदि निज-स्वभाव में से परभाव या परद्रव्य में खिंच जाएँ या उसमें तन्मयाकार हो जाएँ तो क्या करना है? परभाव में तन्मयाकार होना, उसे शुद्धात्मा पर अतिक्रमण करना कहेंगे?

दादाश्री : हमें प्रतिक्रमण करना है। फिर क्या लिखते हैं कि 'निज-स्वभाव में से परभाव में जाना होगा'। अब परभाव में तो, जो हमारी आज्ञा का पालन करता है, वह व्यक्ति परभाव में नहीं जा सकता और यदि उसे जाना हो तो भी नहीं जा पाएगा। यानी आज्ञापालन शुरू कर दे तो परभाव में जाएगा ही नहीं। परद्रव्य में खिंचेगा ही नहीं। अत: घबराना नहीं। उसमें तन्मयाकार हो जाए तो वह परभाव में या परद्रव्य में नहीं है, यदि आज्ञापालन करता है तो यह नहीं है और अगर यह है तो आज्ञा का पालन नहीं किया जा सकता। इतना वैज्ञानिक है यह तो।

प्रश्नकर्ता : तन्मयाकार हो जाते हैं इसलिए जागृतिपूर्वक पूर्णत: *निकाल* नहीं होता। अब तन्मयाकार हो जाने के बाद पता चलता है, तो फिर उसका प्रतिक्रमण करके *निकाल* करने का कोई रास्ता है क्या?

दादाश्री : प्रतिक्रमण करने से हल्के हो जाएँगे। अगली बार हल्के होकर आएँगे और यदि प्रतिक्रमण नहीं करेंगे तो वही का वही बोझ फिर से आएगा। बल्कि फिर से छटक जाएगा, चार्ज हुए बिना यानी प्रतिक्रमण से हल्का कर-करके *निकाल* होता रहेगा।

प्रश्नकर्ता : आप कहते हैं कि अतिक्रमण न्यूट्रल है, तो फिर प्रतिक्रमण करने को रहा ही कहाँ?

दादाश्री : अतिक्रमण न्यूट्रल ही है लेकिन 'उसमें तन्मयाकार हो जाता है' इसलिए बीज डल जाता है। लेकिन अतिक्रमण में तन्मयाकार नहीं होता तो बीज नहीं डलेगा। अतिक्रमण कुछ भी नहीं कर सकता और प्रतिक्रमण तो यदि हम तन्मयाकार नहीं हों फिर भी 'करता है'। चंदूभाई तन्मयाकार हो गए, उसे भी आप जानते हो और नहीं हुए, उसे भी आप जानते हो। आप तन्मयाकार होते ही नहीं हो। तन्मयाकार तो मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार होते हैं, उसे आप जानते हो। तन्मयाकार तो चंदूभाई होते हैं, आप तो उसे जानने वाले हो।

प्रश्नकर्ता : चंदूभाई तन्मयाकार हो जाए तो चंदूभाई से प्रतिक्रमण करने के लिए कहना पड़ेगा न?

दादाश्री : हाँ, चंदूभाई से कहना है।

सपने में भी प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : सपने में प्रतिक्रमण हो सकते हैं?

दादाश्री : हाँ, बहुत अच्छी तरह हो सकते हैं। सपने में जो प्रतिक्रमण होते हैं, वे तो जो अभी होते हैं, उससे अच्छे होते हैं। अभी तो आप तेज़ी से कर देते हो। सपने में जो काम होता है न, वह सारा पद्धति पूर्वक होता है। सपने में जो 'दादा' दिखाई देते हैं, वैसे 'दादा' तो हमने कभी भी नहीं देखे हों, ऐसे 'दादा' दिखाई देते हैं। जागृति में ऐसे दादा नहीं दिखाई देते, सपने में बहुत अच्छे से दिखते हैं। क्योंकि सपना, वह सहज अवस्था है और यह जागृत अवस्था, वह असहज अवस्था है।

प्रश्नकर्ता : सपने में पाप किया हो न, तो क्या जागृत अवस्था में उसका प्रतिक्रमण कर सकते हैं?

दादाश्री : कर सकते हैं न! हमें जब भी *लक्ष* (जागृति) में आए तब प्रतिक्रमण कर सकते हैं क्योंकि हम ही थे।

प्रश्नकर्ता : उससे फिर स्वच्छ हो जाता है क्या?

दादाश्री : हाँ, गुनहगार जब भी कबूल करता है न, तो वहाँ कोर्ट के कायदे अलग हैं और यहाँ पर जब चाहे कबूल कर सकते हो।

प्रश्नकर्ता : सपने में जो कर्म होता है, उसके प्रतिक्रमण कब करने हैं? जगने के बाद करना है?

दादाश्री : हाँ, जगने के बाद पता चलता है, याद रहता है तो करने हैं। सपने में किसी को पत्थर मार आए, यानी अपना हिंसक भाव तो था ही, वह बात निश्चित है न? सामने वाले को लगा या नहीं लगा, वह अलग बात है। अतः प्रतिक्रमण तो करना है। सपने में भी गुस्सा आता है। चाचा को देखते ही गुस्सा आ जाता है!

प्रश्नकर्ता : कई बार सपने में कुछ भूल हो जाए तो उसका सपने में ही प्रतिक्रमण हो जाता है।

दादाश्री : हाँ, हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, कई बार सपने में प्रतिक्रमण नहीं होता है, लेकिन जब सुबह मैं जागती हूँ, तब मुझे ध्यान आए कि मैंने प्रतिक्रमण नहीं किया तो उसका प्रतिक्रमण सुबह करना है?

दादाश्री : हाँ, करना है। प्रतिक्रमण 'एनी टाइम' (किसी भी समय) कर सकते हैं। प्रतिक्रमण तो, यदि आपकी अपने पति से कोई झंझट हो जाए तब यदि आप ऐसा कुछ कहोगी कि, 'उनके (पति के) शुद्धात्मा की साक्षी में क्षमा माँगती हूँ' तो भी चलेगा। आप जब उन पर गुस्सा हो गईं तब 'उनके शुद्धात्मा की साक्षी में क्षमा माँगती हूँ', यह तो टेक्निकल शब्द है लेकिन सादा बोलेंगे तो भी चलेगा। किसी भी रास्ते से कपड़ा धोना है।

सपना हमेशा गलन

प्रश्नकर्ता : विषय के सपने आएँ तो असर रहता है।

दादाश्री : उसके तो प्रतिक्रमण कर सकते हैं न?

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण तो हो जाते हैं।

दादाश्री : वह तो बल्कि अच्छा है। प्रतिक्रमण होते हैं तो फायदेमंद है। उसमें हर्ज नहीं है। प्रतिक्रमण तो करने ही चाहिए। वह जो 'लेट गो' हो जाता है, उसमें तो उनका कच्चा रह जाता है जबकि प्रतिक्रमण करके तो उसका मूल निकाल फेंकते हैं। वह तो अच्छा है और तब बाद में कह दो न, कि 'यह गलत हुआ'। 'गलत हुआ' यदि ऐसा रहे तो वह अच्छा है।

स्वप्न यानी क्या? *गलन* (डिस्चार्ज होना, खाली होना)! *पूरण* (चार्ज होना, भरना) नहीं। बिल्कुल भी *पूरण* नहीं, वह है, 'स्वप्न'! और जागृत स्थिति में अहंकार होने से *गलन* और *पूरण* दोनों होता है। बाकी, सपना, वह तो सिर्फ *गलन* ही है। 'डिस्चार्ज' यानी *गलन*! और 'डिस्चार्ज' की चिंता किसी को नहीं करनी है। हाँ, 'डिस्चार्ज' नहीं हो जाए उसका ध्यान रखना है, लेकिन 'डिस्चार्ज' हो जाए तो उसकी चिंता नहीं करनी है। जो हो चुका है, उसकी चिंता छोड़ दो और भविष्य में नहीं हो, उसका ध्यान रखना है।

अनौपचारिक व्यवहार में कर्मबंध कहाँ?

प्रश्नकर्ता : यह 'ज्ञान' लेने के बाद व्यवहार को आपने *निकाली* कहा है, वह बात उचित है लेकिन उसमें कहीं अनौपचारिक व्यवहार होता है तो वहाँ पर 'चार्जिंग' का भयस्थान कहाँ है?

दादाश्री : 'चार्ज' हो जाए, ऐसे भयस्थान होते ही नहीं है लेकिन जहाँ शंका हो जाए, वहाँ पर 'चार्ज' हो जाएगा। जहाँ शंका होती है तो उस भयस्थान को 'चार्जिंग वाला' मानना। शंका यानी, कैसी शंका? कि नींद न आए ऐसी शंका। ऐसी नहीं कि छोटी सी शंका हो गई

और बंद हो जाए क्योंकि शंका होने के बाद फिर उसे भूल गए तो उस शंका की कीमत ही नहीं है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर क्या बिंदास रहना है? निडर और लापरवाह रहना है?

दादाश्री : नहीं, लापरवाह रहेगा तो मार पड़ेगी। लापरवाह व बेफिक्र हो जाएगा न, तो मार पड़ेगी। अग्नि में क्यों हाथ नहीं डालते?

प्रश्नकर्ता : तो फिर वहाँ कौन सा औपचारिक 'एक्शन' लेना चाहिए?

दादाश्री : और क्या 'एक्शन' लोगे? वहाँ सिर्फ पछतावा और प्रतिक्रमण ही 'एक्शन' है।

महात्माओं को कर्म चार्ज कहाँ होता है?

प्रश्नकर्ता : खास यही मुद्दा समझना था कि महात्माओं को ज्ञान प्राप्ति के बाद 'कर्म' 'चार्ज' होते हैं या नहीं?

दादाश्री : आपको 'चार्ज' नहीं होंगे, फिर भी प्रतिक्रमण करना अच्छा है। प्रतिक्रमण करेंगे तो ऐसा कहा जाएगा कि हमारी आज्ञा का पालन किया। अतिक्रमण हुआ इसलिए प्रतिक्रमण करो। 'हम' तो अतिक्रमण नहीं करते। 'हमें' पसंद भी नहीं है। इच्छा ही नहीं न?

प्रश्नकर्ता : नहीं, बिल्कुल इच्छा ही नहीं होती।

अगर महात्माओं के हर एक कर्म 'डिस्चार्ज' हैं तो प्रतिक्रमण करने की क्या ज़रूरत है?

दादाश्री : 'डिस्चार्ज' हैं इसलिए प्रतिक्रमण करने की ज़रूरत नहीं है लेकिन यदि अतिक्रमण हो जाए, तभी प्रतिक्रमण करना है। खाए-पीए उसके लिए कोई प्रतिक्रमण नहीं करना है। क्या मैं आपको ऐसा कुछ पूछता रहता हूँ कि 'आपने आम खाए या नहीं खाए?' आपने पकौड़े क्यों खाए थे? आप होटल में क्यों गए थे? क्या मैं ऐसा कुछ पूछता हूँ? ऐसा-वैसा कुछ पूछा मैंने? नहीं। क्योंकि मैं जानता हूँ कि वह सब 'डिस्चार्ज' है!

'डिस्चार्ज' भाव से किसी को ब्लेम (आक्षेप) कर दें तो उसका प्रतिक्रमण कर लेना है!

प्रश्नकर्ता : जिस पर ब्लेम आया, उसे भी प्रतिक्रमण करना है?

दादाश्री : हाँ! उसे भी करना है कि 'मेरे किस दोष के कारण यह हुआ!' लेकिन ब्लेम लगाने वाला ज़्यादा गुनहगार है।

प्रश्नकर्ता : 'डिस्चार्ज' में तन्मयाकार हो जाए तो फिर दूसरे भाव उत्पन्न होते हैं?

दादाश्री : हाँ, सब जोखिम है न! लेकिन प्रतिक्रमण करने पर शुद्ध हो जाते हैं। प्रतिक्रमण करते हैं, वह भी परभाव है। उससे पुण्याई बंधती है, वह स्वभाव नहीं है। पुण्य बंधना, पाप बंधना, वह सब परभाव है। जितने का समभाव से *निकाल* हुआ उतना कम हुआ।

ज्ञान के बाद 'देखते' रहो

प्रश्नकर्ता : जिसने यह ज्ञान लिया है, उसे यदि कोई गाली दे तब फिर उसे ऐसा लगता है कि इसे दो (गालियाँ) देनी हैं। और फिर दे भी देता है। फिर 'हम' देखते हैं कि इन चंदूभाई को गाली देने का मन हुआ और दे दी। तब फिर हम उन चंदूभाई को देखते हैं, तो वह क्या कहा जाएगा? क्या वह 'चार्ज' कह जाएगा?

दादाश्री : यह सब जो हो गया, उसे आप देखते रहे?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : बस तो छूट गया। आपको लेना-देना नहीं रहा।

प्रश्नकर्ता : जब कोई हमें गाली दे तब ऐसा लगता है कि हमें नहीं देनी चाहिए। लेकिन यदि चंदूभाई ऐसा कहें कि 'नहीं! देनी ही चाहिए' और फिर चंदूभाई जाकर दे आते हैं। तब भी भीतर ऐसा लगता है कि यह गलत किया है। हम यह देखते हैं लेकिन चंदूभाई को रोक नहीं पाते।

दादाश्री : उसमें हर्ज नहीं है। 'आपकी' ज़िम्मेदारी नहीं है।

चंदूभाई की ज़िम्मेदारी है। वह व्यक्ति चंदूभाई को डाँटता है कि, 'कैसे नालायक हो और क्या बोलते रहते हो?' या तो धौल लगा देगा। जो ज़िम्मेदार है, उसे मार खानी पड़ती है।

प्रश्नकर्ता : तो क्या उसे 'चार्ज' करना कहेंगे?

दादाश्री : नहीं, लेकिन प्रतिक्रमण करना चाहिए। 'हमें' प्रतिक्रमण नहीं करना है, वह चंदूभाई करते हैं। हमें कहना है कि 'अतिक्रमण क्यों किया? इसलिए प्रतिक्रमण करो'।

प्रश्नकर्ता : लेकिन मानो कि चंदूभाई ने प्रतिक्रमण नहीं किया तो?

दादाश्री : तो चलेगा।

प्रश्नकर्ता : तो वह 'चार्ज' हुआ न?

दादाश्री : नहीं, 'चार्ज' तो नहीं होता।

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण करना चाहिए।

दादाश्री : प्रतिक्रमण करेंगे तो साफ हो जाएँगी सभी फाइलें। ज्ञान में रहकर साफ करके रख दीं। जितने कपड़े साफ धोते हैं न, उतने साफ करके रख देने हैं। फिर अपने आप ही इस्त्री में जाएँगे।

चार्ज कब होता है?

प्रश्नकर्ता : ज्ञान लेने के बाद कर्म 'चार्ज' होते हैं या नहीं?

दादाश्री : 'चार्ज' होंगे ही कैसे? 'चार्ज' कब होते हैं? 'व्यवस्थित' कर्ता है, उसका आपको विश्वास है?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : चंदूभाई कर्ता नहीं उसका आपको विश्वास हो गया है?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : अगर चंदूभाई कर्ता हैं तो 'चार्ज' होगा। अतः वह

वाक्य ही नहीं रहा? आपको समझ में आया न? उस वाक्य का स्पष्टीकरण हुआ न?

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण करने से नया 'चार्ज' नहीं होगा?

दादाश्री : आत्मा खुद कर्ता बने तभी कर्म बंधता है।

ज्ञान के बाद क्रेडिट-डेबिट निल

प्रश्नकर्ता : बुरा 'चार्जिंग' हो जाता है, वैसे अच्छा भी 'चार्जिंग' हो जाता है न?

दादाश्री : नहीं होता। बुरा भी चार्ज नहीं होता। यह जो 'डिस्चार्ज' में अतिक्रमण हुए थे, उनका हम प्रतिक्रमण करते हैं। जो अतिक्रमण हुए थे, वे सामने वाले को नुकसान करें ऐसे होते हैं।

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण करना यानी वह जो 'डिस्चार्ज' में राग-द्वेष होता है, उसका करना है?

दादाश्री : 'डिस्चार्ज' का प्रतिक्रमण करना है। 'चार्ज' तो होता ही नहीं, तो फिर रहा ही क्या? यानी 'क्रेडिट-डेबिट' हमें अब होता ही नहीं।

'क्रेडिट' हो तो देवगति मिलती है, 'डेबिट' हो तो जानवर में जाते हैं, ऐसा कुछ नहीं होता। लेकिन यह जो 'क्रेडिट-डेबिट', 'डिस्चार्ज' है, हम उसकी बात कर रहे हैं। अतिक्रमण हो जाए तो प्रतिक्रमण कर लेना है।

समझो, 'करना नहीं है' उसे

प्रश्नकर्ता : कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि (हमें) शुद्धात्मा पद दिया है। शुद्धात्मा कुछ करता ही नहीं है इसलिए हमें कुछ भी बाधक नहीं है। कुछ करने की ज़रूरत ही नहीं है। प्रतिक्रमण करने की ज़रूरत ही नहीं है।

दादाश्री : ऐसा सब गलत है।

प्रश्नकर्ता : यानी अब वह एक व्यू पॉइन्ट (दृष्टि बिंदु) हुआ।

दूसरे क्या कहते हैं कि 'भाई, हमारे कुछ कर्म का उदय आ जाए, उस वक्त प्रतिक्रमण करने की ज़रूरत है'।

दादाश्री : 'कुछ करने की ज़रूरत नहीं है', ऐसा जो कहते हैं तो उन्हें कहो कि, 'आप खाते क्यों हो? यदि कुछ करना नहीं है, कहते हो तो?' अगर खाना बंद कर दिया तो फिर कुछ करना रहता ही नहीं। लेकिन खाना बंद करते हैं या नहीं?

प्रश्नकर्ता : नहीं, वह तो चल रहा है।

दादाश्री : 'कुछ नहीं करना है', इसका अर्थ तो यह है कि 'किसी में भी कर्ताभाव न करे'। करने से तो लट्टू बन जाते हैं।

प्रतिक्रमण भी डिस्चार्ज

प्रश्नकर्ता : हम पर कोई असर ही नहीं होता हो, राग-द्वेष नहीं होते हों तो फिर प्रतिक्रमण की ज़रूरत है क्या?

दादाश्री : अगर आपको राग-द्वेष नहीं होते हैं तो आपको प्रतिक्रमण करने की ज़रूरत नहीं है। लेकिन यदि इन चंदूभाई को हो रहे हों तो चंदूभाई को तो करने की ज़रूरत है न!

प्रश्नकर्ता : ज़्यादातर तो 'मैं चंदूभाई हूँ', उसी तरह का वर्तन होता रहता है। काफी लंबे समय के बाद ध्यान आता है और कई बार ध्यान नहीं भी आता तो क्या उसका प्रतिक्रमण करना पड़ता है?

दादाश्री : इस प्रकार का जितना ध्यान रहे, उतने प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं।

प्रश्नकर्ता : क्यों करने पड़ते हैं?

दादाश्री : प्रतिक्रमण आप कहाँ करते हैं? वे तो चंदूभाई को करने हैं।

प्रश्नकर्ता : चंदूभाई को क्यों करने हैं?

दादाश्री : क्यों?

प्रश्नकर्ता : सब 'डिस्चार्ज' फॉर्म में है तो फिर?

दादाश्री : नहीं, किसी को दु:ख हो जाए तो प्रतिक्रमण करने पड़ेंगे। आपकी क्रिया से किसी को दु:ख हो जाए तो प्रतिक्रमण करने पड़ेंगे। यदि दु:ख नहीं होता है तो कोई बात नहीं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ये जो चंदूभाई हैं, वे तो 'डिस्चार्ज' ही हैं न, तो फिर प्रतिक्रमण की क्या ज़रूरत है? वह अभी भी मुझे समझ में नहीं आया।

दादाश्री : प्रतिक्रमण भी 'डिस्चार्ज' है और साथ ही यह जो कह रहा है, 'क्या ज़रूरत है', वह भी 'डिस्चार्ज' है।

प्रश्नकर्ता : तो फिर मन में ऐसा होता है कि इतने सारे प्रतिक्रमण कौन करे? तो वह भी 'डिस्चार्ज' है?

दादाश्री : वह भी 'डिस्चार्ज' है। उसमें हर्ज नहीं हैं लेकिन यदि हमने कुछ कहा और सामने वाले को दु:ख हो जाए तो हमें चंदू से प्रतिक्रमण करवाना है और कहना है कि 'प्रतिक्रमण करो। यों किसी को दु:ख हो जाए, ऐसा मत करना'।

प्रश्नकर्ता : अगर चंदूभाई टेढ़े चले और कहे, 'मुझे प्रतिक्रमण नहीं करना', तो?

दादाश्री : तो हर्ज नहीं। वे कुछ देर के बाद ठीक हो जाएँगे, फिर प्रतिक्रमण करवाना। शाम को बड़ा प्रतिक्रमण करवाना। टेढ़े चले तो कहना, 'अभी सो जाओ'।

'सॉरी', वह प्रतिक्रमण कहलाएगा?

प्रश्नकर्ता : यहाँ अमरीका में अनजाने में भी भूल हो जाए तो तुरंत 'सॉरी' कह देते हैं, तो वह 'सॉरी' प्रतिक्रमण जैसा कहा जा सकता है?

दादाश्री : 'सॉरी', वह प्रतिक्रमण नहीं है लेकिन वह चीज़ 'अच्छी है'। वह प्रतिक्रमण नहीं है लेकिन 'सॉरी' कह देने से अच्छा

है कि उसके (सामने वाले के) मन में अटैकिंग (आक्रमक) भाव नहीं होता। अटैकिंग भाव आ रहा हो तो बंद हो जाता है। यानी लोगों के सिखाने पर 'सॉरी' सीख जाए तो भी बहुत अच्छा है लेकिन प्रतिक्रमण जैसा तो कुछ भी नहीं।

प्रश्नकर्ता : हम अकर्ता हैं तो फिर यह अतिक्रमण करे या प्रतिक्रमण करे, जो भी करे, हमें क्या? हमें तो देखते रहना है न?

दादाश्री : 'हमें' देखते रहना है। अतिक्रमण कौन करता है, उसे प्रतिक्रमण करने के लिए कहना है कि, 'भाई, अतिक्रमण क्यों किया? इसलिए प्रतिक्रमण कर। अतिक्रमण नहीं किया होता तो हम तुझे नहीं कहते'।

प्रश्नकर्ता : क्या हम प्रतिक्रमण इसलिए करते हैं कि अपना अगला जन्म 'ईज़ी' (सरल) जाए, अच्छा जाए?

दादाश्री : साफ करने के लिए। दाग़ लग जाए तो उसे तुरंत साफ कर देते हैं। वर्ना फिर वापस धोने के लिए आना पड़ेगा। एक दाग़ लगे तो उसे धो डालो। अतिक्रमण हुआ यानी दाग़ लगा। चाहे किसी भी कलर का दाग़ लगे, उसे धो देने के बाद ही हमें बैठना है। उस समय चंदूभाई *आड़ाई* (अहंकार का टेढ़ापन) करे तो शाम को सब धो देना। पाँच-सात-दस अतिक्रमण हो गए हों तो इकट्ठे प्रतिक्रमण करके साफ कर देना है।

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण किया, वह चौथी आज्ञा 'समभाव से *निकाल*' का हिस्सा है?

दादाश्री : समभाव से *निकाल* और उसे लेना-देना नहीं न! फाइल का *निकाल,* वह तो अलग चीज़ है।

अक्रम मार्ग में प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : एक व्यक्ति को प्रतिक्रमण पर तो इतनी ज़्यादा चिढ़ कि वह हमें ऐसा कहता कि आप प्रतिक्रमण करते हो तो आप आत्मा नहीं हो। प्रतिक्रमण किया यानी आत्मा खो दिया।

दादाश्री : यह क्रमिक मार्ग ऐसा है कि आत्मा प्राप्त करने के बाद प्रतिक्रमण नहीं होते। वे (लोग) प्रतिक्रमण करते हैं तो आत्मा खो देते हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, हम जो प्रतिक्रमण करते हैं, वह आपकी आज्ञा अनुसार 'अलग रहकर करते हैं'?

दादाश्री : हाँ, 'चंदूभाई' करते हैं। जिसने भूल की है, जिसने अतिक्रमण किया है, वह प्रतिक्रमण करता है।

क्रमिक मार्ग में आत्मा प्राप्त होने के बाद प्रतिक्रमण नहीं होते। प्रतिक्रमण को 'पॉइज़न' माना जाता है। अपने यहाँ भी प्रतिक्रमण नहीं होता। हम प्रतिक्रमण चंदूभाई से करवाते हैं क्योंकि यह तो अक्रम है, यहाँ तो सब माल भरा पड़ा है। कैसा-कैसा माल भरा है, इसलिए कैसे निपट पाएगा? और लोगों को भीतर शंका रहती है कि यह किस प्रकार का? ये सब मैड (पागल) व्यक्ति, मोक्ष का सत्संग कैसे कर पाएँगे? अत: जगत् ने सारा बुन दिया था कि मैड को अधिकार ही नहीं है, मोक्ष का सत्संग करने का। शुभाशुभ का सत्संग करने का अधिकार है। तब मुझे कहना पड़ता है कि 'मैंने जिस ज्ञान की खोज की है, वह पूर्णतया उच्च प्रकार की खोज की है।

क्रमिक मार्ग में प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : क्या क्रमिक मार्ग में प्रतिक्रमण होते हैं?

दादाश्री : क्रमिक में प्रतिक्रमण होते हैं लेकिन क्रमिक में इस ग्रेड में प्रतिक्रमण नहीं होते। आत्मा प्राप्त हो जाने के बाद क्रमिक मार्ग में प्रतिक्रमण वह 'पॉइज़न' जैसा है। क्योंकि क्रमिक में अतिक्रमण करते ही नहीं है। उस ऊँचाई पर पहुँचा हुआ इंसान अतिक्रमण करता ही नहीं तो फिर प्रतिक्रमण किसके होते हैं? वे क्रमण के होते हैं और वे सैकड़ों में दो-पाँच प्रतिशत जितने ही अतिक्रमण होते हैं। उसका तो फल उसे मिलेगा। बाकी, वह अतिक्रमण करता ही नहीं।

हमें तो यहाँ पर अचानक ही ज्ञान मिला है न, इसलिए जैसा माल भरा था वह निकलता है, उसका प्रतिक्रमण करना पड़ता है।

क्रमिक मार्ग में शुद्धात्मा अनुभव होने के बाद प्रतिक्रमण नहीं करने पड़ते और अपना तो यह अक्रम मार्ग है न, इसलिए माल सारा थोक में भरा हुआ है और हम शुद्धात्मा बन गए। इसलिए अपना यह माल खाली होगा। वह प्रतिक्रमण करने से धुल जाएगा। लेकिन प्रतिक्रमण हमें खुद को नहीं करना है। हम शुद्धात्मा बन गए इसलिए हमें चंदूभाई से कहना है कि, 'भाई, आपने यह बिगाड़ा है, इसलिए आप ही सुधारो'। इस प्रतिक्रमण से लोगों के साथ का बैर भाव बंद हो जाएगा। आपकी इस भाई के साथ कुछ झंझट हो और वे भाई कुछ उल्टा-सीधा बोल गए हों तो और उससे आपको मन में दुःख हो गया हो, और इसलिए उनके लिए आपके विचार बिगड़ गए हों, बुरा सोचा हो तो आपको उनके शुद्धात्मा को याद करके प्रतिक्रमण कर लेना। उनके नहीं, सीधे उनके शुद्धात्मा से प्रतिक्रमण करना है और उस दोष से मुक्त होना है। 'फिर से नहीं करूँगा', इस तरह से प्रत्याख्यान करना है। उससे वह दोष धुल जाएगा।

शुक्लध्यान के बाद प्रतिक्रमण है पॉइज़न

यदि प्रतिक्रमण करने को नहीं कहूँगा तो नहीं चलेगा।

आप जो कहते हो वह बात बिल्कुल सही है कि प्रतिक्रमण वह 'पॉइज़न' माना जाता है। यदि शुक्लध्यान होने के बाद खुद प्रतिक्रमण करता है तब तो फिर वह शुक्लध्यान कहलाएगा ही नहीं। लेकिन यह प्रतिक्रमण खुद को नहीं करना है। यह प्रतिक्रमण आप किससे करवाते हो?

प्रश्नकर्ता : 'चंदूभाई' से करवाना है लेकिन चंदूभाई को कौन कहता है?

दादाश्री : यह भीतर जो प्रज्ञाशक्ति है, उस प्रज्ञा की शक्ति ही काम करती रहती है।

प्रश्नकर्ता : जो स्वाभाविक रूप से जा रहा है, उसे वापस मुकाम देता है।

दादाश्री : उससे ज़्यादा गहरे उतरोगे तो भीतर से कीचड़

निकलेगा। यह तो 'सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स' है। गरमी में हर कोई कहता है कि ओढ़ने के लिए कुछ नहीं चाहिए। सभी कहते हैं, लेकिन 'सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स' ओढ़ने का कहते हैं। गरमी में अगर बुखार आ जाए तो? ओढ़ने की ज़रूरत पड़ती है। यानी कि यह एक 'एविडेन्स' है। 'एविडेन्स' को इस तरह से नहीं नाप सकते कि 'गरमी में मना कर रहे थे तो अब ओढ़ने का क्यों माँग रहे हो?' 'अरे भाई, बुखार आया है, आपको तो ओढ़ना है। तू समझता नहीं है।' यह (प्रतिक्रमण) खुद को नहीं करना है। चंदूभाई से प्रतिक्रमण करवाना है। जो अतिक्रमण वह 'खुद' नहीं करता है तो फिर उसे प्रतिक्रमण क्यों करना है?

नहीं है ज़रूरत 'उसे' प्रतिक्रमण की

जब ज्ञान देते हैं तब कहते हैं, 'तू शुद्धात्मा है', एक्ज़ेक्ट? हाँ। तो अब क्या बचा? वह है तेरा 'व्यवस्थित'। व्यवस्थित का अर्थ क्या है? चंदूभाई क्या करते हैं, उसे देखते रहना, वह है व्यवस्थित का अर्थ। जैसे, चंदूभाई किसी का दो लाख का नुकसान कर दे तो तब भी हमें देखते रहना है। फिर यदि समझ में नहीं आता तब कहते हैं 'प्रतिक्रमण कर'। 'व्यवस्थित' यानी जो है उसे एक्ज़ेक्ट देखते रहो। तो आप मुक्त हो गए।

प्रतिक्रमण किस चीज़ के करने हैं? 'अपने' 'विपरिणाम' की वजह से ये जो संयोग मिलते हैं, वे (विपरिणाम) प्रतिक्रमण से मिट जाते हैं। वास्तव में दरअसल साइन्टिस्ट को प्रतिक्रमण की ज़रूरत ही नहीं है। यह तो इसलिए है कि लोग भुलावे में आ जाते हैं। असल साइन्टिस्ट तो इसमें उँगली डालेंगे ही नहीं। 'द वर्ल्ड इज़ द साइन्स' (यह संसार विज्ञान है)!

उसमें नहीं है ज़रा सा भी विरोधाभास

प्रश्नकर्ता : आपकी वाणी निमित्त अधीन है न, इसलिए कई बार 'दादा' प्रतिक्रमण करने के लिए मना करते हैं, कई बार प्रतिक्रमण करने के लिए कहते हैं, तो ऐसा क्यों?

दादाश्री : हम ऐसा नहीं कहते कि 'प्रतिक्रमण करने की ज़रूरत

नहीं है' और कभी कह दिया हो तो उसका ऐसा कोई खास महत्व नहीं होता, वह तो संयोग ऐसे होते हैं। वह वाणी तो संयोगानुसार निकलती है।

प्रश्नकर्ता : इसलिए यह 'पज़ल' खड़ी हो गई है।

दादाश्री : नहीं, पज़ल खड़ी करने की ज़रूरत ही नहीं है।

हमारा वाक्य हमेशा एक तरफा नहीं होता। सब संयोग के अनुसार होता है और 'डिपेन्ड अपॉन' (आधारित), सामने वाले के संयोग कैसे हैं!

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : अगर कोई ऐसा हो, जो ऊब जाए तब हम ऐसा करके भी उसे आगे लाते हैं। अब यदि सामने वाला ऐसा हो कि ऊब जाए और ऊपर से यह प्रतिक्रमण का बोझ डाल दें तो? इसलिए उसे हम कहते हैं कि 'यह करने की ज़रूरत नहीं है। तू तेरा बाकी का सब कर'। ऐसा करके हम उसे आगे बढ़ाते हैं। यानी हम संयोग अनुसार वाणी बोलते हैं लेकिन मूल अभिप्राय तो हमारा यही रहता है कि 'प्रतिक्रमण करना चाहिए'।

प्रश्नकर्ता : उसका उल्लास टूट न जाए, इसलिए...

दादाश्री : वह इतना कर रहा हो और उसमें फिर प्रतिक्रमण आ जाए, तब उससे बोझ सहन नहीं हो पाता तो वह सबकुछ फेंक देता है इसलिए मुझे सब को अलग-अलग तरह का कहना पड़ता है।

यानी फिर हम बाद में कह देते हैं कि 'हमारी वाणी संयोगों के अधीन निकलती है, संयोगों के अनुसार' तो लोग उसे उल्टा नहीं पकड़ते। लेकिन जिसे उल्टा पकड़ना हो, उसे सब मिल जाता है। और उल्टा पकड़े उसका भी हर्ज नहीं है। जो उल्टा पकड़ता है, वही उस उल्टे को निकाल फेंकता है। यह विज्ञान ही ऐसा है कि यदि वह उल्टा पकड़ ले न, तो फिर वही उसे चुभता है। इसलिए उसकी हमें वरीज़ (चिंता) नहीं करनी है।

इसलिए हमने क्या कहा है कि अतिक्रमण किया तो प्रतिक्रमण करो और यदि प्रतिक्रमण हो रहा हो तो देखते रहो।

क्या आत्मा को माफी माँगना है?

प्रश्नकर्ता : यह जो क्षमा माँगता है, वह प्रतिष्ठित आत्मा ही माँगता है न?

दादाश्री : हाँ, मूल आत्मा को माँगने की ज़रूरत ही क्या है? जो गुनाह करता है, उसे माँगने की ज़रूरत है। प्रतिष्ठित आत्मा ने गुनाह किया है, इसलिए प्रतिष्ठित आत्मा (माफी) माँगता है।

यह अतिक्रमण तो क्या, बाकी का सब भी चंदूभाई ही करते हैं! उसमें आत्मा कुछ नहीं करता। वह तो सिर्फ प्रकाश ही देता है।

महावीर ने भी देखा निज पुद्‌गल को ही

दादाश्री : अब किस प्रकार का भय आए, ऐसा लगता है?

प्रश्नकर्ता : मुझे क्या भय रहा? अब सबकुछ आपको सौंपने के बाद मुझे उसका क्या करना है?

दादाश्री : लेकिन आपको किसी प्रकार की घबराहट तो नहीं होती न? यदि यह सौंप दिया हो तो किंचित्‌मात्र घबराहट नहीं रहती और थरथराहट भी नहीं रहती, इतना अच्छा है। जितना आपको सौंपना आ गया उतना काम का, सौंपकर फिर आराम से खाओ न, टेबल पर बैठकर! कोई बाप भी नहीं डाँटने वाला। कोई *ऊपरी* (बॉस) है ही नहीं। *ऊपरी* थे, वे आपकी भूलें और आपके 'ब्लन्डर्स'। 'ब्लन्डर्स' दादा ने तोड़ दिए और 'भूलें' हमें धोनी पड़ेगी। थोड़ी-बहुत, पाँच-दस, किसी दिन भूलें दिखाई देती हैं क्या?

प्रश्नकर्ता : थोड़ी-थोड़ी दिखने लगी हैं, पाँच-पाँच, दस-दस भूलें दिखाई देती हैं और उनके लिए क्षमा माँगता हूँ।

दादाश्री : नहीं, उसका प्रतिक्रमण सीखना पड़ेगा। अभी कोई

आचार्य महाराज हों, वे कहेंगे कि 'आप आत्मज्ञान प्राप्त करने के बाद प्रतिक्रमण क्यों करते हो?' लेकिन यह अक्रम मार्ग है इसलिए हमें क्या करना है? खुद को नहीं करना है लेकिन आपको चंदूभाई से कहना है कि, 'चंदूभाई, आपने यह अतिक्रमण किया है, इसलिए प्रतिक्रमण करो।' क्योंकि 'हम' तो छूट (मुक्त हो) गए लेकिन जब ये 'चंदूभाई' छूट जाएँगे तभी 'हम' छूट पाएँगे। इन परमाणुओं को साफ करके भेजना पड़ेगा। 'अपने' निमित्त से बिगड़े हैं।

प्रश्नकर्ता : चंदूभाई का झमेला बाकी है अभी, उसे शुद्ध करो।

दादाश्री : हाँ, वह इन दादा की विधि करता है, तो आत्मा, वह विधि नहीं करता। हमें चंदूभाई से कहना है कि 'भाई, दादा की विधि कर लो। अभी तो हमें स्वच्छ करना है'। हमें आत्मा होकर जानते रहना है कि आज दादा की विधि की, कैसी की, कैसी नहीं, वह सब हमें जानते रहना है।

निरंतर जानना, वह 'अपना' काम और निरंतर करना, वह 'चंदूभाई' का काम। 'चंदूभाई' नौकर और 'हम' सेठ। हाँ!

प्रश्नकर्ता : अच्छा हुआ, मैं सेठ बन गया, जम गया यह तो!

दादाश्री : हाँ, और फिर 'चंदूभाई' नौकर यानी अब आपको रौब जमाना है और कहना है कि 'टेबल पर बैठकर खाओ 'चंदूभाई'। रौब से खाओ। अब हम हैं आपके साथ'। तब कहेगा, 'महाराज मना कर रहे थे न!' तब कहना, 'महाराज मना करें लेकिन आप रौब से खाओ। अब हमें दादा मिल गए हैं, टेबल का उपयोग तो करो'! नहीं हो तो ले आना!

जिसने अतिक्रमण किया है, उसी से प्रतिक्रमण करवाना है। 'हमें' नहीं करना है। हम उसे जानने वाले, चंदूभाई क्या कर रहे हैं, आप उन्हें जानने वाले, फिर क्या हर्ज है? भगवान महावीर भी यही करते थे। भगवान महावीर एक ही *पुद्गल* (जो पूरण और गलन होता है) को देखते रहते थे, निरंतर। इन सभी लोगों के *पुद्गल* को नहीं देखते थे। एक (खुद का) ही *पुद्गल* देखते थे।

'मेरा नहीं है' वह किसे होता है?

प्रश्नकर्ता : दादा, ऐसा लगता है कि 'यह मेरा नहीं है' फिर भी वहाँ पकड़ लेते हैं।

दादाश्री : उसमें हर्ज नहीं है। वह कौन पकड़ा गया?

प्रश्नकर्ता : हम जानते हैं कि यह चीज़ गलत है, नहीं करनी चाहिए, फिर भी हो जाती है।

दादाश्री : लेकिन चंदूभाई से हुआ, ऐसा कहा जाएगा न! हम कहाँ करते हैं?

प्रश्नकर्ता : तब हमें ऐसा हो जाता है कि इन 'चंदूभाई' में कितनी नालायकी भरी है?

दादाश्री : नहीं, नहीं, 'चंदूभाई' पकड़े जाते हैं क्योंकि 'चंदूभाई' ने किया है इसलिए पकड़े जाते हैं। इसलिए बलपूर्वक कहो, 'प्रतिक्रमण करो'। अतिक्रमण क्यों किया? इसलिए प्रतिक्रमण करो। चंदूभाई पकड़े जाते हैं, 'आप' तो नहीं पकड़े जाते न?

आपको तो पड़ोसी की तरह चंदूभाई से ऐसा कहना है कि, 'ऐसे दोष करके क्या आप छूट पाओगे? 'आपको' हम से अलग हो जाना है और 'आपको' शुद्ध बनना है। इसलिए आप प्रतिक्रमण करो'। अतिक्रमण हो जाए तो प्रतिक्रमण करना है। अच्छा हो जाए उसका प्रतिक्रमण नहीं करना है।

उससे अलग होता जाएगा

प्रश्नकर्ता : कुछ प्रकार की जो पकड़ पकड़ी हुई हों उन्हें हम जानते हैं कि वे गलत हैं, ऐसा नहीं होना चाहिए। इच्छा नहीं हो फिर भी वैसी पकड़, पकड़ लेते हैं। बाद में पछतावा होता है, प्रतिक्रमण होता है लेकिन वे पकड़ छूटती क्यों नहीं?

दादाश्री : उन्हें हम (प्रतिक्रमण करके) छोड़ते हैं और छूट

जाते हैं। यदि प्रतिक्रमण करेंगे तो छूट जाएँगी। जैसे-जैसे उसके प्रतिक्रमण करेंगे, वैसे-वैसे वह अलग (पृथक) होती जाएँगी। जितने प्रतिक्रमण करेंगे, उतनी ही दूर होती जाएँगी।

प्रश्नकर्ता : फिर दादा की फोटो के समक्ष आकर रोती भी हूँ।

दादाश्री : हाँ, लेकिन जितने प्रतिक्रमण करते हैं, उतने ही अलग। एक प्रतिक्रमण किया और धक्का मारा, दूसरा प्रतिक्रमण किया और धक्का मारा। इस प्रकार जैसे-जैसे दूर होता जाएगा, वैसे-वैसे कम होता जाएगा। ये बहन अब तीन महीने में एक बार ही घर में बखेड़ा करती है। पहले रोज़ दो-चार बार करती थी यानी नब्बे दिन में तीन सौ साठ बार करती थी। जबकि अब एक बार ही करती है! आपका भी ऐसा हो जाएगा। इसी की तरह दूसरी एक बहन भी रोज़ घर में झगड़ा करती थी। उल्टा-उल्टा बोलती रहती थी। प्रतिक्रमण करने से ही उसका अलग होने लगा। वह रोज़ प्रतिक्रमण करती है।

प्रश्नकर्ता : इस संसार की एक भी चीज़ नहीं भोगनी है ऐसा निश्चय है, लेकिन जब अंदर से कोई ऐसी इच्छा होती है तो उस अनुसार बरताव हो जाता है, तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : तो उसका प्रतिक्रमण करना चाहिए। माफी माँगना है कि नई इच्छा नहीं होने के बावजूद भी यह गुनाह किया उसके लिए क्षमा माँगती हूँ। फिर से ऐसा नहीं करूँगी, अतः क्षमा करना।

प्रतिक्रमण, वह है पौद्गलिक लेकिन है पुरुषार्थ

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण को पौद्गलिक कहा है तो वह 'व्यवस्थित' के अधीन हुआ न?

दादाश्री : नहीं। प्रतिक्रमण, वह आत्मा नहीं है, वह पौद्गलिक है लेकिन वह पुरुषार्थ है, जागृति के अधीन है। जागृति, वही पुरुषार्थ है। जागृति रहे तो फिर करना नहीं पड़ता, होता रहता है।

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण में ऐसा करता हूँ कि अनंत जन्मों के

पुद्गल (जो पूरण और गलन होता है) के पर्याय किए हों, अंतराय किए हों, उसका प्रतिक्रमण करता हूँ।

दादाश्री : हम तो दोषों का प्रतिक्रमण करते हैं, उसमें *पुद्गल* पर्याय आ ही जाते हैं।

जगत् चलाता है पुद्गल

प्रश्नकर्ता : *पुद्गल* अतिक्रमण कैसे करता है?

दादाश्री : *पुद्गल* सिर्फ अतिक्रमण ही नहीं करता, यह सारा जगत् ही *पुद्गल* चला रहा है। लड़ाईयाँ भी *पुद्गल* कर रहा है। यह सब *पुद्गल* कर रहा है। ज्ञानियों की भाषा दूसरों को कैसे समझ में आएगी? ज्ञानी देखकर कहते हैं, जबकि दूसरों को प्रतीति में लाना है। यह सब *पुद्गल* ही है।

प्रश्नकर्ता : *पुद्गल* का जो भी होता है, वह व्यवस्थित के अनुसार ही होता रहता है तो फिर वह अतिक्रमण कैसे कर सकता है?

दादाश्री : क्रमण कर सकता है और अतिक्रमण भी कर सकता है। सबकुछ वही करता है न?

प्रश्नकर्ता : वह तो, *पुद्गल* में जब आत्मा का चेतन मिलता है तभी होता है न?

दादाश्री : उसी को *पुद्गल* कहते हैं। ये जो *पुद्गल* परमाणु हैं, उन्हें हम *पुद्गल* कहते हैं, सिर्फ उतना ही है। वे परमाणु हैं, उस *पुद्गल* को तो भगवान ने 'मिश्रचेतन' कहा है। *पुद्गल* परमाणु अर्थात् क्या? मिश्रचेतन। चैतन्यभाव से भरा हुआ, उसका *पूरण* (चार्ज) होता है, वह दूसरे जन्म में *गलन* (डिस्चार्ज) होता है। वापस 'चार्ज' होता है। *पूरण* से 'चार्ज' होता है व *गलन* से 'डिस्चार्ज' होता है और अतिक्रमण, वह *गलन* है। ज्ञान के बाद भी यदि अतिक्रमण आत्मा द्वारा होता है तो *पूरण* है। स्व-परिणति से हुआ हो तो *पूरण* है। पर-परिणति से हुआ हो तो *गलन* है।

प्रश्नकर्ता : यह सब चंदूभाई करते हैं लेकिन उन्हें तो राग वगैरह कुछ नहीं होता, तो फिर उन्हें अतिक्रमण क्या और प्रतिक्रमण क्या?

दादाश्री : राग-द्वेष सब चंदूभाई (बावा) को ही हैं।

माफी कौन किससे माँगता है?

अपना यह जो प्रतिक्रमण है, वह अतिक्रमण होने पर प्रतिक्रमण है। क्रमण के लिए नहीं है। हम सामने वाले के शुद्धात्मा को फोन करते हैं, वह उन्हें तुरंत पहुँच जाता है फिर उनका शुद्धात्मा आपका फोन *पुद्गल* तक पहुँचाता है। प्रतिक्रमण व्यक्तियों के लिए करने होते हैं, जड़ के लिए नहीं।

प्रश्नकर्ता : आप शुद्धात्मा हो, इसलिए आपको प्रतिक्रमण नहीं करना है। जिसने अतिक्रमण किया है, उसे करना है। उसने भी शुद्धात्मा के प्रति नहीं किया है, वह सामने वाले के *पुद्गल* के प्रति होता है। तो हम प्रतिक्रमण में जो माफी माँगते हैं, वह माफी सामने वाले के शुद्धात्मा से माँगनी है या उसके *पुद्गल* से माफी माँगनी है?

दादाश्री : शुद्धात्मा से माफी माँगनी है। फिर वह माफी माँगने वाला कौन है? *पुद्गल*! और वह सामने वाले के शुद्धात्मा से माँगनी है। 'हे शुद्धात्मा भगवान! आपकी साक्षी में माफी माँगता हूँ।'

प्रतिक्रमण भी पुद्गल का

प्रश्नकर्ता : हम जो प्रतिक्रमण करते हैं, वह *पुद्गल* का करते हैं या किसका करते हैं?

दादाश्री : *पुद्गल* का ही, और किसका?

प्रश्नकर्ता : *पुद्गल* का न! तो उसी तरह अपने *पुद्गल* का भी प्रतिक्रमण हो सकता है या नहीं?

दादाश्री : अपने ही *पुद्गल* का करना है। सामने वाले के *पुद्गल* का तो जब उसे नुकसान पहुँचाया हो, तब करना पड़ता है, वर्ना अपने ही *पुद्गल* का प्रतिक्रमण करना है न?

प्रश्नकर्ता : अपने *पुद्‌गल* का प्रतिक्रमण कौन करता है?

दादाश्री : वह सब अपनी प्रज्ञा करती है। (प्रज्ञा चंदूभाई से करवाती है।)

प्रतिक्रमण करने के लिए कहता है कौन?

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादा, हम बोलते हैं कि, 'मन-वचन-काया से बिल्कुल भिन्न ऐसे शुद्धात्मा!', ऐसा बोलते हैं न, तो फिर *पुद्‌गल* का क्यों कहलाता है?

दादाश्री : वह तो, शुद्धात्मा से माफी माँगते हैं कि मुझसे यह भूल हो गई, उसके लिए माफी माँगता हूँ।

प्रश्नकर्ता : लेकिन माफी शुद्धात्मा से माँगनी है और प्रतिक्रमण *पुद्‌गल* का करना है?

दादाश्री : नहीं, प्रतिक्रमण और माफी, दोनों एक ही चीज़ है। उसके शुद्धात्मा से माफी माँगनी है कि आपके प्रतिष्ठित आत्मा के प्रति मुझसे जो भूल हुई है, उसके लिए माफी माँगता हूँ।

प्रश्नकर्ता : जिस व्यक्ति ने ज्ञान नहीं लिया हो, क्या उसे भी इसी तरह से प्रतिक्रमण करना है?

दादाश्री : (उससे) नहीं हो सकता। ऐसा नहीं चलेगा! जिसने ज्ञान नहीं लिया हो, उसे तो यों ही माफी माँग लेनी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : हमने ज्ञान लिया हो और सामने वाले ने ज्ञान नहीं लिया हो तो?

दादाश्री : सामने वाले ने ज्ञान नहीं लिया है तो हर्ज नहीं है। हम प्रतिक्रमण कर सकते हैं।

प्रश्नकर्ता : वह जो भीतर चंदूभाई से कहता है कि 'आपने यह भूल की है, इसलिए प्रतिक्रमण करो', तो वह कहने वाला कौन है? कौन ऐसा कहता है?

दादाश्री : वह अपनी प्रज्ञा नाम की जो शक्ति है न, वह सचेत करती है कि आप यह प्रतिक्रमण करो।

प्रश्नकर्ता : जब हम प्रतिक्रमण करते हैं, तब वास्तव में *पुद्‌गल,* शुद्धात्मा का (प्रतिक्रमण) करता है न?

दादाश्री : वह अपने शुद्धात्मा का करता है, अपना शुद्धात्मा यानी यह प्रज्ञाशक्ति। इस प्रतिक्रमण में प्रज्ञाशक्ति और शुद्ध चेतन काम करते हैं।

प्रश्नकर्ता : अतिक्रमण अन्य के लिए नहीं बल्कि खुद अपने लिए भी हो सकता है?

दादाश्री : खुद का तो अपने शुद्धात्मा के समक्ष करना है। हमें क्या कहना है कि 'हे चंदूभाई, प्रतिक्रमण करो, आप क्यों ऐसी भूलें करते हो?'

अलग हैं, दोष और दोष को जानने वाला

प्रश्नकर्ता : यदि दोष को जानते हैं तो उसे दोष कैसे कह सकते हैं?

दादाश्री : यदि 'आप' जानने वाले हो तो जानने वाले का दोष नहीं है। लेकिन चंदूभाई क्या कर रहे हैं, उसे खुद जानता है। क्रमण का हर्ज नहीं है लेकिन जब चंदूभाई किसी को डाँटते हैं, तब 'खुद' चंदूभाई को ऐसा कहना है कि 'आपका दोष है'। यह अक्रम है, इसमें देखने का माल सिर्फ शुभ ही हो तो हर्ज नहीं है।

प्रश्नकर्ता : यदि ज्ञायक हो तो फिर अशुभ में भी क्या हर्ज है?

दादाश्री : ऐसी जागृति रहती नहीं न! इसलिए हम प्रतिक्रमण करने के लिए कहते हैं।

यह जो पैकिंग है, वह आत्मा के प्रतिबिंब जैसा बन जाना चाहिए। इस पैकिंग को भी भगवान जैसा बनाना है। इसलिए प्रतिक्रमण

करना है न! क्रमिक मार्ग में तो सब शुभ ही होता है। इसलिए उन्हें प्रतिक्रमण नहीं होता। वहाँ तो प्रतिक्रमण को दोष माना है। वहाँ तो क्रमण, सिर्फ शुभ ही होता है।

तो प्रतिक्रमण नहीं

प्रश्नकर्ता : किसी के प्रति बुरे विचार आएँ तो प्रतिक्रमण करना है क्या?

दादाश्री : हाँ, वे विचार तुरंत उसे पहुँचते हैं और उसका मन बिगड़ जाता है। यदि प्रतिक्रमण करोगे तो उसका मन बिगड़ा हो फिर भी सुधर जाता है। किसी के बारे में कुछ भी बुरा नहीं सोचना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : किसी के लिए बुरा विचार आए तो उस विचार को मैं देखता हूँ।

दादाश्री : आप देखने वाले हो तो हर्ज नहीं है। लेकिन यदि देखना रह जाए तो प्रतिक्रमण करना है। देखने से अपने आप खत्म हो जाता है। उस विचार को ज्ञान से 'करेक्ट' देख सकते हों तो हर्ज नहीं है।

प्रश्नकर्ता : यदि अलग रहकर देख पाते तो ऐसे विचार ही नहीं आते।

दादाश्री : आते हैं, बिल्कुल अलग रहो फिर भी आएँगे। वह तो भरा हुआ माल है न! 'इफेक्ट' आए बगैर नहीं रहती।

जहाँ ज्ञाता-द्रष्टा वहाँ दोष खत्म

प्रश्नकर्ता : यदि खुद से ही दोष हुए हों तो?

दादाश्री : उन्हें तो देखना है। यदि औरों के दोष दिखाई दें तो प्रतिक्रमण करके खत्म कर देना है।

प्रश्नकर्ता : यदि हम दोष के ज्ञाता-द्रष्टा रहें तो वे धुल जाते हैं न, या फिर प्रतिक्रमण करना पड़ता है?

दादाश्री : फिर दोष ही नहीं रहा न! यह तो उस समय पता ही नहीं चलता कि खुद ऐसा 'ज्ञाता-द्रष्टा' नहीं रह पाया।

जहाँ ज्ञाता-द्रष्टा, वहाँ नहीं करना है कुछ

जागृति हो तभी ज्ञाता-द्रष्टा रह सकता है और जागृति हो तभी प्रतिक्रमण हो पाते हैं। प्रतिक्रमण अब 'आपको' नहीं करने हैं। जो 'ज्ञाता-द्रष्टा' है, वह 'करता नहीं' और जो 'करता है', वह 'ज्ञाता-द्रष्टा' नहीं है। यानी प्रतिक्रमण चंदूभाई को ही करना है। जिसने अतिक्रमण किया है, उसे ही 'हमें' कहना है कि, 'आप' प्रतिक्रमण करो। जो आक्रमण करता है, उसे ही कहना है, आप प्रतिक्रमण करो। आप चंदूभाई को प्रतिक्रमण करने के लिए कहते हो तो आप यदि शुद्धात्मा हो तभी ऐसा हो सकता है।

अहंकार, अतिक्रमण व प्रतिक्रमण में

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण कौन करता है?

दादाश्री : जो अतिक्रमण करता है, वह।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अतिक्रमण कौन करता है?

दादाश्री : अतिक्रमण, वह अहंकार करता है।

प्रश्नकर्ता : यदि अतिक्रमण अहंकार करता है तो प्रतिक्रमण भी अहंकार को ही करना है?

दादाश्री : हाँ, प्रतिक्रमण भी अहंकार को ही करना है। लेकिन चेतावनी किसकी? प्रज्ञा की। प्रज्ञा कहती है, 'अतिक्रमण क्यों किया?' प्रज्ञा क्या कहती है? 'अतिक्रमण क्यों किया? तो प्रतिक्रमण करो।'

प्रश्नकर्ता : यानी प्रज्ञा 'रिलेटिव' में से आती है या 'रियल' में से?

दादाश्री : वह 'रियल' में से आती है। यानी वह 'रियल' में से उत्पन्न होने वाली शक्ति है। दो तरह की शक्तियाँ हैं। रियल में से उत्पन्न होने वाली शक्ति, वह है 'प्रज्ञा' और रिलेटिव में से उत्पन्न होने

वाली शक्ति, वह 'अज्ञा' कहलाती है। अज्ञा, वह संसार के बाहर निकलने ही नहीं देती और प्रज्ञा तो मोक्ष जाने तक छोड़ती ही नहीं। जिस समय यहाँ से शरीर छूटा और मोक्ष की तैयारी हुई, उसी समय प्रज्ञा आत्मा में समाविष्ट हो जाती है, वह कोई अलग शक्ति नहीं है।

प्रश्नकर्ता : यानी अहंकार 'रिलेटिव' में ही आता है न?

दादाश्री : वह सब रिलेटिव में ही जाता है।

प्रश्नकर्ता : दादा, रियल और रिलेटिव, दोनों अलग हैं, तो फिर हमें बीच में पड़ने की क्या ज़रूरत आ पड़ी? प्रतिक्रमण करने की क्या ज़रूरत है? हमें रिलेटिव में पड़ने की क्या ज़रूरत?

दादाश्री : 'रिलेटिव' में पड़ने की ज़रूरत नहीं है लेकिन सामने वाले को दु:ख हो गया इसलिए 'हमें' चंदूभाई से (खुद से) कहना चाहिए कि, 'भाई, इसे दु:ख क्यों दिया? इसलिए आप प्रतिक्रमण करो'। बस, यानी धो डालना है। दाग़ लगते ही धो डालना है। हमें 'रिलेटिव' कपड़ा भी साफ रखना है।

प्रश्नकर्ता : दादा, यह जो दु:ख देता है, वह 'रियल' देता है?

दादाश्री : 'रियल' तो कुछ करता ही नहीं है। सब 'रिलेटिव' में ही है और दु:ख भी 'रिलेटिव' को ही पहुँचता है, 'रियल' को पहुँचता ही नहीं है।

दु:ख किसे होता है?

प्रश्नकर्ता : यह जो दु:ख होता है, वह सामने वाले के अहंकार को होता है?

दादाश्री : हाँ, अहंकार को दु:ख हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : तो प्रतिक्रमण करने की क्या ज़रूरत है? वापस रिलेटिव में जाने की क्या ज़रूरत है?

दादाश्री : लेकिन उसे जो दु:ख हुआ, उसका दाग़ अपने रिलेटिव

पर रहा न! रिलेटिव को दाग़ वाला नहीं रखना है। अंत में साफ करना पड़ेगा। इस कपड़े को साफ रखना है। क्रमण में हर्ज नहीं है। क्रमण यानी यों ही मैला हो जाए उसमें हर्ज नहीं है। मैला हो जाता है, उसमें हर्ज नहीं है लेकिन दाग़ पड़ जाए तो उसे तुरंत धो देना है।

प्रश्नकर्ता : यानी 'रिलेटिव' को साफ रखना ज़रूरी है?

दादाश्री : ऐसा नहीं है। 'रिलेटिव' पुराना होगा, कपड़ा पुराना हो जाए उसमें हर्ज नहीं है लेकिन क्रमण से एकदम दाग़ लग जाए तो वह अपने विरुद्ध कहा जाएगा इसलिए उस दाग़ को धो देना चाहिए। यानी ऐसा अतिक्रमण हो जाए तो प्रतिक्रमण करो। वह कभी कभार होता है, रोज़ नहीं होता और यदि प्रतिक्रमण नहीं हो पाए तो कोई बहुत बड़ा गुनाह नहीं है, लेकिन प्रतिक्रमण करना अच्छा है।

प्रश्नकर्ता : यदि अतिक्रमण करने की सत्ता अपने हाथ में नहीं है तो प्रतिक्रमण करने की (सत्ता) अपने हाथ में कैसे हो सकती है?

दादाश्री : अतिक्रमण की सत्ता नहीं है। लेकिन यह प्रतिक्रमण तो भीतर सचेत करता है, भीतर जो चेतन है न, प्रज्ञाशक्ति, वह सचेत करती है।

स्थूल और सूक्ष्म में प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : तो फिर प्रतिक्रमण कौन करता है?

दादाश्री : जो अतिक्रमण करता है, उसी से प्रतिक्रमण करवाए जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : मुझे स्थूल बात बताइए न, कि यह प्रतिक्रमण शरीर करता है न? मैं चंदूभाई से जाकर कहूँ कि, 'मैंने आपको कल (दुःख) दिया था, मुझे माफ करो'। वहाँ जाकर वह प्रतिक्रमण शरीर करता है यानी यह स्थूल चीज़ हुई, तो उसमें सूक्ष्म चीज़ कौन सी है?

दादाश्री : क्यों? अंदर जो प्रतिक्रमण करने का भाव हुआ, वह सूक्ष्म है और बाहर जो हुआ, वह स्थूल है। यह स्थूल नहीं हुआ तो

चलेगा। यानी सूक्ष्म कर ले तो भी बहुत हो गया। जिसने अतिक्रमण किया है उसी से प्रतिक्रमण करवाना है कि, 'भाई, तू कर। तूने अतिक्रमण किया है, इसलिए तू प्रतिक्रमण कर। तू प्रतिक्रमण कर और शुद्ध हो जा'। यों इस अतिक्रमण वाले को तोड़ देना है कि 'भाई, अब क्यों ऐसा करते हो?' प्रतिक्रमण जैसा कोई रास्ता नहीं है।

यदि 'साइन्टिफिक' रूप से यह ज्ञान रहे तो मौन रहने में भी हर्ज नहीं है लेकिन लोगों को 'साइन्टिफिक' रूप से रह नहीं पाता इसलिए आपको ऐसा कुछ बोलना चाहिए। क्योंकि जो बोलता है, वह शुद्धात्मा नहीं (बोलता) है, वह तो प्रज्ञा नामक शक्ति बोलती है। यानी शुद्धात्मा तो बोलता ही नहीं है न! इसलिए प्रज्ञा नामक शक्ति कहती है कि 'ऐसा क्यों करते हो? ऐसा नहीं होना चाहिए'। इतना कहा तो बहुत हो गया। या फिर यदि ऐसा वर्तन हो जाए कि किसी को बुरा लगा तो प्रज्ञा नामक शक्ति चंदूभाई से कहती है कि 'आप प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान करो', बस इतना ही। इसमें कुछ कठिन है क्या?

बार-बार प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण एक बार किया लेकिन बाद में फिर से वापस ऐसा अतिक्रमण करेगा तो?

दादाश्री : फिर से हो जाए तो फिर से प्रतिक्रमण करना है। फिर से प्रतिक्रमण करो, सब बंद हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण की बात शब्द से नहीं, लेकिन अनुभव से पकड़ता है तो उसे तुरंत ही समझ में आ जाता है। उसका परिणाम आता है।

दादाश्री : वह तो अपने महात्माओं को अनुभव हो गए हैं, लेकिन बाहर वालों को अनुभव होने में देर लगेगी न! जितना उल्टा चलते हैं, उतने प्रतिक्रमण करते हैं यानी वापस लौटते हैं, फिर क्या नुकसान रहा?

प्रश्नकर्ता : फिर नुकसान नहीं रहेगा।

सीधा चढ़ा हुआ

दादाश्री : ज्ञान के बाद भीतर सीधा ही चलता रहता है। पहले तो सारा दिन भीतर उल्टा ही चलता रहता था। यह ज्ञान सीधा ही करता रहता है। तू सामने वाले को धौल लगा दे तो भी भीतर कहेगा, 'नहीं, नहीं, ऐसा नहीं करना चाहिए, प्रतिक्रमण करो' और पहले तो, जब ज्ञान नहीं लिया था तब, तू (धौल) लगा देता और कहता भी था कि, 'और लगाना चाहिए। ऐसा करना ही चाहिए।' यानी यह जो आपके अंदर चलता रहता है न, वह समकित बल है, ज़बरदस्त बल है! वह रात-दिन चलता रहता है, निरंतर चलता रहता है!

प्रश्नकर्ता : ये सारा काम प्रज्ञा कर रही है?

दादाश्री : हाँ, प्रज्ञा काम कर रही है। मोक्ष ले जाने के लिए यह सारे बोरिया-बिस्तर घसीटकर मोक्ष ले जाती है।

'अक्रम' में क्षायक प्रतीति

जब किसी से झगड़ा हो जाए तब अपने महात्माओं की प्रतीति नहीं जाती। *लक्ष* (जागृति) चूक जाता है, लेकिन प्रतीति नहीं जाती। क्योंकि यह प्रतीति क्षायक प्रतीति है। प्रतीति एक क्षण के लिए भी नहीं जाती। झगड़ा करते समय भी नहीं जाती। यदि किसी से झगड़ा करते हैं तो हम डाँटते नहीं हैं। यदि ज्ञानी-ज्ञानी झगड़ें तो हम डाँटते नहीं हैं। हम जानते हैं कि 'फाइल का *निकाल* कर रहे हैं'। बाद में तुरंत ही प्रतिक्रमण करने लगते हैं। हमें कहना नहीं पड़ता, अपने आप ही प्रतिक्रमण करने लगते हैं। इसमें इस तरह प्रतिक्रमण होते हैं।

वह खुद शुद्धात्मा है और भीतर यह जो क्रिया करने वाला है, उसे प्रज्ञाभाव कहते हैं और वह प्रज्ञाभाव से उनसे (चंदूभाई) कहता है, 'आप प्रतिक्रमण करो'। ऐसे अलग तरह से बात होती है। वह खुद (प्रज्ञाभाव) चंदूभाई से कहता है कि, 'आप प्रतिक्रमण करो। आपने ऐसा किया, अतिक्रमण किया इसलिए प्रतिक्रमण करो'। अतिक्रमण यानी आप आ रहे हों और उनके (सामने वाले के) भाव में ज़रा सा बदलाव आ

जाता है, आपको पता नहीं चलता है, किसी को भी पता नहीं चलता लेकिन खुद तो जानता है न, कि 'मेरा भाव बदल गया था'। इसलिए तुरंत ही कहता है कि, 'उनके नाम से प्रतिक्रमण करो'। आपके नाम से प्रतिक्रमण करता है, 'शूट ऑन साइट!' एक भी प्रतिक्रमण बाकी नहीं रहता।

पड़ोसीभाव से प्रतिक्रमण करवाने हैं

प्रश्नकर्ता : निश्चय का *लक्ष* (जागृति) रखा है, शुद्धात्मा 'कर्मबंध' करता ही नहीं, तो फिर प्रतिक्रमण क्यों करने हैं?

दादाश्री : पड़ोसी भाव है यह। पड़ोसी का हम ध्यान रखते हैं, निकट के पड़ोसी 'फर्स्ट नंबर', इसलिए हमें उसे समझाना चाहिए कि, 'भाई, आपने यह अतिक्रमण किया है इसलिए प्रतिक्रमण करना। वर्ना जोखिमदारी आएगी। अतिक्रमण का प्रतिक्रमण तो करना ही पड़ता है। ऐसा नहीं है कि यह अक्रम मार्ग मिला है, उससे कहीं ये (अतिक्रमण) यों ही खत्म नहीं होंगे। कोई भी चीज़ अपने आप खत्म नहीं होती। प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान-आलोचना के बगैर इस जगत् में कोई चीज़ खत्म नहीं होगी और मोक्ष में नहीं जा पाएँगे।

अपराधों की ही गठरियाँ

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण तो अपराध किया हो तो करना है न?

दादाश्री : निरे अपराध ही हैं। है ही अपराधी। वे चौथे *गुंठाणे* (गुणस्थानक) वाले भी अपराधी कहलाते हैं। एक भी क्षण निरअपराधी हुआ ही नहीं है। निरअपराधी तो जब शुद्धात्मा बनता है, तभी होता है। निरअपराधी हुआ यानी जब अहंकार गया और ममता गई, तब से वह निरअपराधी हो गया। लेकिन फिर भी यह पड़ोसी (फाइल नं.1) अपराधी हुआ। इसलिए यहाँ दो भाग कर दिए गए हैं, प्रकृति और पुरुष। यानी आप पुरुष बन गए और पुरुष होकर प्रकृति को सूचना देते हैं कि आप हमारे पड़ोसी हैं। इसलिए आपसे हमारी सलाह है कि 'आपने अतिक्रमण किया उसका प्रतिक्रमण करो'।

यह कुदरती रूप से ही हो जाता है। यह ज्ञान ही ऐसा है न!

और फिर आज्ञा दी हैं। इसलिए आज्ञा अपने आप ही करवाती हैं। उसे कुछ नहीं करना होता। हमारी आज्ञा से सब हो सकता है। अतः यह भी फाइल और सामने वाला भी फाइल, इसलिए सामने वाला दोषित नहीं दिखाई देता। कोई भी व्यक्ति हमें दोषित दिखाई ही नहीं देता। कोई भी जीव हमें दोषित नहीं दिखाई देता। जो फूल चढ़ाए, वह भी दोषित नहीं दिखाई देता। यह अक्रम विज्ञान तो कभी, दस लाख वर्षों में एक ही बार प्रकट होता है।

दोष धुलते हैं पश्चाताप से

जहाँ पर आग्रह हो, वह सब से बड़ा 'पॉइज़न' है। किसी भी चीज़ का आग्रह, वह सब से बड़ा 'पॉइज़न' है। हम निराग्रही होते हैं। जिस भाग का निराग्रही हुआ यानी करेक्ट हो गया।

इस जगत् में जीवमात्र का दोष है ही नहीं, वह ज्ञानी की दृष्टि है। दोषित दिखाई देता है, वह अपना दृष्टिदोष है, अपने राग-द्वेष हैं।

दोषित दिखाई देता है, वह 'इगोइज़म' है, राग-द्वेष है। जब हमें कोई धौल मारता है, उस वक्त भी वह निर्दोष दिखाई देता है।

प्रश्नकर्ता : दोषित दिखाई देने के बाद पश्चाताप तो बहुत होता है। वापस फिर से ऐसा हो जाता है।

दादाश्री : पश्चाताप से तो, उसके साथ जितना दोष हुआ है न, वह धुलने लगता है। आपसे जो दोष हुआ होगा, वह धुल जाएगा।

जगत् को निर्दोष नहीं दिखाई देता। जगत् के लिए तो कोर्ट, वह निर्दोष है, बाकी सभी दोषित ही दिखाई देते हैं। 'फादर' हो या 'मदर' हो या कोई भी हो।

कोई दोषित नहीं दिखाई देता न?

प्रश्नकर्ता : फन्डामेन्टली (मूल स्वरूप से) तो निर्दोष है, ऐसा समझ में आता है लेकिन कभी-कभी फिर से दोष दिखने लगते हैं। लेकिन फिर प्रतिक्रमण भी हो जाते हैं, एट ए टाइम (तुरंत ही)।

दादाश्री : उससे वे धुल जाते हैं। जो दोष हुए होंगे वे तो धुल जाते हैं। दोष दिखाई देते हैं और वे धुल जाते हैं, उसी को निर्दोष देखना कहते हैं। आपके लिए ये (स्थूल व सूक्ष्म) और हमारे लिए ये (सूक्ष्मतर व सूक्ष्मतम स्तर के) प्रतिक्रमण हैं।

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण करते हैं इसलिए वापस फिर से एडजस्ट हो जाते हैं न?

दादाश्री : अपने आप ही होते रहते हैं। कई लोग तो सौ-सौ प्रतिक्रमण करते हैं, छः सौ-छः सौ प्रतिक्रमण करते हैं। अतिक्रमण किया है, उसका प्रतिक्रमण करते हैं।

हमें इसके करने हैं प्रतिक्रमण

जब मैं औरंगाबाद जाता हूँ न, तो वहाँ सभी प्रधान, मेम्बर ऑफ पार्लियामेन्ट, एम.एल.ए. ऐसे सब आते हैं। अब वे आएँगे तो मुझे तो सबकुछ करना ही पड़ेगा न! वे कहेंगे, 'मैं एम.एल.ए. हूँ, मुझे ऐसा प्रसारण करना है और मुझे ऐसा करना है, तो विधि कर दीजिए'। अब उनमें ऐसा कुछ भी दम नहीं होता, ऐसे तो नौकरी में भी रखने लायक नहीं होते!

प्रश्नकर्ता : स्पष्ट भाषा में बोलें तो बैल जैसे दिमाग़ वाले!

दादाश्री : क्या किया जाए फिर? लेकिन ऐसा बोलेंगे तो प्रतिक्रमण करने पड़ेंगे न, छुटकारा ही नहीं न! हम कभी भी ऐसा नहीं बोलते, लेकिन फिर भी हम प्रतिक्रमण करते हैं। लेकिन क्या किया जाए? यह भी तो भरा हुआ माल है तभी तो निकलता है न, यों ही कहीं निकलता है? फिर हमें उसके प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं, छुटकारा ही नहीं न! हमारा तो चलता ही नहीं है। गैरज़िम्मेदारी वाला वर्तन किसी का भी नहीं चलता।

भाव, क्रिया और उसके फल

क्रियाओं का फल भविष्य में नहीं, भाव का फल भविष्य में (मिलता) है। क्रिया का फल यहीं के यहीं मिल जाता है।

हमें भी प्रतिक्रमण करना पड़ता है लेकिन बहुत कम। हमारा द्रव्य भी एकदम साफ होता है। निंदनीय हो ऐसी एक भी क्रिया नहीं होती। सभी मनोहर होती हैं।

प्रश्नकर्ता : टीका टिप्पणी करने योग्य नहीं होती।

दादाश्री : टीका टिप्पणी करने योग्य नहीं होती परंतु मनोहर होती है। वाणी-वर्तन और विनय सब मनोहर होते हैं। सामने वाले के मन का हरण कर लेते हैं। तभी तो इस जगत् से छुटकारा हो सकता है। वर्ना पुस्तकें पढ़ें या ये शास्त्र पढ़ें या अन्य सभी क्रियाएँ करें, तो भी वे क्रियाएँ स-फल हैं। कुछ क्रियाएँ फल देती हैं। भगवान का नियम क्या है कि तूने जो क्रियाएँ की हैं, उसका फल तुझे भोगना पड़ेगा। अगर तुझे वे फल भोगने की इच्छा हो तो कर और उसमें से वापस दूसरे बीज डलते रहेंगे और चलता ही रहेगा तूफान!

हमारे प्रतिक्रमण, दोष होने से पूर्व

प्रश्नकर्ता : मुझे तो आपकी एक बात पसंद आ गई, आपने कहा था कि हमारे प्रतिक्रमण दोष होने से पहले ही हो जाते हैं।

दादाश्री : हाँ, ये प्रतिक्रमण 'शूट ऑन साइट' होते हैं। दोष होने से पहले ही शुरू हो जाते हैं अपने आप। हमें पता भी नहीं चलता कि कहाँ से शुरू हो गया! क्योंकि वह जागृति का फल है और संपूर्ण जागृति, उसी को कहते हैं 'केवलज्ञान'। और क्या? जागृति ही मुख्य चीज़ है।

हमने अभी इन संघपति का अतिक्रमण किया, उसके लिए हमारा प्रतिक्रमण भी हो गया। हमारा प्रतिक्रमण साथ ही हो जाता है। कहते भी रहते हैं और प्रतिक्रमण भी करते रहते हैं। कहेंगे नहीं तो गाड़ी नहीं चलेगी।

प्रश्नकर्ता : दादा, कई बार हम से भी ऐसा होता है, कि कह रहे होते हैं और प्रतिक्रमण भी होता जाता है लेकिन आप जिस तरह से करते हैं और हम करते हैं, उसमें हमें फर्क लगता है।

दादाश्री : हमारा कैसे अलग है? सफेद बाल और बिल्कुल मुलायम काले बाल, उनमें कितना फर्क है?

प्रश्नकर्ता : आप बताइए कि आप प्रतिक्रमण किस तरीके से करते हैं?

दादाश्री : उसका तरीका कहने से नहीं मिल सकता। ज्ञान होने के बाद, बुद्धि के चले जाने के बाद, ऐसी स्थिति के आने तक वह तरीका खोजना भी नहीं। हमें अपने आप आगे बढ़ना है। जितना बढ़ पाएँ उतना सही।

प्रश्नकर्ता : हमें खोजना नहीं है, सिर्फ जानना ही है, दादा।

दादाश्री : नहीं। लेकिन वह तरीका मिल ही नहीं सकता। जहाँ साफ हो गया हो, 'क्लियर' ही हो, वहाँ करने को रहा ही क्या? एक तरफ भूल होती है और एक तरफ धुलती जाती है। जहाँ अन्य कोई दखल ही नहीं रही। यह सब 'अन्क्लियर', मिट्टी के ढेर पड़े हों व ईंटों के टुकड़े पड़े हों, ऐसा तो चलेगा ही नहीं न! फिर भी रास्ते पर धूल दिखाई देने लगे तो हमें समझ जाना चाहिए कि अब पहुँचने वाले हैं। आपको (खुद की भूल) दिखाई देती है, तो फिर क्या हर्ज है?

प्रश्नकर्ता : नहीं, यह तो जानने के लिए पूछा।

दादाश्री : जब खुद की भूल दिखाई देने लगे, तब जानना कि सही मार्ग पर आ गया है।

जब भादरण वाले आते हैं, तब मैं कहता हूँ कि 'तेरे चाचा तो ऐसे थे'।

प्रश्नकर्ता : आपकी बात अलग है।

दादाश्री : नहीं, हमारा चाहे कितना भी अलग हो फिर भी हमें उनके प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं। एक अक्षर भी नहीं छोड़ सकते। क्योंकि वे भगवान कहलाते हैं। आप क्या कहते हो? क्या निंदा करना बंद कर देना चाहिए?

प्रश्नकर्ता : यदि जागृति रहेगी तो निंदा नहीं करेगा।

दादाश्री : जागृति रहती है, खुद जागृत रहता है और एक तरफ ऐसा बोला भी जाता है। खुद को ऐसा पता चलता है कि यह गलत बोल रहा हूँ, ऐसा भी जानता है।

प्रश्नकर्ता : वह तो ज्ञानी पुरुष की बात हुई।

दादाश्री : नहीं, आपको भी वैसा रहता है न?

प्रश्नकर्ता : ऐसा होता है कि जागृति होती है, फिर भी निंदा या वह जो कुछ कर रहे हों, वे दोनों एक साथ होते रहते हैं और उस वक्त उसका प्रतिक्रमण हो जाता है।

हमारी भूलें, सूक्ष्मतर व सूक्ष्मतम

हमारी प्रकृति भूल रहित होती है। किसी को भूल नहीं दिखती क्योंकि भूल रहित होती है। हमारी कौन सी भूल होती है? हमारी स्थूल भूल नहीं होती और सूक्ष्म भूल भी नहीं होती। आपकी स्थूल भूलें चली गई हों लेकिन सूक्ष्म रहती हैं और मेरी तो स्थूल व सूक्ष्म दोनों ही नहीं रही। सिर्फ सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम, जो जगत् के किसी भी जीव को नुकसान नहीं करतीं ऐसी हमारी भूलें रहती हैं। सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम जो कि जीवमात्र को नुकसान न करें, ऐसी हमारी भूलें होती हैं।

जहाँ खुद के दोष खुद को दिखाई दे वहाँ *ऊपरी* नहीं रहते। *ऊपरी* यानी क्या, कि अनिवार्य रूप से कब तक आपके *ऊपरी* रहेंगे ही, जब तक आप अपने दोष नहीं देख पाते हो, तब तक आपके *ऊपरी* रहेंगे ही। आप खुद के दोष देख सकोगे तो *ऊपरी* रहेंगे ही नहीं। यह कुदरत का नियम है, नैचुरल लॉ।

मेरे जो दोष हो चुके हैं, वे मुझे दिखाई देते हैं और यदि उन्हें मैं बाहर कह दूँ तो जगत् आफरीन हो जाएगा! इन्हें दोष कहते हैं? लोगों के जो स्थूल दोष हैं, ऐसे मेरे नहीं होते हैं, यह तो कूड़ा-कर्कट है। मुझे जो दोष दिखाई देते हैं न, उन्हें यदि जगत् के लोग सुनेंगे तो

आफरीन हो जाएँगे और कहेंगे कि इन्हें दोष कैसे माना जाए? यानी वे भगवान कैसे हैं? कैसा कैवल्य है! कितना ऐश्वर्य रखते हैं!! फुल ऐश्वर्य!!! सारे वर्ल्ड में। इसलिए कहते हैं न, कि हमारे पास बैठे रहना, यदि हमारी बातें आपकी समझ में न आए तब भी!

प्रश्नकर्ता : दादा, आपने जिन्हें दोष कहा न, उसके एक-दो उदाहरण दीजिए न, जिससे आश्चर्य हो जाए, ऐसे एक-दो उदाहरण दीजिए न!

दादाश्री : वह तो जब सही वक्त आएगा उस समय उदाहरण दूँगा तब मज़ा आएगा।

हमें वे दोष दिखे बगैर रहते ही नहीं। आप उन्हें बाहर देखने जाओ तो क्या कहेंगे कि यह भी कोई दोष है? इसे दोष कैसे कह सकते हैं? भोजन करते समय दोष दिखाई दे कि यह दोष हुआ, यह दोष हुआ। दोष *पुद्गल* के हैं लेकिन मूल मालिक तो हम ही हैं न! ज़िम्मेदार तो हम ही हैं न! पहले टाइटल तो हमारा ही था न, अभी टाइटल लौटा दिया है लेकिन वे वकील छोड़ेंगे क्या? कायदा तो ढूँढ निकालेंगे न?

प्रश्नकर्ता : आप कहते हैं 'मालिकीपना छूट गया है' तो फिर ये दोष अपने कैसे कहलाएँगे? *पुद्गल* के दोषों से हमें क्या लेना-देना?

दादाश्री : अपने नहीं कहलाएँगे, लेकिन ज़िम्मेदार तो हो ही।

प्रश्नकर्ता : यह तो आपकी बात करता हूँ।

दादाश्री : हमें जो दोष दिखाई देते हैं, यह हमारी समझ में आता है न! ओहोहो! भगवान में कितनी शक्ति उत्पन्न हो गई है, कि अभी भी उन्हें हम में दोष दिखाई देते हैं! और फिर, वे हमें सही भी लगते हैं। 'हम' कहाँ हैं, 'वे' कहाँ हैं, वह मुझे समझ में आता है। और क्या परेशानी है? ऐसे कोई संसारी दोष हुए हों, ऐसा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : वे दोष बहुत सूक्ष्म होते हैं?

दादाश्री : सूक्ष्मातिसूक्ष्म। जिन्हें सूक्ष्मतम कहा जाता है, वे। यानी

मुझे ऐसा समझ में आता है, कि ओहोहो! ये ज्ञानी कहाँ हैं! और ये भगवान कहाँ हैं!! नहीं समझ में आता?

प्रश्नकर्ता : समझ में आता है।

दादाश्री : इसीलिए मैं कहता हूँ न, इस तरह से 'दादा भगवान ना असीम जय जयकार हो!'

वास्तविक भगवान को पा लिया। मैंने आपको दिखा दिए। अभी तो पूरे वर्ल्ड को दिखाऊँगा, वास्तव में दुनिया में भगवान हैं या नहीं, वह। लोगों को तो विश्वास ही नहीं है कि भगवान हैं या नहीं हैं, आत्मा है या नहीं, वह। लेकिन जिन्हें विश्वास नहीं, उन्हें दिखाई दिए! आत्मा है, ऐसा विश्वास तो बैठ गया है लोगों को।

हम आपको दोष दिखाते हैं क्योंकि आपको आपके दोष नहीं दिखाई देते। इसीलिए वे, भविष्य में भी आपके *ऊपरी* तो रहेंगे ही, दिखाने वाला तो चाहिए न? इसीलिए मुझे *ऊपरी* बनना पड़ा है न! वर्ना मुझे आपका *ऊपरी* नहीं बनना पड़ता। मैं तो ज्ञान देकर अलग हो गया। हमेशा *ऊपरी* इसलिए रहना पड़ता है, क्योंकि दिखाने वाला चाहिए। आपको खुद के दोष दिखाई नहीं देते। ये थोड़े-बहुत दोष दिखाई देते हैं न, वह भी इसलिए क्योंकि मैंने दृष्टि दी है। अब ज़्यादा से ज़्यादा दिखाई देते हैं या नहीं?

प्रश्नकर्ता : दिखाई देते हैं न!

दादाश्री : अभी सूक्ष्म तक तो पहुँचे भी नहीं। यह सब तो अभी स्थूल में है।

ज्ञानी की दृष्टि, अनुयायियों की ओर

सूक्ष्म से सूक्ष्म दोष भी हमारी दृष्टि से बाहर नहीं जा सकते। सूक्ष्म से सूक्ष्म, अति अति सूक्ष्म दोष का हमें तुरंत ही पता चल जाता है! आपमें से किसी को पता नहीं चलता कि मुझसे यह दोष हो गया है। क्योंकि वे दोष स्थूल नहीं होते।

प्रश्नकर्ता : क्या आपको हमारे भी दोष दिखाई देते हैं?

दादाश्री : सभी दोष दिखाई देते हैं, लेकिन हमारी दृष्टि दोष की ओर नहीं होती। हमें तुरंत ही उसका पता चल जाता है, लेकिन हमारी दृष्टि तो आपके शुद्धात्मा की ओर ही होती है। हमारी दृष्टि आपके उदयकर्म की ओर नहीं होती। सभी के दोषों का हमें पता चल जाता है। दोष दिखाई देते हैं, फिर भी हमें भीतर उसका असर नहीं होता। इसीलिए कवि ने कहा है न, '*मा कदी खोड काढे नहीं. दादानेय दोष कोईना देखाय नहीं!*' ('माँ कभी भूल निकालती नहीं। दादा भी किसी के दोष देखते नहीं!')

हम जानते हैं कि इतनी निर्बलता रहेगी ही। इसलिए हमारी सहज क्षमा होती है। इसलिए हमें किसी को डाँटना नहीं पड़ता। हमें ऐसा लगे कि किसी व्यक्ति से बहुत बड़ा दोष हो जाएगा तो हम उसे बुलाकर दो शब्द कहते हैं। ऐसा लगे यहाँ से फिसल जाएगा, वह 'स्लिप' हो जाएगा, ऐसा हो तभी कहते हैं। हम जानते हैं कि आज नहीं जागेगा तो कल जागेगा क्योंकि यह जागृति का मार्ग है! निरंतर 'अलर्टनेस' (जागृति) का मार्ग है, यह!

अक्रम में नहीं प्रमाद रे

प्रश्नकर्ता : प्रमाद को आधार कौन देता है?

दादाश्री : वह तो क्रमिक मार्ग की बात है। अक्रम में प्रमाद होता ही नहीं। प्रमाद यानी अहंकार हो तो मद होता है और मद हो तो प्रमाद होता है, प्रमत्त होता है। अक्रम में वह नहीं होता। यह मार्ग बिल्कुल अलग है। एक दिन भी बहीखाता साफ हुए बगैर नहीं रहता, ऐसा मार्ग है। शाम को प्रतिक्रमण करके सब बहीखाते साफ ही कर देता है। इस दुनिया में कोई दोषित नहीं दिखाई देता, सब निर्दोष दिखाई देते हैं।

सारा दोष खुद का ही है, किसी का दोष है ही नहीं। जगत् में किसी का दोष नहीं है। यानी सारा जगत् निर्दोष है। खुद के दोष से यह सब उत्पन्न हुआ है। इसलिए उन दोषों को धो डालो। हम क्या

कहते हैं? प्रतिक्रमण करो। किसी के दोष देखने से तो यह संसार खड़ा है और यदि खुद के दोष देखेगा तो फिर मोक्ष में जाएगा। खुद के दोष वर्ल्ड में कोई नहीं देख पाता। साधु-आचार्य भी नहीं देख पाते। वह तो ज्ञान के प्रताप से, अक्रम विज्ञान के प्रताप से खुद के दोष दिखाई देते हैं, वर्ना एक भी दोष नहीं दिखाई देता और अतिक्रमण पर प्रतिक्रमण भी नहीं हो सकता। कितना सुंदर विज्ञान है! निरंतर समाधि देने वाला, लड़ते हुए भी समाधि! झगड़े होते रहते हैं, वह पूर्व जन्म के कारण है। हाँ, वह पहले के भरे हुए माल की वजह से है लेकिन यह विज्ञान निरंतर समाधि देता है!

सहज क्षमा ज्ञानी की, बरतती है सदा

सामने वाला उल्टा करता है या सीधा करता है, वह व्यवस्थित के अधीन करता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अनादिकाल से उल्टा देखने की आदत हो गई है, उसका क्या?

दादाश्री : हाँ, लेकिन हमें उपयोग रखना है और प्रतिक्रमण करके साफ कर देना है।

प्रश्नकर्ता : अपमान के भाव से खुद को आघात लगा तो उसे कैसे सुधारें, कैसे प्रतिक्रमण करना है?

दादाश्री : सामने वाले ने अपमान किया और हमें आघात लगा तो?

प्रश्नकर्ता : हाँ, तो उसका प्रतिक्रमण कैसे करना है?

दादाश्री : उसका प्रतिक्रमण हमें नहीं करना है, उसे करना है।

प्रश्नकर्ता : उसे किस भाव से सुधारा जाए?

दादाश्री : वह सुधारेगा, हमें नहीं सुधारना है। हमें तो क्षमा कर देना है।

प्रश्नकर्ता : तो हमें उसे क्षमा कर देना पड़ेगा न?

दादाश्री : जो हो चुका, उसे व्यवहारिक रूप से कहना पड़ता है कि क्षमा, बाकी, यह वीर पुरुष की क्षमा नहीं है।

प्रश्नकर्ता : अनिवार्य है?

दादाश्री : नहीं, व्यवस्थित ही है। उसमें उसका क्या किया तूने? उसमें नया क्या किया तूने? हमारी सहज क्षमा होती है, यदि सामने वाले की भूल हो जाए तो वह मन में पछताता है। मैंने कहा, 'ज़रा भी पछताना नहीं। ठीक है'। यानी उसके लिए हमारी सहज क्षमा होती ही है। क्षमा सहज होनी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : दादाजी के समक्ष भूल हो गई और दूसरे ही सेकन्ड हमें ऐसा अनुभव होता है कि दादाजी की बहुत ही करुणा बरस गई हम पर।

दादाश्री : हाँ, यानी सहज क्षमा!

वह जो क्षमा है न, वह न तो आत्मा का गुण है और न ही अनात्मा का गुण। ऐसी चीज़ है क्षमा। उसे लोग संसार में ले जाते हैं, वे क्षमा करते हैं, फिर भी अच्छा है। भाषा के रूप में रखना अच्छा है। भाषा के रूप में 'ऑर्नामेन्टल' (अलंकृत) शब्द है। बड़े लोग छोटों को क्षमा कर देते हैं। लोग कहेंगे, 'साहब, मुझे क्षमा कर दो'। तब वे कहते हैं, 'हाँ, क्षमा करता हूँ', वह 'ऑर्नामेन्टली' अच्छा कहलाता है। बाकी, क्षमा तो सहज है, गुण है!

हमें ऐसे बहुत मिले फिर भी हम वीतराग रहते हैं। भले ही वह टेढ़ा चले लेकिन हम वीतराग रहते हैं। यदि उसे हम दंड दें तो वह दंडित होगा, लेकिन दाग़ हमें लगेगा न? हमारे पास जितने दंड के योग्य होते हैं, उन्हें भी माफी मिलती है और माफी भी सहज होती है। सामने वाले को माफी माँगनी नहीं पड़ती। जहाँ सहज माफी होती है वहाँ वे लोग शुद्ध हो जाते हैं और जहाँ पर ऐसा कहा जाता है कि, 'साहब, माफ करना', वहीं पर मैले होते हैं। जहाँ सहज माफ होता है, वहाँ तो बहुत शुद्धि हो जाती है।

प्रश्नकर्ता : यदि आपसे सहज माफी मिल जाए, ऑटोमैटिक तो फिर प्रतिक्रमण नहीं करने पड़ेंगे?

दादाश्री : प्रतिक्रमण तो करने ही पड़ेंगे। प्रतिक्रमण नहीं करेगा तो उसे नुकसान होगा। लेकिन हम जो माफी देते हैं न, वह सहज माफी, सिर्फ हमारी ही होती है, अन्य कोई नहीं दे सकता न! हमारे प्रतिक्रमण करोगे तो आपका कल्याण ही हो जाएगा न! हमारे प्रति किसी को भी प्रतिक्रमण नहीं करना पड़ता। हम से एक भी गुनाह ऐसा नहीं होता कि जिससे सामने वाले को प्रतिक्रमण करना पड़े। आपसे गुनाह हो उसके लिए यदि आप प्रतिक्रमण करोगे न, तो उतना ही फायदेमंद रहेगा। बाकी, हमारी तो सहज माफी होती ही है।

प्रश्नकर्ता : जब आप सहज माफ कर देते हैं तो फिर हम प्रतिक्रमण की मेहनत क्यों करें?

दादाश्री : हाँ, लेकिन आपका तो बिगड़ा हुआ रहा न? हम माफ कर देते हैं, लेकिन आपका जो बिगड़ा हुआ है, उसका क्या होगा? माफी अर्थात् यहाँ से अब आपको दंड नहीं मिलेगा।

साहजिकता टूटी उसके प्रतिक्रमण

प्रश्नकर्ता : हमारी जागृति ऐसी होनी चाहिए कि दादाजी को बहुत प्रतिक्रमण न करने पड़े।

दादाश्री : ऐसे समझदार हो तो बहुत अच्छी बात कहलाएगी। बगैर काम का कोई कहीं से कुछ सुनकर आए हों और फिर वे यहाँ आकर मुझे कहते हैं, वह हमें पसंद नहीं आता। अब उनका इरादा ऐसा नहीं होता लेकिन प्रकृति ही ऐसी लाए होते हैं यानी उसमें उनका दोष नहीं है। दोष हमारा है, कि हमें प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं। जिसका टाइम बिगड़े उसका दोष। वह तो बैन्ड बजा। बैन्ड का स्वभाव है, बजना।

जब तक हम में साहजिकता है तब तक हमें प्रतिक्रमण नहीं करने पड़ते। साहजिकता में आपको भी प्रतिक्रमण नहीं करने पड़ते।

साहजिकता में फर्क पड़ने पर प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं। आप जब भी हमें देखोगे तब साहजिकता में ही देखोगे, जब देखोगे तब हम वही के वही स्वभाव में दिखाई देंगे। हमारी साहजिकता में फर्क नहीं पड़ता।

आज्ञापूर्वक के प्रतिक्रमण

यह प्रतिक्रमण करने से बहुत शक्तियाँ खिलती हैं लेकिन हमारी आज्ञा लेकर करे तो।

प्रश्नकर्ता : वह कैसे और कब?

दादाश्री : यदि हमारी आज्ञा लेकर करेगा तो काम निकाल लेगा। खास तौर पर इस यात्रा में। ऐसे संयोगों में भी आज्ञा लेकर करना है।

1973 में हम सब अड़तीस दिन की यात्रा पर गए थे। वहाँ भी हमारा तो नो लॉ (कोई नियम नहीं)। तब फिर ऐसा नहीं कि किसी से लड़ना नहीं है। जिससे भी लड़ना हो उसके साथ लड़ने की छूट। यानी लड़ने की छूट देनी है, ऐसा भी नहीं और नहीं देनी है, ऐसा भी नहीं। यदि वे लड़ते तो 'हम' देखते थे लेकिन फिर रात को सभी 'हमारी' साक्षी में प्रतिक्रमण करके धो देते थे! आमने-सामने दाग़ लगते और फिर धो देते थे! यह प्योर 'वीतराग मार्ग' है, इसलिए यहाँ कैश-नकद प्रतिक्रमण करने पड़ते हैं। इसमें पाक्षिक या मासिक प्रतिक्रमण नहीं होते। दोष हुआ कि तुरंत ही प्रतिक्रमण।

प्रश्नकर्ता : यों तो जागृति है कि 'शुद्धात्मा' हूँ लेकिन फिर भी वह पहले का...

दादाश्री : जो कचरा है न, अगर वह भीतर से नहीं निकलेगा तो भीतर ही रह जाएगा, उसके बजाय निकल जाए तो अच्छा। जब हम जब यात्रा पर निकले थे न, तब हमारे कुछ पटेल और दूसरे आपके जैसे बनिए थे, वे एक-दूसरे से इतना लड़ते, इतना लड़ते, तो सब मुझे क्या कहते, कि 'दादाजी, इन्हें छुड़वाइए न! ये लोग इतने उल्टे शब्द बोल रहे हैं, बहुत झगड़ रहे हैं'। तब मैंने कहा, 'मेरी हाज़िरी में लड़ रहे हैं

तो हल आ जाएगा न! जल्दी से हल आ जाएगा और कुछ बंधेगा नहीं बेचारों को इसीलिए तो यदि मारपीट कर रहे हों तो भले ही मारे, मारने दो कि 'मारो अच्छे से'। ऐसा कहता कि, 'मारना, अच्छे से'। वह तो, अगर भीतर होगा तभी मारोगे। अगर भीतर होगा ही नहीं तो कैसे मारोगे?

इस तरह से पूरे दिन बस में तूफान चलता रहता तो ड्राइवर ने मुझसे कहा कि 'साहब, आप तो भगवान जैसे हो। ऐसे लोगों से आपको प्रेम कैसे हो गया?' मैंने कहा, 'ये सब लोग बहुत अच्छे ही हैं। एक दिन सुधरेंगे'।

फिर शाम होते ही सब मिलकर आरती करते, 'दादा भगवान' की! बस में ही! वे मारपीट करते लेकिन वापस सभी मिलकर पूरी आरती गाते और बाद में प्रतिक्रमण करते थे। वे सब जो मारपीट, लड़ाई-झगड़ा करते थे, वे आमने-सामने पैर छूकर फिर नमस्कार कर लेते थे तो वह ड्राइवर कहने लगा कि, 'ऐसा तो मैंने दुनिया में कहीं भी नहीं देखा', तुरंत ही वापस प्रतिक्रमण करते थे। रोज़ एक बार प्रतिक्रमण करते ही थे। जितना लड़ते, उतना ही प्रतिक्रमण करते और वह भी पैर छूकर। देखो, अब है कोई झंझट?

प्रतिक्रमण रूपी साधन देते हैं। हमारी आज्ञा से प्रतिक्रमण करोगे तो तुरंत ही कल्याण हो जाएगा। पाप भुगतने पड़ेंगे लेकिन इतने ज़्यादा नहीं।

आज्ञा चूक जाने के प्रतिक्रमण

हमने आपको ज्ञान तो दिया है, लेकिन उसे आप खो बैठोगे। इसलिए ये पाँच आज्ञा देते हैं, कि यदि इन पाँच आज्ञा में रहोगे तो मोक्ष जाओगे और छठवाँ क्या कहा? कि जहाँ अतिक्रमण हो जाए, वहाँ प्रतिक्रमण करो। आज्ञा का पालन करना भूल जाओ तो प्रतिक्रमण करना। भूल तो हो सकती है, इंसान है। लेकिन भूल गए उसका प्रतिक्रमण करना है कि, 'हे दादा भगवान! ये दो घंटे मैं आपकी आज्ञा भूल गया लेकिन मुझे तो आज्ञा का पालन करना है। मुझे माफ कर दीजिए', तो पिछला सबकुछ पास। पूरे सौ में से सौ मार्क्स। यानी

ज़िम्मेदारी नहीं रही। फिर से भूल करने की जिसकी इच्छा नहीं है, उसे हम माफ कर देते हैं। माफ करने का हमारे पास लाइसेन्स है।

हमारी आज्ञा में रहोगे तो काम बन जाएगा और यदि उसे बार-बार उलट-पुलट करके उलझनें पैदा करोगे (बात का बतंगड़ बनाओगे) तो क्या होगा?

आज्ञा में नहीं रह पाते तो प्रतिक्रमण करना पड़ता है। घर से निश्चय करके निकलना है कि आज्ञा में ही रहना है, फिर यदि नहीं रह पाए तो तुरंत प्रतिक्रमण करना है। ऐसा करते-करते छः महीने, बारह महीने में भी राह पर आ जाएगा। फिर हमेशा के लिए राह पर आ जाएगा।

ट्रेन में बैठे हो, टैक्सी में बैठे हो, वे सभी मुक्त ही हैं न! बैठने वाले को क्या? इधर-उधर देखता है, तांक-झांक करता है, ऐसे विचार आते हैं! (वास्तव में) शुद्ध उपयोग नहीं चूकना चाहिए। पैसे गिनते समय क्यों नहीं चूकते? क्योंकि ज़रा सा भी इधर-उधर नहीं देखते। अभी यदि हज़ार-हज़ार की नोटें हों न, तो इधर-उधर नहीं देखेंगे। तो यह तो उससे भी कीमती, आत्मा जैसी वस्तु प्राप्त हुई है! अरे! यदि दस-दस पैसे के सिक्के हों तो भी गिनते रहता है! और वह भी बगैर भूल के!

'आपको' कुछ नहीं करना है, आपको तो निश्चय करना है कि 'मुझे दादा की आज्ञा का पालन करना है' और फिर पालन नहीं हो पाए तो उसकी चिंता नहीं करनी है। आपको दृढ़ निश्चय करना है कि मेरी सास डाँटती है तो उनके साथ, सास दिखाई दे उससे पहले ही मन में तय करना है कि, ''मुझे दादा की आज्ञा का पालन करना है और इनके साथ 'समभाव से *निकाल*' करना ही है''। फिर समभाव से *निकाल* नहीं हो पाए तो आप ज़िम्मेदार नहीं हैं। आज्ञापालन करने के अधिकारी हैं, आप अपने निश्चय के अधिकारी हैं, उसके परिणाम के अधिकारी आप नहीं हैं। आपका निश्चय होना चाहिए कि मुझे आज्ञा का पालन करना ही है, फिर पालन नहीं हो सके तो आपको उसका खेद नहीं रखना है। लेकिन मैं जैसे बताऊँ, उस अनुसार आपको

प्रतिक्रमण करना है। अतिक्रमण किया इसलिए प्रतिक्रमण करो। इतना सरल, सीधा व सुगम मार्ग है, इसे समझ लेना है।

पंप प्रतिक्रमण का

पाँच आज्ञा में ही ज़्यादा रहना है। दूसरा कुछ नहीं करना है। सुबह से निश्चय करना है कि पाँच आज्ञा में ही रहना है और फिर नहीं रह पाए तो रात को प्रतिक्रमण कर लेना ताकि दूसरे दिन रहा जा सके। बाद में आगे फोर्स बढ़ता जाएगा। उसके लिए दूसरे कोई पंप नहीं होते, यही पंप है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, प्रतिक्रमण का पंप।

दादाश्री : प्रतिक्रमण का पंप। मैंने क्या नियम बनाया कि भाई, आपसे जितनी आज्ञाओं का पालन हो पाए उतनी पालन करना और अगर पालन न हो पाए तो दादा से क्षमा माँगना कि 'दादा, जितनी पालन हो सके उतनी पालन करता हूँ और जितनी पालन नहीं कर पाया उसके लिए मैं क्या कर सकता हूँ? इसलिए आपसे क्षमा माँगता हूँ', तो आपकी सारी आज्ञाएँ पूरी हो गई लेकिन यह जान-बूझकर धकेलने के लिए नहीं करना।

प्रश्नकर्ता : हाँ, ठीक है।

दादाश्री : हार्टिली यदि आपसे नहीं हो पाए तो आप इस तरह से करो तो फिर मैं ऐसा स्वीकार लूँगा कि हमारी सभी आज्ञाओं का पालन करते हो।

क्योंकि इंसान कितना कर सकता है? जितना हो सके उतना करेंगे और बाकी के लिए माफी माँग लेंगे, बाद में तो मैं उसका सब भगवान से कह दूँगा न, कि इसमें क्या हर्ज है? आपकी आज्ञा में ही हैं। यदि पालन नहीं कर पाए तो वे क्या कर सकते हैं?

अर्थात् अपने तो सभी नियम बहुत सुंदर हैं! प्रतिक्रमण करना पड़ेगा और वह प्रतिक्रमण आपको आगे ले जाएगा, टॉप पर, उसके द्वारा आगे बढ़ सकते हैं।

अपने पास जो रास्ते हैं, उनमें रहने की ज़रूरत है। टेन्शन रखने की कोई ज़रूरत नहीं है। इसमें कोई नुकसान नहीं होगा। रास्ते को पकड़ने की ज़रूरत है, ज्ञान ही पकड़ने की ज़रूरत है।

जब तक आज्ञा में रहा तब तक परमात्मा

जब तक आज्ञा में रहे, तब तक परमात्मा में, आज्ञा से बाहर गया तो खत्म। आज्ञा का पालन कम हो उसमें हर्ज नहीं है, लेकिन इच्छा तो ज़्यादा से ज़्यादा आज्ञापालन करने की रखनी चाहिए। आज्ञापालन करने का भाव रखना है, उसके बावजूद भी यदि कम पालन हुई तो रोज़ प्रतिक्रमण करना चाहिए, कि पालन नहीं हो पाता, उसका प्रतिक्रमण करता हूँ। उसके बाद ज्ञानी की आज्ञा में जो स्वच्छंद करेंगे, वे नर्क के अधिकारी। जहाँ नहीं करना चाहिए, वहाँ स्वच्छंद किया? वहाँ दग़ाबाज़ी? वहाँ काला बाज़ारी की?

नहीं आते विघ्न, प्रतिक्रमण में

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण करने में विघ्न आते हैं, प्रमाद होता है, उसका क्या कारण है?

दादाश्री : प्रतिक्रमण में कोई विघ्न ही नहीं आते।

प्रश्नकर्ता : दादा, प्रतिक्रमण ठीक से नहीं हो पाता।

दादाश्री : प्रतिक्रमण नहीं हो पाता, उसका भी प्रतिक्रमण करना पड़ता है। आज्ञा में नहीं रह पाए, उसका भी प्रतिक्रमण करना पड़ता है तो ज़िम्मेदारी नहीं रहेगी।

अपने यहाँ शुद्ध व्यवहार अर्थात् क्या? पाँच आज्ञा में ही रहना है, वह। जितनी पालन कर पाए उतनी पालन करना। बाकी के लिए प्रतिक्रमण कर लेना है।

शुद्ध उपयोग सेट करो

इस आत्मा को उपयोग में रखना यानी आत्मा कोई दूसरी वस्तु

नहीं है, ज्ञान-दर्शन है। उस ज्ञान-दर्शन को उपयोग में रखना है। शुद्ध ज्ञान-दर्शन किसे कहते हैं? राग-द्वेष बगैर का ज्ञान-दर्शन, वह शुद्ध ज्ञान-दर्शन और इस जगत् के पास जो ज्ञान-दर्शन है, वह राग-द्वेष वाला है, अशुद्ध है। कैसा है?

प्रश्नकर्ता : अशुद्ध है।

दादाश्री : राग-द्वेष सहित है और जो राग-द्वेष रहित है, वह शुद्ध ज्ञान कहलाता है। उस शुद्ध ज्ञान से किसी भी प्रकार का शुद्ध उपयोग होता है। कुछ नहीं हो तो बैठे-बैठे ऐसे शुद्ध उपयोग में देखते रहेंगे तो भी चलेगा। ऐसा रास्ते में भी चलेगा। यदि कुछ भी न हो तो घर में बैठे-बैठे उनके प्रतिक्रमण करते रहना है। पिछले जन्मों से कितने ही जन्मों का यह सब जॉइन्ट हो चुका है न? इसलिए यदि प्रतिक्रमण के लिए आधा घंटा निकालेंगे तो भी सबकुछ निकल जाएगा। घर में हर एक व्यक्ति का नाम लेकर प्रतिक्रमण करते रहना है। इस जन्म में हो चुके और पिछले अनंत जन्म में जो-जो दोष हुए हैं, उस उपयोग में रहेंगे और वह स्वच्छ होता जाएगा। ऐसे कई काम होते हैं, उसे शुद्ध उपयोग रहा कहा जाएगा। ये सगे-संबंधी किसलिए मिले हैं? पिछली सभी लटें उलझ गईं इसलिए। यदि हम प्रतिक्रमण करेंगे तो छूट जाएँगे। उसे छूटना है या नहीं छूटना, वह उसकी मर्ज़ी है। हम छूट गए! छूटने वाले को कोई बाँधने वाला नहीं है। महावीर पर भी लोग प्रेम बरसाते हैं, जिससे कहीं महावीर बंध नहीं जाते। यदि महावीर खुद प्रेम बिखेरें तो बंध जाएँगे। लोग मुझसे पूछते हैं कि, 'यदि सामने वाला कुछ करेगा तो मेरा क्या होगा?' अरे, सामने वाले को जो करना हो वह करे, हमें क्या? पुरुष को यदि स्त्री माने तो क्या हम उसे मना कर सकते हैं? यदि वह कोर्ट में फरियाद लेकर चला जाए तो आप क्या लोगे उसे? उसे जैसा अच्छा लगे वैसा करेगा। वह स्वतंत्र है। नहीं करेगा?

प्रश्नकर्ता : करेगा।

दादाश्री : उसके लिए हम कहाँ क्लेश करने जाएँ? हमें अपना

संभाल लेना है। यानी कई कामों में हमें उपयोग में रखना है। यों ही देखते रहने से भी उपयोग रहता है। शुद्धात्मा बन जाने से ही कहीं काम खत्म नहीं हो जाता। शुद्धात्मा किसे कहते हैं, कि सामने वाला गालियाँ दें और हमें यदि अशुद्धि हो जाए तो वह शुद्धात्मा नहीं कहलाता। उस समय उसका शुद्धात्मा दिखाई देना चाहिए। गाली दे रहा है, वह अपना उदयकर्म दे रहा है। वह बाजा बज रहा है, टेपरिकॉर्ड बज रहा है, लेकिन उदयकर्म तो अपना ही है न? और सामने वाला शुद्ध ही है इसलिए खुद सामने वाले को शुद्ध देखता है। खुद को शुद्ध देखना, उसे कहते हैं शुद्ध उपयोग! जीवमात्र को शुद्ध देखना, वह शुद्ध उपयोग कहलाता है।

भेदज्ञान, अक्रम द्वारा

प्रश्नकर्ता : इस अक्रम की विशेषता यह है कि आत्मा और अनात्मा, दोनों जो भेद-विज्ञानी के माध्यम से अलग हो चुके हैं, वही अक्रम का ऐश्वर्य है। जबकि क्रमिक में तो अंत तक उसका सातत्य रहता ही है।

दादाश्री : अंत तक अहंकार भी रहता है, कम होता जाता है।

प्रश्नकर्ता : उसमें कम होता जाता है जबकि यहाँ तो, यह जो अलग हो चुका है, उसके कारण जो दशा बरतती है, वह अक्रम की विशेषता है।

दादाश्री : इसीलिए यहाँ प्रतिक्रमण करना पड़ता है क्योंकि अकाल दशा में (कर्म क्षय हुए बिना) ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

मोक्ष के लिए सब से बड़ा साधन

प्रश्नकर्ता : जैसे ऊपर की मंज़िल पर जाना हो तो सीढ़ी एक मात्र साधन है। वैसे ही यदि मोक्ष जाना हो तो, ज्ञान मिलने के बाद, प्रतिक्रमण ही एक मात्र साधन है। ऐसा मैं मानता हूँ।

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है। प्रतिक्रमण तो इन सभी साधनों

में से एक साधन है। मोक्ष में जाने के लिए तो खुद के स्वरूप का ज्ञान, सिर्फ वही साधन है, दूसरा कोई साधन नहीं है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह ज्ञान तो आपने दिया, लेकिन मुख्य चीज़ तो प्रतिक्रमण ही है न?

दादाश्री : कुछ लोगों को प्रतिक्रमण नहीं करने पड़ते।

प्रश्नकर्ता : भूल नहीं होती तो प्रतिक्रमण नहीं करने पड़ते।

दादाश्री : ऐसे कितने ही लोगों को प्रतिक्रमण नहीं करने पड़ते। यानी किसी को उस साधन की ज़रूरत हो तो वे उपयोग करेंगे। मुख्य तो यह ज्ञान है। ज्ञान हो तभी मोक्ष में जा सकते हैं। बाकी, यदि ज्ञान न हो तो चाहे कैसा भी प्रतिक्रमण करने के बावजूद भी सब लोग संसार में ही रहेंगे।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ज्ञान मिले बगैर प्रतिक्रमण कैसे कर सकते हैं?

दादाश्री : करते हैं न, लोग! वे अहंकार से प्रतिक्रमण करते हैं कि फिर से ऐसा नहीं करूँगा, ऐसा करते ही हैं न! और फिर उनकी गाड़ी चलती भी है न! जैसे अतिक्रमण अहंकार से करते हैं, वैसे प्रतिक्रमण भी अहंकार से करते हैं। वे सारी पौद्‌गलिक रचनाएँ हैं। *पुद्‌गल* की रचनाएँ हैं, उनमें आत्मा नहीं है।

अक्रम के प्रतिक्रमणों से ही मोक्ष

प्रश्नकर्ता : लेकिन दादाजी, ऐसा है कि यही एक शस्त्र है, जिससे मोक्ष होगा।

दादाश्री : यह एक रास्ता है। यह अक्रम है, यानी मोक्ष स्वभाव ही है।

प्रश्नकर्ता : वह तो ठीक है, लेकिन प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान करते रहने पड़ेंगे न?

दादाश्री : करने पड़ेंगे। वे भी जिनसे हो पाए वे करेंगे। जिनसे

नहीं हो पाते, वे क्या करेंगे? जब वे नहीं चल पाते तब मुझे कंधे पर बैठाना पड़ता है। वे अपने आप करेंगे तो उनमें शक्ति आएगी, फिर करेंगे ही। करें ही नहीं, ऐसे बेशर्म नहीं हैं, ये। दादा से जो भी मिले, वे सभी बहुत खानदानी हैं।

प्रश्नकर्ता : दादा, हमें यह विस्तार से समझाइए।

दादाश्री : अगर आपको समझाना हो तो मैं कहूँगा कि आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान तीनों ही करना। आप सभी को चैन मिल गया है। इन्हें चैन नहीं मिला। कलियुग में इंसान को चैन कैसे मिल सकता है?

यह है साइन्टिफिक खोज

प्रश्नकर्ता : हमने कुछ भूल की हो और बाद में हमें पता चले, तो फिर हम उसका प्रतिक्रमण करते हैं। तो प्रतिक्रमण करने से हम दोष मुक्त कैसे हो जाते हैं?

दादाश्री : यह जो भूल हो जाती है, वह तो परिणाम है, 'रिज़ल्ट' है और दोष के कारण कौन से थे? वे कारण खराब थे, इसलिए हम भी प्रतिक्रमण करते हैं। उसके परिणाम के लिए नहीं, उसका परिणाम तो चाहे कुछ भी आए। अतः हम सब दोषों के कॉज़ को खत्म कर देते हैं।

प्रश्नकर्ता : यानी यह प्रतिक्रमण कॉज़ेज़ के लिए है?

दादाश्री : हाँ, यह प्रतिक्रमण कॉज़ेज़ को मारता है, रिज़ल्ट को नहीं मारता। यह समझ में आ गया न?

किसी का हमने नुकसान किया, बाद में हम प्रतिक्रमण करते हैं, अब जो नुकसान हुआ, माना कि वह तो 'इफेक्ट' है, 'रिज़ल्ट' है। नुकसान करने का हमारा जो इरादा था, वह 'कॉज़' है तो प्रतिक्रमण करने से वह इरादा टूट गया। यानी प्रतिक्रमण उन कॉज़ेज़ को तोड़ता है। बाकी, यह जो हुआ, वह तो रिज़ल्ट है। प्रतिक्रमण से वह स्वच्छ हो जाता है। यह तो 'साइन्टिफिक इन्वेन्शन' (वैज्ञानिक खोज) है!

प्रश्नकर्ता : यह जो प्रतिक्रमण करते हैं, तो वह प्रतिक्रमण कैसे कार्य करता है, जिससे कि अपने दोष धुल जाते हैं और हमें प्योर फॉर्म (शुद्ध रूप) में ले आता है? वह प्रतिक्रमण, उसके शुद्धात्मा के पास जाता है और सब 'वाइप' (साफ) कर आता है या फिर क्या होता है उसमें?

दादाश्री : ऐसा है न, बटन दबाने से लाइट होती है और दोबारा बटन दबाते हैं तो लाइट बंद हो जाती है। उसी तरह से यदि कुछ दोष हो जाए और प्रतिक्रमण करें तो उससे दोष बंद हो जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : अतिक्रमण किसी को आनंद देता है क्या?

दादाश्री : हाँ, हम किसी से कहें कि, 'अरे, तुझ में अक्ल नहीं है, तो भी वह हँसता है'।

प्रश्नकर्ता : हमें भी आनंद हो जाता है।

दादाश्री : ऐसा कुछ ही (विरले) व्यक्ति का अतिक्रमण होता है, जो दूसरों को आनंद करवाता है!

जाए चारित्रमोह मात्र देखने से

प्रश्नकर्ता : कई बार मन में उलझन होती रहती है।

दादाश्री : उसे देखते रहो।

प्रश्नकर्ता : बाद में प्रतिक्रमण करते हैं, फिर भी उलझन रहती है।

दादाश्री : प्रतिक्रमण करते हो, उसे भी देखते रहो। जितना अखंड ज्ञान-दर्शन इकट्ठा होता है, उतना चारित्र उत्पन्न होता है। अब वह अनुभव उसे किससे होता है? चारित्रमोह को देखने से अनुभव होता है। यानी चंदूभाई क्या कर रहे हैं, वह सब देखना है।

प्रश्नकर्ता : 'चंदूभाई' क्या कर रहे हैं, उस चारित्रमोह को देख रहे हों, उस समय कोई बुरा विचार आए तो?

दादाश्री : बुरा विचार आता है, वह भी चारित्रमोह है।

प्रश्नकर्ता : उसे सिर्फ देखते रहने से ही वह चला जाएगा या उसका प्रतिक्रमण करना पड़ता है।

दादाश्री : प्रतिक्रमण नहीं करना है। प्रतिक्रमण तो सबकुछ पूरा हो जाने के बाद, हमें ऐसा लगे कि यह अतिक्रमण किया तो हमें चंदूभाई से कहना है कि, 'प्रतिक्रमण करो।' 'हमें' नहीं करना है। जिसने अतिक्रमण किया हो, वह प्रतिक्रमण करेगा।

प्रश्नकर्ता : यानी सिर्फ देखने से ही सारा चारित्रमोह चला जाता है?

दादाश्री : देखा यानी शुद्ध हो गए। आपकी जो आत्म दृष्टि है, वह उस पर पड़ी।

प्रश्नकर्ता : चंदूभाई तो निरंतर अतिक्रमण करते ही रहते हैं न?

दादाश्री : जिसने अतिक्रमण किए हैं, उन्हें प्रतिक्रमण करने हैं।

प्रश्नकर्ता : इसमें शक्ति तो सामने वाले के शुद्धात्मा से ही माँगते हैं न?

दादाश्री : वह तो सिर्फ व्यवहार है। उसमें व्यवहार व निश्चय नहीं है। वह विवेक की खातिर, विनय की खातिर है। शक्तियाँ माँगनी हैं।

प्रश्नकर्ता : ये सारी जो इच्छाएँ हो रही हैं, वह सब चारित्रमोह ही है न? लेकिन जो बाकी रह जाती हैं और जिनका प्रतिक्रमण ठीक से नहीं हुआ है, तो फिर उसका क्या?

दादाश्री : मैं तो कहता हूँ, कि जो देखता ही रहे, उसे प्रतिक्रमण करने की भी ज़रूरत नहीं है। कुछ भी करने की ज़रूरत नहीं है।

परमाणुओं की शुद्धि, ज्ञाता-द्रष्टा पद से

प्रश्नकर्ता : दादा, हम इस शरीर के एक-एक परमाणु को शुद्ध

करने के लिए इसे जो भी होता है, उसे हम ज्ञाता-दृष्टा रहकर देखते रहें तो वे शुद्ध हो जाते हैं या प्रतिक्रमण करने से शुद्ध होते हैं?

दादाश्री : ज्ञाता-द्रष्टा रहने से ही शुद्ध होते हैं।

प्रश्नकर्ता : तो प्रतिक्रमण से क्या होता है दादा?

दादाश्री : प्रतिक्रमण से क्या होता है, कि यदि कोई बड़ा दोष हो जाए, ऐसा दोष हो जाए कि सामने वाले को दुःख हो जाए तो 'हमें' उनसे कहना पड़ेगा कि, 'भाई, ऐसा मत करो'। अतिक्रमण किया इसलिए आपको प्रतिक्रमण करना है। यदि किसी को दुःख हो जाए ऐसा अतिक्रमण नहीं किया हो, तो कोई ज़रूरत नहीं है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन क्या प्रतिक्रमण से परमाणु शुद्ध नहीं होते, दादा?

दादाश्री : नहीं, प्रतिक्रमण तो इन दोषों से छूटने के लिए है। उससे परमाणु शुद्ध नहीं होते, वे वापस वैसे ही हो जाते हैं। हमें आत्मा में रहकर देखना है। हमारे देखने से ही छूट जाएँगे। क्योंकि *पुद्गल* तो क्लेम करता है कि 'आप तो शुद्धात्मा बन गए लेकिन मेरा मोक्ष नहीं होगा'। 'क्यों भाई, इसमें क्या हर्ज है? मैं शुद्ध हो गया। मेरा स्वरूप जान लिया।' तब *पुद्गल* कहता है, 'आप मोक्ष में नहीं जा सकते। जब तक हम आपको नहीं छोड़ेंगे तब तक आप कैसे जा सकोगे?' तब कहते हैं, 'भाई, आपको क्या हर्ज है?' तब *पुद्गल* कहता है, ''हम तो अपने स्वभाव में थे। आपने ही हमें बिगाड़ा है। आप 'शुद्ध' हो गए, अब हमें शुद्ध करके जाओ। यानी आप हमें जैसे थे वैसे कर दो तो हम भी मुक्त हो जाएँ''। अतः शुद्ध देखना है। संसार अशुद्ध देखता है क्योंकि 'मैं कर्ता हूँ', उस भाव से करता है और अब 'इसका कर्ता मैं नहीं', वह भाव हुआ उससे वह मुक्त हो गया।

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण से क्या होता है? उससे क्या इफेक्ट होता है? आपने कहा कि (प्रतिक्रमण से) परमाणु शुद्ध नहीं होते, तो फिर प्रतिक्रमण से होता क्या है?

दादाश्री : परमाणु तो कब शुद्ध होंगे, कि जब उन्हें 'देखेंगे' तभी। इस प्रतिक्रमण से क्या इफेक्ट होता है, कि सामने वाले को जो दु:ख हो गया है, उसका असर (उस पर) रह जाता है, वह प्रतिक्रमण से धुल जाएगा। हो सके तो अपने निमित्त से वह असर नहीं होना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : प्रतिक्रमण से शुद्ध होता है, ऐसा कह सकते हैं?

दादाश्री : सामान्य तौर पर कह सकते हैं।

अक्रम में प्रतिक्रमण ज़िम्मेदारी सहित

प्रश्नकर्ता : एक जन्म देखते ही रहना है, तो क्या प्रतिक्रमण करते-करते देखते रहना है?

दादाश्री : निरंतर ध्यान रहना चाहिए कि 'मैं कुछ भी नहीं करता'। यदि निरंतर ऐसा ध्यान रहे तो फिर प्रतिक्रमण नहीं करेंगे तो भी चलेगा। हमें निरंतर रहता है। जो हमें रहता है, वही आपको बता रहे हैं। हमें हमेशा रहता है, ज्ञान होने के बाद।

बाकी, इस ज्ञान में तो प्रतिक्रमण करना रहता ही नहीं। यह ज्ञान ऐसा अंतिम प्रकार का ज्ञान है कि जिसमें प्रतिक्रमण करना रहता ही नहीं। लेकिन यह तो, जिसे गुजराती की चार किताबें पढ़नी आती हों, उसे ग्रेज्युएट बना देते हैं, तो फिर बीच के स्टैन्डर्ड-(कक्षाओं) का क्या होगा? इसलिए बीच में इतना हमने अपनी ज़िम्मेदारी से रखा है। वर्ना इस ज्ञान में ऐसा नहीं होता, उसके बावजूद भी हमारी ज़िम्मेदारी से रखा।

शुद्धात्मा के अलावा बाकी सारा ही कचरा है। उनमें से एक, क्रमण और दूसरा, अतिक्रमण। जो कुछ भी शुद्धात्मा के बाहर हैं, वे सभी दोष हैं और उनका प्रतिक्रमण करना पड़ेगा।

अक्रम विज्ञान की बलिहारी तो देखो!!!

प्रश्नकर्ता : आपके स्व-मुख से यह खुलासा सुना तो हमें संतोष हुआ।

दादाश्री : अर्थात् इसमें आप मुक्त ही हो।

बोलो, अब फिर जहाँ प्रतिक्रमण भी साथ में होते जाते हैं, वहाँ पर कौन नाम लेगा?

प्रश्नकर्ता : हमारे इस शरीर से रात-दिन प्रतिक्षण प्रतिक्रमण होते ही रहते हैं। इससे अभी प्रतिक्रमण की शुरुआत होने से पहले ही अतिक्रमण अदृश्य हो जाता है।

दादाश्री : यह विज्ञान है। यानी यह विज्ञान तुरंत ही काम करने वाला है। यह अक्रम विज्ञान पूरा सिद्धांत ही है और सिद्धांत ही फल देगा। जैसे प्याज़ की एक 'स्लाइस' (परत) काटो तो वह प्याज़ के सारे ही गुण दिखाती है, ऐसा इसमें से एक ही 'स्लाइस' काटोगे तो वह सिद्धांत का ही फल देगी और यदि अज्ञान की एक 'स्लाइस' काटोगे तो वह अज्ञान का फल देगी। सिर्फ एक 'स्लाइस', उसके गुण को दिखाती है या नहीं?

यह 'अक्रम विज्ञान' है। विज्ञान अर्थात् तुरंत फल देने वाला। जहाँ कर्तापना न हो, उसे 'विज्ञान' कहते हैं और जहाँ कर्तापना हो, उसे 'ज्ञान' कहते हैं।

विचारशील व्यक्ति हो तो उसे ऐसा लगेगा न, कि हमने कुछ भी नहीं किया और यह क्या है! वह अक्रम विज्ञान की बलिहारी है! 'अक्रम', क्रम-व्रम नहीं!

❖❖❖❖❖

[खंड : 2]

सामायिक की परिभाषा

सामायिक यानी क्या?

प्रश्नकर्ता : सामायिक यानी क्या?

दादाश्री : दो प्रकार की सामायिक। एक, व्यवहार में प्रचलित सामायिक, कि जिसमें मन को एक दायरे से बाहर निकलने नहीं देते। मन को बाउन्ड्री (सीमा) में रखते हैं। बाहर जो भी चल रहा है, उसमें मन स्थिर रहा, उसे (व्यवहार) सामायिक कहते हैं।

और दूसरे प्रकार की सामायिक, वह है भगवान महावीर द्वारा बताई गई यथार्थ सामायिक, जो हम सब 'अक्रम' में करते हैं न! (एक *गुंठाणा* यानी कि अड़तालीस मिनट तक खुद आत्म स्वरूप में रहकर अपनी फाइल नं-1 को देखना, वह।)

प्रश्नकर्ता : अपनी अक्रम की सामायिक समझाइए न!

दादाश्री : अपनी सामायिक यानी आत्मरूप में रहना। भीतर चंदूभाई (फाइल नं-1) के तंत्र में क्या चल रहा है, उसे 'देखना'। चंदूभाई को यह विचार आया, वह विचार आया, फलाँ आया, उन सभी को 'देखना', 'हम' देखने वाले। विचार, वे दृश्य हैं, 'हम' द्रष्टा और समझ में आए ऐसे जो भी विचार हैं, वे ज्ञेय कहलाते हैं और 'हम' ज्ञाता।

फिर चंदूभाई की बुद्धि क्या करती है, चित्त क्या करता है। पैर

में दर्द होता है, वहाँ चंदूभाई ध्यान रखते हैं या नहीं, वह सब 'हमें' जानना है। पेट में भूख लगी हो, उसे भी जानना और किसी बाहर वाले का विचार आया, उसे शुद्ध देखना, यह है अपनी सामायिक! शुद्ध रहना, शुद्ध देखना, सारी रात किच-किच की हो और फिर जब सामायिक में बैठे, तब शुद्ध 'देखना' और कहना है, 'चंदूभाई, माफी माँग लो!'

प्रश्नकर्ता : दादा, ऐसी सामायिक यथार्थ रूप से कैसे की जाती है?

दादाश्री : यहाँ ये सभी लोग वैसी ही 'सामायिक' करते हैं। फिर सामायिक में उस विषय को रखकर ध्यान करते हैं तो वह विषय विलय होता जाता है, खत्म होता जाता है। जो-जो आपको विलय करना हो, उसे इस सामायिक में विलय कर सकते हो। आपको अगर जीभ का स्वाद बाधक हो तो उसी विषय को 'सामायिक' में लेना है। और उसमें जो दिखाई दे, उस अनुसार, उसे 'देखते' रहना है। सिर्फ देखने से ही सभी गांठें विलय हो जाएँगी। जो ग्रंथि बहुत बड़ी हो, जो बहुत परेशान करती हो, वह सामायिक से विलय हो जाती है। हम यहाँ करवाते हैं, वैसी सामायिकें करनी हैं।

सामायिक-प्रतिक्रमण की व्याख्या

प्रश्नकर्ता : अपने प्रतिक्रमण और सामायिक में क्या कनेक्शन (संबंध) है?

दादाश्री : प्रतिक्रमण तो जो अतिक्रमण हुआ हो, उसका करना है। आपका व्यवहार, वह क्रमण है और ज़रूरत से ज़्यादा बोला गया, वह अतिक्रमण है। इसलिए आपको चंदूभाई से कहना है कि 'अतिक्रमण क्यों किया? इसलिए प्रतिक्रमण करो'। अतिक्रमण हो जाए तो प्रतिक्रमण करना है।

सामायिक यानी 'मैं शुद्धात्मा हूँ' का भान, वह सामायिक है। पाँच आज्ञा में निरंतर सामायिक रहती है। समभाव से *निकाल* करना,

वह पहली सामायिक और सहज दशा में, स्वाभाविक रहना, वह हमारे जैसी सामायिक। वैसी आपकी भी थोड़ी-बहुत रहती है।

जब ऐसी सामायिक करते हो तब प्रकृति बिल्कुल सहज कहलाती है। सामायिक करते-करते वर्तमान काल में रहना आ जाएगा। यों ही नहीं आ जाएगा। जब एक घंटे तक सामायिक में बैठते हो, तब वर्तमान में ही रहते हो न!

सामायिक, क्रमिक और अक्रम की

जगत् जो सामायिक करता है, वह सामायिक अलग है और अपनी यह सामायिक, वह अलग ही तरह की सामायिक है। ग़ज़ब की सर्वोत्तम है यह सामायिक! ऐसी सामायिक तो होती ही नहीं न? इन लोगों की सामायिक तो कैसी होती है, कि ये जो सामायिक करते हैं न, उसमें बाउन्ड्री तय करके बैठते हैं, उसके बाद जो भी विचार आए, उसे हटाते रहते हैं। यदि दुकान का विचार आए तो उसे हटाते हैं, फिर और कोई विचार आए तो उसे हटाते हैं, यानी हटाते ही रहते हैं, ऐसा करते-करते एक *गुंठाणा* (48 मिनट, गुणस्थानक) पूरा होता है, उसे सामायिक कहते हैं।

जबकि यह अपनी सामायिक तो अलग ही प्रकार की है। यह सामायिक किसलिए है? बाहर की गांठों को विलय करने के लिए है और जब हम स्वयं 'खुद' (आत्मा) बन जाएँ, उसके बाद ऐसी सामायिक हो सकती है। हम क्या कहते हैं कि, 'मन-वचन-काया की आदतें और उनके स्वभाव को मैं जानता हूँ और मेरे स्व-स्वभाव को भी मैं जानता हूँ', तो उस मन-वचन-काया के स्वभाव को आप विलय कर दो। तब यदि कोई पूछे कि वह कैसे विलय होगा तब मैं कहता हूँ, 'उसे देखने से', मन-वचन-काया का स्वभाव इतना गाढ़ है, बहुत गाढ़ है। उसका आपको पता तो चलता है न, कि यह इतना गाढ़ है?

प्रश्नकर्ता : पता चलता है।

दादाश्री : उस स्वभाव को सामायिक में लेना है तो उतना

उसका स्वभाव विलीन होकर खत्म हो जाएगा। फिर दूसरे स्वभाव को लेना। यानी यह सामायिक गांठों का विलय करने के लिए है। अपना तो अक्रम मार्ग है। अर्थात् स्वभाव का विलय करने के लिए आपको यह सामायिक करनी है। वर्ना यह ज्ञान ही ऐसा है कि आपकी तो पूरे दिन सामायिक ही हो रही है।

सामायिक किसे कही जाती है कि कषाय का अभाव। कषाय के अभाव को यथार्थ सामायिक कही जाती है। लेकिन कषाय का अभाव तो लोगों को रहता नहीं न! कैसे रहेगा?

हम सब को तो हमेशा पूरे दिन सामायिक रहती है, लेकिन फिर भी यह सामायिक तो किसलिए करनी पड़ती है कि यह सारा भरा हुआ माल खाली करना है। बहुत सारा माल है। मसाला इतना सारा भरकर लाए हैं, दूसरे मार्केट से भी भरकर ले आए हैं। अरे, अपने देशी मार्केट में से लो न? तब कहता है, 'नहीं, यह तो आलू जैसा लगता है।' ऐसा कर-करके, ये सब तरह-तरह का भर लाए हैं। कभी किसी को बताते हुए भी शर्म आ जाती है!

लौकिक सामायिक

सामायिक में तो मन को स्थिर करना है। जिस तरह एक गाय को घेरे में से हटने नहीं देते उस तरह से। यदि वह बाहर चला जाए तो हाँकते रहते हैं। सास का विचार आए तो उसे हटाते हैं। घेरे से बाहर निकाल देते हैं, घेरे में घुसने नहीं देते। जो विचार आते हैं, उन्हें इस तरह हटाते रहते हैं लेकिन फिर भी मन ढीला पड़ गया है, चला ही जाता है न! ढीला यानी बोतल को टेढ़ा करने से उसका कॉक कहाँ चला जाता है! इसी तरह मन को वापस लाकर उसकी बाउन्ड्री (सीमा) में रखते रहना, उसी को सामायिक कहते हैं। यह अभी जो व्यवहार में चल रहा है, वह (लौकिक) सामायिक कहलाती है।

उतने समय तक कोई दखल नहीं करता, शांति से बैठता है। एक जगह पर वह रेतघड़ी रखता है। ऊपर की रेत नीचे गिरती है,

जब नीचे पूरी गिर जाती है तो उसे वापस पलट देता है। उस रेतघड़ी की ऊपर की रेत गिरने में अड़तालीस मिनट लगते हैं। जब रेत गिर जाती है तो कहता है, 'मेरी सामायिक पूरी हो गई!' यानी रेतघड़ी रखकर फिर क्या करता है? एक दिन पहले निश्चय किया हो कि सुबह की सामायिक में दुकान याद ही नहीं करनी है। फिर जैसे ही आँखें बंद की, कि तुरंत ही पहले दुकान दिखाई देती है। जिसे याद नहीं करना है, वही सब से पहले याद आती है। इसलिए वह परेशान हो जाता है, फिर दूसरे दिन जब मुझसे कहा कि, 'ऐसा हुआ।' तब मैंने कहा, 'क्यों उसे याद करता है कि 'मुझे दुकान को याद ही नहीं करना है'? तूने एक्शन किया इसलिए वापस रिएक्शन आएगा। एक्शन किया ही क्यों? लेकिन फिर, वह सामायिक में करेगा क्या? शुद्धात्मा तो बना नहीं, इसलिए जो विचार आते हैं, उसे हटाता रहता है। घेरे से बाहर के विचार आएँ तो उनके लिए कहेंगे, 'यहाँ नहीं।' अर्थात् समय पूरा हो जाता है। वह फिर अड़तालीस मिनट तक रेतघड़ी को देखता जाता है और कहता है, 'अभी थोड़ी देर है'। भगवान ने मना किया है फिर भी रेतघड़ी को देखता रहता है।

ठीक है, लेकिन फिर भी लोग कहते हैं, 'भाई, इधर-उधर दौड़-भाग कर रहा था, उसके बजाय कुछ देर के लिए सीधा तो रहा न! वर्ना जैसे मछुआरे (बाहर) मछलियाँ मारते हैं, वैसे ही यह अंदर मछलियाँ मारता है। इसे सामायिक कह ही नहीं सकते न! वह तो एक तरह की स्थिरता है। फिर भी स्थूल भाषा में वह सामायिक गलत नहीं है। उतनी स्थिरता तो रहती है न! उसे गलत तो कह ही नहीं सकते न!

अगर कोई व्यक्ति दुकान पर तीन घंटे भी स्थिर नहीं बैठ सकता, तो वह व्यापार नहीं कर सकता। वह इस पर निर्भर करता है कि वह अपनी दुकान पर कितने घंटे तक बैठता है। तीन घंटें तक एक ही जगह पर स्थिर बैठे रहना चाहिए। कितने तो भँवरे की तरह होते हैं, वे पाँच मिनट बैठते हैं और उठते हैं, बैठते हैं और उठते हैं।

स्वाध्याय सामायिक

मुमुक्षु : ये जो दो घड़ी की सामायिक करते हैं, उसमें कौन-कौन सी क्रियाएँ हो सकती हैं?

दादाश्री : ऐसा है न, यह जो सामायिक है न, वह मन की सामायिक है। दुकान के विचार आएँ या अन्य कोई रसोई के विचार आएँ, उन्हें हटाते रहना है।

मुमुक्षु : ऐसे कोई विचार नहीं आते।

दादाश्री : फिर कैसे आते हैं?

मुमुक्षु : कुछ भी होता रहता है पर विचार नहीं आते। मैं तो पुस्तकें पढ़ता हूँ।

दादाश्री : तो पुस्तकें पढ़ने से सामायिक होती ही है। सामायिक यानी क्या? कि आपका ध्यान पौन घंटे तक और कहीं था, वह इसमें रहा, स्वाध्याय में रहा, उसे स्वाध्याय सामायिक कहते हैं। उपयोग अन्य जगह पर रहा कहलाएगा। बाकी, यथार्थ सामायिक तो एक ही बार करो न, तो अपार आनंद होता है, सभी पाप भस्मीभूत हो जाते हैं।

मुमुक्षु : तो क्या इसमें *निर्जरा* (आत्मप्रदेश में से कर्मों का अलग होना) नहीं होती?

दादाश्री : *निर्जरा* होती है लेकिन थोड़ी-बहुत होती है। ज़्यादा *निर्जरा* तो नहीं हो सकती न! पुस्तक पढ़कर तो सभी सामायिक करते हैं। पुस्तक पढ़ना अच्छा लगता है। वह लुटेरों की पुस्तक तो नहीं पढ़ता न, बल्कि यह शास्त्र पढ़ता है। शास्त्रों में भी इन्टरेस्ट तो आता है न? उसमें बहुत आनंद आता है लेकिन उससे कुछ लाभ नहीं मिलता। यदि आत्मा की यथार्थ सामायिक करोगे तो कुछ लाभ मिलेगा। 'आत्मा' बनकर यदि एक बार 'आत्मा' बोलोगे तो कल्याण हो जाएगा। आत्मा बनकर बोलना है। आपको ऐसा लगे कि मैं 'आत्मा' बन गया,

उसके बाद आपको बोलना है। एक मिनट के लिए भी 'आत्मा' बन गए तो भी बहुत हो गया।

अत: यह जो सामायिक करते हैं न, उसमें यदि धार्मिक पुस्तक लेकर बैठेंगे तो भी चलेगा, लेकिन वह सब मानसिक सामायिक कहलाएगी। मानसिक अर्थात् उसमें आत्मा को लेना-देना नहीं है। उससे मन स्थिर होता है, मन मज़बूत होता है या फिर जब तक शास्त्र पढ़ता है तब तक दूसरे विचार नहीं आते।

स्व-समझ से सामायिक

मुमुक्षु : रोज़ सामायिक करने से क्या फायदा होता है?

दादाश्री : हाँ, लेकिन सामायिक खुद की समझ से न? भगवान द्वारा बताई हुई सामायिक नहीं न? खुद की समझ से सामायिक।

मुमुक्षु : हम तो भगवान के कहे अनुसार ही करते हैं।

दादाश्री : उस रेतघड़ी को देखते रहते हैं, पूरी हुई या नहीं हुई?

मुमुक्षु : उसे तो देखेंगे न, टाइम पूरा हुआ या नहीं?

दादाश्री : नहीं देखना चाहिए। उसमें तो जब आप देखें, तब रेतघड़ी (की रेत) पूरी हो चुकी हो, तब समझना कि सामायिक हुई। मनोबल बढ़ाने के लिए सामायिक है। रोज़ सामायिक करने से मन बलवान होता है और खुद पर श्रद्धा बैठती है।

मुमुक्षु : उससे पुण्य बढ़ता है न?

दादाश्री : हाँ, पुण्य तो बढ़ेगा न! अड़तालीस मिनट तक अगर आप मन को खुद के घेरे में ही रखोगे तो पुण्य बढ़ेगा ही।

मुमुक्षु : लेकिन मन घेरे में नहीं रहता। मन तो कहीं और घूमता रहता है।

दादाश्री : तो वह पूर्ण सामायिक नहीं कही जाएगी। मन जितना

इसमें रहे उतनी ही सामायिक। यह व्यवहार सामायिक है और यथार्थ सामायिक में तो चलते-फिरते भी रहता है।

ऐसी सामायिक व्यर्थ

मुमुक्षु : हम सामायिक करते हैं, प्रतिक्रमण करते हैं, सभी क्रियाएँ करते हैं लेकिन उसमें ध्यान नहीं रहता।

दादाश्री : तो वह किस काम की? यदि उसमें ध्यान नहीं रहता तो वह किस काम की? ध्यान रहे तो काम की और ध्यान नहीं रहता तो काम की नहीं। आपका ध्यान किसमें रहता है?

मुमुक्षु : संसार में चला जाता है।

दादाश्री : संसार में भी क्या पसंद है? अगर यहाँ से चला जाता है तो दूसरी जगह बैठेगा तो सही न? आपका मन किसमें बैठता है?

मुमुक्षु : काम कर रहे होते हैं, घर में कोई कामकाज हो उसमें चला जाता है।

दादाश्री : तो आपको वह काम करना चाहिए। जहाँ ध्यान बैठता है, वह काम करना चाहिए। जहाँ नहीं बैठता उसका क्या करना है? सारी मेहनत बेकार जाएगी और कुछ फायदा नहीं होगा।

अच्छी तरह से संसार चलाए, वही सामायिक

मुमुक्षु : ऐसा जो निश्चय किया है कि रोज़ क्रिया करनी है तो फिर उसका क्या होगा?

दादाश्री : बेकार जाएगी। वह सारी मेहनत बेकार जाएगी। कम मेहनत करो लेकिन ऐसी करो कि काम में आए और संसार में आप अच्छी तरह से रह पाए!

उसमें सामायिक करो, संसार में सामायिक ही है। बच्चों का

अच्छी तरह पालन करना, उन्हें डाँटना नहीं, झगड़ना नहीं, उन पर क्रोध नहीं करना, वह सब सामायिक ही है न! फिर ऐसी सामायिक करने का क्या मतलब? आप अपने बच्चे की सामायिक करो, पति की सामायिक करो, सास की सामायिक करो, जेठानी की सामायिक करो, ऐसी सारी सामायिक करो न! यह सामायिक करने से क्या मिलेगा? यदि मन लगे तो सामायिक करना काम का है। मन नहीं लगे और सामायिक करो तो किस काम का?

मुमुक्षु : लेकिन यह तो रोज़ की क्रिया है इसलिए रोज़ क्रिया करते ही रहते हैं न?

दादाश्री : हाँ, लेकिन उस क्रिया में यदि मन न लगे, तो फिर उसे करने की क्या ज़रूरत है? चित्त तो ठिकाने रहना चाहिए न?

मुमुक्षु : चित्त नहीं रहता।

दादाश्री : तो क्या करोगे?

मुमुक्षु : वही तो आपसे माँगने आए हैं।

दादाश्री : हाँ, यानी यह (सामायिक) पसंद नहीं है! यह पसंद नहीं है और बच्चें वगैरह सब पसंद है। जहाँ अच्छा लगता है, चित्त वहीं पर जाता है। बच्चों की कीमत हटा दो, कम कर दो और इसकी कीमत बढ़ा दो तो कुछ हो पाएगा, वर्ना कैसे हो पाएगा?

यदि सामायिक करनी ही है तो पछतावा करने की सामायिक करो न! किस चीज़ का पश्चाताप करना है? जिस-जिस के गलत पैसे लिए हैं, उसका पश्चाताप करो, जहाँ-जहाँ दृष्टि बिगाड़ी हो, उसका पश्चाताप करो।

मुमुक्षु : तो सामायिक में नवकार नहीं बोलने हैं?

दादाश्री : अरे, नवकार बोल-बोलकर तो यह दशा हुई है! एक भी नवकार यथार्थ रूप से नहीं किया। वह किसके द्वारा दिया गया है, वह देखना चाहिए या नहीं?

ये हैं सब स्थूल सामायिक

जहाँ आर्तध्यान-रौद्रध्यान हैं, वहाँ जैन धर्म ही नहीं है।

मुमुक्षु : यदि सामायिक करते हैं तो जैन धर्म नहीं कहलाएगा?

दादाश्री : आप सामायिक किसे कहते हैं? सामायिक को सामायिक कहते हो या असामायिक को सामायिक कहते हो?

मुमुक्षु : सामायिक और असामायिक किसे कहा जाता है, उसका स्पष्टीकरण कीजिए न।

दादाश्री : ये लोग कौन सी सामायिक करते हैं? ये साधु-आचार्य सभी स्थूल सामायिक करते हैं। स्थूल सामायिक अर्थात् मन को व्यग्रता में से एकाग्रता में लाते हैं।

कुछ लोग पुस्तक लेकर बैठे रहते हैं, वे किताबें ही पढ़ते रहते हैं। कुछ लोग अन्य विचारों में, कुछ लोग मंत्रों में, या किसी और चीज़ में घुस जाते हैं यानी वे सामायिक में रहते हैं। लेकिन फिर भी ये सीधे नहीं रहते, तो फिर भगवान भी इसे कैसे जमा करें? जो पलभर के लिए, अड़तालीस मिनट के लिए भी सीधा नहीं रह पाता, उसका क्या होगा?

अरे, यह स्थूल सामायिक तो मज़दूरों को भी रहती है! यह तो इन व्यग्र हुए सेठों को नहीं रहती। स्थूल सामायिक मज़दूरों को रहती है लेकिन उनकी व्यर्थ जाती है और यह तो, व्यग्रता वाले को एकाग्रता हो जाए, वही काम का है!

जैन धर्म का सार 'यह' है!

आर्तध्यान-रौद्रध्यान बंद हो जाए, वही जैन धर्म का सार है।

मुमुक्षु : वह तो हम प्रतिक्रमण में बोलते हैं कि आर्तध्यान-रौद्रध्यान जाए, धर्मध्यान-शुक्लध्यान हो! बाद में उसका मिच्छामि दुक्कडम् कर लेते हैं।

दादाश्री : हाँ, लेकिन कोई फायदा नहीं होता न! ऐसा बोलने से थोड़े ही हो जाता है? आर्तध्यान का फल जानवरपना, रौद्रध्यान का फल नर्कगति। क्या होगा इससे? और यदि जैन में जन्म मिले फिर भी जानवरपना होता है! धिक्कार है ऐसे जन्म पर!

अन्य धर्मों की क्रियाएँ

मुमुक्षु : जैसा जैनों में हैं, उसी तरह दूसरे धर्मों में भी ऐसी कोई पद्धति है क्या?

दादाश्री : सभी जगह पर ऐसा है न, वहाँ पर स्थिरता करने का गुण है न! अन्य धर्मों में भक्ति करते हैं, जैन धर्म में सामायिक करते हैं लेकिन यह सब मन को कुछ समय के लिए स्थिर करता है।

मन को रोकना यानी सामायिक

आप कौन सी सामायिक कह रहे हो?

मुमुक्षु : यदि हम एक घंटे के लिए सामायिक करते हैं, तो उस क्रिया में हमें क्या करना है?

दादाश्री : सिर्फ इतना ही कि मन को स्थिर करने के लिए बाहर के सभी विचारों को हटाते रहना है। ऐसी सारी लौकिक सामायिक व्यवहार में चलती हैं।

मुमुक्षु : उपाश्रय में जो साधु-मुनि करते हैं, वे?

दादाश्री : वह सारा मानसिक है, वह लौकिक है सारा। वह सब मन को स्थिर करने के लिए है क्योंकि मन स्थिर नहीं रहता है न! एक घंटे तक अगर मन को स्थिर किया जाए न, तो बहुत अच्छा है। इससे मन की शक्ति बढ़ेगी और उतना अवकाश रहेगा। अगले जन्म के लिए अवकाश रहा यानी उतने कर्म बंद हो चुके होते हैं। मन को रोका, मन को स्थिर किया। इन सभी से पुण्यकर्म बंधता है।

मुमुक्षु : शायद ही कोई ऐसा होगा जिसका मन घेरे में रहता

है। जब उपाश्रय में जाते हैं तब वहाँ पर व्याख्यान चल रहा होता है। लोग सामायिक में बैठ जाते हैं, लेकिन उनके मन तो बाहर ही रहते हैं, अंदर रहते ही नहीं।

दादाश्री : मन व्याख्यान में नहीं रहता, वह तो चित्त व्याख्यान में रहता है और वह भी तब, जब व्याख्यान पसंद हो। बाप जी का व्याख्यान अगर हमें अच्छा लगे, तो चित्त कुछ देर के लिए वहाँ स्थिर रहता है, बाहर भटकना रुक जाता है लेकिन दूसरी तरफ मन तो विचार करता ही रहता है। वह तो जब मन वश में हो जाएगा तब कुछ हो पाएगा। तब ठीक से सामायिक हो पाएगी।

मुमुक्षु : किसी ने सौ नवकार मंत्र करने के लिए कहा हो तो ध्यान इसी में रहता है कि सौ कब पूरे होंगे।

दादाश्री : हाँ, वहाँ जल्दबाज़ी ही रहती है। सामायिक में भी उस रेतघड़ी को ही देखता रहता है! फिर जिसे पौषध कहा जाता है, उसमें भी क्या करते हैं उपाश्रय में रहकर? दूसरी जाति वाले कहते हैं, 'जब बैल को पानी पिलाने जाते हैं, तब पोषो-पोषो कहते हैं न, उसी प्रकार ये पानी पिलाकर आए।' पौषध व्रत अर्थात् आत्मा को पोषण देना। घर से निकलकर उपाश्रय में रहकर साधु जीवन जीना। उस समय आत्मा को पोषण देता है, सारा बाह्य व्यवहार एक तरफ रख देना पड़ता है।

आरंभ, समरंभ, समारंभ

आरंभ शब्द बोलते तो हैं लोग, लेकिन लोग समझते हैं क्या? समारंभ, ऐसा कहते ज़रूर है लेकिन समारंभ क्या है, वह नहीं समझते। बड़े-बड़े पंडित भी नहीं समझते। किस डिग्री तक समारंभ कहलाता है और फिर किस डिग्री से आरंभ कहलाता है, उन डिग्रियों को नहीं जानते। इतना ही है कि वे सिर्फ शब्द बोलते हैं। शब्द शास्त्रों के ही हैं।

मुमुक्षु : क्या समरंभ से भी कर्म बंधन होता है?

दादाश्री : समरंभ ही कर्म है। वह पहला कर्म है। वह मानसिक कर्म कहलाता है। समारंभ को मन और वचन दोनों का कर्म कहा जाता है और आरंभ, मन-वचन-काया तीनों का कर्म कहलाता है। यह ज्ञान लेने के बाद में अगर आप किसी को गाली दे आओ, ऐसा आरंभ कर आओ फिर भी वह आपको स्पर्श नहीं करेगा, ऐसा है यह विज्ञान! सिर्फ, इस तरह गाली देने के कारण, सामने वाले को दुःख हुआ इसलिए आपको चंदूभाई से इतना कहना पड़ेगा, 'यह अतिक्रमण क्यों किया? अर्थात् प्रतिक्रमण करो।' आपको इतना ही करना है। आपको दुःख देने का भाव है ही नहीं। किसी को दुःख देकर हम मोक्ष में नहीं जा सकते, हमारे पास चाहे कैसा भी विज्ञान हो, फिर भी।

मुमुक्षु : समरंभ से जो कर्म बंधन होता है वह कम होता है और जब तीनों एक साथ हों तब ज़्यादा होता है?

दादाश्री : समरंभ को ही कम कहा जाएगा न! समरंभ अर्थात् सिर्फ मन से ही। जब इकट्ठा हो जाता है तब बहुत बड़ा कर्म कहा जााता है। इसीलिए भगवान ने उसे आरंभ कहा है।

मुमुक्षु : मन से कर्म करके फिर वहीं पर रुक गया तो वह ज़्यादा बंधन में नहीं आएगा?

दादाश्री : ज़्यादा बंधन नहीं होगा। फिर सिर्फ विचार करके छूट जाएगा। सिर्फ विचार करने पर छूट जाता है।

मुमुक्षु : शास्त्रों में उस आरंभ-परिग्रह की सीमा बनाने को कहा गया है। अगर वह बनाई जाए तो क्या फर्क पड़ेगा और न बनाए तो क्या फर्क पड़ेगा?

दादाश्री : अगर (सीमा) बनाएगा तो यह कर्म कम आएगा। इस जन्म में बनाएगा तो अगले जन्म में कर्म कम आएँगे। ऐसे करते-करते, सीमा बनाते-बनाते, कम करते-करते आगे बढ़ता जाएगा।

मुमुक्षु : वह, उस सामायिक जैसा?

दादाश्री : सामायिक अर्थात् आरंभ रहित। एक घंटे तक आरंभ-परिग्रह रहित रहना ही सामायिक है।

ऐसी सामायिक कौन करता है?

मुमुक्षु : यदि सामायिक कर रहा हो और भूकंप आया तो भी सामायिक नहीं छोड़नी चाहिए न?

दादाश्री : ऐसी सामायिक कौन करता है? ऐसी सामायिक कोई करता ही नहीं न?

अत: यह जो सामायिक है, वह देह को स्थिर करने का साधारण प्रयोग है। देह स्थिर रहेगी तो संसार के लिए हितकारी होगा, लक्ष्मी वगैरह ज़्यादा मिलेंगे। जिसका देह एक पलभर के लिए भी स्थिर नहीं रहता, उसके पास लक्ष्मी कैसे आएगी? अत: वह सामायिक यथार्थ सामायिक नहीं है।

यथार्थ पुरुष की मुहर रहित की सामायिक

अभी जिसे 'आत्मा' मान बैठे हैं न, वह तो 'मिकेनिकल आत्मा' है। वह कभी भी यथार्थ आत्मा नहीं होता और उसे ही स्थिर करना चाहते हैं। अरे, यह तो 'मिकेनिकल' है, कभी भी स्थिर होगा ही नहीं।

मुमुक्षु : यह समझ में नहीं आया।

दादाश्री : यह जो 'व्यवहार आत्मा' है न, वह 'मिकेनिकल आत्मा' है। उसे स्थिर नहीं करना है। वह तो सिर्फ, अभ्यास ही करना है कि मन स्थिर रहता है या नहीं, यानी सिर्फ देखना ही है। मन को स्थिर करने के लिए यह सामायिक करते हैं, ताकि कुछ देर तो यह देह सीधा रहे, कुछ देर तक मन सीधा रहे। साधारण तौर पर स्थिरता रखने के लिए ही है। जैसे कि बहुत थका हुआ आदमी थकान दूर करने के लिए बैठता है, तो क्या वह हमेशा बैठा रहेगा?

मुमुक्षु : नहीं।

दादाश्री : ऐसा है, यह।

यह सामायिक तो थकान के जैसी है। बाकी, यह मशीन तो रात-दिन चलती ही रहती है और यह निरंतर सामायिक में रहता है। एक क्षण भी सामायिक के बाहर नहीं रहता। इस संसार में घर बैठे, बीवी-बच्चों के साथ रहकर, निरंतर सामायिक में रहता है।

और 'आत्मा' ही सामायिक है। अन्य सभी सामायिक तो 'व्यवहार सामायिक' हैं। यथार्थ सामायिक प्राप्त करने के हेतु से यह 'व्यवहार सामायिक' करनी है। वह व्यवहारिक सामायिक भी सच्चे पुरुष द्वारा दी हुई होनी चाहिए।

मुमुक्षु : सच्चे पुरुष की व्याख्या क्या है?

दादाश्री : सच्चा पुरुष यानी, इस थाणे जिले के कलेक्टर ने आपको कुछ ऑर्डर लिखकर दिया हो कि इतनी ज़मीन आपको सुपुर्द की जाती है। अब वह तो वास्तव में कलेक्टर है लेकिन अगर कलेक्टर न हो और उसके पास लिखा हुआ ऑर्डर हो तो? नीचे कलेक्टर लिखकर मुहर लगा दी हो और यदि कलेक्टर ना हो तो? वहाँ नहीं चलेगा, आगे नहीं चलेगा। वैसे ही ये जो सारे कलेक्टर सामायिक लिखकर देते हैं न, वे सच्चे पुरुष नहीं हैं।

सामायिक में फूटे कप या आत्मा?

मैं टेबल पर चाय पी रहा था और पचहत्तर साल के सेठ सामायिक कर रहे थे। दूसरे रूम में प्याले फूटे तो सेठ को सुनाई दिया। मैं तो बहरा (कान में कम सुनाई देता था)। मुझे सुनाई नहीं दिया और सेठ तो तेज़ कान वाले। जैसे ही सुनाई दिया कि सामायिक करते-करते सेठ पूछने लगे, 'क्या फूटा?' मैंने कहा, 'आपका आत्मा फूटा।' इसमें दूसरा क्या फूटने वाला था? यदि पत्नी गिरती तो आवाज़ होती? दूसरा कुछ फूटने वाला नहीं है। ये प्याले ही फूटे हैं उसकी आवाज़ हुई है तो सामायिक करते-करते सेठ पूछते हैं, 'क्या फूटा?' तो इसे सामायिक कैसे कहेंगे? उस घड़ी तो, यदि पत्नी मर रही हो,

पति मर रहा हो तो भी सामायिक नहीं छोड़ते, उसे सामायिक कहते हैं। इसे सामायिक कैसे कहेंगे? प्याले फूट गए, उसमें भी उसका मातम मनाना? अब भी ऐसा होता है क्या सब जगह?

मुमुक्षु : होता है।

दादाश्री : ऐसा? और फिर वे प्याले जीवित हो जाते होंगे? क्यों? आपने सामायिक छोड़ दी इसलिए?

स्थूल कर्म और सूक्ष्म कर्म

आचार्य महाराज प्रतिक्रमण करते हैं, सामायिक करते हैं, व्याख्यान देते हैं, प्रवचन करते हैं, लेकिन वह तो उनका आचार है, वह स्थूल कर्म है, लेकिन भीतर क्या है उसे देखना है। भीतर जो 'चार्ज' होता है वह वहाँ काम में आएगा। अभी जिस आचार का पालन करते हैं, वह 'डिस्चार्ज' है। पूरा बाह्याचार ही 'डिस्चार्ज' स्वरूप है। उसमें लोग कहते हैं कि, 'मैंने सामायिक की, ध्यान किया, दान दिया' तो उसका यश तुम्हें यहीं मिल जाएगा। उसमें अगले जन्म का क्या लेना-देना? भगवान ऐसी कोई कच्ची माया नहीं है कि तेरी ऐसी पोल चलने दें।

बाहर सामायिक करे और भीतर कुछ और करता रहे! एक सेठ सामायिक करने बैठे थे, तभी बाहर किसी ने दरवाज़ा खटखटाया। सेठानी ने जाकर दरवाज़ा खोला। एक भाई साहब आए थे। उन्होंने पूछा, 'सेठ कहाँ गए हैं?' तो सेठानी ने जवाब दिया, 'कूड़े के ढ़ेर में।' सेठ ने यह सुना और भीतर ढूँढा तो वास्तव में वे कूड़े के ढ़ेर में ही गए थे। भीतर मन में तो खराब विचार ही चल रहे थे लेकिन बाहर सामायिक कर रहे थे। भगवान ऐसी पोल को नहीं चलने देते। भीतर सामायिक होती हो लेकिन बाहर सामायिक न भी हो तो उसका 'वहाँ' चलेगा। ये बाहर का दिखावा 'वहाँ' नहीं चल सकता।

आर्तध्यान-रौद्रध्यान बंद हो जाए, वह सामायिक महावीर की

भगवान ने सामायिक किसे कहा? जिसे आर्तध्यान व रौद्रध्यान

नहीं होते हैं, उन्हें पूरे दिन सामायिक ही रहती है, ऐसा कहा है। महावीर भगवान कितने समझदार हैं! आपके लिए कुछ भी करने को बाकी नहीं रखा। और इन लोगों की एक भी सामायिक भगवान 'एक्सेप्ट' नहीं करते, आर्तध्यान और रौद्रध्यान एक *गुंठाणा* (48 मिनट, गुणस्थानक) तक, अड़तालीस मिनट के लिए बंद होने चाहिए न?

'मैं चंदूभाई हूँ' करके सामायिक करता है। जैसे इस नीम को काट डाले तो भी वापस जब नई शाखाएँ आती हैं, तो वे कड़वी ही होती हैं न? काटने के बाद यदि अंदर शक्कर डालें तो भी कड़वा ही रहेगा?

मुमुक्षु : हाँ, दादा। मूल में ही ऐसा है।

दादाश्री : मूल स्वभाव ही ऐसा है। वैसे ही ये 'चंदूभाई' सभी राग-द्वेष बंद करके सामायिक में बैठेंगे, तो वे किसकी सामायिक करेंगे? ना ही आत्मा जाना, और ना ही मिथ्यात्व को समझता है! जो मिथ्यात्व को समझेगा उसे समकित हुए बगैर रहेगा ही नहीं। अतः सेठ सामायिक करने बैठे हों, लेकिन उन्हें और कुछ नहीं आता है इसलिए वे क्या करते हैं? खुद का एक घेरा बना देते हैं और अन्य कोई भी विचार आए, दुकान के, लक्ष्मी के, विषय के तो वे उन्हें घेरे से बाहर ही भगाते रहते हैं। जैसे कि एक घेरे (बाउन्ड्री) में गाय के बछड़े घुस जाएँ, कुत्ते घुस जाएँ तो वह उन्हें भगाता ही रहता है और घेरे में घुसने नहीं देता, उसे वे सामायिक कहते हैं फिर भी वह सामायिक है, क्योंकि उसमें आर्तध्यान और रौद्रध्यान नहीं होते।

मुमुक्षु : यदि उसमें आर्तध्यान व रौद्रध्यान नहीं होते हैं तो फिर वह समता ही कहलाएगी न?

दादाश्री : लेकिन आर्तध्यान व रौद्रध्यान चले नहीं जाते, वे तो रहते ही हैं। उसमें सामायिक करने से पहले एक नियम बनाना पड़ता है। 'हे दादा भगवान! यह चंदूभाई, मेरा नाम, मेरा शरीर, मेरा अंतःकरण, मेरा मिथ्यात्व सब आपको अर्पण करता हूँ। अभी मुझे यह सामायिक

करते समय वीतराग भाव दीजिए।' इस तरह विधिवत् करे तो काम होता है।

मोक्ष प्राप्ति यथार्थ सामायिक से

मुमुक्षु : सामायिक, प्रतिक्रमण वगैरह सब धर्मध्यान करने से मोक्ष का मार्ग मिलेगा?

दादाश्री : मिलेगा, लेकिन अभी जो चल रहा है, उस सामायिक और प्रतिक्रमण से नहीं मिलेगा। यह तो सही माल नहीं है। सच्ची सामायिक हो तो एक ही सामायिक करने से मोक्ष हो जाएगा। अभी इसमें किसी का दोष नहीं है। इस काल का स्वभाव ही ऐसा है।

मुमुक्षु : यह कैसे पता चलेगा कि हम गलत सामायिक कर रहे हैं? हम तो इसी आशय से करते हैं कि ठीक कर रहे हैं?

दादाश्री : आत्मा की पहचान होने के बाद ही सच्ची सामायिक होती है। तब तक यथार्थ सामायिक नहीं हो सकती। तब तक वह मन स्थिर करने का साधन है, देह को स्थिर करने का साधन है। यों भी वह लौकिक सामायिक है! जबकि यह (यहाँ) अलौकिक सामायिक, 'व्यवहार आत्मा' को स्थिर करने के लिए है। यहाँ पर हमारे ज्ञान देने के बाद 'व्यवहार आत्मा' को स्थिर किया जा सकता है न! जाने बिना कैसे हो सकेगा? अपने यहाँ पर ज्ञान लेने के बाद, वह 'व्यवहार आत्मा' को स्थिर करता रहता है। यहाँ पर बहुत जागृति है जबकि वहाँ (लौकिक में) जागृति है ही नहीं।

सामायिक का कर्ता कौन?

एक व्यक्ति है, वह सामायिक करता है तो दूसरे लोगों से क्या कहता है कि, 'मैं रोज़ चार सामायिक करता हूँ, यह व्यक्ति तो एक ही सामायिक करता है।' अत: उससे पता चल जाता है कि इस व्यक्ति को सामायिक करने का इगोइज़म (अहंकार) है, इसलिए दूसरों के दोष निकाल रहा है, 'वह एक ही करता है और मैं चार करता हूँ।'

फिर दो-चार दिनों बाद हम वापस उसके पास जाएँ कि, 'भाई, क्यों आज सामायिक नहीं कर रहे हो?' तब कहेगा कि, 'पैर जकड़ गए है।' तब हम पूछें कि, 'भाई, पैर सामायिक कर रहे थे या आप कर रहे थे? पैर यदि सामायिक कर रहे होते तो आपने जो कहा वह गलत कहा था।' यानी यह पैर ठिकाने पर होने चाहिए, मन ठिकाने पर होना चाहिए, बुद्धि ठिकाने पर होनी चाहिए, जब सभी संयोग ठीक होंगे तब सामायिक होगी, और अहंकार भी ठिकाने पर रहना चाहिए। अहंकार भी उस घड़ी ठिकाने पर न हो तो कार्य नहीं होगा, यानी जब यह सब साथ में होगा तब कार्य होगा। इसमें आप अकेले क्यों सिर पर ले लेते हो? यानी कि यह परसत्ता ने किया, उसमें आपका क्या? ऐसा सिर पर लेता है या नहीं लेता? परंतु यह तो सिर्फ 'अहंकार' करता रहता है। जबकि यह सबकुछ कर रहा है 'साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स', लेकिन 'खुद' कहता है 'मैं कर रहा हूँ'। वह है गर्वरस! और जब तक गर्वरस चखने की आदत है न, तब तक यह संसार खड़ा रहता है। बात तो समझनी पड़ेगी न? यों ही गप्प चलती है क्या?

अब, इसलिए इन लोगों ने कहा है कि 'यही गले में फांसी।' यह सामायिक की, प्रतिक्रमण किया, यह मैंने त्याग दिया, ऐसा बोले तो वह आपके गले में फांसी है, तूने गर्वरस चखा इसलिए!

सामायिक, पुनिया श्रावक की

प्रश्नकर्ता : पुनिया श्रावक की सामायिक कैसी थी?

दादाश्री : आप सब जो सामायिक करते हो वैसी सामायिक। क्रमिक मार्ग में वह वहाँ तक ले गया था।

श्रेणिक राजा को जब नर्क जाना हुआ तब भगवान ने सभी उपाय बताए। भगवान से कहते हैं नर्क टले ऐसे उपाय बताइए। 'भगवान आप मुझे मिले हैं फिर भी मुझे नर्क में जाना पड़े?' तब भगवान ने कहा, 'भाई, इसमें कोई क्या कर सकता है? इसमें किसी का कुछ नहीं चलता, वह तो जो कर्म बंध गया सो बंध गया, उसमें नहीं

चलता!' फिर भी राजा ने कहा कि 'कोई उपाय बताइए'। फिर भगवान ने चार उपाय बताए कि इनमें से कोई भी एक लेकर आओगे तो आपको नर्क में नहीं जाना पड़ेगा। उनमें से तीन उपाय फेल (असफल) गए। उसके बाद जब पुनिया श्रावक की सामायिक का उपाय आया तब श्रेणिक राजा ने कहा कि 'वह तो मैं पुनिया श्रावक से ले आता हूँ।'

श्रेणिक राजा पुनिया श्रावक के पास गए। उन्होंने कहा, ''तुम मुझे सामायिक दे दो। तुम मेरे राज्य में रहते हो, सामायिक की तुम जो भी कीमत माँगोगे वह मैं तुम्हें दूँगा। सामायिक यानी अड़तालीस मिनट का तुम्हारा जो फल हो उतना तुम मुझे दे दो। तुम मुझसे इतना कहो कि 'मैंने आपको दिया, अर्पण किया,' इतना कहो।'' तब पुनिया श्रावक ने कहा, 'साहब, वह नहीं दिया जा सकता। वह देने जैसी चीज़ नहीं है।' राजा ने कहा 'क्यों नहीं दे सकते? तुम्हें देना ही पड़ेगा। 'ना' शब्द कहना ही मत।' तब कहा, 'वह नहीं दिया जा सकता, यदि भगवान कहें तो दे सकता हूँ।' तब राजा ने कहा, 'भगवान ने कहा है कि आपको पुनिया श्रावक की सामायिक लानी है। तुम्हें क्या कीमत लेनी है?' वह बेचारा बहुत दवाब में आ गया इसलिए फिर कहा, 'ठीक है, अगर भगवान ने कहा है तो मैं दूँगा।' राजा को लगा कि यह हाथोंहाथ कोई प्रोमिस देने वाला है। उन्होंने कहा, 'बोल, क्या कीमत लेनी है तुझे?' वे तो राजा थे इसलिए किसी का उपकार चढ़े ऐसा तो करेंगे ही नहीं न? तो राजा ने कहा, 'क्या कीमत लेनी है?' तब पुनिया कहता है, 'वह तो भगवान जो कहेंगे वह कीमत लूँगा।'

इसलिए फिर राजा को पक्का हो गया कि, यह देने के लिए राज़ी हो गया है, सौदा हो गया है तो अब क्या हर्ज है! फिर राजा ने आकर भगवान को सब बताया। भगवान से कहा, 'आज बहुत अच्छा शगुन हुआ है।' तब भगवान कहे, 'कैसा शगुन हुआ है?' तब राजा ने कहा, 'उसने सामायिक देने के लिए हाँ कर दी है, अपनी मर्ज़ी से हाँ कर दी है। अब तो नर्कगति में नहीं जाना पड़ेगा न?' तब भगवान कहते हैं, 'लेन-देन में क्या तय किया है?' राजा को लगा 'ओहो!

पाँच-दस लाख दिलवा देंगे, और क्या करेंगे? सिर्फ, अड़तालीस मिनट के!' अब, मेरी नर्कगति नहीं होगी न? तब भगवान ने कहा, 'तब तो नहीं होगी लेकिन तुम्हें किसने कहा? तुझे (सामायिक) किस तरह से दी?' तब राजा ने कहा, 'उसने तो आप पर ही छोड़ा है। अब आप जो भी कीमत कहेंगे, वह मैं उसे दे दूँ।' तब भगवान ने कहा, 'मुझ पर छोड़ा है? उसकी कीमत तो मैं जानता ही हूँ न! और मैं ऐसा-वैसा कुछ कैसे कह सकता हूँ?' तब राजा कहते हैं कि 'जो कीमत हो वह मुझे बताइए, अभी दे देता हूँ।' तब भगवान कहते हैं, 'देखो मैं तुम्हें समझाता हूँ, उसकी कीमत क्या है वह तुम जानते हो? तुम्हारा राज्य तो सिर्फ उसकी दलाली में चला जाएगा। सिर्फ तीन प्रतिशत की दलाली में तुम्हारा राज्य चला जाएगा, इतनी कीमत है उसकी। यानी मूल रकम तो देनी बाकी ही रही। वह कहाँ से लाकर दोगे?' इस पर राजा ने पूछा, 'मेरा राज्य सिर्फ दलाली में चला जाएगा? तो और पूँजी कहाँ से लाकर दूँ? यानी अब तो मेरी नर्कगति रुक ही नहीं सकती न?' तब भगवान ने कहा, 'इस सामायिक की इतनी अधिक कीमत है, तुमसे पेमेन्ट (भुगतान) नहीं हो सकेगा!' फिर राजा ने खुद ही मना कर दिया कि 'नहीं साहब, मैं नहीं चुका पाऊँगा।' अतः फिर उन्होंने प्रयत्न बंद कर दिया और आराम से नर्कगति में गए, और (अगली चौबीसी के) पहले तीर्थंकर होकर आएँगे, 'पद्मनाभ' नामक! अब, ऐसी सामायिक आपको यहाँ रोज़ करवाते हैं। किन्तु लोग इसका महत्व नहीं समझते, पान खाकर फिर थूक देते हैं!

प्रश्नकर्ता : किसी आदिवासी को अगर हीरा दिया हो तो वह उसे काँच ही समझेगा न?

दादाश्री : हाँ, ऐसा ही है। बालक के हाथ में रत्न देने जैसी बात है, फिर भी कभी न कभी गाड़ी चल पड़ेगी। बालक फिर बड़ा होता जाएगा। एक-दो बार उसके हाथ से कोई ले लेगा, लेकिन वापस वह 'दादा' से लेकर, बाद में किसी को नहीं देगा। एक बार अगर रोका हो कि अब धोखा मत खाना। तो अब नहीं देगा, है न?

उस समय आनंद भी वैसा ही आता है। ऐसी सामायिक होती हो न, पुनिया श्रावक के जैसी तो उसका आनंद भी वैसा ही आता है। उस समय भले ही स्पंदन होते हों, देह के तो सभी स्पंदन आएँगे लेकिन सामायिक में जो आनंद आता है न, वह स्पंदन नहीं होने की वजह से आता है।

कायोत्सर्ग सहित

भगवान ने कैसी सामायिक कही थी कि 'यह देह और यह सब मेरा नहीं है,' इस प्रकार की सामायिक कही थी। सामायिक तो कायोत्सर्गपूर्वक होनी चाहिए। जिसने अपना यह ज्ञान लिया हो वह कायोत्सर्गपूर्वक सामायिक करेगा। कायोत्सर्गपूर्वक! वह बहुत ही कीमती है।

अब वे कायोत्सर्ग किस तरह करते थे? सभी बड़े-बड़े लोग, गणधर वगैरह जो कायोत्सर्ग करते थे, वे ऐसे खड़े रहते थे। खंभे की तरह। फिर ऐसा तय करते थे कि मैं पैर नहीं हूँ, पेट नहीं हूँ, छाती नहीं हूँ, सिर नहीं हूँ, फलाँ नहीं हूँ, इनका उत्सर्ग करते और फिर भीतर तय करते थे कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ'। कैसा? तो कहे कि, अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत शक्ति, ऐसे पाँच-छः गुणधर्म उन्हें पता होते हैं। शास्त्र के शब्दों के आधार पर वे उन शब्दों को बार-बार याद करते रहते थे। पहले उत्सर्ग कर देते थे, कायोत्सर्ग। इसे भगवान ने सब से अंतिम उपचार कहा।

'यह मन-वचन-काया मैं नहीं, मैं शुद्धात्मा हूँ,' ऐसा ध्यान में रहे, उसे काउसग्ग कहते हैं। अब लोग यह काउसग्ग को समझते नहीं हैं। कायोत्सर्ग, हमने यह जो बुलवाया न! अभी यह ज्ञानविधि बोल रहे थे न, उस घड़ी कायोत्सर्ग ही था। 'मन-वचन-काया से भिन्न ऐसा मैं प्रकट शुद्धात्मा हूँ,' ऐसा बुलवाया वह सब कायोत्सर्ग ही था।

ज्ञानविधि वह है, आत्मा की सामायिक

सामायिक अर्थात् मैंने आपको जो यह एक घंटा ज्ञानविधि करवाई

न, इसे सामायिक कहते हैं। अध्यात्म से संबंधित एक ध्यान में रहना, वह सामायिक कहलाती है। ऐसी सामायिक मनुष्यों से पूर्ण रूप से, अच्छी तरह से नहीं हो पाती। उसके लिए, ज्ञानी पुरुष पाप धो देते हैं। जब तक पाप नहीं धुलते, तब तक कुछ नहीं हो सकता।

जब हम फिर से 'ज्ञान' देते हैं, तब आपसे क्या कहते हैं कि फिर से बैठना। ऐसी सामायिक बार-बार नहीं होगी। इसलिए समय मिले तो बैठ जाना। यदि समय नहीं मिले तो काम निपटाने के बाद भी, लेकिन यहाँ आ जाना।

अक्रम में निरंतर सामायिक

प्रश्नकर्ता : अपने अक्रम मार्ग में सामायिक का क्या महत्व है?

दादाश्री : हम सभी को पूरे दिन सामायिक ही रहती है, सामायिक से भी ज़्यादा रहता है। 'मैं शुद्धात्मा हूँ' उसका *लक्ष,* उसे सामायिक कहते हैं और फिर वह भी यथार्थ सामायिक। ऐसी सामायिक पूरे दिन रहती है।

'मैं शुद्धात्मा हूँ', यदि एक घंटे तक ऐसा रहा, वही सामायिक है। समभाव से *निकाल* करना, वह सामायिक है। रिलेटिव और रियल को देखा, वह भी सामायिक है। हमारे पाँच वाक्य (आज्ञाएँ), वे सामायिक स्वरूप ही हैं!

प्रश्नकर्ता : क्रमिक मार्ग में तो पुनिया श्रावक की सामायिक सर्वश्रेष्ठ है?

दादाश्री : हाँ, वह तो यही, आपकी वाली सामायिक है! जब आप सुबह बाहर निकलते हो तो इन स्थूल आँखों से गाय दिखाई देती है और भीतर की आँखों से शुद्धात्मा दिखाई देता है। पुनिया श्रावक की ऐसी ही सामायिक थी। तभी मैं आपसे कह रहा हूँ न, कि आपको पुनिया श्रावक की सामायिक दी है, प्योर सामायिक। अब अगर आपको यह भोगना आए तो भोगना (यदि लाभ लेना आए तो लाभ उठा लो)।

यानी इस काल में ऐसी सामायिक हो सकती है। अगर लाभ नहीं होता तो (आपकी ही) भूल है न!

एक घंटे के लिए, रिलेटिव और रियल, दोनों को देखते-देखते ठीक से उसका उपयोग रखें, तो भगवान ने इसे शुद्ध उपयोग कहा है। ऐसा शुद्ध उपयोग यदि एक *गुंठाणा* (48 मिनट, गुणस्थानक) तक रहे न, तो पुनिया श्रावक की सामायिक हो जाए, ऐसा है। आप कर सको तो अवश्य लाभ उठाना चाहिए।

भीतर मन भले ही कितनी भी दखलंदाज़ी करे फिर भी उसे कहना कि 'अभी बैठ जाओ, एक घंटे बाद आना, जिन्हें भी आना हो आना।' और फिर भीतर भी आने वाले होते हैं न, शोर मचाने वाले होते हैं न, उन्हें कहना कि 'अभी चुप हो जाओ, अभी एक घंटे के लिए सब बंद है। हमारी सामायिक चल रही है। अभी मत आना। अंदर होम डिपार्टमेन्ट (आत्मा) में किसी को घुसने का अधिकार नहीं है, फॉरेन (अनात्म विभाग) में रहो। हम जब एक घंटे के बाद बाहर निकलेंगे तब देखेंगे।' तो फिर सब अपने आप बंद हो जाएगा। हम ऑर्डर करें उसी मुताबिक वे चलेंगे क्योंकि वे सभी चीज़ें निर्जीव हैं लेकिन सचेतन हो गई हैं, सचेतन भाव को प्राप्त किया है। अत: घंटे भर यह पुनिया श्रावक की सामायिक करना। सभीकुछ झड़कर निकल जाएगा।

जो जगत् को विस्मृत करवाए, वह है सामायिक

सामायिक का अर्थ क्या है? जो जगत् विस्मृत करवा दे। चोर-डाकू की बातें भी जगत् को विस्मृत करवा देती हैं। आप घर पर गए और अभी भोजन में थोड़ी देर हो तो आप अकुलाकर कोई किताब पढ़ने बैठ जाते हो। फिर अगर थोड़ी देर बाद वे (पत्नी) आपको बुलाने आएँ कि 'चलो खाना खाने', तो आप नहीं उठते। अरे, ऐसा क्यों? वह इसलिए कि, उस किताब में एकाग्र हो गए। क्योंकि मनुष्य को नीचे गिराने वाले संस्कार जल्दी एकाग्र करते हैं। अत: पूर्ण रूप

से एकाग्र हो जाता है, इसलिए उठता नहीं है फिर। अब उस समय भी जगत् विस्मृत हो जाता है लेकिन यह अधोगति में ले जाएगा। अपना ही धन खर्च करके मार खिलाता है और सामायिक, जो कि ऊर्ध्वगामी है, उसमें थोड़ी देर लगती है, जगत् विस्मृत होने में देर लगती है।

दादा में स्मृति, तो विश्व में विस्मृति

इन सब को दादा याद रहते होंगे, पूरे दिन? और दादा याद रहें तो क्या होता है कि जगत् विस्मृत हो जाता है। कोई एक याद रहता है, अगर जगत् याद रहता है तो दादा याद नहीं रहते और दादा याद रहें तो जगत् विस्मृत हो जाता है। जब से जगत् की विस्मृति हुई तभी से कर्म कम लगने लगते हैं। तो लोगों को तो सामायिक में भी जगत् विस्मृत नहीं हो पाता। कृपालुदेव जगत् विस्मृत करने का ही कहते थे। एक घंटे के लिए भी अगर जगत् विस्मृत हो जाए तो उसकी कीमत तो उन्होंने बहुत बड़ी बताई है।

मन में ऐसा हो तो क्या हो सकता है? मन में ऐसा हो सकता है लेकिन आत्मा से अलग है। सेठ को भी वह पता चलता है कि मैं सामायिक कर रहा हूँ और मन कूड़े के ढेर में गया है। ऐसा किसे पता चलता है? उसे वह मिठास लगती है इसलिए वहाँ वापस दौड़ता है। मिठास लगती है, वहाँ जाकर वसूली करने लगता है! वसूली शुरू कर देता है!

अभी मेरी उपस्थिति में आप सबकुछ भूल गए हो या नहीं भूले हो? इसे सामायिक कहते हैं। यहाँ सांसारिक बातें बिल्कुल भी नहीं हैं। यहाँ आत्मा और परमात्मा, ये दो ही बातें हैं। तो ये जो आप सबकुछ भूल गए न, यही सब से उच्च सामायिक। दूसरा कुछ नहीं आए फिर भी यहाँ आकर थोड़ी देर बैठना, घंटे भर बैठकर फिर चले जाना! देखो, कई पाप धुल जाएँगे। भस्मीभूत हो जाएँगे सारे पाप। इस सामायिक में पाप भस्मीभूत हो जाते हैं। ज्ञानी पुरुष का अजूबा है!

समभाव से निकाल करना, वही है सामायिक

जैनों की सामायिक यानी क्या? समताभाव बढ़ता है।

अब आप समभाव से *निकाल* करने की आज्ञा का पालन करते हो, उसे ही सामायिक कहते हैं। समभाव में रहना, वही सामायिक है और विषम भाव में रहना वही संसार है, और इस दुनिया की व्यवहारिक सामायिक यानी क्या? अड़तालीस मिनट तक सिर्फ एक ही विचार करना, और कोई विचार नहीं करना, बस वह सामायिक।

सिर्फ, आत्मा का ही विचार आए और भौतिक का कोई विचार नहीं आए, तो उसे शुद्ध सामायिक कहते हैं। अड़तालीस मिनट तक, उससे ज़्यादा नहीं हो पाती। किसी से भी नहीं हो पाती।

सामायिक की यथार्थ व्याख्या

प्रश्नकर्ता : सामायिक शब्द का भावार्थ ज़रा ठीक से समझाइए।

दादाश्री : सामायिक यानी एकाग्रता नहीं, लेकिन वहाँ दस गिलास गिर गए ऐसा पता चलने के बाद भी भीतर समता रखे, तराजू का पलड़ा किसी तरफ ना झुके, उसे सामायिक कहते हैं। सामायिक यानी तराजू का पलड़ा एक्ज़ेक्ट रहे!

(क्रमिक की) सामायिक यानी अन्य जो कुछ भी आए न, उसे निकालता रहता है, हटाता रहता है, तो फिर बचा क्या? खुद अकेला, ऐसे सामायिक करता है! तो फिर यह सामायिक तो उसे माफिक ही नहीं आएगी न! समता तो रहेगी ही नहीं न!

उसने निश्चय किया हो कि आज तो दुकान याद ही नहीं करनी है, तो आँख मीचते ही सब से पहले वही आ धमकती है। जबकि यहाँ हम कहेंगे, 'दुकान वगैरह आप सब आओ। सभी आकर मुझे सामायिक में परेशान करो!' तो सभी भाग जाएँगे। वे सभी जानते हैं कि यह क्या हो गया, कुछ दवाई वगैरह लाए होंगे। वे पटाखे फोड़ेंगे तब क्या करोगे? उसमें 'दुकान याद मत आना' करके डरता क्यों है?

'आन तू, मैं बैठा हूँ।' 'हे भगवान, हे प्रभु, दुकान याद न आए।' अरे भाई, कैसा घनचक्कर है तू? यदि दुकान याद नहीं आएगी तो पत्नी याद आएगी लेकिन आएगी सही। वह भी दुकान ही है न! पत्नी दुकान नहीं है?

प्रश्नकर्ता : बहुत बड़ी दुकान है!

दादाश्री : लो! फिर पत्नी को भी बड़ी दुकान कह रहे हैं!

सामायिक का सही अर्थ ऐसा है कि किसी भी कारणवश विषम भाव नहीं होने दें! भले ही सम नहीं रह पाए लेकिन विषम नहीं होने दे, उसे सामायिक कहते हैं। वहाँ यदि बेटा अपनी माँ को गाली दे रहा हो, वह खुद सुनता हो फिर भी विषम भाव नहीं होता। भीतर उछाल तो आता है लेकिन उसे सम कर देता है। जैसे कि तौलते समय एक पलड़ा ज़रा ऊँचा हुआ, तो वापस उसमें डाला, फिर दूसरा ऊँचा हुआ तो उसमें डाला, परंतु दोनों को एक समान कर देता है। मेंढ़क की पाँचसेरी जैसा नहीं होता।

विषमता न होने दे, वह

सुबह उठकर सब्ज़ी लेने जाते हुए अगर शुद्धात्मा देखते-देखते जाओगे तो क्या कोई डाँटेगा? क्या? गधा ऐसा कहेगा कि 'क्यों मुझमें शुद्धात्मा देखा?' ऐसा कहेगा? इसलिए समता, विषमता नहीं। जैसे ही पलड़े में कम हुआ कि तुरंत उसमें डालना। मेंढ़क की पाँचसेरी करने जाएँगे तो परेशानी होगी न! वहाँ समता नहीं रहेगी।

ऐसा है न, इस तरफ पाँच सेर रखा हो और अगर पाँच सेर का दस सेर करना हो, तो दूसरी तरफ पाँच सेर की कोई और चीज़ रखनी पड़ेगी। पत्थर, ढेला या अन्य कुछ भी रखना पड़ेगा या फिर गेहूँ होंगे तो भी चलेंगे। पाँच सेर तौलने के बाद फिर से इस पलड़े में पाँच सेर चीज़ रख दें, तो फिर दस सेर तोल पाएँगे। पाँचसेरी करने के लिए क्या करते हैं? एक तरफ पाँच सेर रखते हैं और दूसरी तरफ कोई और चीज़ नहीं मिली तो, किसी ने मेंढक रख दिए! अब वह

इधर से दो मेंढक रखने जाता, तो पहले वाले तीन कूदकर बाहर निकल जाते। यानी वह उन्हें पकड़-पकड़कर अंदर रखता उससे पहले तो दूसरे कूदकर बाहर निकल जाते। इसलिए पाँचसेरी हो नहीं पाती थी। ऐसी इन लोगों की सामायिक होती है।

अर्थात् तराजू ऊपर-नीचे होता रहता है। लोगों का, मेंढक की पाँचसेरी जैसा है, कभी भी सामायिक नहीं हो पाती। उन्हें अगर ऐसा कहें तो लड़ पड़ेंगे कि, 'अरे, हमारी सामायिक को मेंढक की पाँचसेरी जैसा कहते हो?' अरे भाई, अब नहीं कहेंगे! तराजू का पलड़ा ज़रा ऊपर-नीचे था, इतना ही कहते हैं। बाकी, है तो मेंढक की पाँचसेरी जैसा ही न? यहाँ से दो रखने गए कि अंदर के तीन कूदकर बाहर निकल आए। फिर क्या कभी पाँचसेरी हो पाएगी?

प्रश्नकर्ता : नहीं हो पाएगी।

दादाश्री : यानी सामायिक का सही अर्थ आज निकला, एक्ज़ेक्ट। वह जो तीर्थंकरों के हृदय में था। वह अर्थ प्रचलित नहीं है। आज दो हज़ार सालों से कोई जानता ही नहीं। सामायिक अर्थात् विषमता नहीं होने देना, वह। खुद के पास ज्ञान नहीं है और विषम भाव नहीं होने देना है! ओहोहो! यह तो बहुत बड़ा आश्चर्य है! हालांकि यह अर्थ अभी प्रचलित नहीं है, लेकिन सामायिक का मूल अर्थ यही है।

बेटा अपनी माँ को गालियाँ दे रहा हो, उस समय बाप सहन नहीं कर पाता लेकिन सामायिक में बैठा है इसलिए मन में ऐसा निश्चय रहता है कि 'अभी मैं सामायिक में बैठा हूँ, इसलिए मुझे विषमता नहीं करनी है।' अगर ऐसी सामायिक करे तो काम ही हो जाए न! अपने महात्माओं को सामायिक जैसी समता रहती है, इसमें कोई शक नहीं है।

सामायिक में श्रावक बनें श्रमण

प्रश्नकर्ता : सामायिक करते वक्त श्रावक भी श्रमण जैसा बन जाता है।

दादाश्री : श्रमण किसे कहते हैं, कि जो ज़्यादा समता रखता हो। समताधारी लोगों को श्रमण कहते हैं। यानी श्रमण जैसा ही बन जाता है न!

प्रश्नकर्ता : मैं श्रावक का मतलब यानी गृहस्थी समझता हूँ।

दादाश्री : हाँ, परंतु गृहस्थी श्रमण जैसा समता वाला नहीं होता लेकिन जब वह सामायिक करता है तब एक घंटे के लिए श्रमण जैसा बन जाता है। यदि अभी सामायिक का सही अर्थ नहीं निकला होता तो श्रमण जैसा बनने में बहुत मुश्किल होती क्योंकि एकाग्रता तो यहाँ बाबा लोग भी करते हैं, कोई भी योग वाले।

निरंतर सामायिक की तो बात ही अलग है न

प्रश्नकर्ता : ऐसा कहा है कि अनेक प्रकार से सामायिक करनी चाहिए तो सामायिक के वे प्रकार कौन-कौन से हैं?

दादाश्री : हाँ, वह तो अनेक प्रकार से यानी हम जो अड़तालीस मिनट करते हैं, वह तो सामायिक कहलाती है परंतु यों ही रास्ते में भी यदि किसी से झगड़ा हो जाए तो उस समय सामायिक कर लेना, समत्व में आ जाना। जहाँ-जहाँ भी ऐसा हो जाए, वहाँ समत्व में आ जाना और अपना मार्ग यही है न, समभाव। अपना मार्ग पूरा सामायिक का ही है। सामायिक का, आलोचना-प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान का यह मार्ग यानी अपना यह अंतिम मार्ग है। अब दूसरी कोई बात रही?

प्रश्नकर्ता : हम तो अड़तालीस मिनट वाले में नहीं आते, हमें तो चौबीसों घंटों इस भाव में ही रहना है न?

दादाश्री : उस जैसा तो कुछ भी नहीं है न! उसकी तो बात ही अलग है न! अरे, अपने तो ये जो प्रतिक्रमण करते हैं, वे तो बहुत कीमती हैं। उन्हें दो-दो, तीन-तीन घंटे तक तो संसार याद ही नहीं रहता कुछ भी और (खुद के) दोष ही दिखते रहते हैं, तीन-तीन घंटे तक!

जो दोष दिखाई देते हैं, वे दोष चले जाते हैं। यह जीवित प्रतिक्रमण कहलाता है और वह तो निर्जीव प्रतिक्रमण कहलाता है। उसका पुण्य बंधता है। वह व्यर्थ नहीं जाता।

पद्मासन की आवश्यकता कितनी?

एक भाई पूछ रहे थे, 'जब हम सामायिक करते हैं तब पद्मासन करें या ना करें?' मैंने कहा, 'इस काल में पद्मासन नहीं करना। वर्ना, हमें पैर ठीक करने के लिए जाना पड़ेगा। हाँ, लेकिन स्थिर बैठना। यदि स्थिर नहीं बैठा जाए तो सोते-सोते करना। आँखें मीचकर करना। सिर्फ ज्ञानी पुरुष ही आँखें खुली रखकर सामायिक कर सकते हैं। अन्य लोगों का काम ही नहीं।'

उसमें देखते ही रहना है

प्रश्नकर्ता : सामायिक करते समय ज्ञाता-द्रष्टा पद में रहते हैं यह बात ठीक है, किन्तु उस समय मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार की स्थिति कैसी होती है? सामायिक करते समय खास तौर पर क्या-क्या ध्यान रखना चाहए?

दादाश्री : ये मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार क्या-क्या कर रहे हैं, वह देखते रहना। जैसे कि यदि आप 'सुपरवाइज़र' (निरीक्षक) हों और साहब ने कहा हो कि इनका 'सुपरविज़न' (निरीक्षण) करो, तब फिर आप क्या करोगे?

प्रश्नकर्ता : सब के सामने देखते रहेंगे कि वे क्या-क्या कर रहे हैं?

दादाश्री : सुपरविज़न ही करना है, किसी को धौल-वौल नहीं लगानी है। उसी तरह मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार को देखते ही रहना है।

सामायिक में भीतर आत्मा को जुदा रखने का प्रयत्न करते रहना और अंदर का बाकी सबकुछ देखते ही रहना है। 'आत्मा', 'देखना

और जानना', ये दो ही अभ्यास करता रहता है। आत्मा किसी और अभ्यास में नहीं जाता। 'जो हुआ' उसे देखता रहता है। मन किस धर्म में है, बुद्धि किस धर्म में है, वह सब देखता रहता है। सभी को 'देखना', सिर्फ देखते ही रहना है। जैसे कि सिनेमा में देखते हैं न! कि लोग लड़ाई कर रहे हैं, कोई दंगा कर रहा है लेकिन आप उसमें 'इमोशनल' (भावनाशील) नहीं होते हो न? जैसा सिनेमा में देखते हैं, वैसा। भीतर के पूरे सिनेमा को देखना ही सामायिक है। अड़तालीस मिनट तक करने पर तो बहुत काम हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : तो फिर इसमें भूतकाल को याद करने की ज़रूरत नहीं है?

दादाश्री : भूतकाल को याद नहीं करना है, सामायिक करनी है। सामायिक करना अर्थात् भीतर जो भी चल रहा है, उसे आत्मा देखता रहता है। उस समय आत्मा पूर्ण रूप से ज्ञाता-द्रष्टा रहता है।

शुद्ध उपयोग रखने के लिए

प्रश्नकर्ता : अक्रम मार्ग में सामायिक की ज़रूरत है?

दादाश्री : दादा की (ज्ञान की) जागृति रहती हो, दूसरी जागृति रहती हो, आज्ञा में रहना आता हो तो यदि सामायिक नहीं करेंगे तो चलेगा।

बाकी, आपको तो अब्रह्मचर्य या ऐसे सभी दोष कहाँ-कहाँ किए, उसकी सामायिक करनी है।

प्रश्नकर्ता : उसमें अभी ऐसा रस ही उत्पन्न नहीं हुआ न कि सामायिक हो ही जाए।

दादाश्री : 'सामायिक करना', ऐसा लिखकर नहीं दिया है। यदि शुद्ध उपयोग रहे तो फिर कोई हर्ज नहीं है। शुद्ध उपयोग रखने के लिए ही सामायिक करनी है। सामायिक के लिए शुद्ध उपयोग नहीं रखना है।

सामायिक से विकार ग्रंथि का विलय करना

प्रश्नकर्ता : हम जवान हैं इसलिए हमारी विषय से संबंधित गांठ बड़ी है तो यदि हमारा उपयोग सामायिक में रहेगा तभी उस गांठ को खत्म कर सकेंगे न?

दादाश्री : हं, देखने से खत्म हो जाती है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, यानी उसे देख-देखकर विलय करना है, इसलिए सामायिक में बैठ पाएँ तो अच्छा है न? लेकिन फिर ऐसा नहीं लगता कि सामायिक में बैठना है।

दादाश्री : सामायिक में नहीं बैठ पाते लेकिन जब गांठ फूटे और विचार आएँ तब उन्हें ज्ञान से शुद्ध किया जाए तो उसे जागृति कहेंगे। अंत में और कुछ न आए तो उन विचारों को 'नहीं हैं मेरे' ऐसा कहोगे तो मुक्त हो जाओगे। विषय का विचार आया या दृष्टि बिगड़ी तो 'नहीं है मेरा' ऐसा कहने से छूट जाओगे। विषय का विचार आते ही उसे 'नहीं हैं मेरा' कहने से बंद हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : यानी उसमें सामायिक की ज़रूरत ही नहीं है या हमें नियमानुसार एक घंटा बैठना चाहिए?

दादाश्री : सामायिक हो तो अच्छी बात है। लेकिन नहीं हो पाए तो इस तरह से, जैसे-जैसे दोष उत्पन्न हों वैसे-वैसे निकालते रहना है।

प्रश्नकर्ता : हमारी इच्छा है कि सामायिक करनी चाहिए फिर भी बैठ नहीं पाते हैं, ऐसा किस वजह से?

दादाश्री : जब सभी साथ में हों तब बैठना चाहिए। अकेले बैठना माफिक नहीं आता। साथ में हों तो आमने-सामने असर होता है। ऐसा वातावरण खड़ा होता है इसलिए सभी को मिलकर बैठना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : हम ऐसी सेटिंग कैसे करें कि अधिक से अधिक लाभ उठा सकें?

दादाश्री : यदि अधिक लोग इकट्ठे होंगे तो अधिक लाभ उठा सकेंगे। सत्संग का असर होगा न! सामायिक करनी हो तो, दस-बारह लोग मिलकर सामायिक करेंगे तो अच्छी होगी। अकेले बैठने से स्थिरता नहीं आती। सब साथ में हो तो स्थिरता रहती है।

नहीं है कर्तापन इसमें

प्रश्नकर्ता : यह तो अपने विज्ञान की बात है। हम अड़तालीस मिनट तक बैठकर करते हैं वह, आपने इन गांठों को विलय करने के लिए कहा था।

दादाश्री : वह तो अपना अक्रम विज्ञान है न! यानी स्थिर बैठकर गांठें खत्म करने के लिए (यह सामायिक है)! बाकी, इसे सामायिक नहीं कहते। दूसरा नाम देना पड़ेगा लेकिन दूसरा नाम मिलता नहीं है इसलिए इसे चलने दिया।

सामायिक अर्थात् और कुछ नहीं, मन में से जो स्फूरित होता है, उसके ज्ञाता-द्रष्टा रहना।

प्रश्नकर्ता : सामायिक व प्रतिक्रमण, क्रिया कहलाते हैं?

दादाश्री : नहीं, सामायिक व प्रतिक्रमण क्रिया नहीं हैं। वे ज्ञानक्रिया हैं। अज्ञान से करता है, वह अज्ञानक्रिया है। और अपनी तो यह ज्ञानक्रिया है। ज्ञानक्रिया से मुक्त होता है और अज्ञानक्रिया का तो फल आता है, भौतिक सुख मिलते हैं।

प्रश्नकर्ता : मेरा ऐसा अनुभव है कि सामायिक करने से जागृति बहुत बढ़ती है।

दादाश्री : जागृति बहुत बढ़ती है। जागृति के लिए उसके जैसा कुछ भी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन मैं तो उसे क्रिया मानता था।

दादाश्री : नहीं, वह तो ज्ञानक्रिया है। ज्ञान क्रिया को वास्तव

में क्रिया नहीं कही जाती। व्यवहार में कहना पड़ता है कि 'मैं सामायिक करता हूँ'।

सामायिक 'करनी है', वह तो 'करनी है' शब्द बोलते हैं इतना ही। वैसे तो सामायिक में ही रहना है। यह तो पहले की आदत पड़ चुकी है न, शब्द बोलने की, इसलिए ऐसा बोलना पड़ता है। भाषा बन चुकी है न, कि सामायिक करनी है, बाकी, सामायिक में तो रहना है। अपने यहाँ 'करना है' तो है ही नहीं न! भाषा ऐसी बन चुकी है इसलिए ऐसा बोलना पड़ता है। भाषा का व्यवहार सब ऐसा बन गया है।

अंदर की शुद्धि, सामायिक से

प्रश्नकर्ता : जब हम सामायिक करते हैं, तब यदि मन में गलत विचार आए तो उसका उसी वक्त प्रतिक्रमण करना है?

दादाश्री : हाँ, उसी वक्त सब करना है और वह 'हमें' नहीं करना है। 'हम' जानने वाले हैं और चंदूभाई को भान नहीं है, चंदूभाई कर्ता है। इसलिए कर्ता से हमें ऐसा कहना है कि 'ऐसा करो, आपने ऐसा क्यों किया?' हम ज्ञाता हैं और वह कर्ता है।

जब दूसरी बार आप यहाँ आएँगे, तब आपको ध्यान-साधना की जो क्रियाएँ हैं, वे बताएँगे। वह एक प्रकार की ऐसी सामायिक है कि जो लाइफ के सारे दोषों को देख सकती हैं, आप अंदर के सभी दोषों को देख सकते हैं, और देखने से वे कम हो जाते हैं। ऐसी सामायिक जब आप दूसरी बार यहाँ आएँगे तब बताएँगे लेकिन अभी तो सिर्फ पाँच आज्ञा में रहने का प्रयत्न करो न!

सामायिक का उठाओ लाभ

प्रश्नकर्ता : मेरे मन की निर्बलता है इसलिए मैं आपकी सामायिक में नहीं बैठ पाता।

दादाश्री : सब के संग बैठेंगे तो बैठ पाओगे, उससे आमने-सामने पर्यायी असर होगा। आपको गांठ पर सामायिक नहीं करनी है।

आपको तो मन क्या करता है, उसे देखते रहना है। मन की निर्बलता क्या कर रही है, उसे देखते रहना है। लेकिन कभी न कभी उन गांठों का विलय तो करना पड़ेगा न? जितना खत्म करेंगे उतना लाभ होगा। इसी जन्म में लाभ होगा! संयम की शक्ति बहुत बढ़ जाएगी। ऐसा मार्ग, ऐसा अवसर बार-बार नहीं मिलता इसलिए काम निकाल लो। चाहे कैसी भी गांठ हो, वह इस सामायिक से खत्म हो जाती है! अपना यह निरंतर समाधि का मार्ग है! जितना हमारी आज्ञा में रहते हो उतनी निरंतर समाधि रहती है। यदि आज्ञा में ज़्यादा रहेंगे तो समाधि का ज़्यादा लाभ मिलेगा।

अक्रम में गांठें खत्म करने के लिए

शुद्धात्मा का भान होने के बाद सामायिक नहीं करनी है। शुद्धात्मा ही सामायिक है। जगत् के लोग जैसी सामायिक करते हैं वैसी अब हमें नहीं करनी है। उसके बावजूद भी यहाँ जो सामायिक करवाई जाती है तो वह किसलिए करनी पड़ती है? आप 'अक्रम मार्ग' से कर्म खपाए बगैर 'लिफ्ट' से ऊपर आए हैं। अत: भीतर गांठें साबुत ही पड़ी हुई हैं इसलिए उन्हें खत्म करने के लिए ये लोग सामायिक करते हैं। जो गांठ बड़ी है, उसे ज्ञेय की तरह रखकर और खुद ज्ञाता के तौर पर रहकर, यदि एक घंटा ऐसा निकाले तो वह गांठ उस हद तक विलय हो जाएगी। यदि बहुत बड़ी गांठ होगी तो ज़्यादा घंटे लगेंगे। यदि रोज़ाना एक-एक घंटा देंगे तो वह गांठ खत्म हो जाएगी। इसी जन्म में यह सब खत्म हो जाएगा!

सामायिक में क्या करते हैं? कि 'मन-वचन-काया की आदतें और उनके स्वभाव को मैं जानता हूँ और मेरे स्व-स्वभाव को भी मैं जानता हूँ।' लेकिन उस स्वभाव का क्या होता है? किसी का स्वभाव इतना गाढ़ होता है, तो किसी का इतना गाढ़ होता है। अब जब यह सामायिक करते हैं न, तब यदि उसमें उस स्वभाव को देखेंगे तो वह सब खत्म हो जाएगा। उस स्वभाव का ज्ञाता-द्रष्टा हुआ तो वह विलय होने लगेगा।

अपनी सामायिक कैसी होती है? ज्ञाता-द्रष्टा की सामायिक होती है तो उसमें कायोत्सर्ग भी आ जाता है। ऐसी सामायिक तो कोई करता ही नहीं है न! यह तो कुछ और ही प्रकार की सामायिक है।

जिस-जिस स्वभाव को विलीन करना है, उसे सामायिक में रखते जाना। उसे जानने से वह स्वभाव विलीन होता जाता है और दूसरा क्या लाभ मिलता है कि आत्मा का रसास्वाद चखते हैं! आत्मा स्थिर है, अचल है और देह को भी अगर अचल किया तो स्वाद उत्पन्न होगा! यदि बाहर अचल किया तो भीतर अचलता का स्वाद आता है। इसीलिए तो वे (क्रमिक मार्ग के) लोग सामायिक करते हैं। जब कायोत्सर्ग करते हैं न, तब भीतर से स्वाद आता है, इससे वे जान सकते हैं कि बाहर इन्द्रियों का सुख नहीं है, सुख अंदर है। जबकि आप तो यह जान गए हैं कि सुख अंदर है तो अब यह सामायिक किसलिए करनी है? यह स्वाद चखने के लिए। आत्मरस भोगने के लिए आपको सामायिक करनी है और उन लोगों को तो आत्मरस का भान होने के लिए करनी है।

स्वभाव रस विलय होता है इसमें

''मन-वचन-काया की आदतें और उनके स्वभाव को 'शुद्ध चेतन' जानता है और खुद के स्व-स्वभाव को भी 'शुद्ध चेतन' जानता है क्योंकि वह स्व-पर प्रकाशक है।''

आत्मा का स्वभाव मोक्षगामी है, ज्ञाता-द्रष्टा है। स्वरूप ज्ञान के बाद आप अपने स्वभाव को जानते हैं और इन मन-वचन-काया की आदतों को भी जानते हैं। मन ऐसा है, वाणी की आदत ऐसी है, सामने वाले को अप्रिय लगे ऐसी है, खराब भाषा है, ऐसा सब आप जानते हैं या नहीं? आप यह भी जानते हैं और 'वह' भी जानते हैं क्योंकि आप स्व-पर प्रकाशक हैं। खुद को, 'स्व' को भी प्रकाशमान कर सकता है और 'पर' को भी प्रकाशमान कर सकता है। अज्ञानी इंसान सिर्फ 'पर' को ही प्रकाशमान कर सकता है, 'स्व' को प्रकाशमान नहीं

कर सकता। उसे ऐसा लगता ज़रूर है कि 'मेरा मन बहुत खराब है', लेकिन फिर जाएगा कहाँ? वहीं के वहीं रहना पड़ता है। जबकि आत्मज्ञान वाला तो जुदा रहता है।

प्रश्नकर्ता : आदतें और उनका स्वभाव, वह समझ में नहीं आया।

दादाश्री : मन-वचन-काया की आदतें ही नहीं कहा है, साथ में उनका स्वभाव भी कहा है! स्वभाव यानी कोई-कोई आदत बहुत मोटी (ज़्यादा) होती है, कोई आदत है तो बिल्कुल पतली (कम) होती है, नाखून जितनी ही पतली होती है, जो एक या दो बार प्रतिक्रमण करने से खत्म हो जाती है और जो आदत बहुत मोटी होती है, उसके तो जब बहुत प्रतिक्रमण करोगे, बार-बार करोगे तब जाकर वह घिसेगी।

मन-वचन-काया की जो आदते हैं, वे तो मरने पर ही छूट सकती हैं लेकिन उनका जो स्वभाव है, उसे घिस देना चाहिए। कम रुचि से बंधी हुई आदतों के तो दो-पाँच बार प्रतिक्रमण करने से वे खत्म हो जाएँगी, लेकिन गाढ़ रुचि वाली के तो पाँच सौ-पाँच सौ बार प्रतिक्रमण करने पड़ेंगे। कुछ गांठें, लोभ की गांठें तो इतनी मोटी होती हैं कि रोज़ दो-दो, तीन-तीन घंटे लोभ के प्रतिक्रमण करता रहे तो भी छः वर्षों में भी पूरी नहीं होतीं! और किसी की लोभ की गांठ ऐसी होती है कि एक दिन में या तीन घंटे में ही खत्म कर देता है! ऐसे तरह-तरह के स्वभाव रस होते हैं।

अतः अपनी अक्रम की सामायिक अलग प्रकार की है। ये जो सभी गांठें होती हैं, उन्हें इसमें (सामायिक में) रख देना है। लोभ हो, क्रोध हो, मान हो, इन सभी गांठों को रख देना है। वे ज्ञेय हैं और आप ज्ञाता हो, इस तरह से अड़तालीस मिनट की सामायिक करनी है। ज्ञेय-ज्ञाता संबंध से ही सारी गांठें विलय हो जाएगी। यह जो व्यवहार सामायिक करते हैं, वह तो एकाग्रता करने के लिए है और यह सामायिक तो गांठों को विलय करने के लिए है। जो गांठ ज़्यादा परेशान करती हैं, जिसके बहुत विचार आते हैं, वह गांठ बड़ी होती है।

प्रतिक्रमण के समय माइन्ड एब्सेन्ट होता है, और कुछ नहीं। विचारों से ज्ञाता-ज्ञेय का संबंध..., प्रतिक्रमण के समय विचार ही नहीं आते हैं। विचार बंद हो जाते हैं और यदि किसी को विचार आते हैं तो उन्हें देखना है, 'वे ज्ञेय हैं और आप ज्ञाता हैं'।

विषय से संबंधित सामायिक

हमने विषय से संबंधित सामायिक करवाई थी कि अभी से गहराई में उतरकर देखो कि अभी यदि आप चालीस साल के हैं, तो उनतालीस साल में क्या हुआ था, अड़तीस साल में क्या हुआ था, ऐसा करते-करते अंत में दस साल की उम्र तक लोग पहुँच गए थे। तब वहाँ तक सब पहुँच गए वह बात अलग है, परंतु उसके बाद भी आठ-आठ दिनों तक उन्हें वे दोष दिखते ही रहे। वे बंद ही नहीं हो रहे थे। घर पर खाते समय, पीते समय भीतर चालता ही रहता था, भीतर कुरेदना जारी था इसलिए फिर उन्होंने कहा, 'हम तो परेशान हो गए हैं। अब बंद करवा दीजिए', तब फिर हमने बंद करवाया। भीतर निरंतर चल ही रहा था। भीतर दोष ढूँढते ही रहते थे। पच्चीस साल पहले ऐसा किया था, तब सभी पर्याय दिखते थे। भूतकाल में हो चुके पर्यायों को देखना, वह है अपनी सामायिक।

इस सामायिक में तो दोष धुलते हैं। अभी तक के, ज्ञान प्राप्ति से पहले जो दोष हो चुके हैं उन्हें देखना, वह सामायिक है। कौन से दोष देखने हैं? ज्ञान लेने से पहले जो दोष हो चुके हैं उन्हें देखने से सब दोष धुल जाते हैं। अभी भी देखेंगे तो धुल जाएँगे। याद करने जाएँगे तो एक भी याद नहीं आएगा। ज्ञान से ये सब दिखाई देते हैं। आत्मा की उपस्थिति में सब दिखाई देता है। शुरुआत से लेकर पूरी लाइफ का दिखाई देता है और विषय के दोष तो...

प्रश्नकर्ता : विषय के दोषों की सामायिक की थी।

दादाश्री : हाँ, ठेठ तक विषय के जो-जो दोष हुए हैं, वे सब दिखाई देंगे। दिखते-दिखते-दिखते बारह साल का हुआ न, वहाँ तक

दिखाई देगा। जब से विषय की शुरुआत होती है वहाँ तक का दिखाई देगा। शुरुआत से लेकर अंत तक का जितना दिखा उतना सब खत्म हो गया।

फाड़ते रहना चित्रित हुए पन्नों को

सामायिक अर्थात् क्या? आपकी जो आदत है, वे भाई कह रहे थे न, कि मुझे पुस्तकें पढ़ने की आदत है तो कल्पना से पुस्तकों का ढेर रख देना है और फिर ज्ञाता-द्रष्टा रहकर, वे पुस्तकें फाड़ते रहना है। एक घंटे तक फाड़ेंगे और आपको देखते रहना है। चंदूभाई से कहना, 'सारी पुस्तकें फाड़ डालो' तो वह गांठ खत्म हो जाएगी। यदि लोभ की गांठ हो तो लोभ की गांठ रखनी है। गांठों को खत्म करने का यह साधन है। भीतर ग्रंथियाँ पड़ी हैं, अंत में निर्ग्रंथ होना पड़ेगा। निर्ग्रंथ हुए बगैर छुटकारा नहीं है।

ऐसे करनी है शुरुआत, सामायिक की

प्रश्नकर्ता : पिछले जन्म में हमने कितने अतिक्रमण किए? कैसे किए? क्या किया? वह तो हमें पता ही नहीं है। वह कैसे पता चल सकता है?

दादाश्री : पिछले जन्म से हमें क्या काम है? अभी जितने अतिक्रमण करते हैं उन्हें धोना है।

प्रश्नकर्ता : इस जन्म में भी जो अतिक्रमण किए हैं, उन सब का भी पता नहीं चलता है न?

दादाश्री : वह तो जब सामायिक में बैठेंगे और उस तरफ ध्यान केन्द्रीत करेंगे कि 'मुझे यह सब ढूँढ निकालना है तो सबकुछ मिल जाएगा, ब्योरेवार मिल जाएगा'।

एक सामायिक आज करना।

प्रश्नकर्ता : हाँ, किस तरह से सामायिक करनी है?

दादाश्री : हाँ, बचपन से लेकर अभी तक जिस-जिसके साथ दोष हुए हों, किसी जीव के प्रति हिंसा से संबंधित दोष हुए हों, किसी को दुःख दिया हो, किसी को उल्टा शब्द कहा हो, किसी के साथ कषाय किए हों, ऐसे हिंसा से संबंधित दोष...।

फिर झूठ, चोरी से संबंधित, विषय-विकार से संबंधित या इन चीज़ों में ममता, इसे क्या कहेंगे? परिग्रह कहेंगे। ऐसे जो-जो दोष किए हैं, उन दोषों को याद करके और भगवान महावीर की साक्षी में या श्री सीमंधर स्वामी को नमस्कार करता हूँ, ऐसा बोलकर माफी माँगना, इतना करना, हो पाएगा इतना?

प्रश्नकर्ता : हो पाएगा। जितने याद आएँगे, उन सभी के (प्रतिक्रमण) कर दूँगा।

दादाश्री : जब तक याद आए तब तक सबकुछ करना। जिसकी इच्छा है, जो सरल है, उसे याद आए बगैर नहीं रहेगा और भगवान के मार्ग में सरलता, वही मोक्ष का सरल रास्ता है, उत्तम रास्ता है। यदि सरल नहीं हुआ तो भगवान के मार्ग में है ही नहीं।

अर्थात् इतना करना। सारा याद कर-करके करना और साथ ही साथ ऐसा भी (प्रतिक्रमण) कहना कि 'प्रत्यक्ष ज्ञानी पुरुष होने के बावजूद, हमने शंका की और ज्ञानी पुरुष कैसे होते हैं, ऐसा सब पूछा, वह भी हमारा दोष है।' ऐसा भी करना।

बचपन में बिल्ली को मारा हो, फिर बंदर को ईंट मारी हो, वह सब भीतर देख सकते हैं। वह पहले के पर्याय भीतर देख सकते हैं लेकिन सामायिक ज़्यादा करते होंगे तो। यदि पहली बार सामायिक करेंगे तो एकदम से ऐसा नहीं होगा, लेकिन पाँच-दस-पंद्रह सामायिक हो जाने के बाद बहुत सूक्ष्मता आती जाएगी।

सब से पहले दादा का ध्यान लगाकर, स्मरण करके, एकाध पद पढ़कर और फिर त्रिमंत्र बोलकर, फिर 'मैं शुद्धात्मा हूँ' की स्थिरता कर लेना, फिर आज से लेकर बचपन तक की जो-जो घटनाएँ हुई

हों, विषय-विकारी या हिंसा की घटनाएँ, झूठ-प्रपंच किए हों, वह सब जितना आपको दिखाई दें, उन सभी के प्रतिक्रमण करने की आप शुरुआत करना। आज से पीछे की ओर चलना है, कल किसके साथ क्या किया था, परसों किसके साथ किया था, नरसों किसके साथ किया था या बचपन से याद करना। जितना भी याद आए न, उनके प्रतिक्रमण करने हैं। वह याद आएगा, कुदरती रूप से ही याद आएगा। आपको ऐसा घबरा नहीं जाना है कि याद नहीं आए तो क्या करेंगे? आप शुरू करोगे कि मूसलाधार बरसात होगी! रेगिस्तान में भी बरसात होगी! और फिर जहाँ पर हिंसा जैसे दोष किए होंगे, अगर तो वाणी से हिंसा की होगी, या फिर कपट किए होंगे, कुछ लोभ किया होगा, मान किया होगा, धर्म में विराधना की होगी तो उन सब का प्रतिक्रमण करते-करते आगे जाना है। फिर अब्रह्मचर्य से संबंधित, *अणहक्क* (बिना हक़ का) के भोग भोगे हों या वैसा सोचा भी हो, उन सब को भी याद करके धोते रहना। जगत् जिसकी निंदा करे, जो नींदनीय हों जिसके फलस्वरूप नर्क के अधिकारी बन जाते हैं! अतः उन सब का प्रतिक्रमण कर देना।

यह चेतन वाणी है। यह चेतन वाणी ही काम करेगी। बैठकर शुद्धतापूर्वक प्रतिक्रमण शुरू कर दो। पाँच महाव्रत हैं, उन महाव्रतों का कहाँ-कहाँ भंग हुआ, उसी का करना है, और कुछ नहीं करना है। बाकी, घूमे हों, फिरे हों, पान खाया हो, उसका नहीं करना है। मनुष्य से मनुष्य के प्रति आमने-सामने जो दोष हुए हों, उनके प्रतिक्रमण करने हैं। यानी कि मिश्रचेतन के प्रति जो दोष हुए हों, उन दोषों के लिए प्रतिक्रमण करने को कहता हूँ। यह 'दादा' की आज्ञा हुई है, उसका पालन करना। ऐसे तो रोज़ प्रतिक्रमण करते रहते हैं। किसी मिश्रचेतन के प्रति विषय का विचार आया हो, कोई दोष किए हों, उन सभी का बचपन से लेकर अभी तक का याद कर-करके प्रतिक्रमण करना है। यह प्रतिक्रमण आज्ञासहित है इसलिए सब धुल जाएगा। इंसान से कौन सा आचार नहीं हो सकता? लेकिन आज्ञा का पालन किया तो स्वच्छ हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : मिश्रचेतन में क्या-क्या आता है?

दादाश्री : मिश्रचेतन यानी यदि कुत्ते को लात मारकर निकाल दिया हो, तो उसके साथ बैर बाँधा कहलाएगा। रास्ते पर किसी स्त्री को धक्का मारा हो तो उसे भी मिश्रचेतन के प्रति हुआ दोष कहा जाएगा। मिश्रचेतन के प्रति हुए ऐसे एक-एक दोष को याद करके, एक-एक दोष को ढूँढकर आलोचना-प्रतिक्रमण व प्रत्याख्यान करना। ज्ञानी पुरुष की आज्ञा में रहने से दोषों के ओपरेशन होते जाते हैं। यह तो लिफ्ट मार्ग है। रास्ते चलते यह मार्ग मिल गया है न! अत: इस तरह से आज्ञा में रहने से माल स्वच्छ होता जाएगा। ऐसा करते-करते मोक्ष में जा पाओगे।

प्रश्नकर्ता : गलतियाँ पता नहीं चलें तो?

दादाश्री : तो दादा को याद करके कहना, 'हे दादा भगवान, अब याद नहीं आ रहा है।' तो वापस याद आने लगेगा और जितने दोष दिखाई दिए उतने दोष खत्म हो जाएँगे। अब सुख खुद के भीतर शुरू हो गया है, लेकिन पहले के मिश्रचेतन के साथ के जो हिसाब बाकी होंगे, वे दावा करेंगे। ऐसे मार खाकर सीधा होने के बजाय मिश्रचेतन के प्रति हुए दोषों के लिए माफी ही माँगते रहो तो हल्के हो जाओगे। बच्चों के प्रति, पत्नी के प्रति, फादर-मदर वगैरह, वे सब मिश्रचेतन ही कहलाते हैं। उन सब के प्रतिक्रमण करने हैं। आज्ञा के पीछे ज्ञानी पुरुष का वचनबल काम करता है इसलिए काम निकल जाता है।

अब अभी से देखते-देखते अंत में छोटी उम्र तक अंदर देखते रहो। देखते-देखते इस साल से, पिछले साल में, उससे पिछले साल में ऐसा करते-करते सब दिखेगा, अंत तक का। बचपन से लेकर अभी तक का देखना या फिर अभी से लेकर बचपन तक का देखना। किसी भी एक अभ्यास में लग जाना। आत्मा द्वारा देखना भीतर, अटक जाए तो भी देखते रहना तो दिखता जाएगा आगे। कई बार अंतराय नहीं

होते हैं, और अगर किसी को हों तो अटक जाता है। जिसके अंतराय कम होंगे उसे सब दिखता जाएगा। बचपन से अब तक का सब दिखाई देगा। जो कुछ किया था, वह सब।

सामायिक की विधि

(ज्ञान साक्षात्कार पाने के पश्चात्)

नीरू बहन : हे दादा भगवान, हे श्री सीमंधर स्वामी प्रभु, मुझे शुद्ध उपयोगपूर्वक, सारी ज़िंदगी में हुए, विषय विकार से संबंधित दोषों का सामायिक व प्रतिक्रमण करने की शक्तियाँ दीजिए।

दादाश्री : दोषों को देखने की शक्ति।

नीरू बहन : मुझे विषय से संबंधित हुए दोषों को देखने की शक्तियाँ दीजिए।

मैं मन-वचन-काया, मेरे नाम की सर्व माया, भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म, आप प्रकट परमात्मा स्वरूप प्रभु के सुचरणों में समर्पित करता हूँ।

दादाश्री : मैं शुद्धात्मा हूँ (5)

मैं विशुद्धात्मा हूँ।

मैं परम ज्योति स्वरूप सिद्ध भगवान हूँ।

मैं मन-वचन-काया से बिल्कुल अलग ऐसा शुद्धात्मा हूँ।

मैं भावकर्म से मुक्त ऐसा शुद्धात्मा हूँ।

मैं द्रव्यकर्म से मुक्त ऐसा शुद्धात्मा हूँ।

मैं नोकर्म से मुक्त ऐसा शुद्धात्मा हूँ।

मैं अनंत ज्ञान वाला हूँ। (5)

मैं अनंत दर्शन वाला हूँ। (5)

मैं अनंत शक्ति वाला हूँ। (5)

मैं अनंत सुख का धाम हूँ। (5)

मैं शुद्धात्मा हूँ। (5)

अब गहराई में उतरना शुरू कर दो।

(सामायिक करने के बाद...)

प्रश्नकर्ता : सामायिक तो बहुत काम निकाल देती है।

दादाश्री : अकेले में जैसा होना चाहिए, वैसा नहीं हो पाता। लेकिन मैं आपको बुलवाऊँगा तो भीतर सब जुदा हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : पहली बार यह सामायिक की। अच्छा लगा!

दादाश्री : वह तो राह पर आ जाएगा और अपनी सामायिक में तो उस चीज़ को आत्मा के प्रत्यक्ष करते हैं। वह है आत्मा की सामायिक। इसमें *पुद्गल* (जो पूरण-गलन होता है) को लेना-देना नहीं है। *पुद्गल* से लेना-देना नहीं है। *पुद्गल* का ज्ञाता रहकर काम करे, ऐसी यह सामायिक है। ऐसा कभी नहीं दिखाई दिया न?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : अभी तो नया-नया है। शायद किसी से ठीक से ना हो पाया हो, लेकिन यह बहुत सुंदर उपाय है।

आपको कहाँ तक का दिखा?

प्रश्नकर्ता : बचपन से अभी तक का।

दादाश्री : सबकुछ दिखाई देता है, इस तरह फोटो सहित दिखाई देता है। किसी को चुटकी भरी हो, वह भी दिखाई देता है। काट लिया हो, वह भी पता चलता है।

(नए मुमुक्षु को) आपको खेद नहीं करना है। आपको नहीं दिखाई देगा क्योंकि मैंने आपको अभी तक दृष्टि नहीं दी है न! मैं आपको दृष्टि दूँगा उसके बाद दिखाई देगा। सभी बैठे हों तब आप कहाँ जाकर बैठोगे?

प्रश्नकर्ता : कोशिश की देखने की।

दादाश्री : हाँ, सही है। वर्ना मन में ऐसा होता है कि दादा ने मुझे इस जंगल में कहाँ डाल दिया?

तरह-तरह के अनुभव सामायिक में

दादाश्री : पहली ही बार किया?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : अब, ऐसी सामायिक दूसरे लोग या कोई साधु-सन्यासी नहीं कर सकते।

प्रश्नकर्ता : आज यहाँ पर जो सामायिक की, वह बड़ी पावरफुल टेकनीक (शक्तिशाली वैज्ञानिक रीत) है।

दादाश्री : यह तो सामायिक नहीं है, यह तो हमारी खोज है। सामायिक यानी समता में रहना। राग-द्वेष नहीं होने देना। ऐसा तो आपको पूरे दिन रहता ही है न! वही तो पूरे दिन आपकी सामायिक है। राग-द्वेष तो आपको होते नहीं हैं इसलिए आपको पूरे दिन, हर दिन सामायिक ही रहती है।

यह तो आपने जब अंदर देखा, उस घड़ी आत्मा कैसा हो गया! उसकी कितनी शक्ति है! उस समय नहीं थे चंदूभाई, नहीं थे किसी के पति, नहीं थे किसी के कुछ, तभी सब दिखा। वर्ना पति बनकर, भला अंधा देखेगा क्या बाहर? उसके लिए तो फुल लाइट (पूर्ण प्रकाश) चाहिए।

अगर याद करने जाएँ तो उनमें से एक भी पर्याय याद न आए जबकि इसमें (सामायिक में) तो सब पर्याय देखे न! वर्ना स्मृति तो इतनी जल्दी देख ही नहीं पाती। यह तो, बचपन में ऐसा हुआ था, बाद में कुछ बड़े होने पर ऐसा हुआ था, फिर किसी उम्र तक ऐसा हुआ था, दिखता ही जाता है।

अब यह जो दिखाई देता है, उसमें हर एक को अलग-अलग होता है। किसी को बिल्कुल स्पष्ट दिखाई देता है। किसी को ज़रा आवरण वाला दिखाई देता है, इसमें फर्क होता है।

प्रश्नकर्ता : सामायिक में पहले थोड़ी ही देर में पंद्रह-बीस मिनट में सारी फिल्म खत्म हो गई।

दादाश्री : हाँ, वह खत्म हो जाती है।

प्रश्नकर्ता : तो बाद में क्या करना है?

दादाश्री : बाद में यों ही स्थिर रहना है, उसमें कोई हर्ज नहीं है। या फिर किसी भी दूसरे उपयोग में रहना है।

प्रश्नकर्ता : बाद में उस फिल्म को मैंने दो बार देख लिया।

दादाश्री : उसमें हर्ज नहीं है, अच्छा है। जितना देखा जाए, उतना साफ करने का टाइम मिलता है न! यह तो शुद्ध-स्वच्छ-प्योर आत्मा है।

वैसे तो अगर दोषों को याद करने जाएँ, तो उनमें से कुछ भी याद नहीं आता और सामायिक में सब अपने आप ही दिखाई देता है। यानी उस दोष को देखने वाला वह ज्ञाता-द्रष्टा आत्मा था। यानी आत्मा आपको देखता है कि आप क्या काम करते हो।

और किसी को कुछ कहना है, सामायिक का अनुभव?

प्रश्नकर्ता : बिल्कुल शांति हो गई। बहुत सारे दोष दिखे।

दादाश्री : जितने दोष दिखे उतने गए। अब जो भी छोटे-छोटे बचे होंगे, जब फिर से ऐसी सामायिक करोगे तब वे भी चले जाएँगे।

फिर आपको कुछ दिखा?

प्रश्नकर्ता : हाँ, बचपन से लेकर अभी तक के सभी दोष दिखाई दिए और अब एक विशेष प्रार्थना है कि अब दोबारा विषय से संबंधित ऐसे दोष ना हों, ऐसा कर दीजिए।

दादाश्री : हाँ, वैसा कर देंगे। परंतु कितनी उम्र तक के दिखाई दिए?

प्रश्नकर्ता : बचपन से।

दादाश्री : बचपन से लेकर अभी तक के सभी दोष दिखाई दिए! यह तो बहुत अच्छा।

उन्हें देखने वाला ज्ञाता-द्रष्टा आत्मा है। यह आत्मा दिखाई दिया! आप ऐसे याद करने जाओगे तो एक भी याद नहीं आएगा लेकिन यह सब दिखाई दिया। बहुत हो गया। चलो, जितने दिखाई दिए उतने गए, वे वापस नहीं आएँगे।

नहीं अस्तित्व मन का तब

प्रश्नकर्ता : जब (सामायिक में) खुद की फिल्म देख रहे हों और उस समय उसमें मन चला जाए, अच्छा लगे लेकिन उसमें ऐसा भाव नहीं हो कि कुछ बुरा किया या कुछ गलत हुआ, तो वह कैसा लगेगा?

दादाश्री : उस समय सामायिक में मन होता ही नहीं है। मन का अस्तित्व ही नहीं होता है। इसमें तो सिर्फ देखना ही था। अच्छा या बुरा ऐसा कुछ नहीं देखना है, सिर्फ देखना ही था।

प्रश्नकर्ता : देखकर ऐसा नहीं कहना है कि माफी माँगता हूँ?

दादाश्री : प्रतिक्रमण अलग चीज़ है। लेकिन यह ऐसा-वैसा रुका हुआ था, ऐसा नहीं कहना चाहिए। इसमें रुकने वाला कोई है ही नहीं। यह मन की क्रिया नहीं है, यह आत्मा की क्रिया है। यह आत्मा की क्रिया है, ऐसा दिखता ज़रूर है, लेकिन उससे मन को कुछ लेना-देना नहीं है।

दिखाई देता है आत्मा का चारित्र

प्रश्नकर्ता : एक बार प्रतिक्रमण कर लें तो भी वापस आता रहेगा?

दादाश्री : बहुत मोटा हो तो आता रहेगा। लंबा हो तो अंत तक रहेगा इसीलिए फिर से करना है और खत्म होने तक करते रहना है। उस समय इस सामायिक में हमें आत्मा का चारित्र देखने को मिला न! उसे चारित्र कहते हैं, प्योर चारित्र कहते हैं।

जिस किसी को ठीक दिखाई दिया हो, वह उँगली उठाना। आपको भी दिखाई दिया? पाटीदार को भी दिखाई दिया?

प्रश्नकर्ता : स्पष्ट दिखाई दिया।

दादाश्री : यदि साँप मिल जाए तो उसे मारे बगैर जाने नहीं देते, ऐसे पाटीदार, उन्हें भी दिखाई दे, तब फिर वह कैसा आत्मा प्राप्त हुआ है!

यह वर्ल्ड का आश्चर्य है! पूनिया श्रावक की एक घंटे की सामायिक, जिसके लिए श्रेणिक राजा का राज्य दलाली में जाता है, तो उस एक घंटे की कीमत कितनी? दादा ने यह क्या दिया है, वह आपको समझ में आया न?

बाद में कुरेदना शुरू हो जाता है अपने आप

पूरे दिन मेरे साथ बैठे रहे हो, तो कोई नुकसान नहीं हुआ न?

प्रश्नकर्ता : कुछ भी नुकसान नहीं हुआ।

दादाश्री : तो फिर मेरे साथ क्यों नहीं घूमते हो? यों ही दुनिया में भटकते रहते हो उसके बजाय यहाँ भटकने में क्या हर्ज है?

प्रश्नकर्ता : उसे तो बहुत बड़ा भटकना कहेंगे। इसे भटकना नहीं कहते हैं।

दादाश्री : पूरे ब्रह्मांड का राज्य दिया है। जो साधु-आचार्यों के लिए भी दुर्लभ है, वह आपको दिया है।

'मैं शुद्धात्मा हूँ' करके पतंग उड़ा दी। यह तो, पहले भी हिंसा की

सामायिक करवाई थी, तो घर जाने पर भी, संडास में भी भीतर हिंसा ही हिंसा के दोष दिखते ही रहते थे, वे बंद नहीं होते थे। तीन दिन तक चलता रहा। कुरेदते ही जा रहे थे। फिर विधि करके बंद करवाया।

अड़तालीस मिनट ही क्यों?

प्रश्नकर्ता : आपकी गैरहाज़िरी में सामायिक में किससे आज्ञा लें?

दादाश्री : हमारी गैरहाज़िरी होती ही नहीं है, हम वहाँ हाज़िर ही रहते हैं। आपके यहाँ तो गैरहाज़िर रहते ही नहीं। आप तो बुहत सतर्क हैं, पक्के!

प्रश्नकर्ता : सामायिक कम से कम कितने समय तक करनी चाहिए?

दादाश्री : कम से कम आठ मिनट और ज़्यादा से ज़्यादा पचास मिनट।

प्रश्नकर्ता : यह सुबह की सामायिक करते हैं, उसमें तो 50 मिनट के बाद सुख का उफान आता है।

दादाश्री : आएगा ही न! क्योंकि दिया हुआ आत्मा है और अचल आत्मा है। लोगों के पास तो चंचल आत्मा है और आप तो आत्म स्वरूप होकर सामायिक करते हैं इसलिए ग़ज़ब का आनंद आता है। जितनी ज़्यादा स्थिरता उत्पन्न होती है न, सुख उतना ही ज़्यादा आता है।

प्रश्नकर्ता : सामायिक अड़तालीस मिनट की क्यों रखी है?

दादाश्री : सैंतालीस नहीं, अड़तालीस मिनट। अरे, यदि एक दिन अड़तालीस मिनट तक रहा तो हो गया प्रखर आत्मा, फुल टेस्टेड!

आठ मिनट जिनके मन-वचन-काया बंद हो जाएँ, उसे भगवान ने सामायिक की शुरुआत कही है और आठ से अड़तालीस मिनट तक ऐसा रहा तो उसे सामायिक कहा। अड़तालीस मिनट से ज़्यादा तो किसी को भी नहीं रह सकता। आत्मा में ही रहना, वह है सामायिक।

'अक्रम' की सामायिक

प्रश्नकर्ता : सामायिक में विचार आते हैं और 'दादा भगवान ना असीम जय-जयकार हो,' ये दोनों ही चलते हैं, तो यह क्या है?

दादाश्री : यदि पड़ोस में किसी के यहाँ तेल के कोल्हू से आवाज़ आ रही हो और आप यहाँ कताई कर रहे हों तो आप क्या करोगे? वैसे ही यह मन की चक्की चलती ही रहेगी। आपको उसे देखते ही रहना है। खराब विचार या अच्छे विचार, देखते ही रहना है। अब जो पड़ोसी है तो क्या उनकी जबान बंद की जा सकती है? उनसे घबराने की ज़रूरत नहीं है। जब आप यहाँ सत्संग में बैठे हुए हों या आप अपने स्टडी रूम में हों तब यदि बाहर हुल्लड़ मचे तो उससे आपको क्या? मन ज्ञेय है और आप ज्ञाता बन गए, यानी मन वश हो गया। 'हमारा' भी मन तो होता है, मोक्ष जाने तक मन तो रहता ही है लेकिन हमारा मन कैसा होता है? सेकन्ड के काँटे की तरह घूमता रहता है, रूकता नहीं है। हमारा मन पूर्णतः खत्म हो चुका है। उसके ज्ञाता-द्रष्टा रहने से वह खत्म हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : व्यवहार सामायिक और निश्चय सामायिक में क्या अंतर है? हितकारी क्या है?

दादाश्री : निश्चय सामायिक! व्यवहार सामायिक मन से होती है और निश्चय सामायिक आत्मा से होती है। मन को एकाग्र करना और बाहर भागदौड़ नहीं करने देना, वह है व्यवहार सामायिक।

प्रश्नकर्ता : व्यवहार सामायिक का फल क्या है?

दादाश्री : पुण्यानुबंधी पुण्य। निश्चय सामायिक, वह आप शुद्धात्मा हो ऐसा फिर से पक्का करवाती है। फिर विषय से संबंधित दोष दिखने लगते हैं, तो 35 साल की उम्र से लेकर 34 साल, 33 साल जब से शुरुआत हुई तब तक का दिखने लगता है। फिर हिंसा से संबंधित, कषाय से संबंधित, इसमें सिर्फ आत्मा ही रहता है। मन, बुद्धि सब आइडल (निष्क्रिय) रहते हैं।

'देखते रहना,' वह सामायिक कहलाती है और यह सामायिक-प्रतिक्रमण कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : सिर्फ सामायिक करने से धुल जाता है या प्रतिक्रमण करना पड़ता है?

दादाश्री : प्रतिक्रमण करना पड़ता है। यह सामायिक-प्रतिक्रमण कहलाता है। सामायिक यानी बाहर का व्यवहार बंद और प्रतिक्रमण यानी भीतर का शुरू।

प्रश्नकर्ता : हम सब इकट्ठे होकर सामायिक करते हैं, तो उसमें हर बार क्या करना है?

दादाश्री : विषय का ज़्यादा करना है। पहले विषय का प्रतिक्रमण कर लेना। वह उसे अंत तक ले जाएगा। फिर ऋणानुबंध पर लो। ऋणानुबंध यानी हमें जो-जो मिले हों, उन सब को याद करके प्रतिक्रमण करो। फिर हिंसा से संबंधित दोष देखने से हिंसा के परमाणु खत्म हो जाते हैं। ब्रह्मचर्य का सामायिक करने से अब्रह्मयर्य के परमाणु खत्म हो जाते हैं।

ग्रंथियाँ हैं, ऐसा पता चलता है लेकिन व्यवहार में समझ में नहीं आ पाता इसलिए हम उस ग्रंथि को सामायिक में देखने को कहते हैं। एक ग्रंथि को लेकर सामायिक में विलय करने जाते हैं लेकिन अंदर से दूसरी गांठें फूटती हैं। ऐसे विचार दिखाई देते हैं, जो उस गांठ पर उपयोग नहीं रखने देते। उस समय जो दिखाई देता है उसे देखना है।

प्रश्नकर्ता : इस सामायिक-प्रतिक्रमण में दोषों को देखा और प्रतिक्रमण किया फिर भी वे दोष भुगतने तो पड़ेंगे न?

दादाश्री : नहीं, धुल जाएँगे। कुछ *चीकणे* होंगे वे रहेंगे परंतु वे कैसे रहेंगे कि इस दीवार से चिपके रहेंगे लेकिन उन्हें छूते ही वे उखड़ जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : सामायिक में जो दृश्य दिखाई देते हैं उस टाइम उनका प्रतिक्रमण किस तरह से करना है?

दादाश्री : सामायिक में जो दृश्य दिखाई देते हैं उनका प्रतिक्रमण नहीं करना होता है। जो दिखाई दिए वे तो गए। प्रतिक्रमण तो, जो दिखाई नहीं दिए (द्रष्टा होकर देखा नहीं, दूसरे को दुःख हुआ) उनका करना होता है। जो दृश्य देखा वह तो गया। देखा यानी स्वच्छ हो गया।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वे फिर से दिखाई देते हैं न?

दादाश्री : फिर से दिखाई देते हैं, वे दूसरे हैं। जैसे प्याज़ की एक परत देखने से चली जाती है लेकिन वापस प्याज़ का प्याज़ ही दिखाई देता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वही के वही दृश्य दिखाई देते हैं न?

दादाश्री : दृश्य वही के वही नहीं दिखाई देते, दो बार नहीं दिखाई देते।

प्रश्नकर्ता : किसी जीव के प्रति बैर हो, उसका प्रतिक्रमण कर लिया हो, तो क्या फिर से उसी जीव का प्रतिक्रमण करना बाकी रहता है?

दादाश्री : हाँ, अपना बड़ा दोष था और प्रतिक्रमण करने से एक परत टूटी। दूसरी लाखों परतें बाकी रहीं, वे परतें खत्म हो रही हैं। यानी जब तक खत्म नहीं हो जातीं, तब तक प्रतिक्रमण करने होंगे। किसी व्यक्ति के साथ का सब महीने-दो महीने के प्रतिक्रमण से खत्म हो जाता है, हिसाब चुकता हो जाता है। किसी व्यक्ति का हिसाब ज़िंदगी भर चलता रहता है, ग्रंथि बहुत बड़ी हो तो। प्याज़ की एक परत हटने पर वापस प्याज़ ही दिखाई देता है न? इसी तरह इन दोषों में भी परतें होती हैं, लेकिन एक बार प्रतिक्रमण करने से एक परत हट जाती है। फिर उसका आपको दूसरी बार नहीं करना पड़ता। एक का प्रतिक्रमण एक ही बार करना पड़ता है।

हाज़िरी - गैरहाज़िरी का असर

प्रश्नकर्ता : अपने जो ये प्रतिक्रमण और सामायिक करते हैं,

उसमें जो अनुभव होता है, वह दादा की हाज़िरी है इसीलिए होता है या यों भी हो सकता है?

दादाश्री : नहीं, दादा की हाज़िरी हो तो ज़्यादा अच्छा होता है। बाहर का किसी का कुछ नहीं छूता और वातावरण बहुत ऊँचा होता है न! और मैं जो करता हूँ, 'मैं शुद्धात्मा हूँ' वह भी पाँच-छः बार बोलता हूँ न, वह सब काम करता है। हमारे शब्द बहुत काम करते हैं।

प्रश्नकर्ता : और उसके अलावा भी असर तो रहता है न, दादा न हों तब भी?

दादाश्री : कर सकते हैं, कर सकते हैं लेकिन ज़रा आगे-पीछे हो जाता है, इतना ही। दो मिनट हो सके तो भी बहुत हो गया! किसी को तुरंत ही अनुभव होता है। अपने यहाँ पर यह जो सामायिक करवाते हैं न, वह बहुत बड़ा पुरुषार्थ है। यह जो सामायिक है, वह आत्मा का विटामिन है। जैसे व्यवहार में यह देह का विटामिन लेना पड़ता है न, ऐसा ही यह आत्मा का विटामिन है! और आपको तो पूरे दिन सामायिक, पूरी ज़िंदगी सामायिक ही रहती है। गाड़ी चलाते समय रहती है या नहीं रहती? ऐसा होना चाहिए। आत्मा खुद ही सामायिक है। शक्तियाँ तो अनंत हैं लेकिन प्रकट नहीं हुई हैं।

'जुदापन' की सामायिक

आज 'अलग' रखने की सामायिक बताते हैं। चंदूभाई और शुद्धात्मा को अलग रखने की, यह सब से उच्च तरीका है। उस सामायिक में आपको इस तरह बोलते रहना है,

1. 'हे शुद्धात्मा भगवान! आप अलग हैं और चंदूभाई अलग हैं।'

2. 'हे शुद्धात्मा भगवान! आप रियल हो और चंदूभाई रिलेटिव हैं।'

3. 'हे शुद्धात्मा भगवान! आप परमानेन्ट हो और चंदूभाई टेम्परेरी हैं।'

ऐसा अड़तालीस मिनट तक बोलते रहना है।

'मैं' और 'चंदूभाई' दोनों अलग ही हैं, ऐसे मुझे अलग रहने की शक्ति दीजिए। मुझे आपकी तरह जुदा रहने की शक्ति दीजिए और चंदूभाई जुदा रहें। हे दादा भगवान! आपकी कृपा बरसे। चंदूभाई क्या कर रहे हैं? उसे मैं देखूँ और जानूँ, वही मेरा काम।

उसमें आपको जो शक्तियाँ कम पड़ती हों वे सामायिक में शुद्धात्मा भगवान से माँग सकते हैं। इससे बिल्कुल जुदा ही हो जाएँगे। दिन में जब भी याद आए तब पाँच-पच्चीस बार ये तीन वाक्य बोलेंगे, तो भी तुरंत भीतर सब अलग हो जाएगा और क्लियर (स्वच्छ) हो जाएगा सब।

अरीसा सामायिक

आईने में चंदूभाई दिखाई देते हैं। उसमें एक आत्मा है और सामने जो खड़े हैं, वे चंदूभाई हैं। आपको कहना है, 'चंदूभाई, कब तक ऐसी भूलें करोगे?' 'आपको ज़रा डाँटना पड़ेगा' ऐसा भी कहना है।

आप कभी आईने में देखकर चंदूभाई को डाँटते हो? आपको आईने के सामने चंदूभाई को बिठाकर कहना है कि, 'आपने पुस्तकें छपवाईं, ज्ञानदान किया, वह तो बहुत अच्छा काम किया, लेकिन दूसरा आप ऐसा करते हो, वैसा करते हो, तो ऐसा किसलिए करते हो?' ऐसा अपने आपसे कहना पड़ेगा या नहीं? क्या सिर्फ दादा ही बार-बार कहते रहें? उसके बजाय आप कहोगे तब भी वे मानेंगे, आपका ज़्यादा मानेंगे! मैं कहूँगा तो आपके मन में क्या होगा कि दादा मेरे साथी को कुछ नहीं कहते, सिर्फ मुझे ही क्यों कहते हैं। इसलिए आपको खुद ही डाँटना चाहिए।

औरों की भूलें निकालना तो बहुत आता है और खुद की एक भी भूल निकालनी नहीं आती और आपको तो भूलें नहीं निकालनी हैं, 'आपको' तो चंदूभाई को ज़रा सा डाँटना ही है। 'आप' तो 'चंदूभाई'

की सारी भूलें जान गए हो इसलिए अब 'आपको' चंदूभाई को डाँटना है, और चंदूभाई 'मानी' भी उतने ही हैं, सब तरह से 'मान वाले' हैं इसलिए उन्हें ज़रा पटाने से सब काम हो जाएगा।

अब यह डाँटने का अभ्यास कब कर सकते हैं? आप घर पर एक-दो लोग डाँटने वाले रख भी लो लेकिन वे सचमुच में नहीं डाँटेंगे न!? सचमुच में डाँटने से ही परिणाम आता है। नहीं तो झूठा, बनावटी डाँटने वाला हो तो परिणाम नहीं आता। आपको कोई डाँटने वाला हो तो उसका लाभ लेना चाहिए न? लेकिन ऐसी सेटिंग करना नहीं आता न?

प्रश्नकर्ता : डाँटने वाला हो तो हमें अच्छा नहीं लगता।

दादाश्री : वे पसंद नहीं हैं, लेकिन रोज़ के डाँटने वाले मिल जाएँ तो फिर हमें *निकाल* करना आना चाहिए न, कि "यह तो रोज़ का रोना है, तो कहाँ ठिकाना पड़ेगा? उसके बजाय हम अपनी 'गुफा में' घुस जाएँ।"

प्रश्नकर्ता : आपने कहा है कि, 'मैं जीव नहीं हूँ, परंतु शिव हूँ।' लेकिन वह अलग नहीं होता।

दादाश्री : वह उसका भाव छोड़ता नहीं न? वह अपना हक़ छोड़ेगा क्या? इसलिए हमें उसे समझा-समझाकर, पटा-पटाकर काम लेना पड़ेगा क्योंकि वह तो भोला है। *पुद्गल* का स्वभाव कैसा है? भोला है। इस प्रकार कला करके वह पकड़ में आ जाएगा। जीवभाव और शिवभाव, दोनों अलग ही हैं न! अभी जब जीवभाव में आएगा, उस घड़ी आलूबड़ा वगैरह सब खाएगा और शिवभाव में आएगा तब दर्शन करेगा!

प्रश्नकर्ता : लेकिन जीव का मन स्वतंत्र है?

दादाश्री : बिल्कुल स्वतंत्र है। मन आपका विरोध करे, ऐसा आपने देखा है या नहीं? अरे, 'मेरा' मन होगा तो वह मेरा विरोधी

किस तरह बनेगा? वह तो जब विरोध करेगा, तब पता चल जाएगा कि वह स्वतंत्र है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : वाणी पर कंट्रोल नहीं है इसलिए मन पर भी कंट्रोल नहीं है।

दादाश्री : जो विरोध करे उस पर हमारा कंट्रोल नहीं है। पहले तो आप, 'मैं जीव हूँ' ऐसा मानते थे। अब वह मान्यता टूट गई है और 'मैं शिव हूँ' ऐसा पता चल गया है लेकिन जीव कभी उसका भाव छोड़ेगा नहीं, उसका हक़-वक़ कुछ भी छोड़ेगा नहीं। उसे यदि पटाएँ तो वह सबकुछ छोड़ दे ऐसा है। जिस प्रकार कुसंग के प्रभाव से कुसंगी हो जाता है और सत्संग के प्रभाव से सत्संगी हो जाता है, उसी तरह, यदि उसे समझाएँ तो वह सबकुछ छोड़ दे ऐसा समझदार है। अब आपको क्या करना है कि आपको चंदूभाई को बैठाकर उनके साथ बातचीत करनी पड़ेगी कि 'आप सड़सठ साल की उम्र में रोज़ सत्संग में आते हो, उसका बहुत ध्यान रखते हो, वह बहुत अच्छा काम करते हो!' लेकिन साथ ही यह भी समझाना और सलाह देना कि, 'देह का इतना ध्यान क्यों रखते हो? देह में ऐसा होता है, वह भले ही हो। आप हमारे साथ यों टेबल पर आ जाओ न! हमारे पास अपार सुख है।' ऐसा आपको चंदूभाई से कहना चाहिए। चंदूभाई को ऐसे आईने के सामने बैठाया हो तो वह आपको एक्ज़ेक्ट दिखेंगे या नहीं दिखेंगे?

प्रश्नकर्ता : अंदर बातचीत तो मेरी घंटों तक चलती है।

दादाश्री : लेकिन अंदर बातचीत करते वक्त वे अन्य फोन ले लेते हैं, इसलिए उन्हें सामने बैठाकर ऊँची आवाज़ में बातचीत करनी चाहिए, ताकि अन्य कोई फोन ले ही नहीं न!

प्रश्नकर्ता : खुद को सामने किस तरह बैठाएँ?

दादाश्री : तू यदि 'चंदूभाई' को सामने बैठाकर डाँटेगा तो 'चंदूभाई' बहुत समझदार हो जाएगा। तू खुद ही डाँटे कि, 'चंदूभाई, ऐसा तो होता

होगा? यह आपने क्या लगा रखा है? और कर ही रहे हो तो अब सीधा करो न?' ऐसा आप कहो तो क्या बुरा है? कोई और झिड़के तो अच्छा लगेगा? इसलिए हम आपको 'चंदूभाई' को डाँटने का कहते हैं। नहीं तो बिल्कुल अंधेर ही चलता रहेगा! यह *पुद्गल* क्या कहता है कि ''आप तो 'शुद्धात्मा' हो गए, लेकिन हमारा क्या?'' वह दावा करता है, वह भी हक़दार है। वह भी इच्छा रखता है कि 'हमें भी कुछ चाहिए' इसलिए उसे पटा लेना चाहिए। वह तो भोला है। भोला इसलिए है कि मूर्ख की संगत मिले तो मूर्ख बन जाता है और समझदार की संगत मिले तो समझदार बन जाता है। चोर की संगत मिले तो चोर बन जाता है! जैसा संग वैसा रंग! लेकिन वह खुद का हक़ छोड़ दे, ऐसा नहीं है।

आपको 'चंदूभाई' को आईने के सामने बैठाकर ऐसा प्रयोग करना चाहिए। आईने में तो मुँह वगैरह सब दिखता है। फिर आपको 'चंदूभाई' से कहना है कि 'आपने ऐसा क्यों किया? आपको ऐसा नहीं करना है। पत्नी के साथ मतभेद क्यों करते हो? तो फिर आपने शादी क्यों की? शादी करने के बाद ऐसा क्यों करते हो?' ऐसा सब कहना पड़ेगा। इस तरह आईने में देखकर डाँटोगे, एक-एक घंटा, तो बहुत शक्ति बढ़ जाएगी। यह बहुत बड़ी सामायिक कहलाती है। आपको 'चंदूभाई' की सभी भूलों का पता चलता है न? जितनी भूलें दिखीं उतनी आपने चंदूभाई को दपर्ण के सामने एक घंटे तक बैठाकर कह दीं तो वह सब से बड़ी सामायिक!

प्रश्नकर्ता : हम आईने के सामने न करें लेकिन यदि यों ही अकेले-अकेले मन से बातें करें, तब क्या वह नहीं हो सकता?

दादाश्री : नहीं, वह नहीं होगा। वह तो आईने में आपको 'चंदूभाई' दिखाई देने चाहिए। अकेले-अकेले मन में करोगे तो करना नहीं आएगा। अकेले-अकेले करना तो 'ज्ञानी पुरुष' का काम है! लेकिन आपको तो ऐसे ही बालभाषा में सिखाना पड़ेगा न? और यह आईना है तो अच्छा है, वर्ना लाख रुपये का आईना खरीदकर लाना पड़ता। ये तो सस्ते आईने हैं! ऋषभदेव भगवान के समय में सिर्फ

भरत चक्रवर्ती ने ही शीश महल बनवाया था! जबकि अभी तो बड़े-बड़े आईने भी सभी जगह दिखाई देते हैं!

यह सब परमाणु की थ्योरी है। यदि आईने के सामने बैठाकर करो न, तो बहुत काम निकल जाए, ऐसा है। लेकिन कोई करता नहीं है न? जब हम कहते हैं तब एक-दो बार करते हैं और फिर वापस भूल जाते हैं।

भरत राजा को, ऋषभदेव भगवान ने 'अक्रम ज्ञान' दिया लेकिन अंत में जब उन्होंने शीश महल का आसरा लिया, तब जाकर उनका काम हुआ। शीश महल में अँगूठी निकल गई थी और जब उँगली को खाली देखी तब उन्हें लगा कि सभी उँगलियाँ ऐसी दिखती हैं और यह उँगली क्यों ऐसी दिख रही है? तब पता चला कि अँगूठी निकल गई है, इसलिए। अँगूठी के कारण उँगली कितनी सुंदर दिख रही थी, फिर चला अंदर तूफान! वह ठेठ 'केवलज्ञान' होने तक चला! विचारों में उतर गए कि अँगूठी के आधार पर उँगली अच्छी दिख रही थी? मेरे कारण नहीं? तो कहा कि तेरे कारण कैसे? फिर तो, 'यह नहीं है मेरा, नहीं है मेरा, नहीं है मेरा' ऐसे करते-करते 'केवलज्ञान' प्राप्त किया!!! अर्थात् हमें शीश महल का लाभ लेना चाहिए। अपना 'अक्रम विज्ञान' है। जो कोई इसका लाभ लेगा, वह काम निकाल लेगा, लेकिन इसका किसी को पता ही नहीं चलता न? भले ही आत्मा नहीं जानता हो, फिर भी शीश महल की सामायिक ज़बरदस्त हो सकती है।

ठपका सामायिक

अपने रूम में जाकर 'चंदूभाई, तू क्या समझता है? चंदूभाई, तेरे बायें हाथ से दायें गाल पर थप्पड़ मार।' हमें ऐसा कहना है। एक लड़के का क्रोध नहीं जा रहा था तो उस लड़के से मैंने कहा, 'डाँटना, पूरा दिन बेचारा प्रतिक्रमण करता था फिर भी कुछ असर नहीं हो रहा था उस प्रतिक्रमण का। वह तो वापस जैसा था वैसे का वैसा'। तब मैंने कहा, 'डाँट लगा'। तो कहने लगा, 'कैसे डाँटूँ?' मैंने कहा, 'छत

पर जाकर डाँट'। फिर उसने फाइल नं-1 को जो डाँटा, खुद शुद्धात्मा और भाई (फाइल नं-1) को जो डाँटा, 'अरे, तू क्या समझता है?' तो वह भाई रो पड़ा। खुद डाँटने वाला और खुद ही रो पड़ा और आत्मा अलग हो गया! डाँटने से आत्मा अलग हो जाता है।

अतः आप रूम में बैठकर डाँटना। आप भी अच्छे से डाँटना ज़रा। *ठपका* सामायिक हमारी आज्ञा लेकर ही करनी है तभी प्रज्ञा रहेगी वर्ना दूसरा कुछ चिपक जाएगा तो हालत खराब हो जाएगी।

प्रश्नकर्ता : आप जो प्रयोग बताते हैं न, आईने में देखकर सामायिक करने का, फिर प्रकृति से बातचीत करना। जब ऐसा प्रयोग बताते हो तब अच्छा लगता है, फिर दो-तीन दिन तक अच्छा चलता है। फिर उसमें कमी आ जाती है।

दादाश्री : जब कमी आए तब वापस नए सिरे से करना। पुराना होने पर कमियाँ आ ही जाती हैं। *पुद्गल* का स्वभाव है, पुराना होने पर बिगड़ता जाता है। वापस नया बनाकर रख देना।

प्रश्नकर्ता : अतः उस प्रयोग द्वारा जो कार्य सिद्ध होना चाहिए, वह नहीं होता और वह प्रयोग बीच में आधा रह जाता है।

दादाश्री : वह तो, ऐसा करते-करते सिद्ध होता है, तुरंत नहीं हो जाता।

प्रश्नकर्ता : वह प्रयोग अधूरा रहा इसलिए फिर दूसरा प्रयोग करते हैं। उसे अधूरा छोड़कर तीसरा प्रयोग करते हैं, अभी अधूरा है, यानी सब अधूरे रह जाते हैं।

दादाश्री : फिर से आपको सारे प्रयोग धीरे-धीरे पूरे करने हैं। अभी भी प्रयोग पूरा नहीं हुआ है?

सामायिक, 'नहीं होती, नहीं होती', उसकी

प्रश्नकर्ता : मुझसे सामायिक कभी भी नहीं हो पाती।

दादाश्री : आपको 'नहीं होती, नहीं होती' की सामायिक कर देनी है।

एक ध्यान में थे या बेध्यान में थे, इतना ही भगवान पूछते हैं। हाँ, वे बेध्यान नहीं थे। 'नहीं होता' का ध्यान किया और उसने 'होता था' का ध्यान किया। और कुछ भी नहीं। यह तो वही का वही है। यों तो एक ही चीज़ है, इधर से देखो तब भी और उधर से देखो तब भी। आप उस तरफ घूमेंगे तो बैक इस ओर कहलागी और इस तरफ घूमेंगे तो बैक उस ओर कहलाएगी। हम तो ऐसा उल्टा चलाते कि 'नहीं होती'। यदि उसकी जगह पर मैं होता तो मैं कब का बैठ जाता, 'नहीं होती, नहीं होती।' उससे फिर अतंराय वगैरह सब चले जाएँगे। अंतराय कहेंगे, इन्हें नहीं जीत सकते। ये तो उल्टा घूमकर बैठे हैं। यह दिशा उल्टी पड़ी तो हम ऐसे घूम गए। फिर उस दिशा की ओर आगे जाएँगे तब यह टेढ़ा हो जाएगा। तब फिर उस तरफ घूम जाना है। दिशाएँ घूमती रहेंगी। यानी यह सब एक का एक ही है लेकिन उसमें दो मत नहीं होने चाहिए। वहाँ पर घर याद आए ऐसा नहीं होना चाहिए। 'नहीं होता, नहीं होता', वही ध्यान होना चाहिए। किसी को दादा के सारे बाल सफेद दिखाई देते हैं और किसी को ध्यान में सारे काले दिखाई देते हैं। उससे कोई हर्ज नहीं है। हमारा क्या काम है? ध्यान में एकाग्रता थी या नहीं? ध्यान कब कहलाता है? यदि एकाग्र हो जाए तो एक ही चीज़ है और ये सभी राम-राम बोलते हैं तो वह ध्यान नहीं है। जबकि यह ध्यान तो दादाई ध्यान कहलाता है। यह तो आश्चर्य है!

ध्यान करने वाले 'चंदूभाई', ध्यान का अनुभव करने वाले 'चंदूभाई' और जानने वाला आत्मा। अत: आप जानते हो कि ध्यान ठीक से 'होता नहीं, होता नहीं' और वह जानता है कि 'होता है, होता है'।

यानी सभी मार्ग खुले हैं। यदि ज्ञान है न, तो सभी मार्ग खुले हैं और यदि ज्ञान नहीं है तो एक ही मार्ग खुला है और यदि दूसरे मार्ग पर जाएगा तो भ्रष्टाचार हो जाएगा।

इसमें 'देखा' 'देखने वाले' को

सामायिक में 'आपने' 'देखने वाले' को देखा! ऐसी सामायिक में सारे दोष धुल जाते हैं! सामायिक के समय आप खुद आत्मा और यह देखने वाले को भी आपने देखा, अंदर से! वर्ना इंसान में इतना याद करने की शक्ति तो हो ही नहीं सकती न! इसमें तो एक-एक परत देख लेते हैं।

थोड़ा-बहुत आपको भीतर आभास हुआ या नहीं? ऐसा? क्या बात करते हो? कहना पड़ेगा! आपका कैसा है भीतर? थोड़ा-बहुत राह पर आया था? यह आपको सामायिक का लाभ मिल गया क्योंकि यह सामायिक तो आत्म सामायिक कहलाती है। व्यवहार सामायिक यानी क्या? बाहर वाले सब जो सामायिक करते हैं, वह मन को स्थिर करने की सामायिक है। वह भी पूर्णतः मन स्थिर हो जाए तो उत्तम जबकि यहाँ पर तो मन की बात ही नहीं है न! यह तो सारी पुनिया श्रावक की सामायिक!

प्रश्नकर्ता : आपने अभी कहा न, कि इस सामायिक में 'देखने वाले' को देखता है, वह ज़रा समझ में नहीं आया।

दादाश्री : आत्मा के अलावा बुद्धि की भी शक्ति है इसलिए बाहर की चीज़ों को देख सकती है, संसारी चीज़ों को देख सकती है और इन सभी दोषों को 'वह' देखता है यानी यह जानने की शक्ति आत्मा की है। आत्मा स्व-पर प्रकाशक है। यानी वह देख सकता है। खुद को भी देखता है और परायों को भी देखता है। स्व-पर प्रकाशक यानी संसार को भी प्रकाशित कर सकता है और खुद स्वयं को भी प्रकाशित कर सकता है। दोनों देख सकता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन आपने तो ऐसा कहा कि देखने वाले को वह देखता है।

दादाश्री : हाँ, यानी वास्तव में वहाँ यह मूल आत्मा ही काम करता है इसलिए हमने अलग कर दिया। जो स्व-पर प्रकाशक है वही काम कर रहा है। यानी आपको उस स्व-पर प्रकाशक का विश्वास बैठा

कि भीतर स्व-पर प्रकाशक है और कार्य कर रहा है, उसे हमने देखा। देखने वाले को देखा अब। देखने वाले को देखने में दूसरा अभ्यास नहीं होता लेकिन यहाँ पर आपको विश्वास बैठा कि यह किसने देखा? अतः हम किसे ढूँढते हैं? तो, देखने वाले को इसलिए कहा कि आपने देखने वाले को देखा!

प्रश्नकर्ता : आपको चौबीसों घंटे सामायिक ही रहती है न?

दादाश्री : हाँ, सामायिक तो रहती ही है। सामायिक तो स्वाभाविक ही है न! क्योंकि आत्मा ही सम है और वह खुद ही सामायिक है। आत्मा स्वभाव में आ गया तो वह सामायिक ही है लेकिन ज्ञानी पुरुष में सामायिक से भी आगे हैं। उनमें दूसरे गुण, कई गुण प्रकट होते हैं, स्वाभाविक गुण होते हैं।

आत्मा वही सामायिक

सामायिक के कर्ता आप नहीं हो, प्रतिक्रमण के कर्ता आप नहीं हो। यह सब तो उदयकर्म करवा रहा है जबकि ये लोग, सभी साधु नासमझी से ऐसा कहते हैं कि, 'मैंने किया, मैं कर रहा हूँ'। ऐसा सारा अज्ञान घुस गया है।

प्रश्नकर्ता : समभाव यानी सामायिक, अब यदि समभाव में रह सकें तो फिर यह सामायिक करनी चाहिए?

दादाश्री : अरे! आत्मा ही सामायिक है। आपको यह ज्ञान प्राप्त हुआ और फिर मेरी आज्ञा में रहोगे तो वह पूरा दिन सामायिक कहलाएगी।

और दूसरा, यह सामायिक करनी नहीं है। यह तो सिर्फ पिछले दोष धोने के लिए बड़ा प्रतिक्रमण है एक प्रकार का! इससे पहले जो दोष हो चुके हैं, उन सब को धोना, उसे लोग सामायिक कहते हैं। बाकी, आत्मा ही सामायिक और आत्मा प्राप्त होने के बाद पूरा दिन सामायिक में ही रह सकते हैं!

जय सच्चिदानंद

मूल गुजराती शब्दों के समानार्थी शब्द

लक्ष	–	जागृति
भोगवटा	–	सुख या दुःख का असर, भुगतना
पुद्गल	–	जो पूरण और गलन होता है
निर्जरा	–	आत्मप्रदेश में से कर्मों का अलग होना
उपाधि	–	बाहर से आने वाला दुःख
बेभानपने	–	बेहोशी
गुंठाणा	–	48 मिनट, गुणस्थानक
चीकणा	–	गाढ़
आड़ाई	–	अहंकार का टेढ़ापन
निकाली	–	निपटारा
अणहक्क	–	बिना हक़ का, अवैध
ऊपरी	–	बॉस, वरिष्ठ मालिक
वटेशरी	–	यात्रा में ले जाने का भोजन
सिलक	–	जमापूँजी
तरछोड़	–	तिरस्कार सहित दुत्कारना
अटकण	–	जो आगे नहीं बढ़ने दे
बरु	–	जंगली पौधे की नुकीली डंडी
पींजण	–	बार-बार चर्चा करना
संवर	–	कर्म का चार्ज होना बंद हो जाना
गोदा	–	कोहनी से मुक्का

चोंट - चिपका हुआ है, मान्यता

पूरण - चार्ज होना, भरना

गलन - डिस्चार्ज होना, खाली होना

ठपका - डाँट

जाथुं - एक साथ, थोक में

चलण - वर्चस्व, सत्ता, खुद के अनुसार सब को चलाना

कढ़ापा-अजंपा - कुढ़न-आक्रोश

खेंच - अपनी बात को सही मानकर पकड़ रखना, आग्रह

चीकणी फाइल - गाढ़ ऋणानुबंध वाले व्यक्ति अथवा संयोग

रत्नकणिकाएँ

❁ जगत् किस आधार पर टिका हुआ है? अतिक्रमण दोष से। क्रमण में हर्ज नहीं है लेकिन अतिक्रमण हो जाए तो उसके लिए 'प्रतिक्रमण' करना पड़ेगा।

❁ 'अतिक्रमण' हो जाना स्वाभाविक है। 'प्रतिक्रमण' करना अपना 'पुरुषार्थ' है।

❁ जो व्यक्ति किसी भी क्रिया के बाद पछतावा करता है, वह एक दिन शुद्ध होगा ही, वह निश्चित है।

❁ घर्षण के बाद प्रतिक्रमण करते हैं तो घर्षण मिट जाता है। यदि नया घर्षण करते हैं तो आई हुई शक्ति वापस चली जाती है।

❁ मनुष्य से दोष हो जाना स्वाभाविक है। उससे विमुक्त होने का रास्ता कौन सा? सिर्फ 'ज्ञानी पुरुष' ही उसे दिखाते हैं, 'प्रतिक्रमण'।

❁ जगत् के लोग माफी माँग लेते हैं, उससे कुछ 'प्रतिक्रमण' नहीं होता। वह तो रास्ते में 'सॉरी', 'थैंक यू' कहें, उसके जैसी बात है। उसका कोई महत्व नहीं है। महत्व 'आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान' का है।

❁ 'प्रतिक्रमण' यदि तुरंत ही नकद हो जाए तो भगवान पद में आ सकते हैं!

❁ स्मरण नहीं करना है फिर भी आ जाता है तो ऐसा क्या इसलिए है कि दोषों के 'प्रतिक्रमण' करना बाकी है।

❁ जब घर के लोग निर्दोष दिखाई देंगे और खुद के ही दोष दिखाई देंगे तब यथार्थ 'प्रतिक्रमण' होंगे।

❁ हम जो शब्द बोलते हैं, वे नहीं बोलने हैं फिर भी बोल देते हैं। प्रकृति नाचती है और तूफान खड़ा हो जाता है। उसके कितने ही 'प्रतिक्रमण' होते हैं तब जाकर वह प्रकृति बंद होती है!

❁ 'प्रतिक्रमण' करने से क्या होता है? हमने जो दखल की थी, उसी का यह 'रिएक्शन' आ रहा है, उस पर हमें फिर से दखल करने का मन नहीं होता!

❁ जिसके 'आलोचना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान' यथार्थ हैं, उसे आत्मा प्राप्त हुए बगैर रहेगा ही नहीं।

दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा प्रकाशित हिन्दी पुस्तकें

1. ज्ञानी पुरुष की पहचान
2. सर्व दु:खों से मुक्ति
3. कर्म का सिद्धांत
4. आत्मबोध
5. मैं कौन हूँ ?
6. पाप-पुण्य
7. भुगते उसी की भूल
8. एडजस्ट एवरीव्हेयर
9. टकराव टालिए
10. हुआ सो न्याय
11. चिंता
12. क्रोध
13. प्रतिक्रमण (सं.)
14. दादा भगवान कौन ?
15. पैसों का व्यवहार
16. अंत:करण का स्वरूप
17. जगत कर्ता कौन ?
18. त्रिमंत्र
19. भावना से सुधरे जन्मोंजन्म
20. चमत्कार
21. प्रेम
22. समझ से प्राप्त ब्रह्मचर्य (सं.)
23. दान
24. मानव धर्म
25. सेवा-परोपकार
26. मृत्यु समय, पहले औरपश्चात्
27. निजदोष दर्शन से... निर्दोष
28. पति-पत्नी का दिव्य व्यवहार
29. क्लेश रहित जीवन
30. गुरु-शिष्य
31. अहिंसा
32. सत्य-असत्य के रहस्य
33. वर्तमान तीर्थंकर श्री सीमंधर स्वामी
34. माता-पिता और बच्चों का व्यवहार
35. वाणी, व्यवहार में...
36. कर्म का विज्ञान
37. सहजता
38. आप्तवाणी - 1
39. आप्तवाणी - 2
40. आप्तवाणी - 3
41. आप्तवाणी - 4
42. आप्तवाणी - 5
43. आप्तवाणी - 6
44. आप्तवाणी - 7
45. आप्तवाणी - 8
46. आप्तवाणी - 9
47. आप्तवाणी - 13 (पूर्वार्ध व उत्तरार्ध)
48. आप्तवाणी - 14 (भाग-1)
49. समझ से प्राप्त ब्रह्मचर्य (पूर्वार्ध व उत्तरार्ध)
50. ज्ञानी पुरुष (भाग-1)
51. प्रतिक्रमण (ग्रँथ)

★ दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा गुजराती भाषा में भी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई है। वेबसाइट www.dadabhagwan.org पर से भी आप ये सभी पुस्तकें प्राप्त कर सकते हैं।

★ दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा हर महीने हिन्दी, गुजराती तथा अंग्रेजी भाषा में ''दादावाणी'' मैगेज़ीन प्रकाशित होता है।

संपर्क सूत्र

दादा भगवान परिवार

अडालज	:	**त्रिमंदिर**, सीमंधर सिटी, अहमदाबाद-कलोल हाईवे, पोस्ट : अडालज, जि.-गांधीनगर, गुजरात - 382421. फोन : (079) 39830100, 9328661166/77 E-mail : info@dadabhagwan.org
राजकोट	:	**त्रिमंदिर,** अहमदाबाद-राजकोट हाईवे, तरघड़िया चोकड़ी (सर्कल), पोस्ट : मालियासण, जि.-राजकोट. फोन : 9924343478
भुज	:	**त्रिमंदिर,** हिल गार्डन के पीछे, एयरपोर्ट रोड. फोन : (02832) 290123, 9924345588
अंजार	:	**त्रिमंदिर,** अंजार-मुन्द्र रोड, सीनोग्रा पाटीया के पास, सीनोग्रा गाँव, ता.-अंजार, फोन : 9924346622
मोरबी	:	**त्रिमंदिर,** मोरबी-नवलखी हाईवे, पो-जेपुर, ता.-मोरबी, जि.-राजकोट. फोन : (02822) 297097, 9924341188
सुरेन्द्रनगर	:	**त्रिमंदिर**, सुरेन्द्रनगर-राजकोट हाईवे, लोकविद्यालय के पास, मुळीरोड. फोन : 9737048322
अमरेली	:	**त्रिमंदिर**, लीलीया बायपास चोकडी, खारावाडी, फोन : 9924344460
गोधरा	:	**त्रिमंदिर,** भामैया गाँव, एफसीआई गोडाउन के सामने, गोधरा. (जि.-पंचमहाल). फोन : (02672) 262300, 9723707738
वडोदरा	:	**त्रिमंदिर,** बाबरीया कोलेज के पास, वडोदरा-सुरत हाई-वे, NH-8, वरणामा गाँव. फोन : 9574001557
जामनगर	:	**त्रिमंदिर,** व्रजभूमि-1 के सामने, TGES स्कूल के पास, माणेक नगर, राजकोट रोड. फोन : 9924343687
वडोदरा	:	दादा मंदिर, 17, मामा की पोल-मुहल्ला, रावपुरा पुलिस स्टेशन के सामने, सलाटवाड़ा, वडोदरा. फोन : 9924343335
अहमदाबाद	:	**दादा दर्शन,** 5, ममतापार्क सोसाइटी, नवगुजरात कॉलेज के पीछे, उस्मानपुरा, अहमदाबाद-380014. फोन : (079) 27540408, 9924343791

मुंबई	:	9323528901	**दिल्ली**	:	9810098564
कोलकता	:	9830093230	**चेन्नई**	:	7200740000
जयपुर	:	8890357990	**भोपाल**	:	9826926444
इन्दौर	:	6354602400	**जबलपुर**	:	9425160428
रायपुर	:	9329644433	**भिलाई**	:	9407982704
पटना	:	7352723132	**अमरावती**	:	9422915064
बेंगलूर	:	9590979099	**हैदराबाद**	:	9885058771
पूणे	:	7218473468	**जलंधर**	:	9814063043

U.S.A. : **DBVI Tel. :** +1 877-505-DADA (3232),
Email : info@us.dadabhagwan.org

U.K.	:	+44 330-111-DADA (3232)	**Australia**	:	+61 421127947
Kenya	:	+254 722 722 063	**New Zealand**	:	+64 21 0376434
UAE	:	+971 557316937	**Singapore**	:	+65 81129229

www.dadabhagwan.org

प्रतिक्रमण

प्रत्यक्ष दादा भगवान की साक्षी में देहधारी * के मन-वचन-काया के योग, भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म से भिन्न ऐसे हे शुद्धात्मा भगवान, आपकी साक्षी में आज दिन तक जो जो ** दोष हुए हैं, उनके लिए क्षमा माँगता हूँ, हृदयपूर्वक पश्चाताप करता हूँ। आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान करता हूँ और ऐसे दोष फिर से कभी भी न करूँ, ऐसा दृढ़ निश्चय करता हूँ। मुझे क्षमा कीजिए, क्षमा कीजिए, क्षमा कीजिए।

हे दादा भगवान! मुझे ऐसा कोई भी दोष न करने की परम शक्ति दीजिए, शक्ति दीजिए, शक्ति दीजिए।

* जिसके प्रति दोष हुआ हो, उस व्यक्ति का नाम लेना।

** जो-जो दोष हुए हो, वे सारे दोष मन में जाहिर करें।

[आप शुद्धात्मा है और जो दोष करता है, उससे प्रतिक्रमण करवाना है। चन्दूभाई से दोषों का प्रतिक्रमण करवाना है

(पाठक चन्दूभाई की जगह खुद का नाम समझें)।]

dadabhagwan.org

9 789387 551626

Printed in India

Price ₹ 150